है। यह तथ्यों के एक विशेष विभाग को चुनता है। भौतिकी द्रव्य और शक्ति को चुनती है। वनस्पति विज्ञान पौधों को चुनता है। प्राणिविज्ञान प्राणियों को चुनता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं और उनके साथ होने वाले अन्य तथ्यों को चुनता है। यह अनुभव और व्यवहार को चुनता है।

विज्ञान अपनी सामग्री की छानबीन के लिये विधियों के रूप में निरीक्षण, प्रयोग, तुलना और वर्गीकरण का आश्रय लेता है। वर्णनात्मक विज्ञानों में वर्गीकरण के साथ निरीक्षण का उपयोग किया जाता है। प्रयोगात्मक विज्ञानों में निरीक्षण के साथ प्रयोग का सहयोग होता है। मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण करता है, उनकी परस्पर तुलना करता है, तथा विविध वर्गों में उन्हें रखता है। यंत्रों की सहायता से यह प्रयोग भी करता है। विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान वैज्ञानिक विधियों का अवलम्बन लेता है।

विज्ञान अपने क्षेत्र के अन्तर्गत तथ्यों को समझाने की चेष्टा करता है। स्पष्टीकरण विज्ञान का चरम उद्देश्य है। किसी तथ्य का स्पष्टीकरण प्रकृति के किसी नियम के द्वारा होता है। और किसी नियम का स्पष्टीकरण प्रकृति के एक उच्चतर नियम के द्वारा होता है। वस्तुओं के गिरने का स्पष्टीकरण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के नियम द्वारा होता है। ग्रहों की गति के नियमों की व्याख्या आकर्षण के नियम द्वारा होती है। मनोविज्ञान भी मानसिक तथ्यों को मन के नियमों के द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार स्पष्टीकरण या व्याख्या प्रायः सामान्यीकरण (Generalization) का रूप लेती है। किन्तु कभी-कभी परिकल्पना (Hypothesis) का निर्माण करके व्याख्या की जाती है। प्रकाश के तथ्यों की व्याख्या व्योम (Ether) की तरङ्गों से की जाती है। व्योम एक परिकल्पित द्रव्य (Hypothetical Substance) है। इसके अस्तित्व की वैज्ञानिकों ने कल्पना कर डाली है। मनोविज्ञान धारणा (Retention) स्मरण, प्रत्यभिज्ञा (Recognition), स्वप्न तथा ऐसे ही अन्य तथ्यों की व्याख्या के लिये अधोचेतन (Unconscious) की सत्ता कल्पित करता है। इस प्रकार मनोविज्ञान मानसिक तथ्यों की व्याख्या मन के नियमों और परिकल्पनाओं के द्वारा करता है। मनोवैज्ञानिक

व्याख्या वैज्ञानिक व्याख्या है। कभी-कभी मनोविज्ञान मानसिक तथ्यों की व्याख्या शारीरिक तथ्यों से भी करता है।

विज्ञान स्वीकार कर लेता है कि विश्व की बुद्धि द्वारा व्याख्या की जा सकती है। यह विज्ञान की आधारभूत मान्यता (Supposition) है। मनोविज्ञान मानता है कि मानसिक प्रक्रियाएँ बोधगम्य (Intelligible) हैं; बुद्धि द्वारा उनकी व्याख्या सम्भव है। वास्तव में, मानसिक प्रक्रियायें सीधे मन की पहुँच के भीतर हैं, तथा मन के द्वारा उनका स्पष्टीकरण हो सकता है। मनोविज्ञान उसी प्रकार मानसिक प्रक्रियाओं को बुद्धिग्राह्य मानता है, जैसे भौतिक विज्ञान बाह्य जगत् को।

विज्ञान अपने विषय को कुछ मान्यताओं के साथ प्रारम्भ करता है। रसायन, भौतिकी इत्यादि द्रव्य और शक्ति की वास्तविकता को मान लेते हैं। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक मन और द्रव्य की सत्ता तथा मन की द्रव्य को जानने की क्षमता को मान लेता है। ये मनोविज्ञान की आधारभूत मान्यतायें हैं।

विज्ञान अपने ही क्षेत्र में सामंजस्य अथवा आत्मसंगति (Self-consistency) की माँग करता है। उसके नियमों और तथ्यों की परस्पर संगति होनी चाहिए। यदि उनमें विरोधों की प्रतीति होती है तो उनको दूर करना होगा। मनोविज्ञान को भी मानसिक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित ज्ञान की आत्मसंगति को लक्ष्य बनाना होगा। इस प्रकार मनोविज्ञान एक विज्ञान है। यह मन या मानसिक प्रक्रियाओं का प्राकृतिक विज्ञान है।

४. मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है (Psychology is a Natural Science)।

मनोविज्ञान तत्वज्ञान का अंग नहीं है। यह एक प्राकृतिक विज्ञान है। इसका निश्चित विषय मन है। यह निरीक्षण और प्रयोग के द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं और जीव में उनकी अभिव्यक्तियों की छानबीन करता है, उनकी परस्पर तुलना करता है, और विभिन्न वर्गों में उनको श्रेणीबद्ध करता है। यह सहचारी शारीरिक प्रक्रियाओं और भौतिक उत्तेजनाओं (Physical

Stimuli) के द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने की चेष्टा करता है। यह मन के नियमों और कुछ परिकल्पनाओं की सहायता से उन्हें समझाने का प्रयास करता है। यह सभी अन्य प्राकृतिक विज्ञानों के समान कार्य-कारण के प्रत्यय (Idea of Causation) का उपयोग करता है। इसका विश्वास है कि मानसिक प्रक्रियायें अपने कारणों द्वारा निर्धारित होती हैं। कभी-कभी यह परिकल्पनाओं की सृष्टि करके मानसिक तथ्यों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न करता है। मन की सत्ता, द्रव्य की सत्ता, और द्रव्य को जानने की मन की क्षमता इसकी मान्यता है। यह इनकी प्रामाणिकता (Validity) की परीक्षा नहीं करता। यह मान लेता है कि मानसिक तथ्य बुद्धिग्राह्य हैं और बुद्धि द्वारा उनकी व्याख्या की जा सकती है। मन के विषय में तंत्रबद्ध (Systematic) और आत्म-संगत ज्ञान मनोविज्ञान का लक्ष्य है। इस लिये मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है। आधुनिक मनोविज्ञान तत्वज्ञान का अंग नहीं है। यह मन का विज्ञान है। यह मन का दर्शन नहीं है।

एंजिल सुन्दरतापूर्वक मनोवैज्ञानिक व्याख्या के स्वरूप को संक्षेप में इस प्रकार लिखता है, "मनोवैज्ञानिक की व्याख्यायें मुख्यतः यह दिखाती हैं कि (१) जटिल मानसिक स्थितियाँ सरल स्थितियों से कैसे बनती हैं, (२) कैसे उसके द्वारा विश्लिष्ट मानसिक समूह वृद्ध और विकसित होते हैं, तथा अन्त में (३ अ) कैसे ये विविध चेतन प्रक्रियायें शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्धित होती हैं, और (३ आ) कैसे परिवेश (Environment) को बनाने वाले सामाजिक और भौतिक जगत् में होने वाली वस्तुओं और घटनाओं से[1] जटिल मानसिक प्रकारों (Modes) का उनके सरल घटकों (Constituents) में विश्लेषण करके उनकी व्याख्या की जाती है।" विभिन्न भूमिकाओं (Stages) में से होकर मानसिक प्रक्रियाओं का आरम्भ ढूंढा जाता है। तथा उनकी वृद्धि और विकास का क्रम मालूम किया जाता है। मानसिक प्रक्रियाओं का स्पष्टीकरण सहचारी स्नायविक प्रक्रियाओं (Neural Processes) के द्वारा किया जाता है। कुछ मानसिक प्रक्रियाओं को उनकी बहिर्गत उत्तेजनाओं के द्वारा समझाया जाता है।

[1] (मनोविज्ञान, पृ० ३)

एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान सामान्यतया मानसिक प्रक्रियाओं में पूरी तरह से कार्य-कारण-भाव में आस्था रखता है। वे अपने कारणों के द्वारा निर्धारित होती हैं। अन्य मानसिक प्रक्रियायें या शारीरिक प्रक्रियायें और बाह्य पदार्थ उनको निर्धारित करते हैं। वे मुक्त या अनियंत्रित नहीं हैं। जैसे प्रकृति में स्वातंत्र्य के लिये गुंजायश नहीं है, वैसे ही मन में भी नहीं है। संकल्प स्वातंत्र्य (Freedom of Will) असम्भव है। अपने कारणों अर्थात् प्रेरकों (Motives) और हेतुओं (Conditions) के द्वारा संकल्पों का पूर्णतया नियमन होता है। वैज्ञानिक के रूप में मनोवैज्ञानिक सामान्यतया नियतिवादी परिकल्पना (Deterministic Hypothesis) को स्वीकार करता है।

किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिक (यथा, वार्ड) ऐसे हैं जो संकल्प-स्वातंत्र्य में आस्था रखते हैं। उनका मत है कि आत्मा के संकल्प का किया जाना स्वतंत्रता है। संकल्प आत्मा के द्वारा नियंत्रित है। स्वतंत्रता आत्मतंत्रता (Self-determinism) है। यह कार्य-कारण-नियम की विरोधिनी नहीं है। यह आत्म-कारण-भाव (Self-causation) है। संकल्प आत्मतंत्र है।

५. मनोविज्ञान का क्षेत्र (The Scope of Psychology) ।

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। इसका सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओं से है। मेरी मानसिक प्रक्रियायें मेरे आन्तरिक प्रत्यक्ष अथवा अन्तर्निरीक्षण के लिये सुगम हैं। मैं अपने अन्तर में दृष्टिपात करके अपने सुख, दुःख, प्रसन्नता, शोक इत्यादि का अनुभव कर सकता हूँ। अन्तर्दर्शन (Introspection) मेरे अपने अनुभव को प्रकट कर सकता है। मनोविज्ञान मूलतः मानसिक प्रक्रियाओं से सम्बन्ध रखता है।

किन्तु मैं दूसरों के मनों का सीधे निरीक्षण नहीं कर सकता। मैं उनके व्यवहार से उनकी मानसिक प्रक्रियाओं का अनुभव कर सकता हूँ। दूसरों की मानसिक प्रक्रियायें उनके व्यवहार में अभिव्यक्त होती हैं। मैं सीधे उनके व्यवहार का निरीक्षण कर सकता हूँ, और उसके आधार पर उनकी आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं का अनुमान कर सकता हूँ। मुद्रा, भावभंगी, भाषा

इत्यादि मानसिक प्रक्रियाओं के बाह्य प्रकाशन हैं। ये दूसरों के मन की कुञ्जी हैं। अतः व्यवहार भी मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाता है। व्यवहार मानसिक प्रक्रियाओं का बाह्य शारीरिक प्रकाशन है।

मानसिक प्रक्रियाओं के साथ शारीरिक प्रक्रियायें भी होती हैं। सहचारी शारीरिक प्रक्रियाओं के बिना उनकी पर्याप्त व्याख्या नहीं हो सकती। मैं प्रकाश देखता हूँ। व्योम-तरंगें मेरी आँखों को स्पर्श करती हैं तथा दृष्टि-पटल (Retina) पर क्रिया करती हुई एक प्रभाव को जन्म देती हैं। यह दृष्टि-स्नायु (Optic Nerve) के द्वारा मस्तिष्क में पहुँचाया जाता है। इससे मन के ऊपर एक संस्कार (Impression) अंकित होता है। केवल तभी मैं प्रकाश को देखता हूँ। यदि शारीरिक प्रक्रियाओं को छोड़ दिया जाय तो प्रकाश की संवेदना (Sensation) को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अतः शारीरिक प्रक्रियायें भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में आती हैं। इसे नाड़ी-तंत्र, (Nervous System) पेशियों और ज्ञानेन्द्रियों का अध्ययन करना होगा जो मानसिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठतया संबन्धित हैं।

कभी-कभी मानसिक प्रक्रियायें बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न होती हैं। वायु के कंपन ध्वनि की संवेदनाओं को उत्पन्न करते हैं। व्योम के कंपन रंगों की संवेदनाओं को जन्म देते हैं। बाह्य उत्तेजनायें रंग, ध्वनि इत्यादि की संवेदनाओं को उपजाती हैं। विशेष परिस्थितियों से संवेग (Emotion) पैदा होते हैं। मित्र को देखने से प्रसन्नता होती है। शत्रु को देखने से क्रोध जाग्रत होता है। उन्मुक्त शेर को देखने से भय होता है। इन मानसिक प्रक्रियाओं को बाह्य वस्तुओं से पृथक करके नहीं समझा जा सकता। मनोविज्ञान, जिस रूप में बाह्य वस्तुयें मन से संबन्धित होती हैं, उसका अध्ययन करता है।

भौतिक और जैविक विज्ञान बाह्य वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप की छानबीन करते हैं। मनोविज्ञान उन्हें चेतना के विषयों के रूप में देखता है। अन्य विज्ञान मन के द्वारा बाह्य वस्तुओं के अनुभव की उपेक्षा करते हैं। मनोविज्ञान मन के द्वारा अनुभूत बाह्य वस्तुओं का विचार करता है। यही मनोविज्ञान और अन्य प्राकृतिक विज्ञानों में भेद है। "इस अर्थ में, व्यक्ति के सामने प्रस्तुत रूप में, 'सम्पूर्ण आकाश और पृथ्वी' मनोविज्ञान की सम्पत्ति

कहे जा सकते हैं, अन्यथा वे इसके क्षेत्र के बाहर हैं" (वार्ड)। जो कुछ भी चेतना का विषय है, मनोविज्ञान के क्षेत्र में आता है। केवल अनुभव करने वाले मन के सम्पर्क से उसका विचार किया जाता है। अनुभव करने वाले मन के सम्पर्क के अतिरिक्त वस्तु का स्वरूप मनोवैज्ञानिक छानबीन का विषय नहीं हैं।

मनोविज्ञान मानव-मन, पशु का मन—सभी प्रकार के मनों का अध्ययन करता है। यह मानव-मन की विभिन्न अवस्थाओं का—शिशु का मन, किशोर का मन, प्रौढ़ का मन और वृद्ध का मन—अध्ययन करता है। यह सामान्य (Normal) मन का अध्ययन करता है और असामान्य (Abnormal) मन का भी, वैयक्तिक मन का भी और सामूहिक (Collective) मन का भी।

मनोविज्ञान सामूहिक मन का अध्ययन करता है, लोगों के समूहों के मानसिक विकास का अनुमान करने के उद्देश्य से यह उनके रीति-रिवाजों, पुराणों और दन्तकथाओं, धर्म और लोकगीतों, भाषा और साहित्य का अध्ययन करता है। ये सामूहिक मन के बाह्य परिणाम हैं। मनोविज्ञान साधारण झुण्ड की मनोवृत्ति (Crowd Mind) सवेग प्रेरित झुण्ड की मनोवृत्ति (Mob Mind) और विवेकशील समूह की मनोवृत्ति (Deliberative groupmind) का अध्ययन करता है; उनकी विलक्षणताओं की छानबीन करता है। समाजिक मनोविज्ञान सामूहिक मन के विचित्र लक्षणों से सम्बन्ध रखता है।

इस प्रकार मनोविज्ञान का सम्बन्ध इनसे है : (१) मानसिक प्रक्रियायें; (२) व्यवहार में उनकी अभिव्यक्तियाँ; (३) उनकी सहचारी शारीरिक प्रक्रियायें; (४) उनकी बाह्य उत्तेजनायें; (५) मन की सभी अवस्थायें और प्ररूप (Types) पशु-मन और मानव-मन, साधारण मन और असाधारण मन, और (६) सामूहिक मन के विचित्र लक्षण और बाह्य परिणाम। ये मनोविज्ञान की सामग्रियाँ (Data) हैं।

६. मनोविज्ञान की परिभाषायें (Definitions of Psychology)।

मनोविज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की जाती है :—

(१) मनोविज्ञान मन का विज्ञान है (Psychology is the Science of the Mind)।

इस परिभाषा के विरुद्ध दो आपत्तियाँ की जा सकती हैं। पहली यह है कि विज्ञान दो प्रकार के होते हैं, विधायक (Positive) और नियामक (Normative)। मनोविज्ञान एक विधायक या प्राकृतिक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओं के उस रूप से है जिसमें वे वस्तुतः मन में घटित होती हैं। तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र नियामक विज्ञान हैं। उनका सम्बन्ध क्रमशः सत्य, शुभ और सुन्दर के उच्चतम रूपों या आदर्शों से है (अध्याय ३ देखिये)। वे हमें यह बतलाते हैं कि हमारा विचार, अनुभूति और कर्म कैसा होना चाहिये। अतः 'विज्ञान' शब्द द्वयर्थक है। केवल विज्ञान न कहकर विधायक विज्ञान कहना वांछनीय है। दूसरी आपत्ति 'मन' शब्द के विरुद्ध है। 'मन' भी द्वयर्थक है। इसका अर्थ आत्मा या मनोद्रव्य (Mind Substance) हो सकता है, या मानसिक प्रक्रियायें। आधुनिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओं और व्यवहार में उनके प्रकाशनों से है। 'मन' में एक प्रकार की एकता और अविच्छिन्नता (Unity and Continuity) भी गर्भित है जो सामान्य मनुष्यों में तो पाई जाती है, किन्तु जिसका स्वप्नावस्था में, या मानसिक विकृतियों में, या पशुओं में पूर्णतया अभाव हो सकता है। लेकिन मनोविज्ञान मनुष्य के और पशु के, साधारण और असाधारण व्यक्ति के, सभी मनों की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान व्यवहार, शारीरिक प्रक्रियाओं, तथा बाह्य वस्तुओं का भी अध्ययन करता है। ये मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान के गौण विषय हैं।

(२) मनोविज्ञान चेतना का विज्ञान है (Psychology is the Science of Consciousness)।

यह परिभाषा भी आपत्तिजनक है। पहले तो 'विज्ञान' न कहकर विधायक विज्ञान कहना चाहिये। मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है। यह मानसिक प्रक्रियायें जैसी होती हैं अर्थात् उनके वास्तविक रूप का अध्ययन करता है।

यह नियामक विज्ञान नहीं है। यह नहीं बताता कि मानसिक प्रक्रियाओं को कैसा होना चाहिये। यह नहीं बताता कि हमें कैसे विचार, अनुभूति और कर्म करना चाहिये। दूसरे, मनोविज्ञान का सम्बन्ध सभी मानसिक प्रक्रियाओं से है। *यह चेतना के सभी स्तरों,— चेतना का केन्द्र* (Focus), चेतना का सीमान्त (Margin), तथा अधोचेतन (Subconscious) का अध्ययन करता है। अतः 'चेतना' शब्द द्वयर्थक है। तीसरे, मनोविज्ञान व्यवहार, शारीरिक प्रक्रियाओं तथा बाह्य वस्तुओं का भी अध्ययन करता है जो चेतना से सम्बन्धित हैं। पहली परिभाषा इससे अधिक अच्छी है, यदि मन से तात्पर्य मानसिक प्रक्रियाओं से है।

(३) मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है (Psychology is the Science of Behaviour)।

यह परिभाषा आपत्तिजनक है। प्रथम, मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है। इसे निश्चित रूप से कहना चाहिये। मनोविज्ञान बताता है कि हम वस्तुतः कैसे व्यवहार करते हैं। नीतिशास्त्र की तरह यह नहीं बताता कि हमें व्यवहार कैसे करना चाहिये। यह बताता है कि प्राणी, पशु हों या मनुष्य, विशेष उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया-स्वरूप कैसे व्यवहार करते हैं। मनोविज्ञान *व्यवहार का विधायक विज्ञान है। द्वितीय, मूलतः मनोविज्ञान चेतना से* सम्बन्धित है। व्यवहार से उसका सम्बन्ध आनुषंगिक (Incidental) है, क्योंकि यह चेतना का प्रकाशन है। व्यवहार अनुभव या चेतना के बिना बोधागम्य (Unintelligible) है। मनोविज्ञान अनुभव और व्यवहार का विज्ञान है।

व्यवहारवादी (Behaviourists) कहते हैं कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। व्यवहार प्राणी की उत्तेजना (Stimulus) के प्रति प्रतिक्रिया (Response) है। मनोविज्ञान का मन या चेतना से कोई सम्बन्ध नहीं है। तथाकथित मानसिक प्रक्रियायें "अस्पर्श्य और अनुपगम्य (Intangibles and inapproachables)" हैं। *इनका बहिष्कार होना चाहिये। मनो-* विज्ञान को अन्तर्दर्शन से बिलकुल अलग रहना चाहिये। निरीक्षण और

प्रयोग उसकी विधियाँ हैं। उसे जीवित प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन करना चाहिये। वाटसन (Watson) इस मत का प्रचारक है। वह मनोविज्ञान को जीवविज्ञान के समान वस्तुगत विज्ञान (Objective Science) बनाना चाहता है।

किन्तु यह अनुचित है। अनुभव के बिना व्यवहार को समझा नहीं जा सकता। यह अनुभव का प्रकाशन है। व्यवहार एक भौतिक तथ्य मात्र नहीं है। मन में इसके प्रसंग से इसे वियुक्त करके इसे समझाया नहीं जा सकता। अत: व्यवहारवादी मनोविज्ञान जो मन, या चेतना, या अन्तर्निरीक्षण से अलग रहता है, अयौक्तिक प्रतीत होता है। मनोविज्ञान भौतिक विज्ञान नहीं है। यह मन का विज्ञान है। इसका सम्बन्ध अनुभव और व्यवहार से है।

(४) "मनोविज्ञान परिवेश के सम्पर्क में होने वाले व्यक्ति के व्यापारों का विज्ञान है" (वुडवर्थ) (Psychology is the science of the activities of the individual in relation to the environment.)।

यदि इसमें गर्भित बातों को ठीक प्रकार से समझ लिया जाय तो इस परिभाषा को पर्याप्त माना जा सकता है। प्रथम, मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है। द्वितीय, यह प्रत्यक्षीकरण, कल्पना और विचार जैसे ज्ञानात्मक व्यापारों (Cognitive Functions) का अध्ययन करता है, हँसना और रोना जैसे संवेगात्मक (Emotional) व्यापारों का, चलना और बोलना जैसे क्रियात्मक (Motor) व्यापारों का, तथा प्रसन्नता और शोक की अनुभूतियों का। अनुभूतियाँ (Feelings) भी सक्रिय व्यापार हैं, क्योंकि वे प्राणी के जीवन पर निर्भर रहती हैं, यद्यपि व्यक्ति को वे निष्क्रिय अवस्थायें प्रतीत होती हैं। वुडवर्थ (Woodworth) जीवन की सभी अभिव्यक्तियों को सक्रिय व्यापार मानता है। वह सभी मनोवृत्तियों को मानसिक कर्म मानता है। तृतीय, व्यक्ति मन और शरीर का योग है, मनोभौतिक प्राणी (Psychophysical Organism) है। चतुर्थ, परिवेश व्यक्ति के ऊपर ज्ञानेन्द्रियों या आदातृ-अंगों (Receptors) में से क्रिया करता है, और

व्यक्ति परिवेश पर पेशियों या कार्यकारी-अंगों के द्वारा प्रतिक्रिया करता है। परिवेश में भौतिक (Physical) परिवेश और सामाजिक (Social) परिवेश दोनों का समावेश है। वैयक्तिक मन सामाजिक आदान-प्रदान से भी अभिवृद्ध होता है।

७. मनोविज्ञान की विधियाँ (Methods of Psychology)।

मनोविज्ञान अपनी सामग्री की छानबीन अन्तर्दर्शन, निरीक्षण और प्रयोग से करता है।

(१) अन्तर्दर्शन (*Introspection*)— मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है। मैं अन्तर्दर्शन के द्वारा स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का निरीक्षण कर सकता हूँ। अन्तर्दर्शन अन्तर्मुखी प्रत्यक्षीकरण है। यह अपने अन्तर में झाँकना है। अन्तर्दर्शन का अर्थ है स्वयं अपने अनुभव पर ध्यान केन्द्रित करना। यह बाह्यगत निरीक्षण (Objective Observation) नहीं है। यह अनियमित अन्तर्गत प्रत्यक्षीकरण भी नहीं है। यह स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का नियमित निरीक्षण है। यह मनोविज्ञान की विलक्षण विधि है और अन्य प्राकृतिक विज्ञानों में अप्राप्य है। यह मनोविज्ञान की मौलिक विधि है। निरीक्षण और प्रयोग अन्तर्दर्शन पर आधारित हैं। अन्तर्दर्शन से एक अद्वितीय लाभ है। हमारी मानसिक प्रक्रियायें सदैव हमारे साथ रहती हैं और किसी भी क्षण उनका अन्तर्दर्शन किया जा सकता है। अन्तर्दर्शन हमें स्वयं अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का अपरोक्ष और निश्चित ज्ञान प्रदान करता है। किन्तु यह ज्ञान केवल अपनी ही मानसिक प्रक्रियाओं का होता है। अतः इससे हमें मन के नियमों का सामान्य ज्ञान उपलब्ध नहीं हो सकता। इसलिये अन्तर्दर्शन के साथ निरीक्षण और प्रयोग का योग होना चाहिये। किन्तु जैसा व्यवहारवादी लोग भ्रमवश सोचते हैं, अन्तर्दर्शन को कदापि छोड़ा नहीं जा सकता। यह निरीक्षण और प्रयोग का आधार है।

अन्तर्दर्शन में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं।

प्रथम, जड़ वस्तुओं की तुलना में मानसिक प्रक्रियायें धुंधली और

अस्पष्ट होती हैं। जड़ वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित करना आसान होता है। किन्तु मानसिक प्रक्रियाओं पर, जो अस्पष्ट होती हैं, ध्यान केन्द्रित करना कठिन होता है। जड़ वस्तुएँ स्पष्ट होती हैं, किन्तु मानसिक प्रक्रियायें अस्पष्ट होती हैं। अतः उनका अन्तर्दर्शन दुष्कर होता है और अधिक एकाग्रता (Concentration) की माँग करता है।

इस कठिनाई पर अभ्यास से विजय पाई जा सकती है। अन्तर्दर्शन के लिये प्रत्याहार (Abstraction) की शक्ति की आवश्यकता होती है जिसका अर्जन अभ्यास से होता है। अन्तर्दर्शन के लिये मानसिक प्रक्रियाओं के ऊपर मन का एकाग्र होना आवश्यक है जो अभ्यास पर निर्भर है।

द्वितीय, मानसिक प्रक्रियायें स्वभाव से चंचल होती हैं। वे आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण की पकड़ में नहीं आतीं। हलके संवेग चलायमान होते हैं। जब हम उन पर ध्यान देने लगते हैं तो उनकी प्रवृत्ति लुप्त हो जाने की होती है। ध्यान देने पर क्रोध, भय और अन्य संवेग अदृश्य हो जाते हैं। विचार, अनुभूतियाँ, संवेग, या इच्छायें क्षण-क्षण पर बदलती रहती हैं। पहाड़ों, पेड़ों, कलम या पेन्सिल के समान मानसिक प्रक्रियाओं को अन्तर्दर्शन के लिये स्थिर नहीं रखा जा सकता। जब हम उनका अन्तर्दर्शन करने की चेष्टा करते हैं, तो वे पूर्णतया अन्तर्धान हो सकती हैं।

इस कठिनाई पर स्मृति के द्वारा विजय पाई जा सकती है। जब ध्यान देने पर कोई मानसिक प्रक्रिया लुप्त हो जाती है तो हम स्मृति की सहायता ले सकते हैं। जब हम अन्तर्दर्शन में असफल होते हैं तो आसानी से प्रतीप्-दर्शन (Retrospection) कर सकते हैं। पुनः, यदि हम मानसिक सावधानी की आदत डालें तो चंचल मानसिक प्रक्रियाओं का भी अन्तर्दर्शन कर सकते हैं। यदि हम सदैव सावधान रहते हैं तो जैसे ही चंचल मनोवृत्तियाँ आती हैं वैसे ही उन्हें ध्यान में पकड़ सकते हैं। इसमें कुछ सचेत रहने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, इस कठिनाई पर विशेषज्ञों के सहयोग से भी विजय पाई जा सकती है। यदि कई मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञ स्वयं अपनी-अपनी समान चंचल मनोवृत्तियों की छानबीन करें, तो वे अपने अनुभवों को लिख सकते हैं और अभिलेखों की परस्पर तुलना कर सकते हैं।

तृतीय, अन्य प्राकृतिक विज्ञानों में दो वैज्ञानिक एक ही वस्तु का निरीक्षण कर सकते हैं। किन्तु दो मनोवैज्ञानिक एक ही मनोवृत्ति का निरीक्षण नहीं कर सकते (यथा भय का)। वे अपने-अपने मन में भय के समान संवेग का निरीक्षण कर सकते हैं और अपने अनुभवों की परस्पर तुलना कर सकते हैं। एक ही मनोवृत्ति (यथा,भय) का अनुभव अनेक मनों को नहीं हो सकता। किन्तु उन्हें समान मनोवृत्तियों का अनुभव हो सकता है। अनेक मनों के लिये बिलकुल एक मनोवृत्ति का निरीक्षण असम्भव है।

दो मनोवैज्ञानिक कदापि एक ही मनोवृत्ति का निरीक्षण नहीं कर सकते। यह इस स्थिति में स्वभावतः असम्भव है। किन्तु फिर भी विशेषज्ञों के सहयोग से इस कठिनाई को कम किया जा सकता है। एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का अन्तर्दर्शन कई विशेषज्ञों को सहयोगपूर्वक करना होगा। उन्हें अन्तर्दर्शन के परिणामों को परस्पर मिलाना होगा।

चतुर्थ, अन्तर्दर्शन में निरीक्षण करनेवाला मन विभक्त हो जाता है, क्योंकि एक ही मन निरीक्षणकर्ता भी होता है और निरीक्षित विषय भी। अन्तर्दर्शन के लिये आवश्यक है कि वही मन निरीक्षण भी करे और उसी का निरीक्षण भी हो। किन्तु यह कैसे हो सकता है कि एक ही मन अपनी ओर उन्मुख हो और स्वयं को निरीक्षण का विषय बना डाले ? एक ही मन स्वयं को दो भागों—ज्ञाता और ज्ञेय—में विभक्त नहीं कर सकता।

इसलिये कॉम्टे (Comte) का मत है कि अन्तर्दर्शन असम्भव है।

यह सैद्धान्तिक आपत्ति (Theoretical Objection) हमारे अनुभव के सीधे साक्ष्य (Evidence) से मेल नहीं खाती। हम, निश्चय ही, आह्लाद, शोक इत्यादि अपनी मनोवृत्तियों का अन्तर्दर्शन करते हैं। ये अनुभव के तथ्य हैं। मुझे आनन्द की अनुभूति होती है। और मुझे ज्ञात है कि मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ। मैं चेतनायुक्त हूँ। और कभी-कभी मैं जानता भी हूँ कि मैं चेतनायुक्त हूँ। इस प्रकार मैं आत्म-चेतनायुक्त हूँ। आत्मचेतना मानवीय मन की विशेषता है। यह अपरोक्ष (Immediate) अनुभव का तथ्य है। तर्क से इसके अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता। अन्तर्दर्शन में मन ज्ञाता होता है और उसकी वृत्ति ज्ञेय विषय।

अतः इसमें ज्ञाता और ज्ञेय का कुछ भेद होता है। मन जैसे बाह्य वस्तु का निरीक्षण कर सकता है वैसे ही मनोवृत्ति का भी। पहला बहिर्मुखी (External) प्रत्यक्षीकरण है, दूसरा अन्तर्मुखी (Internal)। हम बिना अपने मन को पथच्युत किये, अपनी मनोवृत्तियों पर क्षिप्र दृष्टिपात करने की आदत डाल सकते हैं। हम मानसिक क्रिया को नष्ट किये बिना, एक शान्त, ध्यान को अधिक आकर्षित न करने वाले मनोव्यापार का आसानी से अन्तर्दर्शन कर सकते हैं। अन्तर्दर्शन की क्रिया और मानसिक प्रक्रिया दोनों साथ-साथ चल सकती हैं।

अन्त में, कभी-कभी अन्तर्दर्शन में एक ऐसी मनोवृत्ति पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है (यथा, प्रत्यक्षीकरण) जो किसी बाह्य वस्तु से उत्पन्न होती है। जब हम उस मनोवृत्ति पर ध्यान देते हैं, तब वस्तु से ध्यान हट जाता है, और ध्यान हट जाने पर तुरन्त ही मनोवृत्ति लुप्त हो जाती है। "यदि मैं देखने की क्रिया का निरीक्षण करूँ, तो मुझे एक ही साथ जो देखा जाता है (वस्तु) उस पर और उसको देखने की क्रिया (प्रत्यक्षीकरण) पर ध्यान देना पड़ेगा[1]।" इस प्रकार अन्तर्दर्शन असम्भव है।

इस कठिनाई पर इस प्रकार विजय पाई जा सकती है। हम एक ही समय एक से अधिक वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। एक ही समय मनोवृत्ति और वस्तु पर ध्यान दिया जा सकता है। यहाँ ध्यान दो चीज़ों पर विभक्त हो जाता है। या हम पहले वस्तु पर फिर मनोवृत्ति पर क्रमशः जल्दी-जल्दी ध्यान दे सकते हैं। यहाँ पर मनोवृत्ति और वस्तु के बीच ध्यान का प्रदोलन (Oscillation) होता है। या हम मनोवृत्ति की पार्श्व से चलते-चलाते झलकें ले सकते हैं, और उन्हें एकत्रित करके सन्तोषप्रद लेखा प्राप्त कर सकते हैं। हम स्मृति की भी सहायता ले सकते हैं। प्रतीपावलोकन (Retrospection) इस कठिनाई से मुक्त है। विशेषज्ञों के सहयोग से भी इस कठिनाई को हटाया जा सकता है। अन्तर्दर्शन की सभी कठिनाइयों पर अभ्यास और मन के अनुशासन के द्वारा विजय प्राप्त की जा सकती है। इसके लिये प्रत्याहार की शक्ति तथा मानसिक सावधानी की आवश्यकता है।

[1] स्टाउट, मनोविज्ञान, पृ० ४२

अन्तर्दर्शन से हमें अपनी ही मनोवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त होता है। यह वैयक्तिक मन का ज्ञान प्रदान करता है, किन्तु मनोविज्ञान 'मन' का विज्ञान है, वैयक्तिक मन का नहीं। यह मन के सामान्य नियमों को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है जो सभी मनों के विषय में सत्य हैं। अतः अपने मन के अन्तर्दर्शन के साथ अन्य मनों के निरीक्षण का सहयोग होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई सनक और विशेषता होती है। अतः जब तक हम दूसरों के मन का निरीक्षण नहीं करते, तब तक हम मन के विषय में सामान्य सत्यों को निर्धारित नहीं कर सकते। मनोविज्ञान सच्चा विज्ञान नहीं हो सकता जब तक यह अन्तर्दर्शन का निरीक्षण से योग नहीं करता।

(२) *निरीक्षण (Observation)*—हम अन्य व्यक्तियों की मनोवृत्तियों का अनुमान उनके व्यवहार से कर सकते हैं। मेरा मित्र किसी से क्रुद्ध है। मैं उसके व्यवहार का निरीक्षण करता हूँ। वह भौंह चढ़ाता है, गुर्राता है, दांत पीसता है, मुट्ठी बाँधता है और डराने वाला रुख अपनाता है। मैं इन शारीरिक अभिव्यक्तियों का निरीक्षण करता हूँ। उनसे मैं अनुमान करता हूँ कि उनके पीछे क्रोध छिपा हुआ है; ये क्रोध के प्रकाशन हैं। अनुमान की प्रक्रिया अधोचेतन (Subconscious) हो सकती है। मैं स्वयं अपने अनुभव के प्रकाश में उसके व्यवहार का अर्थ ग्रहण करता हूँ। जब मैं क्रुद्ध हुआ था, मैंने देखा था कि मेरा क्रोध ऐसे ही व्यवहार में अभिव्यक्त हुआ था। अतः मैं अपने मित्र के व्यवहार से यह अनुमान लगाता हूँ कि वह क्रुद्ध है। कोई भी अपरोक्षतः (Directly) नहीं देख सकता है कि दूसरों के मन में क्या घटित हो रहा है। वह केवल स्वयं अपने अनुभव से सादृश्य के आधार पर उनके बाह्य चिन्हों का अर्थ ग्रहण कर सकता है। ये बाह्य चिह्न उनके व्यवहार या शारीरिक अभिवृत्ति (Attitude) को बनाते हैं।

इस प्रकार निरीक्षण में निम्नलिखित तत्वों का समावेश होता है :—

(१) व्यवहार का दर्शन, (२) व्यवहार से मनोवृत्ति का चेतन या अधोचेतन अनुमान; (३) स्वयं अपने अनुभव के अनुसार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार का अर्थ-ग्रहण (Interpretation) दूसरों के अनुभव का अनुमान करने में समर्थ होने के लिये हमें वैसे ही अनुभवों का होना आवश्यक है। निरीक्षण

अन्तर्दर्शन पर आधारित है। पूर्व अन्तर्दर्शन के बिना दूसरों के व्यवहार का अर्थ-ग्रहण नहीं हो सकता। निरीक्षण अन्तर्दर्शन को अपदस्थ (Supplant) नहीं कर सकता; निरीक्षण में कुछ दोष है।

प्रथम, मानवीय मन की यह प्रवृत्ति है कि वह दूसरे के मन में अपने ही विचारों, अनुभूतियों और प्रवृत्तियों को देखता है। एक धार्मिक मनुष्य अन्यों को भी धार्मिक समझने की प्रवृत्ति रखता है। दुष्ट की प्रवृत्ति यह सोचने की होती है कि सभी लोग दुष्ट हैं। दूसरों के व्यवहार का अर्थ-ग्रहण स्वयं अपने अनुभव की समता पर अवलम्बित है। यदि निरीक्षक के मन और निरीक्षित व्यक्ति के मन में वैषम्य अधिक है तो दूसरे के मन का अध्ययन करने में भी अधिक कठिनाई होती है। बाल-मन, असभ्य व्यक्ति के मन, पशु के मन, और असाधारण व्यक्ति के मन को जानना अत्यधिक कठिन है, क्योंकि वे हमारे अपने मन से बहुत दूर हैं। हमें उनका अर्थ-ग्रहण करने में अत्यधिक सचेत रहना चाहिये।

इस कठिनाई पर रचनात्मक कल्पना और अनुमान की शक्ति द्वारा विजय पाई जा सकती है। मनोवैज्ञानिक के अपने ही अनुभव में ये सब संघटक तत्व वर्तमान होते हैं जिनसे वह दूसरों के व्यवहार को समझ सकता है। केवल आवश्यकता यह है कि वह अपनी जटिल चेतना का उसके संघटक तत्वों में विश्लेषण कर डाले और पुनः उनको इस प्रकार संश्लिष्ट करे कि दूसरों के व्यवहार को ठीक-ठीक व्याख्या हो जाय। उसे सावधानी रखने के नियम का अनुगमन करना चाहिये। एक अधिक सरल और निम्न श्रेणी के मन के व्यवहार की व्याख्या करने के लिये उसे निम्न कोटि की चेतना का आश्रय लेना चाहिये। उदाहरणार्थ, वह कीटों और पक्षियों के व्यापारों की बुद्धि की अपेक्षा नैसर्गिक प्रवृत्तियों (Instincts) की सहायता से व्याख्या कर सकता है; वह छोटे बच्चों के कार्यों की बुद्धि और विचार की अपेक्षा नैसर्गिक प्रवृत्तियों और अचेतन अनुकरण (Unconscious Imitation) की सहायता से व्याख्या कर सकता है।

द्वितीय, दूसरों के व्यवहार का अर्थ ग्रहण करने में पक्षपात और पूर्वग्रह (Bias and Prejudice) हमें प्रभावित करते हैं। वे हमारे अन्य मन के

निरीक्षण को दूषित करते हैं। हम अपने मित्रों में कोई दोष नहीं देखते। हम सदैव अपने शत्रुओं में दोष देखते हैं। माता आसानी से अपने पुत्र के व्यवहार में दूषण नहीं पा सकती।

इस कठिनाई को मन की निष्पक्ष अभिवृत्ति (Impartial Attitude) अपनाने से दूर किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक के मत को सभी पूर्व-धारणाओं (Pre-conceptions) से मुक्त होना चाहिये। उसे पक्षपात-हीन अभिवृत्ति धारण करनी चाहिये। उसे स्वयं को उस व्यक्ति की स्थिति में रखना चाहिये जिसका निरीक्षण किया जा रहा है।

तृतीय, निरीक्षित किये जाने वाले व्यक्ति का कपट उसके व्यवहार का सही अर्थ लगाने में बाधक होता है। आदमी दुष्ट होते हुए भी बराबर हँसता रह सकता है। यह सम्भव है कि उसका व्यवहार उसकी मनोवृत्तियों के प्रतिकूल हो।

इस कठिनाई का निराकरण उसके व्यवहार को विविध रूप से देखने से हो सकता है। मनोवैज्ञानिक निरीक्षण की सब कठिनाइयों को रचनात्मक कल्पना तथा सावधानी और परिदर्शन (Circumspection) से दूर कर सकता है।

(३) *प्रयोग (Experiment)*—प्रयोग पहले से निर्धारित परिस्थितियों में निरीक्षण करने का नाम है। प्रयोग में अप्रासंगिक (Irrelevent) परिस्थितियों को हटा दिया जाता है और प्रासंगिक परिस्थितियों को पृथक् कर दिया जाता है। प्रयोग अन्य मनों की वृत्तियों का परीक्षात्मक परिस्थितियों (Test Conditions) में निरीक्षण है।

प्रयोगकर्त्ता परिस्थितियों को नियंत्रित करता है तथा उनमें किसी मानसिक प्रक्रिया का निरीक्षण करता है। वह केवल एक परिस्थिति में परिवर्तन करता है, अन्य परिस्थितियों को स्थिर रखता है, और परिणाम में जो परिवर्तन होता है उसे ध्यान में रखता है। परिवर्तित की जाने वाली स्थिति को स्वतंत्र परिवर्त्य (Independent Variable) कहते हैं। और आश्रित परिवर्त्य (Dependent Variable) में जो परिवर्तन होते हैं वे स्वतंत्र परिवर्त्य के परिवर्तनों के परिणाम हैं। उदाहरणार्थ,

स्मृति प्राप्त होने वाले संस्कारों (Impression) की संख्या, ध्यान और रुचि पर निर्भर होती है। संस्कारों की संख्या पर उसकी निर्भरता को निर्धारित करने के लिये हमें ध्यान और रुचि को स्थिर रखते हुये केवल प्राप्त होने वाले संस्कारों की संख्या में परिवर्तन करना होगा। स्मृति आश्रित परिवर्त्य है। संस्कारों की संख्या स्वतंत्र परिवर्त्य है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग में प्राय: दो निरीक्षकों का सहयोग रहता है, एक स्वयं प्रयोगकर्ता और दूसरा उसका 'विषय' (Subject)। प्रयोगकर्ता भौतिक स्थितियों को योजनाबद्ध करता है जिनमें 'विषय' के अनुभव की परीक्षा ली जाती है। वह कोई उत्तेजना देता है जो विषय में कोई अनुभव जाग्रत करता है। विषय अपने अनुभव का अन्तदर्शन करता है, और किसी तरह के व्यवहार में उसे अभिव्यक्त करता है। प्रयोगकर्ता उसके व्यवहार का निरीक्षण करता है। विषय स्वयं अपने अनुभव का अन्तर्दर्शन करता है, जबकि प्रयोगकर्ता उसके व्यवहार का निरीक्षण करता है, विषय अपनी आन्तरिक मनोवृत्तियों का अन्तर्मुखी निरीक्षण करता है; प्रयोगकर्ता व्यवहार में उनके बाह्य प्रकाशन का निरीक्षण करता है। इस प्रकार प्रयोग में अन्तर्दर्शन और निरीक्षण सम्मिलित रहते हैं—अन्तर्दर्शन 'विषय' करता है और निरीक्षण, प्रयोगकर्ता।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology) का एक बड़ा अंश अभी तक चेतना के गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis) में संलग्न रहा है। किन्तु कुछ समय पूर्व चेतना के परिमाणात्मक पहलुओं (Quantitative Aspects) में इसकी रुचि जाग्रत हुई है। प्रयोगों के द्वारा हम केवल चेतना के विविध प्रकारों को ही नहीं पृथक् कर सकते, बल्कि उनके साथ होने वाली शारीरिक प्रक्रियाओं को माप कर मानसिक प्रक्रियाओं के परिमाण को भी माप सकते हैं। इस प्रकार प्रयोगात्मक मनोविज्ञान प्रकारात्मक भी है और परिमाणात्मक भी।

प्रयोग से हम मानसिक प्रक्रियाओं और शारीरिक प्रक्रियाओं के परिमाणात्मक सम्बन्ध को निर्धारित कर सकते हैं। और उसके द्वारा मनोवृत्तियों (यथा, संवेदनाओं) तथा भौतिक उत्तेजनाओं के मध्य परिमाणात्मक सम्बन्ध

भी निश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार प्रयोगों ने मनोविज्ञान को लगभग एक यथार्थ विज्ञान बना दिया है। प्रयोगों के द्वारा हम व्यक्तियों की बुद्धि को माप सकते हैं, पशुओं में सीखने की विधियों को निश्चित कर सकते हैं, व्यक्तित्व के लक्षणों (Traits) को माप सकते हैं तथा और भी बहुत कुछ कर सकते हैं।

किन्तु प्रायोगिक विधि की कुछ अपनी कमियाँ हैं। हम स्थितियों (Conditions) पर पूरा शासन नहीं कर सकते। विशेष रूप से हम स्वतन्त्र परिवर्त्य को अपनी इच्छानुसार विस्तार से परिवर्तित नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, 'विषय' में किसी संवेग (यथा, भय) की शून्य से लेकर अधिकतम तक मात्रायें एक ही स्थितियों में उत्पन्न करना कठिन है। कुछ मानसिक प्रक्रियायें केवल मानसिक जीवन की साधारण स्थितियों में ही होती हैं। विचार-साहचर्य (Association of Ideas) के ऊपर किये जाने वाले प्रयोगों में व्यक्ति के सामने क्रमानुसार पृथक् शब्द प्रस्तुत किये जाते हैं, और उससे कहा जाता है कि वह प्रत्येक के पश्चात् सर्वप्रथम उसके मन में उदित होने वाले विचार को बतलाये। इस प्रकार, रुचि की अविच्छिन्नता को, जो साधारण मानसिक जीवन में विचारों के साहचर्य को निर्धारित करती है, छोड़ दिया जाता है। एवं, प्रयोग मन में विचारों के साधारण प्रवाह में बाधा पहुँचाते हैं। कभी-कभी वे निरीक्षण की कृत्रिम स्थितियों में 'विषय' की मनोवृत्ति को बदल देते हैं। अतः 'विषय' के व्यवहार का निरीक्षण करने में प्रयोगकर्ता को बहुत सावधानी और परिदर्शन से काम लेना चाहिये। और 'विषय' को अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का, जिस समय वे साधारण रूप से उसके मन में होती रहती हैं, अन्तर्दर्शन करने में मानसिक रूप से अत्यधिक सचेत रहना चाहिये।

निरीक्षण की अपेक्षा प्रयोग में कई सुविधायें होती हैं। प्रयोग में हम इच्छानुसार दृष्टान्तों (Instances) को बढ़ा सकते हैं। इससे विविध स्थितियों में मनोवृत्ति का अध्ययन किया जा सकता है। इससे अप्रासंगिक परिस्थितियों को हटाकर प्रासंगिक परिस्थितियों को उनसे पृथक् किया जा सकता है। मनोवृत्ति या व्यवहार का धैर्य के साथ और चारों ओर से

अध्ययन किया जा सकता है। प्रयोगकर्ता भौतिक स्थितियों को व्यवस्थित करता है जिनमें वह 'विषय' के अनुभव की छानबीन करता है। वह जानता है कि ठीक-ठीक कहाँ और कब देखना है। वह यथार्थ निरीक्षण के लिये पूरी तरह तत्पर रहता है। वह तुरन्त अपने निरीक्षण के फलों को लेखबद्ध कर देता है और स्मृति के दोषों से बच जाता है। प्रयोग मनोवृत्तियों के शारीरिक क्रियाओं और भौतिक उत्तेजनाओं के साथ परिमाणात्मक सम्बन्धों (Quantitative Relations), को माप सकता है। यह मनोविज्ञान को परिमाणात्मक मापों से यथार्थ विज्ञान बनाने का प्रयत्न करता है। प्रायोगिक मनोविज्ञान "नवीन मनोविज्ञान" कहलाता है। इस प्रकार अन्तर्दर्शन, निरीक्षण और प्रयोग मनोवैज्ञानिक छानबीन की विधियाँ हैं।

कुछ और भी गौण विधियाँ हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(४) *तुलनात्मक विधि* (*Comparative Method*)—इस विधि से हम पशुओं की विविध जातियों में स्नायुतंत्रों और बुद्धि की विभिन्न मात्राओं की तुलना करते हैं, और यह मालूम करते हैं कि मस्तिष्क के आकार और भार का बुद्धि के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिक भारवाले मस्तिष्क में अधिक बुद्धि होती है। मनुष्यों में मस्तिष्क जितना ही अधिक बड़ा या जटिल रचना वाला होता है, बुद्धि भी उतनी ही अधिक होती है।

(५) *विकासात्मक विधि* (*Genetic Method*)—इस विधि से हम व्यक्ति या जाति में मन की उत्पत्ति या वृद्धि और विकास की खोज करते हैं। मनुष्य में शैशव से प्रौढ़ावस्था तक मानसिक विकास का जो क्रम चलता है उसकी खोज की जा सकती है। इसी प्रकार हम पशु-जगत् में मानसिक विकास का पता लगा सकते हैं। हम सामान्य मनोवृत्ति या किसी विशेष मानसिक कौशल के विकास का भी पता लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ, हम प्रारम्भिक बाल्य, उत्तर बाल्य, कौमार, और प्रौढ़ावस्था में से होकर गुज़रने वाले मानव-मन का विकास ढूंढ़ सकते हैं। बालक, किशोर, और प्रौढ़ के मन में बाह्य जगत्, काल, देश, कार्य-कारण-भाव, आत्मा या ईश्वर के विचार की उत्पत्ति और विकास भी ढूंढ़े जा सकते हैं। इसी प्रकार अनुभूति

या संवेग, कृतिशक्ति, कल्पना, या विचार का भी विभिन्न दशाओं में होते हुए विकसित होने का पता लगाया जा सकता है। यहाँ पर हम विकासात्मक विधि का उपयोग करते हैं।

मानसिक विकास की प्रकृति आंगिक विकास (Organic Development) या अन्दर से खुलने की होती है। इसकी प्रकृति बाहर से जमा होने की नहीं होती। मानसिक विकास का अर्थ परिवेश की सहायता से गुप्त शक्तियों का व्यक्त होना है। परिवेश मन पर क्रिया करता है, और मन उस पर प्रतिक्रिया करता है। मन एक कोरा कागज नहीं है। उसे जन्म से ही कुछ देन होती है। परिवेश की क्रिया से वह समृद्ध होता है। विशेष रूप से सामाजिक परिवेश के साथ आदान-प्रदान से वह समृद्ध होता है। वंशानुक्रम और परिवेश दोनों मानसिक विकास के कारण हैं।

(६) *विकृत-मनोविज्ञान-विधि*—(*Pathological Method*) इस विधि से हम विकास के स्थान पर मानसिक जीवन के क्षय का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं। इससे रोकथाम या उपचार के लिये मानसिक जीवन के असाधारण रूपों को समझने में सहायता मिलती है। यह मस्तिष्कीय रोगों के कारण होने वाली मानसिक विकृतियों, आयु की वृद्धि के साथ मानसिक शक्तियों की क्षीणता, उन्माद में विषमायोजनों का अनुसन्धान करती है। यह अस्थायी और स्थायी मनोविकृतियों का अध्ययन करती है। आवेश, मिथ्या, विश्वास, सम्मोहन, द्वैधव्यक्तित्व, विविध व्यक्तित्व इत्यादि इसके विषय हैं।

(७) *व्यक्ति के इतिहास का पुनर्गठन करने की विधि*—(*Case-History Method*) इस विधि का अवलम्बन अधिकांशतः उन व्यक्तियों के लिये होता है जिनका व्यवहार किसी दृष्टि से असाधारण हो जाता है। उनकी कुछ मानसिक कठिनाइयाँ होती हैं या उनका व्यवहार सामाजिक दृष्टि से आपत्तिजनक होता है। ऐसे व्यक्ति के इतिहास का हमें पुनर्निर्माण करना होता है। कठिनाई के कारणों—भौतिक, मनोवैज्ञानिक, और सामाजिक—को खोजना होगा। बहुत सी दशाओं में विषम व्यवहार सामाजिक परिवेश और व्यक्ति की कमियों पर निर्भर होता है। यह केवल नैतिक पतन के

कारण नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी 'समस्या'-बालक (Problem Child) की अपराध-वृत्ति की छानबीन इस विधि से की जाती है। एक अच्छे परिवार का बालक चोरी कर सकता है। मनोवैज्ञानिक को उसके अब तक के इतिहास का पुनर्गठन करना पड़ता है। उसे व्यक्ति की वैयक्तिक कठिनाइयों को खोजने के लिये उसका विश्वासपात्र बनना पड़ेगा; उसे मुक्त वार्तालाप में लगाना होगा, उसके माता-पिता, अध्यापक, मित्र इत्यादि की सहायता लेनी होगी। उसे विषम व्यवहार का उद्गम उसके अतीत जीवन में ढूँढ़ना होगा और तब समाज द्वारा स्वीकृत दिशाओं में उसे लगाना होगा।

व्यक्ति के इतिहास के पुनर्गठन की विधि घटनाओं की स्मृति पर अत्यधिक निर्भर करती है, जिनका गलत निरीक्षण हुआ है या जिन पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। इसके विपक्षीय दशाओं की उपेक्षा के कारण दूषित होने की आशंका होती है (वुडवर्थ)।

अध्याय २

मनोविज्ञान की शाखायें

१. विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology)।

यह मनोविज्ञान की वह शाखा है जो जटिल मानसिक प्रक्रियाओं का सरल संघटक तत्वों में विश्लेषण करती है। सामान्य मनोविज्ञान सामान्य प्रौढ़ मानव-मन का अध्ययन करता है। यह मुख्यतः विश्लेषणात्मक है। यह सामान्य मानव-मन के व्यापारों के प्रकार और रचना का सामान्य वर्णन करता है। यह मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की विधियों के रूप में अन्तर्दर्शन, निरीक्षण और प्रयोग का उपयोग करता है।

२. विकासात्मक मनोविज्ञान (Genetic Psychology)।

यह मनोविज्ञान की वह शाखा है जो व्यक्ति और जाति में मन की वृद्धि और विकास के क्रम की खोज करती है। इसमें पशु-मनोविज्ञान, बाल-मनोविज्ञान,

किशोर-मनोविज्ञान, प्रौढ़-मनोविज्ञान इत्यादि का समावेश होता है। कभी-कभी इसका अर्थ मनोविज्ञान की वह शाखा होता है जो मानव-मन की शक्तियों की क्रमिक अभिव्यक्ति की खोज करती है। मानसिक विकास आंगिक विकास के तुल्य है। यह बाह्य वस्तुओं के जुड़ने से नहीं होता, बल्कि अन्दर से समृद्ध होता है। संवेदनाओं और प्रारम्भिक क्रियाओं के समावयव पुञ्ज (Homogenous Mass), भिन्नीकरण (Differentiation) और समाकलन (Integration) से मानसिक विकास होता है।

३. पशु-मनोविज्ञान (Animal Psychology) : तुलनात्मक मनोविज्ञान (Comparative Psychololgy)।

यह पशु के मन का अध्ययन करता है। कभी-कभी इसे तुलनात्मक मनोविज्ञान भी कहते हैं, क्योंकि यह विकसित मानव-मन की पशु-जीवन की निम्नतर अभिव्यक्तियों से और इन निम्नतर अभिव्यक्तियों की भी परस्पर तुलना करता है। पशु-मनोविज्ञान की विशेष समस्यायें सहज प्रवृत्तियाँ और सीखने के प्रकार हैं। पशुओं की सहज प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? क्या वे अन्धी हैं ? या क्या अनुभव और आदत से परिवर्तित होती हैं ? क्या पशु गतियों को प्रयत्न और भूल की विधि से सीखते हैं ? या क्या वे इन्हें अन्तर्दृष्टि से सीखते हैं ? पशु के मन की छानबीन करने में हमें इस सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा। पशु के व्यवहार की व्याख्या करने के लिये हमें सदैव सरलतम सम्भव व्याख्या का आश्रय लेना चाहिये। हमें पशु-व्यवहार को बुद्धि के स्थान पर सहज प्रवृत्तियों से, तर्कयुक्त विचार की अपेक्षा विचारों के साहचर्य (Association) से, रचनात्मक कल्पना की अपेक्षा सरल स्मृति से समझाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि परिस्थिति में एक सरलतर मानसिक प्रक्रिया काम दे सकती है तो एक उच्चतर प्रक्रिया का उदय नहीं होगा। ज्यों-ज्यों परिवेश उत्तरोत्तर अधिक जटिल होता जाता है, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर जटिलतर मानसिक प्रक्रियाओं का उदय होता है। हम निरीक्षण और प्रयोग से पशु-मन का अनुसन्धान कर सकते हैं। हम पशु के व्यवहार का विभिन्न स्थितियों में निरीक्षण करते हैं। जब उसके व्यवहार को हम परीक्षात्मक स्थितियों में देखते हैं तो यह उससे प्रयोग करना कहलाता है।

४. बाल-मनोविज्ञान (Child Psychology)।

यह बालक के मन का अध्ययन करता है। मुख्यतः यह बालक के मन के विकास का अध्ययन करता है। यह बच्चे में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, सरल स्मृति, और कल्पना की प्रारम्भिक मानसिक प्रक्रियाओं की उत्पत्ति और विकास का अनुशीलन करता है। यह बाल-मनोविकास में वंशानुक्रम तथा परिवेश के अंशदान (Contribution) का भी अनुशीलन करता है। बच्चे को जन्मतः क्या चीजें प्राप्त होती हैं? कहाँ तक परिवेश की क्रिया से उनमें हानि या वृद्धि होती है? बच्चे की सहज प्रवृत्तियाँ क्या हैं? अनुभव से उनमें क्या परिवर्तन होते हैं? बुद्धि का स्वरूप क्या है? बुद्धि सहज प्रवृत्तियों में क्या परिवर्तन करती है? बच्चा सीखता कैसे है? क्या वह प्रयत्न और भूल की विधि से सीखता है, या अनुकरण से, या अन्तर्दृष्टि से?

हम बाल-मन की छान-बीन निरीक्षण, प्रयोग और स्वतन्त्र साहचर्य से कर सकते हैं। हम बच्चों के व्यवहार का विभिन्न स्थितियों में निरीक्षण कर सकते हैं। पहले से निर्धारित स्थितियों में भी उसका निरीक्षण किया जा सकता है। परीक्षात्मक स्थितियों में बच्चे के मन के विकास का तथा वंशानुक्रम और परिवेश के उसमें अंशदान का अध्ययन कठिन होता है। हम बच्चे को प्रतिकूल स्थितियों के अधीन नहीं कर सकते हैं। यह देखने के लिये कि बच्चे की बुद्धि की तो क्षति नहीं होती, भूखा रखकर उसके विकास को अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। किन्तु इसी प्रकार का प्रयोग पशुओं पर किया जा सकता है। मनोविश्लेषणकर्ता रोगी के विश्वासपात्र बनने के पश्चात् सम्मोहन और मुक्त वार्तालाप के द्वारा बचपन के दबाये हुये संवेग और इच्छाओं को खोदने का प्रयत्न करते हैं। यह स्वतन्त्र साहचर्य की मनोविश्लेषण-विधि है।

५. व्यक्ति-मनोविज्ञान (Individual Psychology)।

यह विभिन्न व्यक्तियों के वैयक्तिक अन्तरों से सम्बन्धित है। यह व्यक्तियों के विभिन्न प्रकारों की व्यक्तिगत विलक्षणताओं की छानबीन करता है। कुछ लोग संवेगशील होते हैं, अन्य विचारशील, कुछ और कर्मशील। कुछ में दृष्टि प्रतिमायें (Visual Images) प्रधान होती हैं, कुछ में ध्वनि-प्रतिमायें, कुछ

में गति-प्रतिमायें। युंग (Jung) व्यक्तियों को दो प्रकारों में विभक्त करता है—अन्तर्मुखी वृत्ति वाले और बहिर्मुखी वृत्ति वाले (Introverts and Extroverts)। अन्तर्मुखी वृत्ति वाले की जीवन-शक्ति अन्दर की ओर प्रवाहित होती है। सूफी, योगी इत्यादि अन्तर्मुखी वृत्ति वाले होते हैं। बहिर्मुखी वृत्ति वालों की जीवन-शक्ति बाहर की ओर प्रवाहित होती है। कर्मशील लोग बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। युंग इन दोनों प्रकारों का मध्यवर्ती एक तीसरा प्रकार भी मानता है जो उभय-रूप होता है। उनकी जीवन-शक्ति बाहर और अन्दर दोनों दिशाओं में प्रवाहित होती है। इन व्यक्तिगत लक्षणों का अध्ययन व्यक्ति-मनोविज्ञान का कार्य है।

वैभिन्य-मनोविज्ञान (Differential Psychology) का सम्बन्ध व्यक्तिगत मनों के और जातियों तथा अन्य समूहों के अन्तरों से भी है। यह व्यक्तियों और समूहों की विलक्षणताओं की छानबीन करता है। वैभिन्य-मनोविज्ञान अलौकिक प्रतिभाओं, अपराधियों, विभिन्न लिंगों के मानसिक लक्षणों तथा स्वभावों और व्यक्तित्वों के प्ररूपों का अध्ययन करता है। यह व्यक्ति-मनोविज्ञान का एक भेद है।

६. समाज-मनोविज्ञान (Social Psychology)।

इसका सम्बन्ध सामूहिक मन से है। जन-समूह, भीड़ और अन्य सामाजिक समुदायों के मानसिक गुणों का उनका निर्माण करने वाले व्यक्तियों के गुणों से अलग, यह अनुसन्धान करता है। समाज-मनोविज्ञान उन मनोवैज्ञानिक नियमों को खोजता है जो सामाजिक सम्बन्धों, संगठनों और रीतियों पर शासन करते हैं। सामूहिक मन समूह को बनाने वाले व्यक्तिगत मनों से पृथक होता है। समाज मनोविज्ञान सामूहिक मन के विलक्षण धर्मों की छानबीन करता है। उदाहरणार्थ, भीड़ की मनोवृत्ति न्यूनतम विचारशील, अत्यधिक संवेगशील और उद्वेगात्मक, बहुत निर्देश-ग्रहणशील (Suggestible) चंचल, और उत्तरदायित्वहीन होती है। समाज-मनोविज्ञान सामूहिक मन की विभिन्न श्रेणियों, और उनके व्यवहार पर शासन करने वाले नियमों का अनुशीलन करता है।

लोक-मनोविज्ञान (Folk Psychology) समाज-मनोविज्ञान की की एक शाखा है। यह सभ्य जातियों से अलग आदिकालीन लोगों के मानसिक गुणों की छानबीन करता है। यह मानवविज्ञान से सम्बन्धित है जो आदिकालीन लोगों के जीवन, विश्वास, अंधविश्वास, पुराण, दन्त-कथाओं, लोक-रीतियों, कानून, कला, धर्म इत्यादि का अध्ययन करता है। समाज-विज्ञान सभ्य लोगों के सामाजिक जीवन का अध्ययन है। इसका सम्बन्ध उनकी सामाजिक संस्थाओं, रीतियों, परम्पराओं, कानून और धर्म से है।

७. विकृत मनोविज्ञान (Abnormal Psychology)।

यह साधारण मन की असामान्य अवस्थाओं का, यथा भ्रम, विभ्रम, दिवा-स्वप्न, स्वप्न, निद्रा, स्मृति-भ्रन्श, बोलने की भूल, लिखने की भूल, सम्मोहन, मूर्च्छा इत्यादि का अध्ययन करता है। यह मन की असाधारण अवस्थाओं अथवा मानसिक रोगों का भी, यथा आवेश, विकृत भय, विकृत विश्वास, हिस्टीरिया, द्वैध व्यक्तित्व, विविध व्यक्तित्व इत्यादि का अध्ययन करता है। यह अस्थायी और स्थायी मनोविकृतियों का अध्ययन करता है, और मन के नियमों से उनकी व्याख्या करता है। यह मानसिक रोगों की शरीरशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक व्याख्या देता है। मनोविश्लेषक सब मानसिक रोगों का स्पष्टीकरण मानसिक कारणों से करते हैं।।

८. मनो-विश्लेषण विज्ञान (Psycho-Analysis)।

चेतना की एकता के भंग या खंडित होने से मानसिक रोग और उन्माद भी हो जाता है। खंडित होने का अर्थ है मन का क्रियाओं के दो या अधिक प्रतिद्वन्द्वी और स्वतंत्र समूहों में विभक्त हो जाना जो चेतना की एकता को भंग कर देते हैं। प्रो० जेने (Janet) का विचार है कि विभाजन मन की संश्लेषक शक्ति के अभाव के कारण होता है जो मनोवृत्तियों को एकीकृत और संगठित करने में असफल हो जाता है। उन्मत्त व्यक्तियों में मन की संश्लेषक शक्ति का अभाव होता है। उनका मानसिक संतुलन कम हो जाता है।

सिगमंड फ्रौयड (Sigmund Freud) मनोविश्लेषणवाद का जन्मदाता है। उसका मत है कि विभाजन का कारण काम प्रवृत्ति का विशेषतया

बाल्यकाल में दमन है। काम, जिसे यह लिबिडो (Libido) कहता है, का अतृप्त होने पर दमन हो जाता है। यह नीचे दब जाता है और अचेतन या अधिक उचित रूप में अधोचेतन हो जाता है। किन्तु इसकी शक्ति क्षीण नहीं होती। दबी हुई अचेतन ग्रन्थि (अर्थात् संवेगयुक्त विचार) चेतन जीवन में दिवास्वप्न, हास्य-विनोद, कहने की भूल, लिखने की भूल इत्यादि में प्रकट होती है। स्वप्न में भी उसका प्रकाशन होता है। वे इसके अपरोक्ष या सांकेतिक प्रकाशन हैं। जब दबी हुई ग्रन्थि अत्यधिक बलवती होती है, तो वह चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकती है और चेतना की एकता को भंग कर सकती है। इस प्रकार इससे मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

फ्रौयड मानता है कि दबा हुआ काम (लिबिडो) मनोविकृतियों का कारण है। एडलर दबे हुए स्व-स्थापन (Self-assertion) के वेग या हीनता की ग्रन्थि को उनका कारण मानता है। युंग के मत से दबी हुई जीवन-शक्ति उनका कारण है। इस जीवन-शक्ति में काम और स्वस्थापन की वासना का समावेश होता है। रिवर्स (Rivers) के अनुसार दबा हुआ भय कुछ मनोविकृतियों का कारण है। हम इस विषय का विस्तृत वर्णन बाद में मनोविश्लेषण के प्रसंग में करेंगे।

६. शारीरिक मनोविज्ञान (Physiological Psychology)।

मनोविज्ञान का सम्बन्ध मनोवृत्तियों या मन के व्यापारों से है। शरीरविज्ञान का सम्बन्ध शारीरिक प्रक्रियाओं या शरीर के विभिन्न अंगों के व्यापारों के साथ है। शारीरिक मनोविज्ञान मनोवृत्तियों तथा स्नायुतंत्र के सम्बन्धों का अध्ययन करता है। यह चेतना के विभिन्न रूपों का मस्तिष्क के व्यापारों, सुषुम्ना, नाड़ियों, ज्ञानेन्द्रियों, और पेशियों से सम्बन्ध का अध्ययन करता है। यह मनोवृत्तियों और स्नायुवृत्तियों के सम्बन्ध की छानबीन करता है। यह मनोविज्ञान से अलग है जो मूलतः मनोव्यापारों का अध्ययन करता है और शरीरविज्ञान से भी अलग है जो सब शारीरिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। शारीरिक मनोविज्ञान उन शारीरिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जो मानसिक प्रक्रियाओं के साथ चलती हैं।

१०. मनोभौतिक-विज्ञान (Psycho-Physics)।

यह मानसिक प्रक्रियाओं, विशेषतया संवेदनाओं, और भौतिक उत्तेजनाओं के मध्य परिमाणात्मक सम्बन्ध का अध्ययन करता है। एक निश्चित सीमा तक, उत्तेजना (यथा, प्रकाश) ज्यों-ज्यों प्रबल होती है, संवेदना (यथा, प्रकाश, की संवेदना) भी प्रबल होती जाती है[1]। मनोविज्ञान केवल मानसिक प्रक्रियाओं के शारीरिक प्रक्रियाओं से सम्बन्ध का ही अध्ययन नहीं करता, बल्कि बाह्य वस्तुओं से उनके सम्बन्ध का भी।

११. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology)।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान प्रयोगों की सहायता से पशुओं, बच्चों, किशोरों, प्रौढ़ों, वृद्धों, व्यक्तियों के समुदायों और असाधारण व्यक्तियों की मनोवृत्तियों की छानबीन करता है। यह अनेक प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं में भेद करता है, तथा उनके कारणों और हेतुओं को निर्धारित करता है। यह चेतना का गुणात्मक विश्लेषण करता है। यह मानसिक प्रक्रियाओं के उनकी सहचारी शारीरिक प्रक्रियाओं और बाह्य उत्तेजनाओं से परिमाणात्मक सम्बन्ध का भी निर्धारण करता है। इस प्रकार प्रायोगिक मनोविज्ञान गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों है।

प्रयोगों के द्वारा हम व्यक्तियों की बुद्धि और योग्यताओं को माप सकते हैं, व्यक्तित्व के लक्षणों को माप सकते हैं, पशुओं से सीखने की विधियों को निर्धारित कर सकते हैं, इत्यादि।

१२. व्यावहारिक मनोविज्ञान (Applied Psychology)।

मनोविज्ञान के शास्त्रीय सिद्धान्तों का व्यावहारिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है। अतः अब हमारे पास क्रियात्मक मनोविज्ञान की कई शाखायें हैं।

(१) *शिक्षा-मनोविज्ञान (Educational Psychology)*—शिक्षा व्यक्ति की शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास है। शिक्षा-मनोविज्ञान इन शक्तियों के स्वाभाविक सम्बन्धों, उनके विकास के नियमों, तथा उनकी प्राप्ति या दमन की उचित विधियों का अध्ययन करता है। यह मनोविज्ञान के सामान्य नियमों

[1] अध्याय ८, वेबर-फेचनर का नियम।

को शिक्षा की कला में लागू करता है। विशेष रूप से बाल-मनोविज्ञान शिक्षा-मनोविज्ञान की आधार-शिला है (अध्याय ३)।

(२) *व्यापार-मनोविज्ञान* (*Commercial Psychology*)—यह विक्रय-कला तथा विज्ञापन-कला के मनोविज्ञान, और व्यापार से सम्बन्धित इसी प्रकार की अन्य समस्याओं का अध्ययन करता है। यह मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों को व्यापार की व्यावहारिक समस्याओं पर लागू करता है (अध्याय ७)।

(३) *औद्योगिक-मनोविज्ञान* (*Industrial Psychology*)—यह थकान की समस्याओं, श्रमिकों, प्रबन्धकों, क्लर्कों के मानसिक लक्षणों और व्यावसायिक संगठनों का अध्ययन करता है। यह मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों को उद्योग की व्यावहारिक समस्याओं पर लागू करता है (अध्याय ११)।

(४) *क़ानूनी-मनोविज्ञान*—(*Legal Psychology*) यह न्यायाधीशों, वकीलों, और गवाहों के मानसिक लक्षणों का अध्ययन करता है। इसका सम्बन्ध साक्ष्य के मनोविज्ञान, हस्तलेखों के मनोविज्ञान, और अपराधियों के मनोविज्ञान से है। यह मनोविज्ञान के सामान्य नियमों को क़ानूनी पेशे पर लागू करता है।

(५) *चिकित्सा-मनोविज्ञान* (*Medical Psychology, Psychiatry*)—यह मानसिक रोगों के मानसिक कारणों, स्नायुतन्त्र के व्यापारों की उलझनों और उनकी चिकित्सा की मनोवैज्ञानिक विधियों सुझाता है, यथा, सम्मोहन, निर्देश, आत्म-निर्देश, विश्रान्ति-चिकित्सा, स्वच्छंद वार्तालाप और पुनर्शिक्षण, स्नायुविकृति, उन्माद तथा अन्य रोगों की मानसिक चिकित्सा की, मनोविश्लेषण एक प्रभावशाली विधि है।

अध्याय २

मनोविज्ञान का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

१. विज्ञानों में मनोविज्ञान का स्थान (The Place of Psychology among Sciences)।

तीन प्रकार के विज्ञान हैं—भौतिक, जैविक और मानसिक। भौतिक विज्ञान द्रव्य के धर्मों का अध्ययन करते हैं। भौतिकी, रसायन, खगोल इत्यादि भौतिक विज्ञान हैं। जैविक विज्ञान जीवन के धर्मों का अध्ययन करते हैं। वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान और शरीर-विज्ञान जैविक विज्ञान हैं। मानसिक विज्ञान मन के धर्मों का अध्ययन करते हैं। मनोविज्ञान मानसिक विज्ञान है। यह विधायक या प्राकृतिक विज्ञान है। यह हमें बताता है कि मन वास्तव में कैसे काम करता है—वास्तव में यह कैसे जानता, अनुभूति करता और संकल्प करता है। तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र नियामक मानसिक विज्ञान हैं। तर्कशास्त्र हमें बताता है कि मन को सोचना कैसे चाहिये। नीतिशास्त्र बताता है कि मन को संकल्प कैसे करना चाहिये। सौंदर्यशास्त्र बताता है कि मन को अनुभूति कैसे करनी चाहिये। ये हमारे जीवन का नियमन करने वाले आदर्शों से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिये उन्हें आदर्शनिर्धारक या व्यवस्थापक विज्ञान भी कहते हैं। तर्कशास्त्र सत्य के आदर्श को, नीतिशास्त्र शुभ के आदर्श को, और सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य के आदर्श को निर्धारित करने का प्रयत्न करता है।

२. मनोविज्ञान तथा भौतिक विज्ञान (Psychology and Physical Sciences)

मनोविज्ञान व्यक्तिगत मन के अनुभव का विज्ञान है। किंतु अनुभव के लिये विषयी और विषय का द्वैत आवश्यक है, तथा दोनों ही सत्य हैं। मनोविज्ञान ज्ञान, वेदना और संकल्प की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, तथा उनके पर्याप्त स्पष्टीकरण के हेतु इसे भौतिक वस्तुओं का ज्ञान, वेदना और संकल्प के सम्बन्ध में अध्ययन करना होगा। किन्तु भौतिक वस्तुओं

के मनोविज्ञान तथा भौतिक विज्ञानों के अध्ययनों में अन्तर है। भौतिक विज्ञान वैयक्तिक मन से उनके सम्बन्ध से अलग भौतिक वस्तुओं के स्वरूप की छानबीन करते हैं। किन्तु मनोविज्ञान भौतिक वस्तुओं के वैयक्तिक मन से सम्बन्धित स्वरूप का—ज्ञान, वेदना और संकल्प के विषयों के रूप में—अध्ययन करता है। इसका भौतिक वस्तुओं के सत् स्वरूप से, उनके वैयक्तिक मन से असम्बन्धित रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध मूलतः मानसिक प्रक्रियाओं से है; उनके विषयों से इसका सम्बन्ध परोक्ष है, क्योंकि वे मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्याओं में सहायक होते हैं। भौतिक-विज्ञान परिवेश के स्वरूप की छानबीन करते हैं। अतः वे मनोविज्ञान को व्यक्ति के अनुभव और व्यवहार की व्याख्या करने में सहायता पहुँचाते हैं, जो परिवेश के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रियायें हैं।

३. मनोविज्ञान और जीवन-विज्ञान (Psychology and Biology)

मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। लेकिन मन का शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है। मानसिक प्रक्रियाओं का सहचारी शारीरिक प्रक्रियाओं के बिना पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। परिवेश मन पर ज्ञानेन्द्रियों में से क्रिया करता है; मन पेशियों से परिवेश पर प्रतिक्रिया करता है। ज्ञानेन्द्रियाँ और पेशियाँ शरीर के अंग हैं। अतः मानसिक प्रक्रियायें शारीरिक प्रक्रियाओं से निकट रूप से सम्बन्धित हैं।

वास्तव में, वे कई मनोवैज्ञानिकों के द्वारा जीवन के व्यापार समझे जाते हैं। वे मनो-भौतिक प्राणी के परिवेश के साथ अधिक अच्छे समायोजन के साधन हैं। कई आधुनिक मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान को जैविक दृष्टिकोण से देखते हैं। उनका मत है कि चेतना का उदय तब होता है जब जन्मजात प्रतिक्रियायें जीव को परिवेश से समायोजित करने में असफल होती हैं और उत्तर मानसिक प्रक्रियाओं का विकास जीव का जटिल परिवेश के साथ अधिकाधिक प्रभावपूर्ण समायोजन के हेतु होता है। हम विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं की जैविक उपयोगिता का विचार करेंगे।

वाटसन और अन्य व्यवहारवादी मानते हैं कि मनोविज्ञान जीवित प्राणियों के व्यवहार का विज्ञान है। वे मनोवैज्ञानिक छानबीन के लिये मन और उसकी प्रक्रियाओं की सत्ता की उपेक्षा करते हैं। केवल जीव और उसके व्यवहार या परिवेश पर उसकी प्रतिक्रिया की सत्ता है। व्यवहारवादी मनोविज्ञान को जैविक या वस्तुगत विज्ञान या उत्तेजना-प्रतिक्रिया का विज्ञान बनाने की चेष्टा करते हैं। अन्तर्दर्शन से उन्होंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। किन्तु यह एक अनुचित स्थिति है (अध्याय १)।

४. मनोविज्ञान और शरीर विज्ञान (Psychology and Physiology)

मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है। मानसिक प्रक्रियायें शारीरिक, विशेषतया स्नायुतंत्र की प्रक्रियाओं से निकट रूप से सम्बन्धित हैं। अतः मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं की पर्याप्त व्याख्या के हेतु इन शारीरिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। मानसिक प्रक्रियाओं से असम्बन्धित शारीरिक प्रक्रियाओं की छानबीन यह नहीं करता, क्योंकि यह मूलतः मानसिक प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है।

मनोविज्ञान शरीरविज्ञान से नितान्त भिन्न है। मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। यह अनुभव, यथा, ज्ञान, वेदना, और संकल्प से सम्बन्ध रखता है, ये शारीरिक प्रक्रियाओं से सम्बद्ध होते हैं, इसलिये मनोविज्ञान उनका अध्ययन करता है। मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है जो अनुभव का प्रकाशन है। व्यवहार व्यक्तिगत मन की परिवेश पर शारीरिक प्रतिक्रिया है। अतः मनोविज्ञान विविध प्रकार के व्यवहारों के स्वरूप का अध्ययन करता है। यह सभी प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं के स्वरूप का अध्ययन नहीं करता। दूसरी ओर, शरीरविज्ञान सभी प्रकार की शारीरिक प्रक्रियाओं के स्वरूप का अध्ययन करता है। यह सभी शारीरिक अंगों के व्यापारों का अध्ययन करता है।

व्यवहारवादी मनोविज्ञान को शरीरविज्ञान बनाने का प्रयत्न करते हैं, जो एक जैविक विज्ञान है। वे मन या चेतना का बहिष्कार करते हैं। किन्तु

वाटसन कहता है कि मनोविज्ञान और शरीरविज्ञान में तादात्म्य नहीं है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध व्यवहार से है जो सम्पूर्ण शरीर की उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया है, उसके एक अंग की प्रतिक्रिया नहीं। किन्तु शरीरविज्ञान शरीर के विभिन्न अंगों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है। व्यवहारवाद के जन्मदाता वाटसन के अनुसार यह मनोविज्ञान और शरीरविज्ञान का भेद है। व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान के प्रति एक नया रुख अपनाया है, जिसकी मुश्किल से रक्षा हो सकती है।

५. मनोविज्ञान और नियामक विज्ञान (Psychology and Normative Sciences)

मनोविज्ञान मनका विधायक विज्ञान है। इसका सम्बन्ध वास्तविक रूप में होने वाली मानसिक प्रक्रियाओं से है। यह हमें बताता है कि एक व्यक्तिगत मन वास्तव में कैसे ज्ञान, वेदना और संकल्प करता है। यह नहीं बताता कि ज्ञान, वेदना, और संकल्प कैसे करना चाहिये। दूसरी ओर, तर्क, नीति, और सौंदर्यशास्त्र नियामक विज्ञान हैं। उनका सम्बन्ध जीवन के आदर्शों या प्रतिमानों से है। तर्कशास्त्र का सम्बन्ध सत्य के आदर्श से है, नीतिशास्त्र का शुभ के आदर्श से, तथा सौंदर्यशास्त्र का सौंदर्य के आदर्श से। तर्कशास्त्र बताता है कि मन को सोचना कैसे चाहिये; नीतिशास्त्र बताता है कि संकल्प और कर्म कैसे करना चाहिये; सौंदर्यशास्त्र बताता है कि अनुभूति कैसी होनी चाहिये। तर्कशास्त्र विचार के मनोविज्ञान पर आधारित है। नीतिशास्त्र संकल्प के, और सौंदर्यशास्त्र वेदना के मनोविज्ञान पर आधारित है।

६. मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र (Psychology and Logic)

मनोविज्ञान का क्षेत्र तर्क शास्त्र के क्षेत्र से अधिक व्यापक है। यह सभी प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं, यथा, ज्ञान, वेदना, और संकल्प से सम्बन्धित है। यह इन सभी मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरूप की छानबीन करता है। किन्तु तर्क-शास्त्र केवल विचार से सम्बन्ध रखता है जो ज्ञान का एक प्रकार है। वेदना और संकल्प से इसका सम्बन्ध नहीं है। केवल विचार अर्थात् प्रत्यय, निर्णय और अनुमान से इसका सम्बन्ध है।

लेकिन तर्कशास्त्र का विचारने के मनोविज्ञान से तादात्म्य नहीं है। मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है, जबकि तर्कशास्त्र नियामक विज्ञान है। मनोविज्ञान बताता है कि हम वास्तव में सोचते कैसे हैं। तर्कशास्त्र बताता है कि सत्य को प्राप्त करने के लिये हमें सोचना कैसे चाहिये।

मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं, यथा, प्रत्ययन, निर्णय और अनुमान करने से सम्बन्धित है, जबकि तर्कशास्त्र मानसिक फलों, यथा, प्रत्ययों, निर्णयों और अनुमानों से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान तर्क की प्रक्रिया अर्थात् सामग्री के मानसिक अनुसन्धान की प्रक्रिया का अध्ययन करता है, जबकि तर्क-शास्त्र मानसिक अनुसन्धान के फल या सामग्री में नवीन सम्बन्धों को देखने का।

मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं, यथा, प्रत्ययन, निर्णय और अनुमान करने का उनकी सहचारी वेदनाओं और संकल्पों के साथ अध्ययन करता है, जबकि तर्कशास्त्र प्रत्याहृत मानसिक फलों, यथा, वेदना और संकल्प से वियुक्त प्रत्ययों, निर्णयों और अनुमानों का अध्ययन करता है।

७. मनोविज्ञान और नीतिशास्त्र (Psychology and Ethics)

मनोविज्ञान का क्षेत्र नीतिशास्त्र के क्षेत्र से विशाल है। मनोविज्ञान सभी मानसिक प्रक्रियाओं, यथा, ज्ञान, वेदना और संकल्प का अध्ययन करता है, लेकिन नीतिशास्त्र केवल संकल्प का। ज्ञान और वेदना उसके क्षेत्र से बाहर हैं। किन्तु नीतिशास्त्र का संकल्प के मनोविज्ञान से तादात्म्य नहीं है। मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है, नीतिशास्त्र नियामक विज्ञान। मनोविज्ञान बताता है कि हम वास्तव में संकल्प कैसे करते हैं, नीतिशास्त्र बताता है कि संकल्प कैसे करना चाहिये। "नीतिशास्त्र यह पूछता है कि हमें संकल्प कैसे करना चाहिये, यह नहीं कि हम वास्तव में संकल्प कैसे करते हैं। दूसरी ओर मनोविज्ञान केवल जैसे वह वस्तुतः होती है उस रूप में संकल्प की प्रक्रिया का अध्ययन करता है, उसके सत् या असत् होने से, या उन अन्तिम अवस्थाओं से जो सत् या असत् के भाव को सम्भव बनाती हैं इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।"[1]

[1] स्टाउटः मनोविज्ञान, १६१० पृ० ६।

दूसरे शब्दों में, मनोविज्ञान यथार्थ का विज्ञान है, जबकि नीतिशास्त्र आदर्श का विज्ञान है। मनोविज्ञान, विधायक विज्ञान के रूप में, सैद्धान्तिक ज्ञान के लिये सब मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। नीतिशास्त्र, नियामक विज्ञान के रूप में, नैतिक जीवन के तथ्यों की जिस आदर्श के अनुसार हमें जीवित रहना चाहिये उसकी तुलना में व्याख्या करता है।

८. मनोविज्ञान और सौंदर्यशास्त्र (Psychology and Æsthetics)

मनोविज्ञान का क्षेत्र सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। यह सब मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है, किन्तु सौंदर्यशास्त्र केवल अनुभूति का। यह सभी प्रकार की वेदनाओं और संवेगों का अध्ययन नहीं करता। यह केवल उदात्त और सुन्दर के भावों से सम्बन्धित है। केवल सौंदर्य-विषयक भाव इसके विषय हैं।

मनोविज्ञान विधायक विज्ञान है। सौंदर्यशास्त्र नियामक विज्ञान है। मनोविज्ञान बताता है कि हम अनुभूति कैसे करते हैं। सौंदर्यशास्त्र बताता है कि अनुभूति कैसे करनी चाहिये। यह सौंदर्य और कुरूपता के हेतुओं की जिज्ञासा करता है। "मनोविज्ञान का इस रूप में इस भेद से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह केवल इसकी जिज्ञासा करता है कि वस्तुएँ वास्तव में कैसे सुन्दर या असुन्दर प्रतीत होती हैं; इसका ऐसे प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं है कि जो वस्तु सुन्दर प्रतीत होती है, क्या वह वास्तव में सुन्दर है, या सौंदर्य और कुरूपता का भेद क्या है।

९. मनोविज्ञान और दर्शन (Psychology and Philosophy)

दर्शन के दो भाग हैं, ज्ञान मीमांसा (Epistemology) और तत्त्व-मीमांसा (Metaphysics)। मनोविज्ञान का ज्ञानमीमांसा से निम्नलिखित सम्बन्ध है—

मनोविज्ञान ज्ञान, वेदना और संकल्प के स्वरूप की जिज्ञासा करता है। यह तथ्य के रूप में ज्ञान का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान का काम यह दिखाना है कि मन जानता कैसे है। यह वैयक्तिक मन के ज्ञान के स्वरूप और विकास से सम्बन्धित है। ज्ञान की प्रामाणिकता से इसका कोई सम्बन्ध

नहीं है। मनोविज्ञान ज्ञान की सम्भावना को मान लेता है और केवल वैयक्तिक मन में उसकी वृद्धि और विकास को ढूँढ़ता है।

किन्तु ज्ञानमीमांसा उन दशाओं की छानबीन करती है जिनमें ज्ञान सम्भव होता है। इसका सम्बन्ध ज्ञान के प्रामाण्य से है। यह निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करती है :—

(१) क्या वास्तविक जगत् का ज्ञान सम्भव है ? (२) क्या ज्ञान वास्तविक जगत् का प्रतिनिधित्व करता है ? (३) यथार्थ ज्ञान का उद्गम क्या है ? यह अनुभव है या बुद्धि या दोनों ? (४) प्रामाणिक ज्ञान के हेतु क्या हैं ? (५) ज्ञान का क्षेत्र, विस्तार या सीमा क्या है ?

इस प्रकार मनोविज्ञान ज्ञानमीमांसा का आधार है। मनोविज्ञान एक तथ्य के रूप में ज्ञान के स्वरूप की छानबीन करता है। ज्ञान मीमांसा, दूसरी ओर, ज्ञान के प्रामाण्य की छानबीन करता है। ज्ञान की प्रामाणिकता का अनुसन्धान करने के लिये हमें यह जानना चाहिये कि हम जानते कैसे हैं।

लौक ने ज्ञानमीमांसा की समस्याओं को जानने की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके हल करना चाहा। किन्तु कान्ट ने उन्हें आलोचनात्मक विधि से हल करने का प्रयत्न किया। उसने ज्ञान के प्रागनुभविक (Apriori) हेतुओं को मालूम करने की कोशिश की जो ज्ञान की पूर्वकल्पनायें हैं।

मनोविज्ञान का तत्वमीमांसा से निम्नलिखित सम्बन्ध है :—

तत्वमीमांसा आत्मा, बाह्य जगत, और ब्रह्म के तात्विक स्वरूप का अध्ययन करती है। मनोविज्ञान का ब्रह्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह मन या आत्मा और बाह्य जगत् या अनात्मा की सत्ता को मान लेता है। इसके साथ यह ज्ञान की सम्भावना या विश्व को जानने की मन की क्षमता को भी मान लेता है। तत्वमीमांसा आत्मा, विश्व, और आत्मा के द्वारा विश्व के ज्ञान की यथार्थता को सिद्ध करती है। यह मानती किसी चीज़ को नहीं। तत्वमीमांसा मनोविज्ञान की आधारभूत मान्यताओं की प्रामाणिकता की परीक्षा करती है।

पहिले बौद्धिक मनोविज्ञान था। यह तत्वमीमांसा का एक अंग था। यह

आत्मा का तत्वज्ञान था। यह आत्मा के स्वरूप, व्यापार और परम गति का विवेचन करता था। लेकिन अब मनोविज्ञान अनुभवमूलक हो गया है। यह मन या चेतना का विज्ञान है यह मानसिक प्रक्रियाओं के स्वरूप की जिज्ञासा करता है। यह सब अतिभौतिक प्रश्नों को छोड़ता हुआ आगे बढ़ता है। बहुसंख्यक मनोवैज्ञानिक सोचते हैं कि मनोविज्ञान आत्मा या द्रष्टा के प्रत्यय के बिना सम्भव है। लेकिन हम सोचते हैं कि यह सम्भव नहीं है। मनोविज्ञान एक व्यक्तिगत द्रष्टा के अनुभव और व्यवहार का विज्ञान है। अनुभव का कारण द्रष्टा और दृश्य की पारस्परिक क्रिया है। यदि द्रष्टा और दृश्य न होते तो यह सम्भव न होता। आत्मा या द्रष्टा की अनुभवकर्ता के रूप में सत्ता मनोविज्ञान की पूर्वकल्पना है, व्यवहार द्रष्टा की परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया है। यह शरीर में अनुभव की अभिव्यक्ति है। अनुभव और व्यवहार द्रष्टा के होते हैं।

१०. मनोविज्ञान और समाज विज्ञान (Psychology and Sociology)

मनोविज्ञान परिवेश से सम्बन्धित वैयक्तिक मन का अध्ययन करता है। परिवेश भौतिक और सामाजिक दोनों हैं। प्रकाश, ध्वनि, स्वाद, गन्ध, ताप, शीत इत्यादि का बाह्य जगत् भौतिक परिवेश है। मता-पिता, सम्बन्धी, मित्र, शत्रु, खेल के साथी, संगी—सब लोग जिनके सम्पर्क में व्यक्ति आता है और जिनसे आदान-प्रदान करता है उसके सामाजिक परिवेश को बनाते हैं। वैयक्तिक मन समाज के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करने से विकसित होता है। वह सामाजिक सम्पर्क से आत्म-चेतना का विकास करता है। व्यक्ति और समाज परस्पर क्रिया और प्रतिक्रिया में रत रहते हैं।

समाजविज्ञान समाज के स्वभाव, उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करता है। यह जंगली अवस्था से लेकर सभ्य अवस्था तक विकास की सभी भूमिकाओं में समाज की आदतों, रीतियों, परम्पराओं और संस्थाओं की छान-बीन करता है। अतः मनोविज्ञान और समाज विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

समाज-मनोविज्ञान सामूहिक मन का अध्ययन करता है। यह व्यक्तियों

की उन विलक्षणताओं की छानबीन करता है जो समूहों के सदस्यों की हैसियत से उनमें प्रादुर्भूत होती है। यह भीड़ तथा विचारशील समूह के व्यवहार का अध्ययन करता है। समाज-मनोविज्ञान सामाजिक संगठन के मनोवैज्ञानिक नियमों का अध्ययन करता है। यह मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान की मिलन-भूमि है।

११. मनोविज्ञान और शिक्षाशास्त्र (Psychology and Education)

मनोविज्ञान परिवेश के सम्पर्क में होने वाली व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक प्रक्रियाओं का विज्ञान है। शिक्षाशास्त्र छात्र की शक्तियों को प्रस्फुटित करने का तथा उसके चरित्र और व्यवहार को इस प्रकार ढालने का विज्ञान है कि वह समाज का उपयोगी और सुसमायोजित सदस्य बन सके। शिक्षा व्यक्ति की शक्तियों को सामंजस्य के साथ विकसित करने की, और उसके व्यवहार को नियंत्रित तथा परिवर्तित करके सामाजिक परिवेश से उसे समायोजित करने की प्रक्रिया है। अतः शिक्षा का आधार मनोविज्ञान को होना चाहिए। शिक्षा-मनोविज्ञानमनोविज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों को शिक्षा की व्यावहारिक आवश्यकताओं में लागू करता है। यह शिक्षा को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है और उसे अच्छी तथा स्वाभाविक बनाता है।

शिक्षा में दो कार्यकर्ता होते हैं, गुरु और शिष्य। गुरु को शिष्य के मन का ज्ञान होना चाहिये। अन्यथा वह उसकी आयु के लिये उपयुक्त शिक्षा उसे नहीं दे सकता। अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक के मन के विशेष लक्षण होते हैं। गुरु को उनका ज्ञान होना चाहिये, ताकि वह विभिन्न आयुओं में अभिव्यक्त विशेष प्रवृत्तियों के साथ उसकी शिक्षा का मेल बैठा सके। उसे बालक की निरीक्षण, ध्यान, स्मृति, कल्पना, विचार, संवेग, संकल्प, और चरित्र की शक्तियों को विकसित करने के लिये मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग करना चाहिये।

मनोविज्ञान बच्चे की जन्मजात शक्तियों, उसके मानसिक विकास के नियमों, परिवेश से पड़ने वाले उसके मन पर प्रभावों, और उसके चरित्र के

निर्माण का ज्ञान देकर शिक्षाशास्त्री की सहायता करता है। एक व्यक्ति दूसरे पर कैसे प्रभाव डालता है, सामूहिक जीवन व्यक्ति को कैसे प्रभावित करता है, और कैसे पाठशाला का सामूहिक जीवन बच्चे के चरित्र को ढालता है, यह बताकर भी मनोविज्ञान शिक्षाविद् का सहायक होता है। ज्ञान की समष्टियाँ कैसे बनती हैं, और कैसे नवोपलब्ध ज्ञान पूर्व निर्मित ज्ञान-समष्टि के साथ घुल मिल जाता है, यह बताकर भी मनोविज्ञान शिक्षाविद की सहायता करता है।

शिक्षाशास्त्र एक नियामक विज्ञान है, यह शिक्षा के उद्देश्य को निर्धारित करता है। मनोविज्ञान इस उद्देश्य की परिभाषा करने में शिक्षाशास्त्र की सहायता नहीं कर सकता। किन्तु यह उन साधनों की ओर संकेत कर सकता है जो शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति करा सकते हैं। मनोविज्ञान बच्चे, किशोर और प्रौढ़ की मानसिक प्रक्रियाओं, यथा कर्म के उद्गम, सहज प्रवृत्तियों, संवेग और भावों का अध्ययन करता है। अतः यह बच्चे, किशोर और प्रौढ़ की शिक्षा में सहायक हो सकता है। मनोविज्ञान व्यक्ति और वर्ग के व्यवहार का अध्ययन करता है। अतः यह शिक्षाशास्त्र की सहायता कर सकता है जो शिक्षित किए जाने वाले के व्यवहार को शासित करने का प्रयत्न करता है।

अध्याय ४

मन और शरीर

१. मन और शरीर के सम्बन्ध-विषयक अनुभवमूलक तथ्य (Empirical Facts about the Relation of Mind and Body)

मानसिक और शारीरिक प्रक्रियाओं का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। यहाँ हम इस सम्बन्ध को बताने वाले साक्ष्य की परीक्षा करेंगे।

सामान्य निरीक्षण बताता है। कि बाह्य वस्तुयें ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा मन पर क्रिया करती हैं और मन में संवेदनाओं (Sensations) को पैदा करती हैं। हम ज्ञानेन्द्रियों से बाह्य वस्तुओं के गुणों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। हम

चक्षुओं से प्रकाश और रङ्गों का बोध करते हैं; कानों से ध्वनियों को ग्रहण करते हैं; नासिका से गन्धों को; जिह्वा से स्वाद को; त्वचा से ताप, शीत और दबाव को। ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर के द्वार हैं जिनसे मन बाह्य वस्तुओं के गुणों के ज्ञान को उपलब्ध करता है। यदि ज्ञानेन्द्रियों को हमसे छीन लिया जाय, तो रंगों, गन्धों, स्वादों इत्यादि की सम्पत्ति भी हम से छिन जायगी। इस प्रकार संवेदनाओं के विभिन्न प्रकार ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजित होने पर निर्भर हैं।

सामान्य निरीक्षण यह भी बताता है कि, पेशियों के द्वारा मन बाह्य वस्तुओं पर क्रिया करता है। हमारे संकल्प पैशिक गतियों में प्रकाशित होते हैं। हम घंटी सुनते हैं और दरवाज़ा खोलने के लिये जाते हैं। यदि शरीर की पेशियाँ स्तम्भित (Paralysed) हो जायँ, तो अपने संकल्पों को क्रियान्वित करने की शक्ति भी हमसे छिन जाय। इस प्रकार मन ज्ञानेन्द्रियों और शरीर की पेशियों की सहायता से काम करता है। ज्ञानेन्द्रियों से यह संवेदनाओं के रूप में ज्ञान की वस्तु प्राप्त करता है। यह ऐच्छिक पेशियों (Voluntary muscles) से बाह्य वस्तुओं पर क्रिया करता है।

चोट और घाव चेतना में गम्भीर बाधा उपस्थित कर सकते हैं, यहाँ तक कि संज्ञाहीन भी कर सकते हैं। मद्य और अन्य दवायें मन पर उत्तेजक प्रभाव डालती हैं। सुरा-पान अत्यधिक आमोद देता है; अफीम अवसाद (Depression) पैदा करती है। चाय और काफ़ी भी मन पर उत्तेजक प्रभाव डालते हैं।

शारीरिक रोग प्रायः मन पर उल्लेखनीय प्रभाव डालते हैं। उदाहरणार्थ, दीर्घकालिक अजीर्ण या अनिन्द्रा से मनोदशा (Mood) चिड़चिड़ी हो जाती है। इसके विपरीत, मन की प्रसन्न या अवसन्न अभिवृत्ति (Attitude) से कुछ शारीरिक रोगों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ते हैं। ये सामान्य निरीक्षण यह बताते हैं कि मन और शरीर परस्पर निकट रूप से सम्बन्धित हैं। वैज्ञानिक साक्ष्य इस निष्कर्ष को पुष्ट करता है।

दैनिक अनुभव के साक्ष्य को विभिन्न विज्ञानों का साक्ष्य बल देता है।

रोगविज्ञान (Pathology) दिखाता है कि मस्तिष्क के विशेष भागों की अव्यवस्थित दशा से चेतना के निश्चित प्रकारों का ह्रास या क्षति होती है। मस्तिष्क के अलग-अलग भाग दार्ष्टिक (Visual), श्रवण-सम्बन्धी, पैशिक इत्यादि चेतना के अलग-अलग प्रकारोंसे सम्बन्धित हैं। मस्तिष्क के एक क्षेत्र की ऊति (Tissue) के ह्रास से दृष्टि-संवेदनाओं की क्षति होती है; अन्य क्षेत्रों की ऊति के ह्रास से श्रवण-चेतना, गति-चेतना इत्यादि की क्षति होती है।

शरीर-रचना-विज्ञान (Anatomy) शरीर की रचना का विज्ञान है। यह यह दिखाने में समर्थ है कि मस्तिष्क के रुग्ण भागों और ज्ञानेन्द्रियों तथा उन पेशियों के मध्य जिनके ऊपर मन का नियंत्रण नहीं रहा, स्नायुओं के सम्बन्ध हैं। यह रोग-विज्ञान के साक्ष्य को पुष्ट करता है।

शरीर व्यापार विज्ञान (Physiology) शरीर के अंगों के व्यापारों का विज्ञान है। यह हमें बताता है कि पशुओं में मस्तिष्क के कुछ भागों को उत्तेजना देने से हम विशेष पेशियों में गतियाँ पैदा कर सकते हैं और उनको काट देने से कम से कम अस्थायी रूप में विकृत कर सकते हैं और उनकी गतियों को रोक सकते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रों को काट देने से भी हम विशेष ज्ञानेन्द्रियों को विकृत कर सकते हैं और कुछ संवेदनाओं को रोक सकते हैं।

इस प्रकार रोगविज्ञान, शरीर-रचना-विज्ञान और शरीर-व्यापार-विज्ञान मन और शरीर के घनिष्ट सम्बन्ध को, जिसकी ओर दैनिक अनुभव के परिचित तथ्य संकेत करते हैं, पुष्ट करते हैं, तथा मस्तिष्क के निश्चित भागों, ज्ञानेन्द्रियों और पेशियों के और दूसरी ओर चेतना की विशेष दशाओं के मध्य सम्बन्ध दिखाते हैं।

तुलनात्मक शरीर-रचना-विज्ञान (Comparative Anatomy) तुलनात्मक शरीर-व्यापार-विज्ञान (Comparative Physiology) और तुलनात्मक मनोविज्ञान (Comparative Psychology) सभी यह दिखाते हैं कि चेतना का विकास और स्नायुतंत्र का विकास एक-दूसरे के

समानान्तर चलते हैं। स्नायुतंत्र का विकास जितना अधिक होता है मन का विकास भी उतना ही अधिक होता है। इस प्रकार परिचित तथ्यों का साक्ष्य विभिन्न विज्ञानों के साक्ष्य से पुष्ट होता है।[1]

२. *स्नायु-तंत्र की रचना और व्यापार* (*the Structure and Functions of the Nervous System*)। स्नायु-तंत्र के दो मुख्य भाग हैं: मस्तिष्क-सुषुम्ना अक्ष और स्नायु।

(*१*) *मस्तिष्क-सुषुम्ना अक्ष* (*Cerebro Spinal Axis*) में निम्नलिखित अंग होते हैं: —

(*क*) *सुषुम्ना* (*Spinal cord*) यह एक श्वेत मुलायम पदार्थ रस्सी-जैसी शक्ल में मेरु-दण्ड (Spinal Column) या रीढ़ की हड्डी के अन्दर अवस्थित है। इसका भूरा आंतरिक भाग स्नायु कोशाओं (Nerve Cells) से बना हुआ है, और बाहर की ओर सफेद पदार्थ की एक मोटी तह होती है जिसमें स्नायु-सूत्र (Nerve Fibres) होते हैं। यह प्रतिक्षेप-क्रियाओं (Reflex Action) का केन्द्र है। यह बोध-आवेगों (Sensory Impulses) को तुरन्त कर्म-आवेगों (Motor Impulses) में परिवर्तित कर देती है, क्योंकि सुषुम्ना में बोध-स्नायु-कोशायें और कर्म-स्नायु-कोशायें, जो अपने स्नायु-सूत्रों से क्रमशः ज्ञानेन्द्रियों और पेशियों से जुड़ी होती हैं, एक-दूसरी के अत्यधिक समीप स्थित होती हैं। अतः किसी अन्तर्गामी बोध-आवेग को आसानी से कर्म-स्नायुओं में बाहर जाने का मार्ग मिल जाता है और इस प्रकार ऐंद्रिय उत्तेजनों की तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में प्रतिक्षेप-क्रिया पैदा होती है। ऐसा करने में बोध-आवेग को मस्तिष्क में पहुँचकर मस्तिष्क के पथ-प्रदर्शन (Guidance) की अपेक्षा नहीं रहती। सुषुम्ना-स्नायु सुषुम्ना से समान दूरियों पर दोनों ओर बाहर निकलते हैं। उन स्नायुओं के इकतीस जोड़े हैं। प्रत्येक स्नायु के दो मूल होते हैं, एक अग्र-मूल (Anterior-Root) और दूसरा पश्च-मूल (Posterior Root), जो परस्पर मिलते हैं। सुषुम्ना भूरे और सफ़ेद पदार्थ की बनी होती है। भूरा पदार्थ, जिसमें स्नायु-कोशायें होतीं

[1] (ऐंजिल : मनोविज्ञान, पृ० १३-१६)

में अन्दर रहता है और सफ़ेद पदार्थ, जिसमें स्नायु-सूत्र होते हैं भूरे पदार्थ को पूरी तरह से ढकते हुये बाहर रहता है।
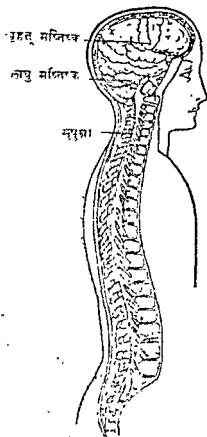
(ख) खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क (Brain, Encephalon) रहता है जिसके निम्नलिखित भाग हैं :—

(ख.) *मस्तिष्क-पुच्छ* (*Medulla Oblongata*) सुषुम्ना का दीर्घित भाग है जिसे सुषुम्ना-कन्द (Bulb) भी कहते हैं। यह मस्तिष्क को सुषुम्ना से मिलाता है। यह सुषुम्ना और मस्तिष्क के मध्य संवाहक (Conductor) का काम करता है। सुषुम्ना से मस्तिष्क को जाने वाले सभी सूत्र इसमें से होकर जाते हैं। यह श्वसन, रक्त-संचरण, निगलना इत्यादि पर नियंत्रण करता है। इसकी स्थिति बृहत्-मस्तिष्क के दो गोलार्धों के मध्य होती है। यह भूरे और श्वेत पदार्थ का बना होता है। भूरा पदार्थ श्वेत पदार्थ के अन्दर होता है जो इसे ढके रहता है। इस दृष्टि से मस्तिष्क-पुच्छ सुषुम्ना से सादृश्य रखता है।

($ख_2$) *सेतु* (*Pons Varolii*) मस्तिष्क-पुच्छ के ऊपर स्नायु-पदार्थ का एक पुल सा होता है। यह लघु-मस्तिष्क के दो खंडों को जोड़ता है। बृहत्-मस्तिष्क से स्नायु-सूत्र इसमें से होकर शरीर के निम्न अंगों को जाते हैं। इसमें से होकर जाने में वे एक दूसरे को काटते हैं। दायें बृहत्-मस्तिष्कीय गोलार्ध से स्नायु-सूत्र सेतु के *बायें भाग से होकर शरीर के बायें भाग को*

पेशियों को जाते हैं। बायें बृहत्-मस्तिष्कीय गोलार्ध से स्नायु-सूत्र सेतु के दायें भाग से होकर शरीर के दायें भाग की पेशियों को जाते हैं। इस प्रकार दायें बृहत्-मस्तिष्कीय गोलार्ध में चोट पहुँचने से शरीर के बायें भाग की पेशियों का स्तम्भ (Paralysis) हो जाता है, और बायें बृहत्-मस्तिष्कीय गोलार्ध की चोट से शरीर के दायें भाग का।

(ख$_3$) *लघु मस्तिष्क* (*Cerebellum*) बृहत्-मस्तिष्क के पीछे वाले भाग के नीचे अवस्थित होता है। इसके दो खण्ड होते हैं जिनके अन्दर सफेद स्नायु-सूत्र होते हैं जो भूरी कोशाओं की एक पतली तह से ढके होते हैं। यह एक ढांचा होता है जिसपर नालियां सी बनी होती हैं। ये नालियां बृहत्-मस्तिष्क की नालियों से अधिक गहरी होती हैं। पेशियों की गतियों में सहयोग करना और शरीर के संतुलन को बनाये रखना इसके काम होते हैं। यह चलना, बैठना, खड़े होना प्रभृति समन्वित और संतुलित गतियों पर नियंत्रण रखता है। यह शरीर के संतुलन को भी कायम रखता है। इसमें भूरा पदार्थ सफेद पदार्थ को घेरे रहता है।

(ख$_4$) *बृहत्-मस्तिष्क* (*Cerebrum*) के एक दरार से पृथक् किये हुये दो गोलार्ध होते हैं। बृहत्-मस्तिष्क में तहें और नालियाँ होती हैं। मस्तिष्क में भूरे और सफ़ेद पदार्थ होते हैं। बृहत्-मस्तिष्क में भूरा पदार्थ बाहर रहता है और सफ़ेद पदार्थ को, जो अन्दर रहता है घेरे रहता है। भूरे पदार्थ को त्वचा (Cortex) कहते है। इसमें स्नायु-कोशाओं के झुण्ड रहते हैं, जो मस्तिष्क के बोधाधिष्ठान (Sensory area) और कर्माधिष्ठान (Motor area) को बनाते हैं। सफ़ेद पदार्थ स्नायु-सूत्रों का बना होता है। भूरा पदार्थ स्नायु-कोशाओं को बनाता है।

बृहत्-मस्तिष्क क्रियाओं के उच्चतर स्तरों पर नियंत्रण करता है, यथा, ऐच्छिक क्रियायें। यह निम्न केन्द्रों की क्रियाओं का नियमन और अवरोध करता है। यह सम्पूर्ण स्नायुतंत्र और शरीर का शासक है। यह संवेदनाओं, स्मृति, विचार, संवेग, और संकल्पों का अधिष्ठान है। इसमें विभिन्न बोध-केन्द्र (Sensory centres) होते हैं जो विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं के अधिष्ठान हैं। इसमें

विभिन्न चेष्टा-केन्द्र (Motor centres) होते हैं जिनसे यह पैशिक गतियों या ऐच्छिक क्रियाओं पर नियन्त्रण रखता है। यह हमको सीखने, विचारने, निर्णय करने, समझने और वस्तुओं को स्मरण रखने में समर्थ बनाता है। यह प्रज्ञा का अधिष्ठान (Seat of intellect) है। यह हमें हर्ष, विषाद प्रभृति संवेगों की अनुभूति करने के योग्य बनाता है। बृहत्-मस्तिष्क के विभिन्न भाग चेतना के विभिन्न प्रकारों से सम्बन्धित हैं। उनमें से कुछ बोध क्षेत्र हैं; वे ज्ञानेन्द्रियों से बोध-आवेगों को प्राप्त करते हैं। अन्य कर्म-क्षेत्र हैं, वे पेशियों को कर्म-आवेग भेजते हैं। कुछ और साहचर्य-क्षेत्र (Association areas) हैं; वे समन्वय करने वाले केन्द्र (Coordinating centres) हैं।[१]

(२) स्नायु (Nerves)।

स्नायु सूक्ष्म सफेद सूत्रों के समान दिखाई देते हैं। वे अत्यधिक पतले स्नायु-तन्तुओं के गट्ठर होते हैं। उनमें से कुछ सीधे मस्तिष्क से निकलते हैं और कपाल-स्नायु (Cranial nerves) या बृहत्-मस्तिष्कीय स्नायु (Cerebrial nerves) कहलाते हैं। उनमें से कुछ मेरु-दण्ड में स्थित सुषुम्ना से निकलते हैं और सुषुम्नीय-स्नायु (Spinal nerves) कहलाते हैं। कपाल-स्नायु शिर में स्थित ज्ञानेन्द्रियों को जाते हैं अर्थात् आँख, कान, नाक और जीभ को। सुषुम्नीय स्नायु त्वचा, आन्तरिक अंगों, और पेशियों को जाते हैं।

स्नायु दो प्रकार के होते हैं। (१) बोध-स्नायु या अन्तर्गामी स्नायु और (२) कर्म-स्नायु या बहिर्गामी स्नायु। बोध-स्नायु स्नायविक धाराओं (Nervous currents) को ज्ञानेन्द्रियों से सुषुम्ना और मस्तिष्क में स्थित ज्ञान-केन्द्रों को ले जाते हैं। कर्म-स्नायु स्नायविक धाराओं को सुषुम्ना और मस्तिष्क के कर्म-केन्द्रों से पेशियों और ग्रन्थियों (Glands) को ले जाते हैं।[२]

३. प्रारम्भिक संरचनायें स्नायु-कोशायें (Elementary Structures Neurones)

[१] (देखो, मस्तिष्क के व्यापारों का स्थान-सीमन)

[२] (देखो, बोध और कर्म-स्नायु-कोशायें)

स्नायुतंत्र (Nervous System) कोशाओं से बना है। स्नायु-कोशा (Nerve-cell) में कई तन्तु होते हैं। ये तन्तु वस्तुतः कोशा के ही भाग होते हैं। इसका एक कोशापिण्ड (Cell-body) होता है जिसमें एक न्यष्टि (Nucleus) और उसके अन्दर प्रायः कई छोटी-छोटी न्यष्टियां (Neucleoli) तथा उससे निकलने वाली कई शाखायें होती हैं। प्रत्येक स्नायु-कोशा से दो प्रकार की शाखायें जुड़ी होती हैं। इनमें से एक प्रकार की शाखायें कोशा-लोम (Dendrites) कहलाती हैं और उत्तेजना को ग्रहण करती हैं। अन्य उत्तेजना को बाहर भेजती है और कोशा-लांगूल (Axon) कहलाती है। प्रत्येक स्नायु-कोशा में पिण्ड, लोम, और लांगूल होते हैं। लोम पेड़ की शाखाओं की भाँति लगते हैं। लांगूल एक लम्बे पतले शाखाओं से रहित तन्तु की भाँति लगता है। यह एक अन्त्य-कूर्च (End Brush) में समाप्त होता है।
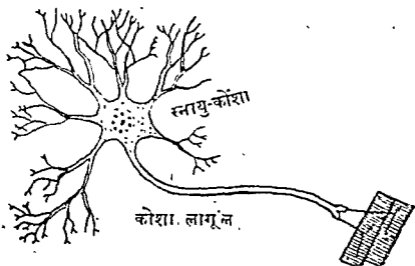
पेशी में समाप्त होता हुआ लागूल

दो स्नायु कोशाओं के मिलने का स्थान स्नायु-सन्धि (Synapse)} कहलाता है। यहाँ पर एक कोशा का लांगूल सूक्ष्म शाखाओं के अन्त्य-कूर्च में

विभक्त हो जाता है, जो अन्य कोशा के लोमों के साथ जुड़ जाते हैं। सन्धि में जो लोम होता है वह एक आदातृ-अंग (Receptor) होता है, जबकि लांगूल का अन्त्य-कूर्च उत्तेजक-अंग (Stimulating Organ) होता है, आदातृ-अंग नहीं। सन्धि-स्थल पर एक कोशा के लांगूल का अन्त्य-कूर्च अन्य कोशा के लोमों को उत्तेजन देता है। "सन्धि-स्थल पर शायद लोम और लांगूल में सीधा सम्पर्क नहीं होता। सन्धि एक एक ही दिशा में खुलने वाला द्वार होती है। स्नायु-आवेग बोध-लांगूल के छोरों से कर्म-कोशा के लोमों की ओर संवाहित होते हैं, किन्तु विपरीत दिशा में नहीं। सन्धि में से जाने में स्नायविक धारा को स्नायु-तन्तु से जाने की अपेक्षा अधिक विलम्ब होता है। इससे यह संकेत मिलता है कि सन्धि स्नायविक शक्ति के मुक्त प्रवाह में एक तरह की बाधा देती है।"[1]

पूर्णतया विकसित स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) की जटिल संरचना होती है। स्नायु का केन्द्रीय तन्तु अक्ष-स्तम्भ (Axis Cylinder) कहलाता है। यही वास्तविक स्नायु होता है और स्नायु-आवेग को एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक ले जाता है। इसका एक अपेक्षाकृत मोटा आवरण होता है जिसे विमज्जि-कंचुक (Medullary Sheath) कहते हैं। इसके ऊपर एक और कला (झिल्ली) होती है जिसे स्नायु-कंचुक (Neurilemma) कहते हैं।

४. स्नायुकोशाओं के व्यापार (Functions of Neurones)

स्नायुकोशाओं में कोशा-पिण्ड और स्नायु-तन्तु होते हैं। कोशा-पिण्ड और स्नायु-तन्तुओं में उद्दीप्यता (Irritability) और संवाहिता (Conductivity) के गुण होते हैं। कोशा-पिण्डों में उनमें पहुँचे हुए स्नायु-आवेगों को प्रबल करने या रोकने की भी शक्ति होती है। कभी-कभी उनकी क्रिया स्वतः चालित होती है; वे बिना किसी बाह्य उत्तेजन के स्नायु-आवेग को स्नायु-तन्तुओं में भेजते हैं। वे स्नायु-कोशाओं को परस्पर जोड़ते हैं। स्नायु-पिण्ड स्नायु-तन्तुओं को पोषण प्रदान करते हैं। रोध का व्यापार (Function of

[1] मौर्गन और गिलिलैंड : मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ३१

Inhibition) जो पहिले स्नायु-पिण्डों का समझा जाता था, अब स्नायु-सन्धियों का माना जाता है।

५. तीन प्रकार की स्नायु-कोशायें (Neurones)

स्नायु-कोशायें तीन प्रकार की होती हैं। पहिली बोध-स्नायु-कोशा है, दूसरी कर्म-स्नायु-कोशा, और तीसरी केन्द्रीय स्नायु-कोशा। तीसरे प्रकार की कोशा को साहचर्य या अनुबन्ध-कोशा (Association or Correlation Nourone) भी कहते हैं। बोध-कोशा किसी बोधेन्द्रिय को किसी बोध-केन्द्र से जोड़ती है। कर्म-कोशा किसी कर्म-केन्द्र को किसी पेशी से जोड़ती है। केन्द्रीय कोशा एक बोध-कोशा को एक कर्मकोशा से जोड़ती है। यह समन्वयकारी कोशा होती हैं।

स्नायु-कोशायें अपने व्यापारों के अनुसार तीन प्रकार की होती हैं। बोध-कोशायें स्नायविक धाराओं को बोधेन्द्रियों से बोध-केन्द्रों को भेजती हैं। कर्म-कोशायें जिनका अन्त पेशियों में होता है स्नायविक धाराओं को कर्म-केन्द्रों से पेशियों तक ले जाती है। केन्द्रीय-कोशायें बोध-कोशाओं को कर्म-कोशाओं से जोड़ती हैं।

६. मस्तिष्क में मानसिक व्यापारों का स्थानसीमन (Localisation of Mental Functions in the Brain)

प्रत्येक बृहत्-मस्तिष्कीय गोलार्ध चार खंडों में विभाजित है। अग्र खंड कपाल (Frontal lobe) के अगले हिस्से में मस्तिष्क के सामने वाले भाग से केन्द्रीय दरार (Central Fissure) तक फैला हुआ है। पार्श्व-खंड (Parietal lobe) केन्द्रीय दरार के पीछे से शुरू होता है और पश्च-खंड (Occipital lobe) तक, जो शिर के पिछवाड़े में स्थित है, फैला हुआ है। शंख-खंड (Temporal lobe) शंखों के क्षेत्र में और पीछे की ओर सिल्वियस (Sylvius) की दरार के नीचे स्थित है।

बृहत्-मस्तिष्क के विभिन्न भाग विभिन्न मानसिक व्यापारों से सम्बन्धित हैं। दृष्टि-अधिष्ठान (Visual area) पश्च-खंड में स्थित है। यह दृष्टि-

स्नायुओं के द्वारा दृष्टि- अंगों या आंखों से जुड़ा है। यह दृष्टि-संवेदनाओं का अधिष्ठान है। *श्रवणाधिष्ठान* (Auditory area) शंख-खंड में जहां पर यह सिल्वियस की दरार में घुसता है, स्थित है। यह श्रवण-स्नायुओं के द्वारा श्रवणेन्द्रियों या कानों से जुड़ा है। यह श्रवण-संवेदनाओं का अधिष्ठान है। घ्राण-अधिष्ठान (Olfactory area) और स्वाद-अधिष्ठान (Gustatory area) ऊपर से नहीं दिखाई पड़ते। घ्राण-अधिष्ठान शंख-खंड से आवृत एक पृथक स्थान में स्थित है।
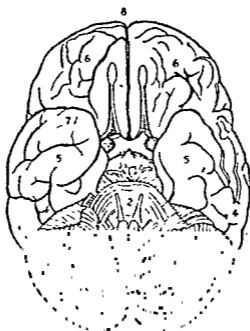
त्वक्-बोधाधिष्ठान (*Somesthetic area*) केन्द्रीय दरार के ठीक पीछे स्थित है। यह स्पर्श-स्नायुओं के द्वारा स्पर्शेन्द्रिय या त्वचा से जुड़ा हुआ है। यह बोध-स्नायुओं के द्वारा पेशी में स्थिति इन्द्रियों से भी जुड़ा हुआ है। यह स्पर्श या त्वक-संवेदनाओं का अधिष्ठान है। यह पैशिक या गति-संवेदनाओं का अधिष्ठान भी है।

चेष्टाधिष्ठान (*Motor area*) केन्द्रीय दरार के ठीक सामने स्थित है। यह कर्म-स्नायुओं के द्वारा पेशियों से जुड़ा है। यह पैशिक गतियों या ऐच्छिक

क्रियाओं का अधिष्ठान है। चेष्टाधिष्ठान का सबसे ऊपर का क्षेत्र टाँगों की पेशियों से जुड़ा है। उससे निचला क्षेत्र शरीर के धड़ की पेशियों से जुड़ा है। उससे भी निचला बाहुओं की पेशियों से और सबसे निचला क्षेत्र चेहरे की पेशियों से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार चेष्टाधिष्ठान का उच्चतम भाग शरीर के निम्नतम अंगों से जुड़ा है, और निम्नतम भाग शरीर के उच्चतम अंगों से। वाणी (Speech) के कर्म-केन्द्र चेष्टाधिष्ठान के निम्नतम भाग में स्थित हैं।

पार्श्व-खंड, अग्रखंड और पश्चखंड में कई बोधाधिष्ठानों के मध्य एक बड़ा क्षेत्र है। ऐसे ही अग्रखंड में चेष्टाधिष्ठान के आगे एक बड़ा क्षेत्र है। इन्हें साहचर्य क्षेत्र (Association area) कहते हैं। ये बोधाधिष्ठानों और चेष्टाधिष्ठानों की क्रियाओं को संयुक्त करते हैं। उनका व्यापार संश्लेषणात्मक है। ये साहचर्य-क्षेत्र तर्क, संकल्प, अनुभव से सीखना इत्यादि उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के अधिष्ठान माने जाते हैं। इस प्रकार मस्तिष्क के विभिन्न भाग चेतना के विभिन्न प्रकारों से सम्बन्धित हैं। विभिन्न मानसिक व्यापार मस्तिष्क के विभिन्न भागों में सीमित हैं।

७. स्वतंत्र स्नायुतंत्र (The Autonomic Nervous System)

स्वतंत्र स्नायुतंत्र सामान्य स्नायुतंत्र का ही एक भाग है, एक पृथक तंत्र नहीं, जैसा कि पहिले माना जाता था। यह स्वतंत्र है, यह ऐच्छिक नियंत्रण (Voluntary Control) से स्वतंत्र होकर काम करता है। यह ग्रन्थियों और चिकनी पेशियों को जोड़ने वाले स्नायुओं से बना है जो श्वसन, रक्त-संचार, और पाचन की क्रियाओं में काम करते हैं। स्वतंत्र स्नायुतंत्र के स्नायु हृदय, रक्तवाहिनियों, फुफ्फुस, आमाशय, आंतों और आन्तरिक अंगों को जाते हैं। वे-स्वेद ग्रन्थियों, बालों की लघु-पेशियों, और आंख के उपतारे (Iris) को जाते हैं। वे "चिकनी पेशियों" और ग्रन्थियों को भी जाते हैं। ये स्नायु बहुत ही सूक्ष्म स्नायु-तन्तुओं के बने होते हैं, जो मस्तिष्क के तने और सुषुम्ना में स्थित कोशाओं से उत्पन्न होते हैं।

स्वतंत्र स्नायु-मंडल के तीन विभाग हैं, ऊपरी, बीच का, और निचला। शीर्ष विभाग (Cranial Division) मस्तिष्क के तने को उपतारे की पेशी
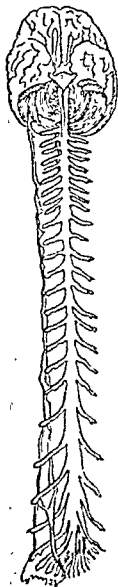
से जोड़ता है, जो उसके सिकुड़ने का कारण है, और क्षार-ग्रन्थियों से भी जोड़ता है जो उनके क्षार बहाने का कारण है। इसके अन्य स्नायु आमाशय की पेशियों और ग्रन्थियों को जाते हैं, जो आमाशय की ग्रन्थियों को जठर-रस (Gastric Juice) छोड़ने के लिये उत्तेजित करते हैं, और आमाशय की दीवार की पेशियों को मथने की क्रिया के लिये उत्तेजित करते हैं। अन्य स्नायु हृदय को जाते हैं, और उसकी गति को मन्द करने की शक्ति रखते हैं। मध्यम या सहभावी विभाग (Sympathetic Division) सुषुम्ना के मध्य भाग से सम्बन्धित है। "सहभावी" स्नायु, जो वक्षस्थल के समीप सुषुम्ना से निकलते हैं, हृदय और आमाशय पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। ये हृदय-गति को बढ़ाते हैं और आमाशय की क्रिया को रोकते हैं। निम्न सिरे पर त्रैक-विभाग (Sacral Division) सुषुम्ना को प्रजननांगों और मूत्राशय तथा मलाशय की पेशियों से जोड़ता है, और उनकी क्रिया को उत्तेजित करता है। सहभावी विभाग त्रैक विभाग को, जो सुषुम्ना के अधोभाग से निकलता है, अंशतः आच्छादित करता है, और श्रोणि-अंगों (Pelvic Organs) के ऊपर उसके उत्तेजक प्रभावों का विरोध करता है। सहभावी स्नायुओं की क्रिया शीर्षणी और त्रैक नाड़ियों की क्रिया की विरोधिनी है। सुषुम्ना के साथ-साथ प्रगण्डों (Ganglia) या स्नायु कोशा-गुच्छों की एक पंक्ति होती है। ये प्रगण्ड सुषुम्ना के साथ प्रगण्ड पूर्व (Preganglionic) तन्तुओं से जुड़े होते हैं। प्रत्येक प्रगण्ड से प्रगण्डोत्तर (Postganglionic) तन्तु विभिन्न पेशियों और ग्रन्थियों तक फैले होते हैं।

"वे उपतारे को (इसलिये तारे को भी) फैलाते हैं, अश्रुग्रन्थियों से आंसू छुड़वाते हैं, लार-ग्रन्थियों, पाचक-ग्रन्थियों और आमाशय तथा आंतों की पेशियों को अपनी पाचन-क्रिया को रोकने के लिये उत्तेजित करते हैं, मूत्राशय और मलाशय की पेशियों से मल-मूत्र-त्याग करवाते हैं, बालों को खड़ा करते हैं, और स्वेद-ग्रन्थियों से पसीना निकलवाते हैं।"[1]

सहभावी विभाग भय और क्रोध इत्यादि प्रबल संवेगों में संलग्न रहता है। शीर्ष-भाग और त्रैक-विभाग का कुछ अंश शारीरिक विश्राम इत्यादि सुखद अवस्थाओं में संलग्न रहते हैं। त्रैक-विभाग का कुछ अंश काम-वासना और कामोद्दीप्ति में संलग्न रहता है।[2]

अध्याय ५

चेतना (CONSCIOUSNESS)

१. चेतना के लक्षण (Characteristics of Consciousness)

चेतना की परिभाषा नहीं हो सकती, क्योंकि यह एक प्रारम्भिक गुण (Elementary Quality) है। विभिन्न रूपों में ज्ञान, वेदना और संकल्प को, जो इसके संघटक तत्व हैं, गिनाकर इसका वर्णन किया जा सकता है; या द्रव्य के धर्मों से इसका भेद करते हुये इसका वर्णन किया जा सकता है। मन का सार चेतना है जबकि द्रव्य का सार विस्तार (Extension) है।

विलियम जेम्स चेतना के निम्नलिखित लक्षण बताता है :—

(१) "*प्रत्येक विचार (चेतना) किसी वैयक्तिक चेतना का अंश होता है।*" चेतना सदैव किसी व्यक्तिगत मन की होती है। ऐसी चेतना नहीं हो सकती जो किसी मन की न हो। किसी व्यक्तिगत आत्मा, किसी व्यक्तिगत मन के बिना विचार-मात्र, वेदना-मात्र की सत्ता नहीं हो सकती। विभिन्न

[1] ट्रो: शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ४१

[2] ट्रो : शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ३६-४०
वुडवर्थ: मनोविज्ञान, पृ० २४७-४८

व्यक्तियों में विचारों का परस्पर परिवर्तन नहीं होता। मनों के विषय में नितान्त पार्थक्य, अनिवार्य अनेकवाद (pluralism) का नियम ही सत्य है। "ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मौलिक मानसिक तथ्य विचार, यह विचार या वह विचार नहीं है, बल्कि मेरा विचार, किसी न किसी का विचार है।"

२. *प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना के अन्दर विचार सदैव परिवर्तनशील हैं।* मानसिक प्रक्रियायें एक विशेष मन में सदैव बदलती रहती हैं। जब आप किसी वस्तु को एक लम्बे समय तक देखते रहते हैं, तो पहिले क्षण की संवेदना (Sensation) बिल्कुल वही नहीं होती जो अगले क्षण की होती है। एक बार जो विचार चला जाता है फिर कभी नहीं लौटता, और जैसा वह पहिले था उसी रूप में वह फिर कभी नहीं आयगा। जैसे एक नदी में लहरें सदैव परिवर्तनशील होती हैं, वैसे ही मन में भी विचार सदैव परिवर्तनशील होते हैं। जेम्स मन को चेतना का प्रवाह (Stream of Consciousness) कहता है।

(३) "*प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना के अन्दर विचार प्रत्यक्षतः अविच्छिन्न होता है।*" मानसिक जीवन में अविच्छिन्नता होती है। जेम्स मानसिक जीवन को चेतना-प्रवाह की संज्ञा देता है। चेतना अविच्छिन्न है, इसमें कोई दरार, कोई विभाजन नहीं है। एक मन और दूसरे मन के बीच बिल्कुल विच्छिन्नता होती है। किन्तु एक ही मन में विचार या चेतना अविच्छिन्न होती है। जैसे एक नदी में छोटी-बड़ी लहरें एक-दूसरी में प्रवाहित होती हैं और एक निरन्तर प्रवाह बनाती हैं, वैसे ही चेतना की उर्मियाँ परस्पर मिली होती हैं और एक अविच्छिन्न, निरन्तर चेतना-प्रवाह बनाती हैं।

जेम्स ठोस अवस्थाओं और अल्पस्थायी अवस्थाओं में भेद करता है। ठोस अवस्थायें अपेक्षाकृत स्थिर होती हैं और अल्पस्थायी अस्थिर। उदाहरणार्थ, जब मैं सोचता हूँ कि 'पुस्तक मेज पर है', तो 'पुस्तक' और 'मेज' के मेरे विचार ठोस हैं और 'है' तथा 'पर' के विचार अल्पस्थायी। इसी प्रकार 'और', 'लेकिन', 'से', 'में' इत्यादि के विचार अल्पस्थायी हैं। ये सम्बन्धों के विचार हैं।

(४) *ऐसा प्रतीत होता है कि विचार अपने से स्वतंत्र एक वस्तु से सम्बन्ध रखता है।* चेतना में द्रष्टा और दृश्य का द्वैत निहित है। जब मैं सोचता हूँ कि 'कोलम्बस' ने अमेरिका को ढूँढा, तो मेरे विचार का विषय न 'कोलम्बस' है न 'अमेरिका', बल्कि 'कोलम्बस ने अमेरिका ढूँढा', प्रायः भौतिक विषय और मानसिक विषय को समझने में भूल की जाती है। जब मैं घास को देखता हूँ, तो मेरी चेतना का विषय 'घास' है, 'घास का विचार' नहीं। चेतना और आत्म-चेतना में भेद है। 'घास' मेरी चेतना का विषय है, जबकि 'घास का विचार' मेरी आत्म-चेतना का। आत्मचेतना चेतना की चेतना है।

(५) *चेतना चुनाव करती है।* यह अन्य विषयों को छोड़ कर एक विषय में रुचि लेती है। यह कुछ वस्तुओं को चुनती है और कुछ को छोड़ देती है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ केवल कुछ ही उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाशील हैं। इसी प्रकार हमारा मन भी केवल परिवेश की कुछ वस्तुओं के प्रति ही प्रतिक्रियाशील है। यह किन वस्तुओं पर प्रतिक्रिया करेगा, यह इसकी सहज या अर्जित रुचियों पर अवलम्बित है। इस प्रकार चेतना सदैव चुनाव करती है। यदि कुछ लोग किसी देश का भ्रमण करें, तो वे अपनी-अपनी रुचियों के अनुसार भिन्न-भिन्न चीज़ों का निरीक्षण करेंगे और भिन्न-भिन्न नमूने इकट्ठा करेंगे।

२. चेतना की एकता और अविच्छिन्नता (The Unity and Continuity of Consciousness)।

(१) *चेतना की सामान्य एकता* (General unity) *और अविच्छिन्नता।*

"मन चेतना का प्रवाह है" (जेम्स)। सूक्ष्म और यथार्थ अंतर्निरीक्षण इस बात को पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर देगा कि हमारी चेतना अविच्छिन्न है। जेम्स इसे चेतना का प्रवाह कहता है। वार्ड इसे "चेतन अखण्ड धारा" कहता है। चेतना अपने आप को टुकड़ों में खण्डित नहीं प्रतीत होती। 'श्रृंखला' शब्द इसका ठीक उस रूप में वर्णन नहीं करता, जिस रूप में यह पहिले-पहल अपने-आप को प्रस्तुत करती है। यह संयुक्त नहीं है; यह प्रवाहित होती है। 'नदी' और 'धारा' वे रूपक हैं जिनसे इसका सबसे स्वाभाविक

वर्णन होता है। "हमारे चेतन जीवन के आंशिक संघटक एक-दूसरे से किसी ऐसी वस्तु से पृथक् नहीं किये जाते जो चेतना के स्वभाव से अलग हो। वे इस प्रकार पृथक् नहीं होते जैसे एक द्वीप दूसरे द्वीप से मध्यवर्ती सागर से अलग किया जाता है, या जैसे किसी संगीत का एक स्वर दूसरे स्वर से मौन अवकाश (Silent interval) से पृथक् होता है। किसी दिये हुये क्षण के जो कोई भी घटक एक चेतना की अकेली अवस्था में प्रवेश पाते हैं वे तुरन्त परस्पर संलग्न होते हैं। इसी प्रकार, क्रमिक अवस्थायें अव्यवहित रूप से संलग्न होती हैं क्योंकि एक की समाप्ति दूसरी के प्रारम्भ के साथ एकाकार होती है (स्टाउट)।"

(२) *चेतना की सामान्य एकता और अविच्छिन्नता के अन्दर विशेष अविच्छिन्नता (Special continuity) : प्रयोजनात्मक एकता और अविच्छिन्नता (Conative unity and continuity)।*

चेतना-प्रवाह की सामान्य एकता और अविच्छिन्नता के अन्दर, स्टाउट जिसे "प्रयोजनात्मक एकता और अविच्छिन्नता" कहता है उस रूप में अविच्छिन्नता के विशेष रूप होते हैं। सम्पूर्ण चेतना-प्रवाह सामान्यतः मानसिक प्रक्रियाओं के अनुक्रम से बना होता है, जिनमें से प्रत्येक में एक विशेष एकता और अविच्छिन्नता होती है। प्रत्येक मनोवृत्ति का आदि, वृद्धि और अन्त होता है। जब यह अन्त के निकट आती है तो यह फलीभूत हो जाती है। किन्तु अन्त तक पहुँचने तक इसमें अविच्छिन्नता रहेगी। अन्त प्राप्त होने से पूर्व मनोवृत्ति की प्रत्येक अवस्था अपूर्ण होती है, और अपने ही स्वभाव-धर्म से अपने से आगे जाने की प्रवृत्ति रखती है। यदि दूसरी मनोवृत्ति इसमें बाधा देती है, तो इसकी प्रवृत्ति बाधा के बाद सहज रूप से खंडित होने के स्थान से शुरू होकर अपने को पूर्ण करने की होती है। मान लो कि एक व्यक्ति शतरंज खेल रहा है और कोई चाल सोच रहा है। एकाएक एक आवश्यक कार्य-वश उसे बाहर जाना पड़ता है। वह कार्य समाप्त करता है और वापस आकर खेल शुरू करता है। जहाँ पर उसने चाल सोचना बन्द किया था वहीं से यह सोचना शुरू करता है और पूरी तरह सोचकर इसका अन्त कर देता

है। इस प्रकार चेतना-प्रवाह की सामान्य एकता और अविच्छिन्नता के अन्दर मनोवृत्तियों की एक विशेष प्रयोजनात्मक एकता और अविच्छिन्नता होती है।

३. चेतना के स्तर (The Levels of Consciousness)

चेतना के तीन स्तर हैं (१) चेतना का केन्द्र (Focus of consciousness) (२) चेतना का सीमा-प्रदेश (Margin of consciousness) और (३) अधोचेतन या अचेतन (The Subconscious or the unconscious) चेतना के क्षेत्र में सामान्यतया एक स्पष्टतया ज्ञात वस्तुओं का प्रदेश और एक अस्पष्टतया ज्ञात वस्तुओं का सीमा-प्रदेश समाविष्ट होते हैं।[1]

प्रथम, चेतना का केन्द्र होता है जिसमें वस्तुओं की स्पष्ट और एक दूसरी से पृथक चेतना होती है। इसे ध्यान का क्षेत्र (Field of attention) कहते हैं। यह केन्द्रीय या ध्यानावस्थित चेतना से पूर्ण होता है। इस प्रदेश में मानसिक व्यापार तीव्र होता है। आप चन्द्रमा को ध्यान से देखते हैं। आप उसकी स्पष्ट और दूसरों से अलग चेतना रखते हैं। चन्द्रमा का ज्ञान आपकी चेतना के केन्द्र में होता है।

द्वितीय, चेतना-केन्द्र के चारों ओर चेतना का सीमा-प्रदेश (Margin of Consciousness) होता है। यह वस्तुओं की अस्पष्ट और धुंधली चेतना का प्रदेश है। इसे अनवधान का क्षेत्र (Field of Inattention) कहते हैं। यह सीमान्त-चेतना से पूर्ण होता है। जब आप चन्द्रमा को देखते हैं, तो उसके चारों ओर के तारों के प्रति आप नितान्त अचेत नहीं होते; आपको उनका अस्पष्ट ज्ञान होता है; वे आपकी चेतना के सीमा-प्रदेश में धुंधले संस्कार छोड़ते हैं। सीमावर्ती संस्कार अस्पष्ट और धुंधले होते हैं।

स्टाउट चेतना के सीमा-प्रदेश को अधोचेतन (Subconscious) कहता है। वार्ड सीमावर्ती संस्कारों को अधोचेतन संस्कार या अधः उपलब्धियां (Sub-presentation) कहता है। हम उन्हें सीमावर्ती संस्कार ही कहेंगे।

[1] स्टाउट: मनोविज्ञान, पृ० १६१।"

चेतना के केन्द्र और सीमान्त से मिलकर चेतना का क्षेत्र (Field of Conscionsness) बनता है। ये शब्द दृष्टि के क्षेत्र से लिए गए हैं। केन्द्र से अधिक दूर संस्कार अधिक अस्पष्ट होते हैं; केन्द्र के समीपस्थ संस्कार अधिक स्पष्ट होते हैं। हम चेतना की सीमा का निर्धारण नहीं कर सकते।

तृतीय, चेतना के द्वार (Threshold) के नीचे अधोचेतन (Subconscious) स्तर होता है। न तो हमें इसकी स्पष्ट चेतना होती है, न अस्पष्ट। इसके अस्तित्व के प्रमाण परोक्ष हैं। यह मन का एक भूमि में छिपा हुआ कमरा-सा है, जिसमें सब अतीत अनुभवों का भण्डार है और जिससे वे पुनर्जीवित होते हैं। यह सब मानसिक प्रवृत्तियों का संग्रहालय है। हॉफडिंग (Hoffding) चेतना-द्वार के नीचे के स्तर को अचेतन कहता है। फ्रॉयड भी उसे अचेतन (Unconscious) कहता है। लेकिन यह अनुचित है। 'अचेतन' 'अमानसिक' के तुल्य है। किन्तु जो चेतन-द्वार के नीचे है वह मानसिक होने से नहीं रुकता। अतः हम इसे अधोचेतन ही कहेंगे।

४. चेतना का सीमा-प्रदेश (Margin of Consciousness)

अनवधान का क्षेत्र चेतना का सीमा-प्रदेश है। यह चेतना के केन्द्र की धुंधली पृष्ठभूमि है। यह न पहिचानी हुई वस्तुओं की अस्पष्ट चेतना का क्षेत्र है। जब आप ध्यानपूर्वक मोमबत्ती की रोशनी में कोई पुस्तक पढ़ते होते हैं, तो आपको पुस्तक के विषय की स्पष्ट चेतना होती है। उसके संस्कार आपकी चेतना के केन्द्र में होते हैं। किन्तु पढ़ते समय आप मोमबत्ती की रोशनी, अपने कपड़ों, घड़ी की टिकटिक इत्यादि को पूर्णतया भूले नहीं होते। आपको उनका धुंधला ज्ञान होता है। ये आपकी चेतना के सीमा-प्रदेश में धुंधले संस्कार बनाते हैं जो चेतना-केन्द्र को चारों ओर से व्याप्त करता है। चेतना का सीमा-प्रदेश धुंधली और अस्पष्ट चेतना का क्षेत्र है। स्टाउट का इसे अधो-चेतन कहना ठीक नहीं है। वह कहता है, "यह अस्पष्ट ज्ञान स्पष्ट चेतना से पृथक 'अधोचेतना' कहलाती है।"[1] हम इसे चेतना का सीमा-प्रदेश कहना ही पसन्द करेंगे।

चेतना के केन्द्र और सीमा-प्रदेश के मध्य कोई निरपेक्ष विभाजक रेखा

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान पृष्ठ १६२

नहीं है। जो इस समय चेतना के सीमा-प्रदेश में है, वह अगले क्षण उसके केन्द्र में आ सकता है। पढ़ते समय मोमबत्ती के प्रकाश का आपको धुंधला ज्ञान हो सकता है। किन्तु यदि प्रकाश अचानक धुंधला हो जाय, तो आपको उसकी पूर्ण चेतना हो जाती है। इसी प्रकार पढ़ते समय आपको घड़ी की टिकटिक का धुंधला ज्ञान् हो सकता है, लेकिन यदि वह अचानक बन्द हो जाय तो आपको उसकी पूरी चेतना हो जाती है। पुनः, जो इस समय चेतना के केन्द्र में है वह अगले ही क्षण सीमा-प्रदेश में आ सकता है। आप किताब पढ़ रहे हैं। अचानक आप पाते हैं कि आपका मन पुस्तक से बहुत दूर जा चुका है और दावत की बात सोच रहा है जिसका आपको निमंत्रण मिला है। इस प्रकार चेतना के केन्द्र और सीमा-प्रदेश के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं है।

५. सीमावर्ती चेतना के लक्षण (Characteristics of Marginal Consciousness)

स्टाउट सीमावर्ती चेतना के निम्नलिखित लक्षण बताता है :—

प्रथम, सीमावर्ती संस्कार चेतना की धारा के अंश नहीं होते। वे चेतना के केन्द्र में प्रवेश नहीं पाते। वे चेतना की पृष्ठभूमि में होते हैं। चेतना के केन्द्र में स्थित संस्कारों से वे संयुक्त नहीं होते। वे चेतना की अन्य सामग्रियों का प्रत्याह्वान नहीं करते। वे ध्यानावस्थित और स्पष्ट चेतना के प्रवाह या विचारों की शृङ्खला के अंग नहीं बनते।

द्वितीय, सीमावर्ती संस्कार निर्णय या विश्वास (Judgment or Belief) के क्षेत्र से बाहर होते हैं। हम उनके विषय में कुछ भी विधान या निषेध नहीं करते, और न किसी चीज़ के विषय में उनका विधान या निषेध ही करते हैं। "यहाँ तक कि मन में हम उनकी सत्ता का भी विधान नहीं करते।" जब आप चन्द्रमा को देखते हैं और उसके चारों ओर के ताराओं का अस्पष्ट ज्ञान रखते हैं, तब आप यह नहीं कहते कि कितने तारे हैं, या उनका प्रकाश स्थिर है या टिमटिमाता है। ये सीमावर्ती चेतना के निषेधात्मक लक्षण हैं।

तृतीय, यद्यपि सीमावर्ती संस्कार वास्तविक उपलब्धियां (Presentations) *नहीं हैं, तथापि वे सम्भावित उपलब्धियां हैं।* यद्यपि वे ध्यानावस्थित चेतना के प्रभाव में प्रविष्ट नहीं होते, तथापि उनका स्वभाव ऐसा है कि वे ऐसा कर सकते हैं। यदि किताब पढ़ते हुए आपका ध्यान हट जाता है तो आप मोमबत्ती की लौ या घड़ी की टिकटिक पर ध्यान दे सकते हैं। इस प्रकार सीमावर्ती संस्कार केन्द्रीय संस्कार बन जाते हैं।

अन्त में, सीमावर्ती संस्कार चेतना के केन्द्र में प्रवेश पाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। वे केवल केन्द्र में प्रविष्ट होने में समर्थ ही नहीं हैं, बल्कि ऐसा करने की उनकी निरन्तर प्रवृत्ति होती है। आपको सवेरे ही अपनी माता की सख्त बीमारी की खबर मिली है। इस समय आप कक्षा में ध्यान से एक भाषण सुन रहे हैं जो आपकी चेतना के केन्द्र में है। माँ की बीमारी की खबर आपकी चेतना के सीमा-प्रदेश में है; यह चेतना-केन्द्र में प्रविष्ट होने की कोशिश करती है। ज्योंही आपका ध्यान उखड़ेगा, यह आपके चेतना-केन्द्र में प्रविष्ट हो जायगी। ये सीमावर्ती संस्कारों के विधानात्मक लक्षण हैं।[1]

६. सीमावर्ती चेतना के अस्तित्व का ज्ञान (Knowledge of the existence of Marginal Consciousness)

हमारे लिये सीमावर्ती संस्कारों के अस्तित्व का ज्ञान कैसे सम्भव है? स्टाउट कहता है कि हम उनके अस्तित्व को निम्नलिखित दो तरीकों से जान सकते हैं:—

प्रथम, सीमावर्ती संस्कार सामूहिक रूप से किसी क्षण में सामान्य दशा और परिस्थिति के हमारे ज्ञान को निर्धारित करने में अंशदान करते हैं। वे चेतना के केन्द्र को प्रभावित करते हैं। "वे स्पष्ट चेतना की वस्तुओं के लिये एक प्रकार की धुंधली पृष्ठभूमि (Dim Background) बनाते हैं। (स्टाउट)।" चेतना के केन्द्र की धुंधली पृष्ठभूमि के रूप में उनका अस्पष्ट ज्ञान रहता है। मान लिया आप एक अंधेरे और हवा तथा प्रकाश की दृष्टि से

[1] मनोविज्ञान, पृ० १६६-१६७

जुरे कमरे में पढ़ रहे हैं। कमरे का गन्दा वातावरण आपकी चेतना को प्रभावित करेगा, और आपको कुछ साधारण बेचैनी देगा। किताब में जो कुछ लिखा हुआ है तद्विषयक आपके विचार चेतना की धुंधली पृष्ठभूमि के रंग में रंगे होंगे।

द्वितीय, हम सीमावर्ती संस्कारों की पूर्व सत्ता से उस क्षण अभिज्ञ हो सकते हैं जब वे सीमावर्ती होना छोड़ देते हैं। जब आप अंधेरे गंदे कमरे से बाहर सूर्य के प्रकाश में आ जाते हैं, तो आपको कमरे की दशा का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। जब आपके अध्ययन-कक्ष की घड़ी बन्द हो जाती है, तो जो हुआ है उस पर आपका ध्यान जाता है, यद्यपि जब आप पुस्तक पढ़ने में ध्यानमग्न थे तब इस पर आपका ध्यान नहीं था। उसी क्षण आपको यह ज्ञान भी होता है कि बिना आपका ध्यान आकर्षित किये टिकटिकाने की ध्वनि आपके मन पर संस्कार बना रही थी।

७. अधोचेतन के अस्तित्व का प्रमाण (Evidence for the existence of the Subconscious)

अधोचेतन से हमें उस अवस्था का बोध होता है जो चेतना के द्वार के नीचे रहती है। चेतना के सीमा-प्रदेश से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। चेतना के सीमा-प्रदेश का हमें अस्पष्ट ज्ञान होता है; किन्तु अधोचेतन का हमें कोई ज्ञान नहीं होता। हम इसे न स्पष्टतया देख सकते हैं, न अस्पष्टतया। अधोचेतन की सत्ता के हमारे पास परोक्ष प्रमाण हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—

स्मृति (Memory)—स्मृति धारणा (Retention) के बिना सम्भव नहीं है। हम उन चीज़ों का स्मरण कर सकते हैं जिन्हें हमने भूतकाल में देखा था और जो मन के अधोचेतन स्तर में सुरक्षित हैं। यदि वे मन से निकल जायें तो उनका स्मरण नहीं हो सकता। अतः हमें स्वीकार करना चाहिये कि अतीत अनुभव एक भण्डार में सुरक्षित रहते हैं जिसे अधोचेतन स्तर कहते हैं, और भविष्य में वे चेतना के स्तर में लाये जाते हैं। अतीत अनुभव अधोचेतन में सुरक्षित रहते हैं।

प्रत्यभिज्ञा (Recognition)—आप आज एक व्यक्ति को मिलते हैं। आप उसके बारे में बिल्कुल नहीं सोचते और पुनः एक सप्ताह के उपरान्त उससे आपकी मुलाकात होती है। आप तुरन्त उसे पहचान लेते हैं। क्योंकि एक सप्ताह पूर्व का आपको उसका अनुभव एक अधोचेतन चिह्न (Trace) के रूप में एक पश्चात्-प्रभाव (After-effect) छोड़ चुका था जो जीवित है और प्रत्यभिज्ञा को जन्म देता है। प्रत्यभिज्ञा में प्रत्यक्ष ज्ञान का चेतना के स्तर में लाई हुई प्रतिमा (Image) से संयोग होता है। इसलिये, प्रत्यभिज्ञा अधोचेतन के अस्तित्व की अपेक्षा रखती है।

निद्रा में समस्याओं का हल (*Solution of problems during sleep*)—"जो समस्यायें सोने से पहिले नहीं सुलझी होती उन्हें हम जागने पर सुलझी हुई पाते हैं (हॉफडिंग)।" सोने से पूर्व हम किसी समस्या को हल करने का प्रयत्न करते हैं। हम उसे हल करने में असफल रहते हैं और सो जाते हैं। सुबह जब हम जागते हैं तो कभी-कभी उत्तर एक चमक (*Flash*) के समान मन में आ जाता है। स्पष्टतः निद्रा में मन के अधोचेतन स्तर ने समस्या को सुलझा लिया है। मन की अधोचेतन क्रिया समस्या के हल के लिये उत्तरदायी है।

किसी निश्चित समय पर उठना (*Waking at an appointed hour*)—रात में हम संकल्प करते हैं कि हम सुबह चार बजे उठेंगे। हम अधोचेतन को आज्ञा-सी देते हैं जो हमें नियुक्त समय पर जगा देता है। यह तथ्य अधोचेतन की क्रिया का प्रमाण है। हममें से सभी को यह अनुभव हुआ होगा, जब कभी हमें सवेरे की गाड़ी पकड़नी थी।

अचानक याद आना (*Sudden Recollection*)—कभी-कभी हम किसी परिचित व्यक्ति का नाम याद करने की चेष्टा करते हैं। हम बार-बार चेष्टा करते हैं, लेकिन ठीक नाम याद नहीं आता। तब हम सोचना छोड़ देते हैं और कुछ और बात सोचने लगते हैं। प्रायः हम पाते हैं कि ठीक नाम चमक की तरह अचानक मन में आ जाता है। यह अधोचेतन का काम है। प्रायः हम चाबियों का गुच्छा भूल जाते हैं। हम कोना-कोना छान डालते हैं, पर वह नहीं

मिलता। कुछ समय के लिये हम उसे ढूँढ़ना स्थगित कर देते हैं। तब वह स्थान जहाँ हमने उसे रखा था अचानक मन में आ जाता है। यह अचानक प्रत्याह्वान मन का अधोचेतन कार्य है।

अज्ञात प्रेरणा और अप्रत्याशित निर्देश (Inspiration and sudden suggestion)—कवि, अलौकिक प्रतिभायें (Geniuses) इत्यादि अचानक निर्देश और प्रेरणायें पाते हैं। ये उनके मन की गहराइयों से आते हैं। ये अधोचेतन शक्तियों के परिणाम हैं। वे सचेष्ट बुद्धि के काम नहीं हैं। वे मस्तिष्क के प्रयत्न के फल नहीं हैं।

अधोचेतन का चेतन से सहयोग (Co-operation of the sub-conscious with the conscious)—मान लिया किसी व्यक्ति को आज ही शाम किसी विषय पर भाषण देना है। उसे विषय का अच्छा ज्ञान है। वह कई प्रकार से उसके बारे में सोचता है। तब वह अधोचेतन को एक आज्ञा-सी देता है कि वह समय पर उसे प्रासंगिक बातों की याद दिलाय। उचित समय पर सभी प्रासंगिक बातें अधोचेतन स्तर से उसकी चेतना के तल पर आ जायँगी। अतः यहाँ पर अधोचेतन चेतन के साथ सहयोग करता है। जब छात्र परीक्षा-भवन में प्रश्नों के उत्तर लिखता है, उस समय उसके मन का अधोचेतन स्तर उत्तरों की सामग्री उसे पहुँचाता रहता है।

दो चेतन विचारों के मध्य अधोचेतन कड़ियाँ (Subconscious intermediate links between two conscious ideas)—मान लीजिये कि आपको समद्विबाहु त्रिभुज के विचार की चेतना है; आपको समद्विबाहु त्रिभुज के गुण का भी ज्ञान है, किन्तु उपपत्ति (Proof) को आप भूल गये हैं। यदि आप चेष्टा करें तो आप उसे अधोचेतन के स्तर से ऊपर ला सकते हैं। इस प्रकार, कभी-कभी दो चेतन विचारों के बीच अधोचेतन मध्यवर्ती कड़ियाँ होती हैं।

अर्जित आदत (Acquired habit)—अर्जित आदत अधोचेतन की सत्ता की अपेक्षा रखती है। किसी काम को आप जितनी बार करते हैं उतने ही संस्कार अधोचेतन स्तर पर बनते हैं, और बाद में वे अधोचेतन संस्कार इकट्ठे

होकर बलवती या अदम्य प्रवृत्तियाँ भी बन जाते हैं। मन का अधोचेतन स्तर अभ्यासजनित क्रियाओं को नियंत्रित करता है जिन्हें चेतना के पथप्रदर्शन की आगे आवश्यकता नहीं होती। अतः आदतें अधोचेतन की सत्ता को सिद्ध करती हैं।

भावना (*Sentiment*)—ये अधोचेतन में स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ होते हैं। ये संवेगात्मक आदतें होती हैं। ये मानसिक प्रवृत्तियाँ होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रेम और घृणा भाव या संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। कभी-कभी उनका प्रकाशन वास्तविक संवेगात्मक अनुभवों में होता है, किन्तु वे उनमें ही समाप्त नहीं हो जाते। भावनायें अपेक्षाकृत स्थायी अवस्थाओं के रूप में चेतना के स्तर के नीचे वास करती हैं। भावनायें अधोचेतन में स्थित स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। वे मानसिक संरचनायें (Structures) हैं। वे मानसिक व्यापार नहीं हैं।

संवेगों की अधोचेतन वृद्धि (Subconscious growth of emotions)—संवेगों की, यथा प्रेम, घृणा इत्यादि की वृद्धि मौन वृद्धि है। अधोचेतन संस्कार विशेषतया संवेगों के विकास में प्रमुख भाग लेते हैं। संवेग केवल स्पष्ट और चेतन संस्कारों और विचारों से ही निर्धारित नहीं होते, बल्कि उन *अदृश्य प्रभावों से भी जो चेतना में अलग-अलग तो अनुभूत नहीं होते,* लेकिन जिनकी समग्रता (Totality) की अनुभूति चेतना में होती है। अतः कुछ संवेग रहस्य की तरह प्रतीत होते हैं। पहिले प्रेम का संवेग रहस्यात्मक लगता है। इसका कारण अज्ञात मूल आंगिक प्रवृत्तियों का जाग्रत होना और सजीव अनभूतियों तथा कल्पना पर उनके अदृश्य प्रभाव हैं। प्रेम का विकास प्रधानतया अधोचेतन शक्तियों के व्यापारों के कारण होता है। (हॉफडिंग)

स्वप्न (Dreams)—स्वप्न मन के अधोचेतन व्यापारों के प्रकाशन हैं। स्वप्नावस्था में मन का अधोचेतन-स्तर काम करता है। अतीत अनुभवों के अधोचेतन संस्कार पुनर्जीवित होकर विचित्र रूप में संयुक्त होते हैं। फ्रॉयड के अनुसार कुछ स्वप्न उन दबी हुई इच्छाओं और वासनाओं के तृप्तिकारक होते हैं जिनकी जाग्रत जीवन में तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार स्वप्न अधो-

चेतन की सत्ता सिद्ध करते हैं। स्वप्नावस्था में मन बाह्य वस्तुओं से भी प्रभावित होता है। यदि आपके शयन-कक्ष में तेज रोशनी जल रही है, तो इससे आग लगने का स्वप्न हो सकता है। स्वप्नावस्था में हमारी विशुद्ध चेतन अवस्थाओं के मध्य की स्थिति होती है, स्वप्न निद्रा और जागरण के मध्यवर्ती होते हैं।

व्यक्तियों में अप्रत्याशित परिवर्तन और राष्ट्रों में अचानक क्रान्तियाँ (*Conversions and revolutions*)—कभी-कभी हम पाते हैं कि एक अत्यन्त दुष्ट आदमी बदल जाता है। अचानक उसमें परिवर्तन हो जाता है। उसे आध्यात्मिक उत्कर्ष की अनुभूति होती है। वह संत बन जाता है। यह आकस्मिक परिवर्तन व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। राष्ट्रों में भी आकस्मिक क्रान्तियाँ हो जाती हैं। चेतन शक्तियों के व्यापारों से व्यक्तियों और राष्ट्रों में इन आकस्मिक परिवर्तनों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। केवल अधोचेतन शक्तियों के व्यापार ही इनका पर्याप्त स्पष्टीकरण कर सकते हैं। व्यक्ति या राष्ट्र के जीवन में विच्छेद नहीं होता। अधोचेतन स्तर की आन्तरिक धाराओं का विचार करना चाहिए। केवल तभी हम चेतन जीवन की एकता के प्रतीयमान विच्छेद का कारण बता सकते हैं।[1]

इनके अतिरिक्त अधोचेतन के अस्तित्व के लिये असाधारण मनोविज्ञान से ये प्रमाण प्राप्त होते हैं—

सम्मोहन (*Hypnotism*)—इसमें सम्मोहनकर्ता 'विषय' को समाधि-अवस्था (कृत्रिम निद्रा) में लाता है। इस अवस्था में विषय की 'चेतना' सम्मोहनकर्ता के निर्देश को छोड़कर बाह्य जगत् के सभी प्रभावों के लिये अगम्य हो जाती है। उसके निर्देशों के प्रति यह अत्यधिक प्रतिक्रियाशील हो जाती है। समाधि-अवस्था में 'विषय' यंत्रवत् निर्देशों का पालन करता है। जब 'विषय' समाधि से उठता है और उसकी साधारण चेतना लौट आती है

[1] मेलोन : मनोविज्ञान, पृ० ७८-८८,

हौफडिंग : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ७१-८१

तो समाधि में किये गये कार्यों की उसे स्मृति नहीं होती। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जाग्रत चेतना समाधि की चेतना से भिन्न है।

सम्मोहनोत्तर निर्देश (Post-hypnotic suggestions)—सम्मोहनकर्ता 'विषय' को निर्देश देता है कि समाधि से उठने पर किसी संकेत के दिये जाने पर वह एक विशेष काम करेगा, जो उचित या अनुचित, युक्तिसंगत या हास्यास्पद हो सकता है। उदाहरणार्थ, उसे ठीक दो बजे दिन के प्रकाश में दीपक जलाना होगा, या उसे खिड़की खोलकर अपनी टोपी फेंकनी होगी। 'विषय' नियुक्त समय पर निर्देश का पालन करता है, चाहे वह कितना ही अनुचित और असंगत क्यों न हो। वह ऐसा यन्त्र की तरह करता है। कार्य के वास्तविक कारण का उसे बिल्कुल ज्ञान नहीं होता। उसका कार्य अधोचेतन बाध्यता (Compulsion) के कारण होता है।

८. क्या शारीरिक प्रवृत्तियाँ (Physiological Dispositions) मानसिक प्रवृत्तियों (Psychical Dispositions) का स्थान ले सकती हैं?

हमारे अतीत अनुभव चेतना के द्वार से नीचे चले जाते हैं तथा मानसिक प्रवृत्तियों के रूप में अधोचेतन स्तर में सुरक्षित रहते हैं। वे अब चेतना के वास्तविक प्रकार नहीं रहते। किन्तु वे पूर्व अनुभवों के स्थायी पश्चात्-प्रभावों के रूप में मौजूद रहते हैं जिन्हें मानसिक प्रवृत्तियाँ कहते हैं। हमारे मानसिक अर्जनों का एक बड़ा भाग मानसिक प्रवृत्तियों के रूप में होता है, और वास्तविक चेतना के रूप में नहीं रहता। मानसिक प्रवृत्तियाँ एक मानसिक संरचना बनाती हैं जो चेतन प्रक्रियाओं से निरन्तर बनती और ढलती रहती है, और बाद की मानसिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करती और ढालती है। मानसिक प्रवृत्तियाँ मानसिक तथ्य हैं; ये मानसिक सत्तायें हैं। वे स्थायी मानसिक संरचना हैं। वे चेतन मन की प्रक्रियायें नहीं हैं।

मानसिक प्रवृत्तियों से सम्बन्धित मस्तिष्क की शारीरिक प्रवृत्तियाँ हैं। "यह सही है कि शारीरिक प्रवृत्तियाँ हैं। मस्तिष्क में चलने वाले व्यापार मस्तिष्क के द्रव्य में कुछ परिवर्तन कर जाते हैं जो बाद के मस्तिष्क के व्यापारों के स्वरूप और होने को निर्धारित करने में योगदान करते हैं। इस प्रकार की

शारीरिक प्रवृत्तियाँ, निश्चय ही, भौतिक सत्तायें हैं।"[1] इसलिये मानसिक प्रवृत्तियों को शारीरिक प्रवृत्तियों से या मस्तिष्क के स्थायी परिवर्तनों से अभिन्न नहीं माना जा सकता।

कुछ मनोवैज्ञानिक (यथा, जे० एस० मिल) "अचेतन मस्तिष्क-क्रिया (Unconscious cerebration)" में आस्था रखते हैं लेकिन "अधोचेतन विचार-क्रिया" में नहीं। लेकिन यह गलत है। "यह सम्भव है कि मानसिक-प्रवृत्तियों के साथ-साथ शारीरिक-परिवर्तन भी होते हैं। किन्तु यह कहना कि मूलत: और वस्तुत: मानसिक प्रवृत्ति शारीरिक है, जड़वाद (Materialism) होगा; और यह स्थिति ऐसी है जिसे ग्रहण करने का मनोविज्ञान का कोई अधिकार नहीं हैं।"[2] इसलिये मानसिक प्रवृत्तियों की शारीरिक प्रवृत्तियाँ स्थानापन्न नहीं हो सकतीं। मानसिक प्रवृत्तियाँ शारीरिक प्रवृत्तियां नहीं हैं।

६. चेतना और आत्मचेतना (Consciousness and self-consciousness)

चेतना वस्तुओं का ज्ञान है। यह वाह्य वस्तुओं या मानसिक प्रक्रियाओं की दिशा में संचालित होती है। सामान्यतया यह बहिर्मुखी होती है। आप एक पेड़ देखते हैं। आपको पेड़ की चेतना होती है। यह चेतना कहलाती है। आप क्रुद्ध हैं। आपको एक संवेग की अनुभूति होती है। यह भी चेतना का एक प्रकार है। ये दोनों अनुभव हैं।

किन्तु जब आप पेड़ के प्रत्यक्ष-ज्ञान या क्रोध के संवेग को अपने से संबद्ध करते हैं, तो आपको आत्म-चेतना होती है। यहाँ पर एक भौतिक या मानसिक विषय की चेतना आत्मा से या मन से सम्बन्धित है, यह चेतना का एक उच्चतर रूप है। आपको इस तथ्य की चेतना होती है कि आप एक पेड़ को देखते हैं या क्रोध के संवेग की अनुभूति करते हैं, यह आत्मचेतना है; यह चेतना की चेतना है। इसका अर्थ एक अतिभौतिक सत्ता (Metaphysical entity) के रूप में "आत्मा" की चेतना नहीं है।

---

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान, पृ० २६

[2] मेलोन और ड्रमण्ड : मनोविज्ञान के तत्व, पृ० ८४

ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) के दृष्टिकोण से वस्तु-चेतना के प्रत्येक रूप में गुप्त रूप से आत्म-चेतना रह सकती है। लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह सब वस्तु-चेतनाओं में प्रकट रूप में नहीं रहती।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वस्तु-चेतना आत्म-चेतना से पूर्व होती है। आत्म-चेतना का विकास सामाजिक सम्पर्क से होता है। शिशु आत्म-चेतना के लिये असमर्थ होता है। लेकिन चेतना उसे हो सकती है। अतः हमें चेतना और आत्मचेतना में भेद-बुद्धि रखनी चाहिये।

१०. उद्देश्यों द्वारा चेतना का नियमन (Teleological Determination of Consciousness)।

बाह्य जगत् में भौतिक घटनाओं का नियमन उनके पूर्ववर्ती हेतुओं से होता है। उनकी सत्ता देश में होती है और देशीय सम्बन्ध भी उनका नियमन करते हैं। उनसे एक यांत्रिक विश्व बनता है। पूर्ववर्ती और साथ-साथ रहने वाली भौतिक घटनायें उनका नियमन करती हैं। लेकिन सचेतन व्यक्तियों और चेतना के उनके प्रकारों की सत्ता देश में नहीं हैं। अतः देशीय सम्बन्ध उनका नियमन नहीं करते। चेतना के प्रकार मानसिक घटनायें हैं। वे काल में घटित होते हैं। अतः उनका नियमन चेतना के पूर्ववर्ती प्रकारों से होता है, लेकिन केवल अतीत (Past) ही उनका नियमन नहीं करता, बल्कि अनागत (Future) भी। वे *ज्ञानपूर्वक उद्देश्यों, लक्ष्यों की ओर संचालित होते* हैं। या वे किसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं जो किसी अन्य उद्देश्य का साधन होता है। अतः उद्देश्य या प्रयोजन का प्रत्यय व्यक्ति के मानसिक जीवन की एकता और अविच्छिन्नता का नियमन करने में प्रधान और नियंत्रणकारी प्रत्यय है। यह मानसिक जीवन की सामान्य एकता और मानसिक प्रक्रियाओं की विशेष एकता का भी कारण है। प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया किसी उद्देश्य की ओर संचालित होती है। उद्देश्य की प्राप्ति के उपरान्त इसकी समाप्ति हो जाती है। और प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया का उद्देश्य अन्य अधिक विशाल उद्देश्य का अंश होता है। इस विधि से मानसिक प्रक्रियाओं के उद्देश्य परस्पर सम्बन्धित हैं; वे मानसिक प्रक्रियाओं के मध्य सम्बन्ध-सूत्र हैं। इस प्रकार चेतन जीवन सर्वत्र उद्देश्यों से नियमित होता है।

अध्याय ६

मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण

१. चेतना के मौलिक प्रकार : ज्ञान, वेदना और चेष्टा (Fundamental Modes of Consciousness: Cognition, Affection & Conation)

चेतना के तीन मौलिक प्रकार हैं; जानना, महसूस करना और चेष्टा करना। ये ज्ञान, वेदना या अनुभूति और चेष्टा कहलाते हैं। साधारणतया चेतना का सम्पर्क वस्तु से होता है। हमारी चेतना तीन प्रकार से वस्तु से सम्बन्धित हो सकती है। (१) मन को वस्तु का किसी प्रकार का ज्ञान होता है। (२) मन को उससे सुख या दुःख की वेदना होती है, या उसके सम्पर्क से अन्य कोई संवेग होता है। (३) मन को उसके ऊपर कुछ करने की—उसे बदलने, अपनाने या अस्वीकृत करने की—प्रवृत्ति का अनुभव होता है। इस प्रकार अन्ततः चेतना के तीन प्रकार हैं। ज्ञान, वेदना या अनुभूति, और चेष्टा या मानसिक सक्रियता। आप एक फूल देखते हैं। आपको उसका ज्ञान होता है। आपको उससे सुख की वेदना होती है। आपको उसे तोड़ने की इच्छा होती है। आपको मानसिक चेष्टा का अनुभव होता है। ये तीन मानसिक प्रक्रियायें चेतना के अन्तिम या मौलिक प्रकार है। ये सब प्रारम्भिक मनोवृत्तियां हैं। उन्हें एक-दूसरी में परिणत नहीं किया जा सकता

प्रत्येक मूर्त (Concrete) मानसिक प्रक्रिया में तीन मानसिक तत्व होते हैं, जिनके नाम ज्ञान, वेदना और चेष्टा हैं। ये मानसिक तत्व परस्पर अविच्छेद्य हैं। लेकिन कभी-कभी किसी मनोवृत्ति में ज्ञान का तत्व प्रधान होता है, और इसलिये उसे ज्ञान की अवस्था कहते हैं। कभी-कभी वेदना का तत्व प्रधान होता है और इस कारण उसे वेदना की अवस्था कहते हैं। चेष्टा की प्रधानता से उसे चेष्टात्मक अवस्था कहते हैं। किन्तु हमें याद रखना चाहिये कि इन मनोवृत्तियों में प्रत्येक में सभी तीनों तत्व वर्तमान रहते हैं।

ज्ञान से वेदना की उत्पत्ति होती है; और वेदना से चेष्टा की। आप एक

फूल देखते हैं; यह फूल का ज्ञान है। इस ज्ञान से आपको सुख मिलता है। सुख एक वेदना है। इस प्रकार ज्ञान, वेदना से पहिले होता है; वेदना ज्ञान से उत्पन्न होती है। सुख की वेदना से फूल के साथ कुछ करने की इच्छा होती है। इस प्रकार चेष्टा वेदना से उत्पन्न होती है। वेदना चेष्टा से पहिले होती है। इस प्रकार, पहिले ज्ञान होता है, फिर वेदना, फिर चेष्टा; यह अनुभव का क्रम है। किन्तु कभी चेष्टा से वेदना उत्पन्न होती है। चेष्टा की पूर्ति से सुख होता है, चेष्टा की अतृप्ति से दुःख मिलता है।

२. ज्ञान, वेदना और चेष्टा का परस्पर सम्बन्ध (Inter-relation of Cognition, Feeling and Conation)

ज्ञान, वेदना और चेष्टा परस्पर संलग्न होते हैं। ये मानसिक तत्व एक-दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। "मन एक आंगिक एकता (Organic unity) है, और इसके व्यापारों में अधिकतम आंगिक अन्योन्याश्रितता तथा पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया पाई जाती है (सली)।"

ज्ञान में वेदना और चेष्टा संलग्न होती हैं। आप एक गुलाब का फूल देखते हैं। आपको उसका ज्ञान होता है। यह आपको वेदना देता है और सुख पहुँचाता है। गुलाब के फूल के ज्ञान के साथ सुख की वेदना होती है। फिर, फूल को पुनः देखने के लिये आप उस पर ध्यान देते हैं। ध्यान मन की सक्रिय अवस्था है। गुलाब के ज्ञान में यह चेष्टा का तत्व है। इस प्रकार, ज्ञान के साथ वेदना और चेष्टा होती हैं।

ज्ञान वेदना से हीन नहीं हो सकता। इसमें सुख या दुःख की कुछ मात्रा अवश्य होती है। इसमें रुचि का कुछ तत्व अवश्य होता है। या यह किसी रुचिकर वस्तु से सम्बन्धित होता है। इसके अतिरिक्त, ज्ञान में ध्यान अवश्य होता है जो चेष्टा का एक रूप है।

वेदना में ज्ञान और चेष्टा संलग्न होती हैं। वेदनायें (सुख और दुःख) संवेग (हर्ष, शोक इत्यादि), मनोवेग (क्रोधावेश इत्यादि) ज्ञान और चेष्टा के तत्वों से भी युक्त होते हैं। इन में वेदना का तत्व प्रधान होता है। किन्तु वे ज्ञान और चेष्टा से नितान्त वियुक्त नहीं होते। आप एक छूटे हुये शेर को

देखते हैं जो आपके जीवन के लिये ख़तरा है। एक विशेष स्थिति में शेर का ज्ञान आपके मन में भय को जाग्रत करता है। यहाँ आपकी मनोवृत्ति में वेदना का प्राधान्य है। किन्तु इसकी उत्पत्ति एक स्थिति के ज्ञान से हुई है। आप स्थिति को ध्यान से देखते हैं। इस प्रकार भय का संवेग भाग जाने की इच्छा को जन्म देता है जो संकल्प का तत्व है।

चेष्टा में भी ज्ञान और वेदना के तत्व संलग्न रहते हैं। संकल्प चेष्टा का कार्य है। ऐच्छिक कर्म में इसका प्रकाशन होता है। लक्ष्य या प्रेरक का विचार इसका पथप्रदर्शन करता है। इसमें साधन का भी विचार संलग्न रहता है। लक्ष्य और साधन के पूर्वज्ञान के बिना ऐच्छिक कर्म सम्भव नहीं है। यह चेष्टा में ज्ञान का तत्त्व है।

संकल्प में वेदना का तत्व भी वर्तमान रहता है। यह सदैव वेदना या संवेग से क्रियान्वित होता है। उदाहरणार्थ, भूख (दुःख की वेदना) भोजन खाने के संकल्प को जन्म देती है। यहाँ भूख कर्म की स्रोत है। चेष्टा मानसिक क्रिया है। इसकी उत्पत्ति हमारे विचारों या बाह्य वस्तुओं में परिवर्तन से होती है। परिवर्तन हमें प्रसन्न या अप्रसन्न करता है। अतः चेष्टा में ज्ञान और वेदना संलग्न होते हैं।

ज्ञान, चेष्टा और वेदना मन के विकास में भी परस्पर संलग्न हैं। वेदना (रुचि) और चेष्टा (ध्यान) के बिना बौद्धिक विकास नहीं हो सकता। संवेग या भाव के विकास में भी ज्ञान और संकल्प का विकास संलग्न रहता है। संकल्प के विकास में ज्ञान और वेदना का विकास संलग्न रहता है। चरित्र का विकास कर्तव्यों के ज्ञान, नैतिक नियम के प्रति श्रद्धा की भावना और कर्तव्यों को अभ्यासपूर्वक करने पर निर्भर है।

मानसिक तत्वों में परस्पर विरोध। यदि ज्ञान, वेदना और चेष्टा में अन्योन्याश्रितता है, तो उनमें कुछ मात्रा में विरोध भी होता है। अन्य प्रकारों को कुछ समय तक दबाये बिना चेतना का कोई भी प्रकार अपनी चरम तीव्रता में प्रकट नहीं हो सकता। यदि ज्ञान तीव्र है, तो वेदना और चेष्टा दब जाती हैं। यदि वेदना तीव्र है, तो ज्ञान और चेष्टा दब जाते हैं। यदि चेष्टा तीव्र है,

तो ज्ञान और वेदना दब जाते हैं। इस प्रकार, यदि व्यक्ति अध्ययन में दबा हुआ है, तो कुछ समय के लिये वह संवेग के लिये शून्यप्राय है और कर्म के लिये अनिच्छुक। अत्यधिक बौद्धिक विश्लेषण संवेगों को मार सकता है, या किसी प्रकार संकल्प को निर्बल भी कर सकता है।

जब व्यक्ति अत्यधिक संवेग के वशीभूत हो जाता है, तो वह साफ-साफ सोचने और नियम से काम करने के अयोग्य हो जाता है। "किसी क्षण में प्रबल वेदना (संवेगात्मक आवेश) विचार और संकल्प की प्रक्रियाओं को रोकने की क्षमता रखती है। विचार के क्षण में वेदनायें दब जाती हैं और बाह्य कर्म या गति का भी पर्याप्त रूप से अवरोध हो जाता है।[1] पुनः, जब व्यक्ति किसी काम में लगा होता है, तो वह संवेग के लिये मृतप्राय और गहराई से सोचने में, उस समय, असमर्थ होता है।

महान् विचारक, नियमतः, अपेक्षाकृत वेदनाशून्य और अव्यावहारिक होते हैं। भावुक व्यक्ति प्रायः महान् विचारक और कर्मण्य नहीं पाये जाते। महान् कर्मण्य पुरुष अपेक्षाकृत वेदनाशून्य और विचार के कम अभ्यस्त होते हैं। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ज्ञान, वेदना और चेष्टा, इन तीन मानसिक तत्वों में विरोध की कुछ मात्रा होती है। यद्यपि ये सदैव साथ-साथ रहते हैं, तथापि उनमें से कोई अन्य दो की तुलना में प्रधान हो सकता है। और जब एक तत्व प्रधान बन जाता है, तो अन्य दो दब जाते हैं या धुंधले पड़ जाते हैं।

३. ज्ञान के प्रकार (Kinds of Cognition)

संवेदना (*Sensation*) : उत्तेजना के द्वारा मन में उत्पन्न संस्कार-मात्र है। इसका अर्थ अज्ञात रहता है। एक शिशु एक रोशनी का पुंज देखता है। उसे प्रकाश की संवेदना होती है। लेकिन वह नहीं जानता कि यह प्रकाश है।

प्रत्यक्षीकरण (*Perception*) संवेदना का अर्थ-ग्रहण है। यह संवेदना के अर्थ को प्रकट कर देता है। जब शिशु को यह ज्ञान होता है कि

[1] सल्ली : मनोविज्ञान की रूप-रेखा, पृ० १७

वह प्रकाश देख रहा है, तो उसे प्रकाश का प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रत्यक्षीकरण में संवेदना को बाहर देश में स्थित वस्तु से सम्बन्धित किया जाता है। संवेदना प्रत्यक्षीकरण के पूर्व होती है।

स्मृति (Memory) : अतीत अनुभव का उसी क्रम में पुनर्जीवित होना है। आपने एक पाठ सीखा। अब आप उसे याद करते हैं। यह स्मृति है। स्मृति पूर्व प्रत्यक्षीकरण या सीखने की अपेक्षा रखती है।

कल्पना (*Imagination*) : अतीत अनुभवों की अन्तर्वस्तुओं को नवीन क्रम में रखता है। आप एक सोने के पहाड़ की कल्पना करते हैं। आप सोने और पहाड़ का स्मरण करते हैं, और उन्हें परस्पर संयुक्त करते हैं। कल्पना स्मृति की अपेक्षा रखती है। यह अतीत अनुभवों को मन में उलटना-पुलटना है।

विचारना (Thinking) एक नई परिस्थिति पर अधिकार करने के लिये अतीत अनुभवों की मानसिक छान-बीन है। इसमें विगत अनुभवों की स्मृति और नई समस्या को सुलझाने के लिये उन्हें नये सिरे से वर्गीकृत करने का समावेश होता है। आप रास्ता भूल जाते हैं। आप इधर-उधर भटकते हैं। आप बैठ जाते हैं और ज्ञात सामग्री को सोचते हैं, उनको परस्पर सम्बन्धित करते हैं और नई परिस्थिति की कुञ्जी ढूँढ निकालते हैं। आप सोचकर अपना रास्ता मालूम कर लेते हैं। विचार स्मृति और कल्पना की अपेक्षा रखता है।

४. वेदना के प्रकार (Kinds of Feeling)

वेदना (*Feeling*) : संवेदना से उत्पन्न होने वाला मामूली सुख या दुःख है। आप एक पीला रंगीन धब्बा देखते हैं। यह आपको सुख देता है। आप एक शोर सुनते हैं। यह आपको दुःख देता है। यहाँ सुख और दुःख वेदनायें हैं।

संवेग (Emotion) : एक जटिल वेदनात्मक अभिवृत्ति है जिसका उत्थान उस परिस्थति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति या कल्पना से होता है जो किसी सहज प्रवृत्ति को उत्तेजित करती है। आप अपने सामने एक भूखे शेर को देखते

हैं जिसमें आपके जीवन को खतरा है, और आप भय से जकड़ जाते हैं जो एक संवेग है। संवेग वेदना की अपेक्षा अधिक जटिल होता है।

भावना (*Sentiment*) : एक स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। प्रेम या घृणा की चेतना के वास्तविक प्रकार के रूप में सदैव अनुभूति नहीं होती। यह प्रेम या घृणा के संवेग की उचित अवसरों पर अनुभूति करने की एक स्थायी प्रवृत्ति है। भावनायें संवेगात्मक आदतें हैं। उनसे मानसिक संरचनायें बनती हैं। वे संवेगों की अनुभूति करने की अधोचेतन प्रवृत्तियां हैं। वे *चेतना के वास्तविक प्रकार नहीं हैं। वे मानसिक व्यापार नहीं हैं।*

५. चेष्टा के प्रकार (*Kinds of Conation*)

ध्यान विचारात्मक चेष्टा है। यह मन को किसी वस्तु या संवेदना पर केन्द्रित करने में होता है। आप एक प्रयोग करते हैं और उसके फलों पर ध्यान देते हैं।

किसी कर्म में व्यावहारिक चेष्टा होती है। यह बाह्य वस्तुओं से किसी रूप में हस्तक्षेप करता है। ध्यान में इस प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता। जटिलता की विभिन्न मात्राओं से युक्त कर्म के विभिन्न प्रकार होते हैं।

संवेदनाचालित कर्म (*Sensory-motor action*) या संवेदना-प्रतिक्षेप संवेदना को उत्पन्न करने वाली बाह्य उत्तेजना के प्रति पेशी या ग्रन्थि की एक अव्यवहित प्रतिक्रिया है। एक ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजना दी जाती है; इससे मन में एक संवेदना पैदा होती है; तब तुरन्त प्रतिक्रिया होती है। कोई चीज़ गले में रुक जाती है, और उसके बाद तुरन्त खांसी आ जाती है। यह एक मामूली कर्म है।

विचारचालित कर्म (*Ideo-motor action*) : गति के विचार के बाद होने वाला कर्म है। आप बच्चे पर हंसते हैं, और बच्चा भी हंस देता है। आप भाषण सुनते हुये ताली बजाते हैं, और अन्य लोग भी ताली बजा देते हैं। यहां क्रिया के विचार के पश्चात् अनायास क्रिया हो जाती है। यह भी

सहज प्रवृत्यात्मक या सहज कर्म (*Instinctive action*) : किसी समग्र परिस्थिति में प्राणी की सहज प्रतिक्रिया है। पहिले-पहल यह प्रभाव-शाली होती है; यह सीखा नहीं जाता, यद्यपि अनुभव से इसमें परिवर्तन होता है। पक्षी अंडे देने से पहिले घोंसला बनाता है। मधुमक्खियाँ छत्ता बनाती हैं। मकड़ी जाला बनाती है। बर्र अपना घर बनाता है। ये सहज-प्रवृत्यात्मक कर्म हैं। ये अन्तिम उद्देश्य की स्पष्ट चेतना के बिना होने वाले सोद्देश्य कर्म हैं। सहज-प्रवृत्यात्मक कर्म उद्देश्य की चेतना के बिना किये जाने वाले जटिल सोद्देश्य कर्म हैं।

ऐच्छिक कर्म (*Voluntary action*) सोद्देश्य कर्म है। यह किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ज्ञानपूर्वक किया जाने वाला कर्म है। इसमें लक्ष्य का पूर्वज्ञान, साधनों का चुनाव, विकल्पों की अच्छाइयों और बुराइयों का विचार, चुनाव और निश्चय शामिल होते हैं। यह एक जटिल कर्म है, आप परीक्षा को सम्मान-पूर्वक पास करने के लिये परिश्रम करते हैं। यह एक ऐच्छिक कर्म है। इसमें उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान है।

अभ्यासजनित कर्म (*Habitual action*) बार-बार किये जाने वाले ऐच्छिक कर्मों का परिणाम है। यह यन्त्र चालित सा होता है। इसे चेतना के पथप्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होती। चलने, बात करने, पढ़ने, लिखने इत्यादि की हमारी विधियाँ अभ्यासजनित कर्म हैं। अभ्यासजनित कर्म बार-बार किये हुए अनैच्छिक कर्मों के परिणाम भी हो सकते हैं। जब ये बार-बार किये जाते हैं तो सहजप्रवृत्यात्मक कर्म भी आदतें बन जाते हैं।

अध्याय ७

ध्यान या अवधान (ATTENTION)

१. अवधान और अनवधान (Attention and Inattention)

'चेतना का क्षेत्र' दो भागों में विभक्त होता है; (१) 'ध्यान का क्षेत्र' और (२) 'अनवधान का क्षेत्र'। ध्यान का क्षेत्र चेतना का केन्द्र होता है। यह स्पष्ट चेतना का प्रदेश होता है। अनवधान का क्षेत्र चेतना का सीमा-

प्रदेश होता है। यह अस्पष्ट और धुँधली चेतना का प्रदेश है। ध्यान का क्षेत्र विविक्त चेतना का क्षेत्र है। अनवधान का क्षेत्र अविविक्त (Undiscriminated) चेतना का क्षेत्र होता है। चेतना के केन्द्र से जितनी दूर जाइये, उतनी ही अधिक अस्पष्ट चेतना होगी; जितना ही निकट चेतना-केन्द्र के जाइये, उतनी ही अधिक स्पष्ट चेतना होगी।

स्टाउट का अस्पष्ट चेतना को अधोचेतना कहना गलत है। वह कहता है "स्पष्ट या भेद करने वाली चेतना से पृथक् ऐसी धुँधली और अस्पष्ट प्रतीति 'अधोचेतना' कहलाती है; और हमारे सम्पूर्ण मानसिक जीवन में चेतना-प्रदेश की अन्तर्वस्तुयें काफ़ी बड़ी सीमा तक अधोचेतना के प्रदेश की अन्तर्वस्तुयें होती हैं, जो निश्चित रूप से मन में तो वर्तमान होती हैं, किन्तु अलग से नहीं जानी जातीं।"[1] हम इस गुप्त, अस्पष्ट चेतना को चेतना का सीमा-प्रदेश या सीमा-प्रदेशीय चेतना कहना पसंद करते हैं।

कभी-कभी 'अनवधान' एक अवांछनीय वस्तु पर ध्यान देने के अर्थ में इस्तेमाल होता है। अध्यापक विद्यार्थी को कक्षा में ध्यान न देने के लिये डाँटता है। यहाँ पर विद्यार्थी भाषण पर ध्यान नहीं देता, जबकि उसे उस पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये; लेकिन वह अन्य वस्तुओं पर ध्यान देता है जिन पर उसे उस समय ध्यान नहीं देना चाहिये, यथा, मैदान में होने वाला शोर, जाती हुई मोटर, बाहर के पेड़ और पक्षी, या पड़ोस में होने वाला संगीत। यह 'अनवधान' का प्रचलित अर्थ है। मनोविज्ञान में हम इसे धुँधली और अस्पष्ट चेतना के अर्थ में लेते हैं।

२. ध्यान का स्वरूप और लक्षण (Nature and Characteristics of Attention)

ध्यान किसी वस्तु पर मन को केन्द्रित करने की क्रिया है। यह किसी वस्तु या चेतना के आधेय की ओर मानसिक क्रिया को संचालित करने में होता है। चेष्टा या मानसिक सक्रियता (Conation) इसका स्वभाव है। आप आकाश की ओर देखते हैं और एक धुँधला तारा दिखाई पड़ता

[1] मनोविज्ञान, पृ० १६२

है। आप उस पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और उसका सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। आपको उसकी स्पष्ट चेतना हो जाती है।

ध्यान चेष्टा या मानसिक सक्रियता है। इसमें मन को किसी वस्तु या संवेदना पर केन्द्रित किया जाता है; मानसिक क्रिया को संचालित किया जाता है। यह मन का वस्तु से समायोजन है। ध्यान का स्वरूप चेष्टा या मानसिक सक्रियता का है।

ध्यान चुनाव करता है। किसी भी क्षण में उत्तेजनायें ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करती हैं। एक ही ज्ञानेन्द्रिय पर भी साथ-साथ कई उत्तेजनायें क्रिया करती हैं। ये सब हमारे ध्यान को आकर्षित करने का प्रयत्न करती हैं। हम निरन्तर उनमें से कुछ को चुनते रहते हैं और उन पर ध्यान देते हैं। अन्यों को हम छोड़ देते हैं और उन पर ध्यान नहीं देते। इस प्रकार, ध्यान में किसी वस्तु का चुनाव होता है और अन्यों को छोड़ दिया जाता है। जब आप मेरे भाषण पर ध्यान देते हैं, तो आप मेरे भाषण को चुन लेते हैं और सड़क पर होने वाले शोर, बरामदे के वार्तालाप, और पड़ोस में होने वाले संगीत को छोड़ देते हैं।

इस प्रकार ध्यान के दो पहलू हैं, भावात्मक (Positive) और अभावात्मक (Negative)। जब आप किसी वस्तु पर ध्यान देते हैं, तो आप उस पर मन को केन्द्रित करते हैं, और अन्य वस्तुओं से उसे खींच लेते हैं। मन को केन्द्रित करना ध्यान का भावात्मक पहलू है। मन को खींच लेना अभावात्मक पहलू है। जब आप एक वस्तु पर ध्यान देते हैं, तो आपको अन्य वस्तुओं से ध्यान अनिवार्यतः हटा लेना पड़ता है।

किसी भी क्षण का ध्यानका विस्तार संकुचित होता है। ध्यान चयनात्मक होता है। अतः इसका विस्तार संकुचित अवश्य ही होगा। एक ही समय हम वस्तुओं की एक सीमित संख्या पर ध्यान दे सकते हैं।

ध्यान चंचल (Mobile) होता है। यह एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर जाता रहता है। हम किसी वस्तु पर आठ या दस सेकंड से अधिक ध्यान को

स्थिर नहीं रख सकते। कभी-कभी तो ध्यान इससे भी कम स्थिर रहता है। ध्यान की चंचलता को आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। एक टिकटिकाती हुई घड़ी को इतनी दूर पर रखिये कि उसकी 'टिकटिक' को आप मुश्किल से सुन सकते हों। उसे सुनने की कोशिश कीजिये, और तब आप देखेंगे कि पहिले तो वह ऊँची होती जाती है और फिर बिल्कुल लुप्त हो जाती है। इसका इस प्रकार प्रकट और लुप्त होना ध्यान की चंचलता को सिद्ध करता है।

ध्यान अनुसन्धानात्मक (Exploratory) होता है। कभी-कभी हम एक नई वस्तु पर ध्यान देते हैं, नवीनता ध्यान के अनुकूल पड़ती है। जब हम किसी नई चीज़ पर ध्यान देते हैं, तो हम उसके गुणों की छानबीन करते हैं। हम उस पर तब तक ध्यान देते हैं जब तक हमें उसमें नये गुण मिलते रहते हैं। किसी परिचित वस्तु पर ध्यान देने में भी हम सदैव उसके नये गुणों पर ध्यान देते हैं। यदि वस्तु में कोई नवीनता नहीं है, तो वह फिर ध्यान आकर्षित नहीं करती। "ध्यान चंचल होता है, क्योंकि यह अनुसन्धानात्मक है; यह निरन्तर छानबीन के लिये कोई ताज़ी चीज़ खोजता रहता है (वुडवर्थ)।"

ध्यान किसी अनुभव का सजीव केन्द्र होता है। ध्यान का परिणाम स्पष्ट और सजीव चेतना होता है। जिन वस्तुओं पर हम ध्यान देते हैं वे हमारी चेतना में स्पष्ट और सजीव हो जाती हैं। लेकिन वे जिनके प्रति हम अपेक्षाकृत असावधान होते हैं चेतना में अस्पष्ट और निर्जीव होते हैं। ध्यान स्पष्ट चेतना का कारण है। यह, जैसा कि कुछ लोग भ्रमवश सोचते हैं, स्पष्ट चेतना से अभिन्न नहीं है।

ध्यान तत्परता (Set) या तय्यारी है। यह व्यक्ति में अन्य वस्तुओं को छोड़कर एक विशेष वस्तु पर ध्यान देने की तत्परता पैदा करता है। "यह प्रारम्भिक तत्परता (Preparatory set) ध्यान में आवश्यक प्रतिक्रिया है" (वुडवर्थ)। व्यक्ति एक विशेष वस्तु पर ध्यान देने के लिये तय्यारी का रुख अपनाता है। यह प्रारम्भिक तत्परता ध्यान में जीव की आवश्यक प्रतिक्रिया है।

ध्यान गतियों का समायोजन (Motor adjustment) है। ध्यान में एक सामान्य ध्यानावस्थित होने की मुद्रा (Attitude) और ज्ञानेन्द्रियों का एक विशेष वस्तु से एक विशेष समायोजन होता है। एक दृश्य वस्तु पर ध्यान देने में उससे आँखों का समायोजन होता है। ध्वनि पर ध्यान देने में कानों का उससे समायोजन होता है। साथ ही तय्यारी की स्थिर मुद्रा भी होती है।

३. स्थिर ध्यान और परिवर्तनशील ध्यान (Sustained Attention and Shifting Attention)

मन को किसी वस्तु पर केन्द्रित करने में स्थिर ध्यान होता है। यह मन का एकाग्रीकरण है। हम किसी कहानी पर अपने ध्यान को स्थिर करते हैं। यह स्थिर ध्यान है।

लेकिन स्वभावतः ध्यान अत्यन्त परिवर्तनशील या चंचल होता है। यह एक वस्तु से दूसरी पर जाता रहता है। यह किसी वस्तु पर अधिक काल तक नहीं टिक सकता। यह शीघ्र ही दूसरी वस्तु पर चला जाता है। यह परिवर्तनशील ध्यान है।

किन्तु ध्यान के ये दो पहलू आवश्यकतया परस्पर विरोधी नहीं होते। स्थिर ध्यान के अन्दर भी ध्यान बदलता रहता है। पुस्तक पढ़ने में, आँख निरन्तर एक शब्द से दूसरे शब्द पर हटती रहती है। "प्रत्येक क्षण यह परिवर्तित होती रहती है, फिर भी यह छपी हुई पंक्ति पर ही रहती है। ध्यान जिस कहानी को हम पढ़ते होते हैं उसमें आगे बढ़ता रहता है, लेकिन कहानी से हटता नहीं है। कहानी में हम जितने ही तन्मय होते हैं, उतनी ही शीघ्रता से हम उसे पढ़ते हैं। यहाँ ध्यान स्थिर होने के साथ-साथ गतिमान भी होता है।"[1] इस प्रकार स्थिर ध्यान के अन्दर परिवर्तनशील ध्यान होता है।

४. ध्यान परिवर्तित क्यों होता है? (Why Attention shifts ?)

ध्यान चेतना-प्रदेश के केन्द्रीय भाग की क्रिया है। इसमें मन को किसी

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ३३६

वस्तु पर केन्द्रित किया जाता है जो चेतना के केन्द्र में आ जाती है। ध्यान मन का किसी वस्तु या विचार से प्रभावपूर्ण समायोजन है। समायोजन के इस विशेष कार्य को अपेक्षाकृत संक्षिप्त समयावधि का होना चाहिये। हम किसी फूल को देखते हैं, उस पर ध्यान देते हैं, उसे पहिचानते हैं, तोड़ते हैं, और उसका निरीक्षण करते हैं। जब तक हमें उसमें नई बातें मिलती रहती हैं, तब तक हम उस पर ध्यान देते रहते हैं। जब हम उसमें कोई नवीनता पाने में असफल होते हैं, तो हमारा ध्यान किसी दूसरी वस्तु पर चला जायगा। ध्यान किसी वस्तु या विचार से मन का समायोजन है। ज्योंही समायोजन समाप्त हो जाता है, ध्यान अन्य वस्तु या विचार पर चला जायगा जिससे मन के समायोजन की आवश्यकता है।

९. ध्यान का विस्तार (The Span of Attention)

हम एक बार में कितनी वस्तुओं पर ध्यान दे सकते हैं ? हम केवल एक वस्तु पर ही एक समय में ध्यान दे सकते हैं। "किसी एक क्षण में हमारे मन के आगे एक से अधिक मानसिक विषय कभी नहीं होते। वह विषय सरल हो सकता है या जटिल, किन्तु यदि वह सचमुच समग्र रूप से चेतना में वर्तमान है, तो मन में इसका ज्ञान एकही वस्तु के रूप में होता है।"[१] जब हम एक मेज को देखते हैं, तो हम एक अकेली जटिल वस्तु पर ध्यान देते हैं; चार टाँगों, चार किनारों, ऊपर का भाग इत्यादि के योग पर नहीं। पूँजिल ठीक कहता है कि "किसी वस्तु को एक देखने के लिये उसमें कुछ जटिलता होनी चाहिये, जिसे हम एक इकाई के रूप में संश्लिष्ट करते हैं। ध्यान की वस्तु में अनेकता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी एकता, किन्तु हमारी मानसिक क्रिया सदैव इन अनेक विशेषताओं को एकता प्रदान करती है। चेतना की किसी क्रिया में ऐसी कितनी विशेषतायें एकता में सम्बद्ध की जा सकती हैं, यह प्रायोगिक मनोविज्ञान के लिये एक व्यावहारिक समस्या है।"[२] ऐसा मालूम पड़ता है कि

[१] पूँजिल : मनोविज्ञान, पृ० ३६

[२] पूँजिल : मनोविज्ञान पृ० ३७

हम एक ही समय कई वस्तुओं पर ध्यान देते हैं। लेकिन यह ग़लत है। ऐसी हालत में ध्यान एक वस्तु से दूसरी पर शीघ्रता से जाता रहता है।

एक ही समय चेतना के केन्द्र में कितनी चीजें रह सकती हैं? एक साथ कितनी चीजें देखी जा सकती हैं? दार्ष्टिक ध्यान (Visual Attention) के विस्तार को मापने के लिये प्रयोग किये गये हैं। कई वस्तुओं को एक साथ दृष्टि के सामने खोल दिया जाता है। खोलने का समय बहुत संक्षिप्त होता है: १/१०० से १/५ सेकिंड तक इतना संक्षिप्त होता है कि 'विषय' परिस्थिति पर आँखें जमा सकता है और उसे देख सकता है लेकिन न आँख घुमा सकता है और न वस्तुओं को गिन सकता है। आँख के सामने खुली हुई वस्तुयें सरल होती हैं, जैसे बिन्दु, रेखायें अंक या अक्षर; या जटिल होती हैं, जैसे शब्द या त्रिभुज इत्यादि। मन प्रत्येक वस्तु को इकाई के रूप में देखता है। मन केवल चार या पाँच पृथक इकाइयों पर ध्यान दे सकता है। यदि चीजें परिचित इकाइयों में वर्गीकृत नहीं होतीं, तो एक संक्षिप्त नजर में केवल चार या पाँच चीजें ही ठीक-ठीक देखी जा सकती हैं। लेकिन यदि चीजें सार्थक समूहों में संयुक्त हो जाती हैं, यथा, अक्षर शब्दों में, तो एक ही बार में बहुत सी चीजें दिखाई दे सकती हैं। ऐसी दशा में समग्र इकाई देखी जाती है।

श्रवण-सम्बन्धी ध्यान के विस्तार (*Auditory attention*) को मापने के लिये भी प्रयोग किये गये हैं। एक बार में सुनी जाने वाली ध्वनियों की संख्या कुछ अधिक है। एक प्रौढ़ शीघ्रता के साथ एक अनुक्रम में प्राप्त आठ ध्वनियों को सुन सकता है। "जब घड़ी एक के १/२ सेकंड बाद दूसरी आवाज़ देती है, तो 'विषय' आठ आवाज़ों के समूह को ग्रहण कर सकता है। लेकिन आठ के समूहों से अधिक होने पर उसके निर्णय अविश्वसनीय हो जाते हैं,"[1] लेकिन जब ध्वनियों को लय के साथ प्रस्तुत किया जाता है, तो उनकी एक बहुत बड़ी संख्या सुनी जा सकती है। "बिना लय की घंटी की अकेली आवाज़ें आठ सुनी जा सकती हैं, और लय में बंधी हुई चालीस आवाज़ें—आठ आवाज़ों के पाँच समूह—एक अकेली इकाई में सुनी जा सकती हैं" (पिल्सबरी)।

[1] मायर्स : प्रायोगिक मनोविज्ञान, पृ० ३२२

कितनी प्रक्रियायें एक साथ की जा सकती हैं ? एक ही बार में कितनी चीज़ें की जा सकती हैं ? उत्तर सरल है। हम एक समय में एक ऐच्छिक कर्म कर सकते हैं। हम एक ही समय दो, तीन या अधिक ऐच्छिक कर्म नहीं कर सकते। लेकिन हम ध्यान को एक ऐच्छिक कर्म से दूसरे पर जल्दी-जल्दी हटा सकते हैं। यहाँ ध्यान का परिवर्तन होता है। इस कथन में कि हम एक बार में एक ही वस्तु पर ध्यान दे सकते हैं और इसमें कि हम एक बार में दो या अधिक काम कर सकते हैं, कोई विरोध नहीं है। हम दो या अधिक ऐच्छिक कर्म ध्यान को शीघ्र बदलकर कर सकते हैं। कहा जाता है कि सीज़र कई मंत्रियों को एक साथ लिखवाता था। यह वह केवल ध्यान को जल्दी-जल्दी एक काम से दूसरे काम पर हटाते हुये कर सकता था। दो काम एक साथ करना अधिक सरल है, यदि उनमें एक ऐच्छिक है और दूसरा इतना अधिक स्वयं-चालित कि उसे ध्यान की आवश्यकता न पड़े। कुशल टाइपिस्ट अपनी नक्ल को पढ़ सकता है, मशीन को भी चालू रख सकता है, और साथ ही ध्यान को बंटाकर इर्द-गिर्द होने वाले वार्तालाप को भी सुन सकता है।

६. ध्यान की समयावधि (Duration of Attention)

बिना ध्यान तोड़े हुये कितनी देर तक ध्यान दिया जा सकता है ? "ऐसा मालूम पड़ता है कि ध्यान यथार्थ और निश्चित रूप में बहुत थोड़े समय तक, एक या अधिक सेकंड तक ही केन्द्रित किया जा सकता है।"[1] यदि हम एक अकेली, सरल वस्तु, यथा एक बिन्दु पर ध्यान दें, तो वह चेतना के केन्द्र में अधिक से अधिक एक सेकंड तक ही रहेगी, तत्पश्चात् सीमा-प्रदेश से कोई वस्तु आकर उसे हटा देगी, या गत घटना की कोई स्मृति आ जायगी। ऐसा मालूम पड़ता है कि यद्यपि हम बिन्दु पर आँखों को स्थिर रख सकते हैं, तथापि हम उस पर एक सेकिंड से अधिक ध्यान नहीं देते। प्रत्येक छः से दस सेकिंड तक के काल में एक बार इस प्रकार ध्यान स्थिर होता है।

हमें ज्ञात हो चुका है कि ध्यान जमता और हटता रहता है। यदि हम निर्बल उत्तेजनाओं पर ध्यान देते हैं, तो केवल अल्प काल तक ही हम उन्हें

[1] मायर्स : प्रायोगिक मनोविज्ञान, पृ० २७२

देखते हैं; बीच-बीच में उनसे ध्यान हटता जाता है। "इस प्रकार, यदि कोई कुछ दूरी पर घड़ी की 'टिकटिक' सुनता है, तो यह ज्ञात होगा कि 'टिकटिक' एक क्षण तक सुनाई देगी, फिर नहीं सुनाई देगी, और जब तक हम सुनने का प्रयत्न करते रहेंगे, यही क्रम चलता रहेगा।"[1] यह ध्यान के विचलन (Shifting) के कारण होता है। इसका कारण ज्ञानेन्द्रियों की पेशियों या स्नायुओं के अग्रभागों की थकान है। अथवा, इसका कारण त्वच (Cortex) संवेदना-धिष्ठानों की थकान या त्वच में रक्त की मात्रा में परिवर्तन हैं। या, मानसिक शक्ति का उतार-चढ़ाव भी इसका कारण हो सकता है।

यदि एक ही चीज पर ध्यान देने का अर्थ किसी परिवर्तनशील घटकों वाले विषय पर ध्यान देना है, तो कई घंटों तक ध्यान देना सम्भव है। ध्यान की यह अवधि कई बातों पर निर्भर रहती है, यथा, विषय का स्वरूप, ध्यान देने वाले की शक्ति, इत्यादि। लेकिन यदि ध्यान देने का अर्थ केवल एक वस्तु पर ध्यान देना है, तो हम एक सेकिंड या कम से अधिक ध्यान नहीं दे सकते। हम देख चुके हैं कि स्थिर ध्यान के अन्दर चलायमान ध्यान होता है, जो एक लम्बे काल तक रह सकता है। यहाँ एक उद्देश्य या रुचि के नियंत्रण में ध्यान बार-बार विचलित होता है, लेकिन वह एक संकीर्ण सीमा का अतिक्रमण नहीं करता।

७. ध्यान के भेद (Kinds of Attention)

(१) *अनैच्छिक, ऐच्छिक, और इच्छा-विरुद्ध ध्यान (Non-voluntary, voluntary and involuntary attention)*

अनैच्छिक ध्यान (*Non-voluntary attention*)—यह अनायास ध्यान होता है। इसमें कृति-शक्ति को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसका निर्धारण वस्तु से होता है। यह द्रष्टा की अपनी इच्छा से निर्धारित नहीं होता। जब हम किसी वस्तु पर अनायास किन्तु इच्छा के विरुद्ध नहीं, ध्यान देते हैं, तो वह अनैच्छिक ध्यान कहलाता है। जब आप पुस्तक

[1] मायर्स : मनोविज्ञान, पृ० २७२

पढ़ने में तल्लीन होते हैं उस समय यदि आपका ध्यान पड़ोस में होने वाले संगीत की ओर चला जाता है, तो आपका ध्यान अनायास या अनैच्छिक है। या कक्षा में भाषण सुनते हुये आप अज्ञान में कल्पना-सृष्टि करने लगते हैं और अपने भविष्य के विषय में 'हवाई महल' बनाने लगते हैं। मन सदैव किसी न किसी वस्तु पर ध्यान देता है। जब कभी हमारा ध्यान एक वस्तु से विचलित होता है, उस समय वह अन्य रोचक वस्तु या विचार पर जम जाता है। अनैच्छिक ध्यान प्रारम्भिक जीवन में शुरू होता है, *क्योंकि इसमें कृति-शक्ति का प्रयत्न संलग्न नहीं होता,* और सामान्यतया यह रोचक वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है। यह सहज रुचियों के द्वारा निर्धारित होता है।

ऐच्छिक ध्यान (Voluntary attention)—यह इच्छा या मन से निर्धारित होता है। इसमें ज्ञानपूर्वक कृति-शक्ति का प्रयास संलग्न रहता है। यह स्वयं-प्रारब्ध क्रिया का परिणाम होता है तथा सदैव मानसिक प्रयत्न की अपेक्षा रखता है। यह अनैच्छिक ध्यान के समान अनायास नहीं होता। ऐच्छिक ध्यान में कृति-शक्ति का प्रयत्न किसी वस्तु या विचार के प्रति संचालित होता है। जब आप किसी दुरूह गद्यांश का अर्थ समझने के लिये मन पर दबाव डालते हुये उस पर ध्यान देते हैं, तो आपका ध्यान ऐच्छिक होता है। जब आप बरामदे में होने वाले शोर के मध्य कक्षा में भाषण पर ध्यान देते हैं, तो यह ऐच्छिक ध्यान है। जब आप निरीक्षकों के इधर-उधर टहलने और बात चीत के बीच परीक्षा-भवन में एक कठिन प्रश्न को हल करने में लगे होते हैं, तो आपका ध्यान ऐच्छिक होता है। यह अर्जित रुचि से निर्धारित होता है। इसमें या तो एक बार कृति-शक्ति पर जोर डालना पड़ता है या बार-बार। यह अनायास नहीं होता, बल्कि सप्रयास होता है।

इच्छा-विरुद्ध ध्यान (Involuntary attention)—यह इच्छा के विरुद्ध किसी वस्तु पर ध्यान देना है। यह अनैच्छिक ध्यान के समान अनायास नहीं होता। इसमें ऐच्छिक ध्यान के समान कृति-शक्ति जान-बूझ कर प्रयत्न करती है। लेकिन ऐच्छिक ध्यान से इसमें एक महत्वपूर्ण भेद है। इच्छा-विरुद्ध ध्यान

में इच्छा ध्यान की वस्तु से विमुख होती है, जबकि ऐच्छिक ध्यान में इच्छा ध्यान की वस्तु के उन्मुख होती है। इस प्रकार, यदि जब आप लिखने में तल्लीन हैं, उस समय दरवाज़ा धक्के के साथ बन्द हो जाता है, तो आप उस आवाज़ पर अपनी इच्छा के विरुद्ध ध्यान देने के लिये बाध्य होते हैं। जब आप परीक्षा-भवन में प्रश्नों के उत्तर लिखते होते हैं, उस समय भवन में होने वाली किसी आकस्मिक आवाज़ पर अपनी इच्छा के विरुद्ध आपको ध्यान देना पड़ता है। यह इच्छा-विरुद्ध ध्यान है।

स्टाउट इन तीन प्रकार के ध्यानों में इस प्रकार भेद बतलाता है :—
"जहाँ तक ध्यान ध्यान देने की प्रकट इच्छा के कारण दिया जाता है, वहाँ तक उसे ऐच्छिक ध्यान कहते हैं। जो ध्यान इस प्रकार शुरू नहीं होता वह अनैच्छिक या अनायास होता है। जब हम केवल ध्यान देने की प्रकट इच्छा से नहीं, बल्कि इस प्रकार की इच्छा के विरुद्ध ध्यान देते हैं, तो ध्यान केवल अनैच्छिक नहीं, बल्कि ठीक-ठीक अर्थ में इच्छा-विरुद्ध होता है।"[1] मानसिक विकास मे अनैच्छिक ध्यान ऐच्छिक ध्यान से पहिले आता है। इच्छा-विरुद्ध और ऐच्छिक ध्यान बाद में आते हैं, क्योंकि ये इच्छा को नियंत्रित करने की शक्ति की अपेक्षा रखते हैं।

(२) अन्तर्ध्यान और बहिर्ध्यान (*Ideational and sensory attention*)—ध्यान के ये दो भेद उसके विषय के अनुसार हैं। बहिर्ध्यान इन्द्रिय-ज्ञेय पदार्थों पर ध्यान देता है। जब आप एक पेड़, मकान, पुस्तक इत्यादि पर ध्यान देते हैं, तो आपका ध्यान बहिर्ध्यान होता है. अन्तर्ध्यान विचारों, प्रत्ययों, संवेगों और इच्छाओं पर ध्यान देना है। यह मानसिक वस्तुओं पर ध्यान देना है। जब आप अपने अप्रस्तुत मित्र की मानस-प्रतिभा पर या अपने प्रिय मित्र की मृत्यु से जनित शोक के संवेग पर ध्यान देते हैं, तो आपका ध्यान अन्तर्ध्यान है। बच्चे के जीवन में बहिर्ध्यान अन्तर्ध्यान से पहिले आता है क्योंकि उसका ध्यान पहिले बाह्य वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है और फिर अन्दर मानसिक प्रक्रियाओं की ओर।

[1] मनोविज्ञान १९१० : पृ० ६२१।

(३) अव्यवहित और अर्जित ध्यान (Immediate and derived Attention)—ध्यान अव्यवहित तब होता है जब ध्यान की वस्तु स्वयं रोचक होती है। संगीत की ओर ध्यान अव्यवहित ध्यान है, क्योंकि यह स्वयं आकर्षक होता है। लेकिन जब आप बीमार होते हैं और संगीत पसन्द नहीं करते, तो उसकी ओर आपका ध्यान अव्यवहित नहीं होता। पुनः, जब इनाम जीतने के लिए आप संगीत पर ध्यान देते हैं, तो आपका ध्यान अव्यवहित नहीं होता। जब दावत में आप स्वादिष्ट भोजनों पर ध्यान देते हैं तो आपका ध्यान अव्यवहित होता है, क्योंकि वे आपकी जन्मजात या अर्जित रुचियों को जाग्रत करते हैं। लेकिन ध्यान अर्जित तब होता है, जब यह उस वस्तु पर जाता है जो स्वयं तो रोचक नहीं होती, किन्तु किसी अन्य वस्तु के साथ संलग्न होने के कारण रोचक होती है। जब आप गणित में रुचि का अनुभव किये बिना केवल परीक्षा पास करने के उद्देश्य से गणित के ऊपर भाषण सुनते हैं, तो आपका ध्यान अर्जित ध्यान है। अव्यवहित ध्यान अर्जित ध्यान से पहिले आता है। बच्चा अनायास रोचक वस्तुओं पर ध्यान देता है। वह बाद में जब अपनी इच्छा-शक्ति के ऊपर कुछ नियंत्रण प्राप्त कर लेता है, तब अरोचक वस्तुओं पर ध्यान देना सीखता है।

"ऐच्छिक ध्यान सदैव अर्जित होता है, क्योंकि प्रयत्न से साध्य किसी दूरस्थ उद्देश्य को प्राप्त करने के हेतु के अतिरिक्त किसी वस्तु पर ध्यान देने के प्रयत्न का हमारा कदापि हेतु नहीं होता" (जेम्स)। अनैच्छिक ध्यान अधिकांशतः अव्यवहित होता है, क्योंकि वह उन वस्तुओं की ओर आकर्षित होता है जो स्वयं रोचक होती हैं। कभी-कभी अनैच्छिक ध्यान अर्जित होता है। "एक हलकी 'खटखट' अपने आप में रोचक ध्वनि नहीं होती; दुनिया के शोरगुल में उसके ऊपर ध्यान न जाना सम्भव है। लेकिन जब वह कोई संकेत होता है, यथा, प्रेमी का खिड़की को खटखटाना, तब वह मुश्किल से अनसुनी हो सकती है" (जेम्स)। अव्यवहित और अर्जित ध्यान का अन्तर विलियम जेम्स के अनुसार है।

(४) विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक ज्ञान (Analytic and

Synthetic attention.)—ध्यान अपने व्यापार के अनुसार विश्लेषणात्मक और संश्लेषणात्मक होता है। जब किसी वस्तु पर ध्यान देकर मन उसे उसके संघटकों में विश्लिष्ट करता है, तो ध्यान विश्लेषणात्मक (Analytical) होता है। जब आप पेड़ पर ध्यान देते हैं और उसके अवयवों में उसका विश्लेषण करते हैं, यथा जड़, तना, शाखाओं, पत्तियों इत्यादि में, तो आपका ध्यान संश्लेषणात्मक होता है। जब किसी वस्तु पर ध्यान देकर मन उसके अवयवों या गुणों को एक जटिल समष्टि में संयुक्त करता है, तो ध्यान संश्लेषणात्मक (Synthetical) होता है। जब आप जड़, तने, शाखाओं, पत्तियों इत्यादि पर ध्यान देते हैं और उन्हें एक जटिल समष्टि (यथा, पेड़) में संयुक्त करते हैं, तो आपका ध्यान संश्लेषणात्मक होता है।

विश्लेषणात्मक ध्यान पृथक् करने वाला होता है जब कि संश्लेषणात्मक ध्यान संयोजनकारी होता है। दोनों साथ चलते हैं। "ध्यान देने के प्रत्येक कर्म में वियोजन और समकालिक संयोजन दोनों कुछ-कुछ मात्रा में अवश्य रहते हैं" (ऐंजिल)। पेड़ पर ध्यान देना उसके विभिन्न अवयवों को पृथक् करना भी है और उन्हें परस्पर संयुक्त करना भी। वियोजनकारी या विश्लेषणात्मक ध्यान संयोजनकारी या संश्लेषणात्मक ध्यान के साथ चलता है।

८. ध्यान के हेतु (Conditions of Attention)

ध्यान वस्तुगत (Objective) और आत्मगत (Subjective) हेतुओं पर निर्भर है। ये स्वयं व्यक्ति के अन्दर या परिवेश में ध्यान देने की प्रक्रिया के पूर्ववर्ती तत्वों में होते हैं। ध्यान के पूर्ववर्ती मानसिक हेतु आत्मगत हेतु हैं। परिवेश में उत्तेजनाओं की विशेषतायें वस्तुगत हेतु हैं। ये ध्यान को निर्धारित करते हैं। ध्यान को आकर्षित करने में ये सुविधाजनक तत्व होते हैं।

(१) *वस्तुगत हेतु* (*Objective conditions*)—वस्तुगत हेतु ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करने वाली उत्तेजनाओं के गुणों में पाये जाते हैं। ये निम्नलिखित हैं :—

उत्तेजना का बल या तीव्रता (*Strength of the stimulus.*)—यदि अन्य हेतु समान हों, तो एक निर्बल उत्तेजना की अपेक्षा एक प्रबल उत्तेजना ध्यान को अधिक आकर्षित करेगी। एक तेज रोशनी आसानी से हमारा ध्यान खींच लेती है, लेकिन एक हल्की रोशनी नहीं। ज़ोर की आवाज़ कमज़ोर आवाज़ से अधिक फायदे में रहती है। बुलन्द आवाज़ वाला अध्यापक छात्रों का ध्यान धीमी आवाज वाले अध्यापक की अपेक्षा अधिक आकर्षित कर सकता है। बुलन्द आवाज़ें, चमकीली रोशनियाँ, तीव्र गन्धें, गरम स्वाद इत्यादि चेतना पर अधिकार कर लेते हैं, जबकि कम तीव्र उत्तेजनायें हमारे ध्यान को नहीं पकड़ पातीं।

दृश्य वस्तुओं का आकार (*Size of visible objects*)—दृश्य वस्तुओं में बड़ा आकार छोटे आकार की अपेक्षा ध्यान के अधिक अनुकूल है। पूर्णिमा का चाँद आसानी से हमारा ध्यान खींच लेता है, लेकिन छोटे-छोटे तारे हमारा ध्यान नहीं भी खींच सकते हैं। विज्ञापन देने वाला भावी ग्राहकों का ध्यान खींचने के लिये बड़े अक्षरों का इस्तेमाल करता है। अख़बारों में पूरे या आधे पृष्ठ के विज्ञापन आसानी से हमारा ध्यान आकर्षित कर लेते हैं लेकिन छोटे विज्ञापन उपेक्षित रह जाते हैं। इसलिये सिनेमा और सरकस वाले लोगों का ध्यान खींचने के लिए बड़े-बड़े पोस्टर इस्तेमाल करते हैं।

उत्तेजना की आकर्षकता (*Striking quality of the stimulus*)—तीव्रता के अतिरिक्त इसका पृथक् लाभ है। 'शुद्ध रंग, यद्यपि हल्के रंगों की अपेक्षा प्रकाश की कम तीव्रता रखते हैं, तथापि ध्यान के लिये वे अधिक बलवती उत्तेजनायें हैं। उच्च स्वर निम्न स्वरों की अपेक्षा अधिक आकर्षक होते हैं। खुजली, गुदगुदी, और पीड़ा विस्तृत, सम स्पर्श से अधिक ध्यान आकर्षित करती है।'[1] विज्ञापन देने वाला ग्राहक का ध्यान आकर्षित करने के लिये रंगीन प्रकाश और चित्र इस्तेमाल करता है।

निश्चित रूप-रेखा (*Definite form*)—धुंधली, अस्पष्ट रूप-रेखा

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ४२३

की अपेक्षा निश्चित रूप-रेखा अधिक उपादेय होती है। एक पृष्ठ भूमि के ऊपर अलग खड़ी स्पष्ट रूप-रेखा वाली वस्तु एक विस्तृत अनिश्चित रूप-रेखा वाली वस्तु की अपेक्षा अधिक हमारा ध्यान खींचती है। पूर्ण चन्द्र आसानी से हमारा ध्यान खींच लेता है। लेकिन असीम विस्तार वाला आकाश हमारा ध्यान नहीं पकड़ता। एक पर्वत जिसकी रूप-रेखा स्पष्ट है हमारे ध्यान को अपनी धुंधली, अनिश्चित पृष्ठ भूमि की अपेक्षा अधिक आकर्षित करता है।

परिवर्तन (Change)—यदि उत्तेजना में परिवर्तन होता है, तो सम्भव है कि वह ध्यान आकर्षित कर ले। लेकिन अगर परिवर्तन को प्रभावशाली होना है, तो उसे बहुत मन्द नहीं होना चाहिये; उसमें आकस्मिकता की कुछ मात्रा अवश्य होनी चाहिये। "अपरिवर्तनशील शोर थोड़े समय बाद ध्यान नहीं खींचता, लेकिन यदि किसी रूप में उसमें परिवर्तन हो जाय तो तुरन्त वह ध्यान खींच लेता है" (वुडवर्थ)। यदि शोर एकाएक बन्द हो जाता है, तो वह हमारा ध्यान अवश्य खींच लेगा। अथवा यदि अपरिवर्तनशील शोर अकस्मात् बहुत ऊँची ध्वनि में बदल जाता है, तो अवश्य हमारा ध्यान उसकी ओर खिंच जायगा।

गति (Movement)—गति में परिवर्तन होता है। यह सुविधा का एक स्पष्ट तत्त्व है। एक गतिशील वस्तु आसानी से ध्यान खींच लेती है। एक मोटर या गाड़ी का इंजन खड़े रहने की अपेक्षा दौड़ने में ध्यान अधिक खींचेगा। गतिशील बिजली की रोशनियों के द्वारा विज्ञापन आसानी से ध्यान खींच लेते हैं। "जंगली जानवर शिकारी के चलने-फिरने से चौंक जाते हैं, जब कि उसके बिल्कुल चुपचाप रहने से वे उसे नहीं देख पाते। यदि घोड़े के रास्ते में कोई कागज़ का टुकड़ा उड़ाया जाय तो वह चौंक जाता है, यद्यपि उसी टुकड़े के पड़े रहने से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा" (पिल्सबरी)। यदि एक खरगोश संध्या समय मैदान में बैठा रहता है, तो उस पर ध्यान नहीं जाता; लेकिन, यदि वह मैदान में दौड़ता है, तो उस पर ध्यान चला जाता है। इसीलिये सिनेमा के विज्ञापन वाले पोस्टर लोगों का ध्यान खींचने के लिये जगह-जगह फिराये जाते हैं।

नवीनता (*Novelty*)—नवीनता ध्यान का एक हेतु है। बच्चा नये खिलौने, नये कपड़े, नये कोट, नई पुस्तक, या नई तीन पहियों की साइकिल की ओर आकर्षित होता है। हम नई इमारत, नई मोटर, या नई पोशाक की ओर आकर्षित होते हैं। ध्यान में नवीनता भी एक उपादेय तत्व है।

विषमता (*Contrast*)—विषमता ध्यान का एक हेतु है। ठिंगने आदमी की बगल में एक लम्बा आदमी, कई एक मंजिले मकानों के बीच एक दो मंजिला मकान, काले आदमियों के मध्य एक गोरा आदमी अवश्य हमारा ध्यान खींचेगा।

समयावधि (*Duration*)—यदि उत्तेजना थोड़ी देर तक रहती है, तो उसका हमारा ध्यान खींचना बहुत सम्भव है। यदि गाना एक ही मिनट तक रहता है, तो सम्भव है हमारा ध्यान न खींच सके। लेकिन यदि वह पन्द्रह मिनट तक चलता रहे, तो बहुत सम्भव है कि वह हमारा ध्यान खींच लेगा। किन्तु एकरसता के कारण किसी वस्तु पर ध्यान अधिक देर तक स्थिर नहीं रह सकता। अतः ध्यान के लिये वस्तु की कुछ समयावधि होनी चाहिये।

पुनरावृत्ति (*Repetition*)—यदि उत्तेजना दोहराई जाती है, तो उसका ध्यान खींचना सम्भव है। आप किसी को एकाध बार पुकारते हैं; शायद उसके ध्यान में न पड़े। लेकिन यदि आप कई बार उसे पुकारते हैं, तो वह अवश्य ध्यान देगा। अध्यापक बार-बार पाठ को दोहराता है ताकि सब विद्यार्थी उस पर ध्यान दे सकें। किन्तु अत्यधिक पुनरावृत्ति अपनी एकरसता के कारण ध्यान खींचना बन्द कर देती है। पुनः, यदि अध्यापक कई बार पाठ को दोहराता है, तो लड़के असावधान हो जाते हैं। अतः पाठ की पुनरावृत्ति मामूली दरजे की होनी चाहिये। अध्यापक को कभी-कभी छात्रों को यह चेतावनी दे देनी चाहिये कि वह पाठ को दोहरायेगा नहीं ताकि वे अधिक सचेत और सावधान हो जायें।

मानसिक हेतु (*Subjective conditions*)—ध्यान के मानसिक हेतु निम्नलिखित हैं :—

रुचि (*Interest*)—रुचि ध्यान की प्रमुख निर्धारिका है। हम उन चीजों पर ध्यान देते हैं जो हमें अच्छी लगती हैं। आप खेलों में रुचि लेते हैं। आप स्वभावतया अखबारों में 'मैच' के समाचारों पर ध्यान देंगे। आपका मित्र भारत की वर्तमान राजनीति में अधिक रुचि लेता है। वह भारत की राजनीतिक चर्चा के समाचारों पर ध्यान देगा। संगीतज्ञ संगीत पर ध्यान देगा। व्यापारी व्यापार पर ध्यान देगा। कलाकार चित्रों पर ध्यान देगा। जेम्स कहता है, "जंगल में प्रत्येक हलचल शिकारी के लिये उसका शिकार है : भगौड़े के लिये उसका पीछा करने वाला है। गली में प्रत्येक टोपी को प्रेमी थोड़ी देर के लिये अपनी प्रियतमा की टोपी समझ लेता है।" इसलिये जिस वस्तु पर हम ध्यान देना चाहते हैं उसमें हमें प्रबल रुचि उत्पन्न करनी चाहिये।

प्रवृत्ति और स्वभाव (*Disposition and temperament*)—धार्मिक प्रवृत्ति और स्वभाव वाला व्यक्ति प्रकृत्या धर्म में अत्यधिक रुचि लेता है, और धार्मिक वार्ताओं पर ध्यान देता है। इस प्रकार प्रवृत्ति और स्वभाव रुचि को निर्धारित करते हैं जो ध्यान का एक हेतु है। "प्रतिद्वन्द्वी संवेदनाओं की भीड़ में प्राथमिकता किसे मिले, इसका निर्धारण हमारी रुचि लेने की पूर्व-प्रवृत्ति करती है, जिसका कारण हमारे मन के जन्म-जात झुकाव और पहिले का मानसिक विकास है। ऊँची आवाजों के शोर-गुल के बीच जो उपेक्षित ही रह जाती हैं, प्रेमी का कान अपनी प्रियतमा का धीरे से कहा हुआ नाम भी सुन लेगा" (जेम्स)।

सहज प्रवृत्ति (*Instinct*)—ध्यान मूल प्रवृत्तियों के नेतृत्व में चलता है। जब बिल्ली भूखी होती है, उस समय वह चूहों पर ध्यान देती है। जब आप भूखे होते हैं, उस समय आप रोटी-चावल पर ध्यान देते हैं। जब आप रीछ को देखते हैं, तो आप भाग जाते हैं और सुरक्षित स्थान में अपने आप को छिपा लेते हैं। चिड़िया अंडे देने से पहिले घोंसला बनाने के लिये उपयुक्त सामग्री पर ध्यान देती है। इस प्रकार विभिन्न सहज प्रवृत्तियां उन वस्तुओं पर ध्यान देने के लिये बाध्य करती हैं जो इन्हें जाग्रत करती हैं।

इच्छा, उद्देश्य या अभिप्राय (*Desire, purpose, intention*)—

इच्छा की उत्पत्ति अभाव की अनुभूति से होती है। एक मूल प्रवृत्ति, क्षुधा या अभाव की अनुभूति इच्छा में परिणत हो जाती है। इच्छा ध्यान को अपनी वस्तु पर ले जाती है। इच्छा की वस्तुयें, वे जिन्हें हम ढूँढ़ रहे हैं, हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती हैं। दुकान की खिड़की में कोई चीज़ हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती है क्योंकि उसकी हमें इच्छा है और उसे हम ढूंढते होते हैं। जब कोई व्यक्ति एक विशेष वस्तु को देखने का इरादा रखता है, तो वह उसके ध्यान में आ जाती है। हम प्रायः वही चीज़ देखते या सुनते हैं जिसे हमें देखने या सुनने की इच्छा होती है, या जो हमारे अभिप्रायों से सामञ्जस्य रखती है।

संवेग (Emotion)—ध्यान संवेगों से निर्धारित होता है। प्रेमी अपनी प्रेमिका के केवल अच्छे गुणों पर ध्यान देता है। कोई व्यक्ति अपने शत्रु की केवल बुराइयों पर ही ध्यान देता है। प्रसन्न व्यक्ति परिस्थिति के उज्ज्वल पहलू पर ही ध्यान देता है। शोक मग्न व्यक्ति परिस्थिति के अंधेरे पहलू पर ध्यान देता है। प्रेम, घृणा, आनन्द, शोक संवेग हैं। तीव्र संवेग की अवस्था में हम विस्तार की उन सूक्ष्म बातों पर ध्यान देते हैं जिनकी साधारण अवसरों पर उपेक्षा कर दी जाती है। इस प्रकार संवेग ध्यान को निर्धारित करते हैं।

अतीत अनुभव (Past experience)—"वे वस्तुयें जिनके शुभ या अशुभ परिणाम ज्ञात होते हैं उल्लेखनीय स्पष्टता के साथ ध्यान के केन्द्र में आ जाती हैं। साँप की सरसराहट शिकारी के लिए अत्यन्त ऊंची आवाज़ों को भी दुबा देगी, जो इसके अर्थ को जानता है।"[1] विगत अनुभव से हम जानते हैं कि कुछ वस्तुएँ हमारे लिए लाभदायक हैं और कुछ हानिकारक और ये वस्तुयें हमारे ध्यान को आकर्षित कर लेती हैं, क्योंकि हम उनका अर्थ जानते हैं।

आदत (Habit)—आदत और शिक्षा ध्यान को निर्धारित करते हैं। प्रशिक्षा और पूर्व अनुभव ध्यान को सुविधा प्रदान करते हैं। विशेष वस्तुओं पर ध्यान देने और उनका निरीक्षण करने में विशेषज्ञों की कुशलता प्रशिक्षा पर

[1] ड्रोः शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका : पृ० १८६।

निर्भर है। प्रशिक्षा में आदतों का समावेश होता है। वनस्पति-शास्त्री पेड़ों की विलक्षणताओं पर ध्यान देता है। भूगर्भ-शास्त्री खनिजों की विलक्षणताओं पर ध्यान देता है। रसायनशास्त्री विलक्षण रसायनों पर ध्यान देता है। प्राणिशास्त्री विलक्षण प्राणियों पर ध्यान देता है। "किसी भी विभाग में कुशल अणुवीक्षण-यंत्र से देखने वालों की, संगीत आलोचकों की, चाय और मदिरा को चखने वालों की, तथा शिकार ढूँढ़ने और जंगल के चिन्ह देखने में वन भ्रमण करने वालों की सारी कुशलता प्रशिक्षण से आती है" (पिल्सबरी)। इस प्रकार आदत और शिक्षा ध्यान का निर्धारण करते हैं।

(३) अन्य हेतु (Other Conditions)

सामाजिक प्रभाव (Social influence)—बच्चा समाज से कुछ विचार ग्रहण करता है। सामाजिक सम्पर्क में वह कुछ भाव विकसित करता है। उसके अधिकांश नैतिक और धार्मिक भावों का कारण समाज का प्रभाव होता है। हिन्दू मन्दिर की ओर ध्यान देता है, मुसलमान मस्जिद की ओर, और ईसाई गिरजे की ओर। यह सब सामाजिक प्रभाव के कारण होता है। विद्यार्थी थकने पर भी पाठ पर ध्यान देता है क्योंकि वह परीक्षा पास करना चाहता है या वह जिन लोगों का आदर करता है उनके द्वारा प्रशंसित होना चाहता है। कोई व्यक्ति किसी विशेष विषय पर ध्यान देता है जो उसके पेशे में उसकी सहायता करेगा और जो उसे दूसरों की दृष्टि में सम्माननीय बनायेगा। समाज के दबाव से सदैव तात्कालिक शुभ के स्थान पर दूरस्थ शुभ को प्राथमिकता दी जाती है।

वंशानुक्रम (Heredity)—ध्यान वंशक्रमानुगत प्रवृत्तियों से निर्धारित होता है। चरित्र के कुछ गुण, यथा, संगीत में रुचि, माता-पिता से प्राप्त होते हैं। यह अव्यवहित वंशानुक्रम ध्यान को निर्धारित कर सकता है। मूल प्रवृत्तियों के कारण होने वाला ध्यान जिसकी ओर संकेत किया जा चुका है, सामान्य वंशानुक्रम से निर्धारित होता है। कोई व्यक्ति सामान्य वंशानुक्रम के कारण उन वस्तुओं पर ध्यान देता है जो विशेष-रूप से लाभदायक या हानिकारक हो सकती हैं। "सामान्यतया, यदि कोई पूछे कि कोई एक विशेष

अवसर पर किसी चीज़ पर क्यों ध्यान देता है, तो उत्तर बाह्य वस्तुओं के स्वभाव में या उस क्षण की विभिन्न मानसिक अवस्थाओं में, तात्कालिक या दूरस्थ अतीत के अनुभव में, और अन्त में व्यक्ति के वंशानुक्रम में पाया जा सकता है"[१]

हमारे वास्तविक अनुभव में, हम ध्यान को निर्धारित करने में आत्मगत और वस्तुगत दोनों प्रकार के हेतुओं को सहयोग करते हुये पाते हैं। हम रुचियों के द्वारा संचालित किये जाते हैं और उनको संतुष्ट करने के लिये उचित वस्तुओं पर ध्यान देते हैं। अपनी चेतना में प्रवेश करने वाली तीव्र और आकस्मिक संवेदनाओं पर हम ध्यान देते हैं। किन्तु आत्मगत हेतु वस्तुगत हेतुओं से प्रबल होते हैं। हम तीव्र, आकस्मिक और नई संवेदनाओं पर इसलिये ध्यान देते हैं कि वे हमारे अन्दर जिज्ञासा, भय या दोनों को जाग्रत करती हैं। मूल प्रवृत्तियों में रुचि के कारण हमें ध्यान देना पड़ता है। वही निर्धारक हेतु है, वस्तुगत हेतु नहीं। कभी-कभी काफ़ी बुलन्द आवाज़ भी हमारा ध्यान नहीं खींचती। गाड़ियों के चलने की परिचित ऊँची आवाज़ें प्राय: हल्की निरर्थक आवाज़ों के समान बिना ध्यान आकर्षित किये चली जाती हैं, जब कि दरवाज़े पर हल्की थपथपाहट भी, यदि सार्थक होती है, तो ध्यान खींच लेती है। अत: वस्तुगत हेतु अपने आप में ध्यान को निर्धारित करने के लिये पर्याप्त नहीं होते। आत्मगत हेतु उन पर शासन करते हैं। वस्तुगत हेतु ध्यान से अभिहित मानसिक क्रिया के लिये अवसर प्रदान करते हैं। किन्तु आत्मगत हेतुओं के बिना वे प्रभावहीन होते हैं। आत्मा का नियंत्रण अधिक महत्त्वपूर्ण है।

६. ध्यान और रुचि (Attention and Interest)

ध्यान मन की चयनात्मक क्रिया है। यह एक प्रक्रिया या व्यापार है। यह वेदनात्मक प्रवृत्ति या रुचि से निर्धारित होता है। रुचि एक स्थायी प्रवृत्ति है। यह एक मानसिक संरचना है जो चेष्टात्मक क्रिया के लिये आवश्यक

[१] विलमर्री : मनोविज्ञान के मूलतत्त्व, पृ० २८३।

चालक-शक्ति प्रदान करती है। रुचि जितनी ही प्रबल होगी, उतनी ही वह प्रबल शक्ति पैदा करेगी, जो ध्यान को जाग्रत और पुष्ट करेगी। इस प्रकार रुचि एक स्थायी प्रवृत्ति के रूप में ध्यान को निर्धारित करती है।

"रुचि गुप्त ध्यान है, ध्यान सक्रिय रुचि है" (*Interest is latent attention; attention is interest in action*) (मैकडूगल)। रुचि ध्यान में व्यक्त होने वाली एक स्थायी प्रवृत्ति है। यह गुप्त ध्यान है। ध्यान रुचि में सुपुप्त होता है। यदि मन में कोई रुचि है, तो वह उन वस्तुओं पर ध्यान देने के लिये तय्यार रहेगा जो रुचि को तृप्त करती हैं। रुचि ध्यान की हेतु है। यह ध्यान की आत्मगत निर्धारिका है। ध्यान सक्रिय रुचि है। रुचि ध्यान में व्यक्त होती है।

रुचि वेदनात्मक प्रवृत्ति है जो ध्यान को जगाती है और स्थिर रखती है। यह केवल ध्यान को सम्भव बनाने वाली शक्ति को ही उत्पन्न नहीं करती, बल्कि उसे स्थिर भी रखती है। मन अन्य वस्तुओं को छोड़कर कुछ वस्तुओं पर क्यों ध्यान देता है, यह उसकी जन्मजात या अर्जित रुचियों पर निर्भर है। जन्मजात रुचि मूल प्रवृत्तियों में रुचि है। अर्जित रुचि अनुभव से मिलती है। वस्तुओं और विचारों के प्रति जो भाव होते हैं वे अर्जित रुचियाँ हैं। वे संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ होती हैं। जन्मजात या अर्जित रुचि एक प्रवृत्ति या संरचना होती है जो ध्यान को निर्धारित करती है।

रुचि ध्यान को सञ्चालित करती है। ड्रेवर रुचि को अपने सक्रिय रूप में एक प्रवृत्ति (Interest is disposition in its dynamic aspect)[1] मानता है, यह आधारभूत वेदनात्मक तत्त्व है जो अनुभव को "अर्थ" प्रदान करता है। "मूल्य की या उपयोगिता की वेदना" अनुभव के इस पहलू को स्पष्टता से व्यक्त करता है। जब हम रुचि के बाबत कहते हैं, तो हम एक वेदनात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। रुचि वेदनात्मक अनुभव नहीं है। यह एक प्रवृत्ति है। यह मन की एक संरचना है, उसका व्यापार नहीं। ध्यान रुचि से निर्धारित होता है।

[1] शिक्षा-मनोविज्ञान : पृ० १२६

जन्मजात रुचि बहिर्ध्यान और अव्यवहित ध्यान को निर्धारित करती है। हम उन वस्तुओं पर ध्यान देते हैं जो मूल प्रवृत्तियों को जगाती हैं। भाव या अर्जित रुचियां व्युत्पन्न और ऐच्छिक ध्यान को निर्धारित करती हैं। यदि किसी व्यक्ति में देशभक्ति की भाव है, तो कोई भी चीज़ जो उसके देश की समृद्धि या कष्ट को प्रभावित करेगी उसके ध्यान को आकर्षित करेगी। आत्म-निष्ठता की भाव स्थिर ऐच्छिक ध्यान को निर्धारित करती है।

रुचि ध्यान का आत्मगत हेतु है। यह हमेशा ध्यान से युक्त होती है। यदि आपकी संगीत में रुचि है, तो निश्चय ही आप उस पर ध्यान देंगे। रुचि जितनी ही अधिक होगी, ध्यान भी उतना ही अधिक होगा। लेकिन ध्यान सदैव रुचि से युक्त नहीं होता। हम कई ऐसी वस्तुओं पर ध्यान देते हैं जिनमें हमारी रुचि नहीं होती। हम दफ़्तर में संख्याओं को जोड़ते हैं यद्यपि उनमें हमारी रुचि नहीं होती। यह भी ठीक नहीं है कि ध्यान जितना ही अधिक होता है, रुचि भी उतनी ही अधिक होती है। ध्यान और रुचि में नियत साहचर्य नहीं होता। वे एक-दूसरे के पर्याय या परस्पर अभिन्न नहीं हैं। रुचि ध्यान का एक हेतु है। लेकिन ध्यान रुचि का हेतु नहीं है। ध्यान के साथ सदैव रुचि भी नहीं होती।

ध्यान की वस्तु विविध रूप से साक्षी या आत्मा से सम्बन्धित हो सकती है। वह उसके लक्ष्यों की साधक हो सकती है और उसमें सुखकर रुचि पैदा कर सकती है। अथवा वह उसके लक्ष्यों की घातक हो सकती है और उसमें पीड़ाप्रद रुचि पैदा कर सकती है। युद्ध का वर्णन आशावादी प्रकृति वाले सैनिक में, जो अपनी उन्नति का इच्छुक है, सुखकर रुचि पैदा करता है। वही वर्णन दूसरे निराशावादी प्रवृत्ति वाले सैनिक में जो मृत्यु के भय से आक्रान्त है, पीड़ाप्रद रुचि पैदा करता है।

कभी-कभी रुचि को एक क्षणिक प्रक्रिया नहीं कहते बल्कि मन की एक स्थायी दशा कहते हैं। हम फ़ुटबॉल, फ़ोटोग्राफ़ी, बाग़ लगाने में स्थायी रुचि रखते हैं। ये स्थायी रुचियाँ भी ध्यान को निर्धारित करती हैं। केवल क्षणिक रुचि ही ध्यान का हेतु नहीं है, बल्कि स्थायी रुचि भी ध्यान को निर्धारित

करती है। विश्वासों की व्यवस्थित समष्टियाँ हमारी बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक रुचियों को बनाती हैं। ये स्थायी मानवीय रुचियाँ भी ध्यान को निर्धारित करती हैं।

१०. ध्यान का विकास (Development of Attention)।

ध्यान का विकास होता है। इसके विकास की तीन भूमिकायें होती हैं। प्रथम, ध्यान प्रारम्भिक, अव्यवहित और अनैच्छिक होता है। यह मूल प्रवृत्यात्मक रुचि से निर्धारित होता है। यह मूल प्रवृत्यात्मक, अनुसन्धानात्मक होता है। सहज-रूप से ध्यान खींचने वाले तत्त्व इसके अनुकूल पड़ते हैं। तीव्रता, आकस्मिकता, नवीनता, आकर्षक गुण तथा उत्तेजनाओं या परिस्थितियों के अन्य लक्षण इस प्रकार के अनैच्छिक ध्यान के पक्ष में होते हैं। इसके पश्चात् सप्रयास, अर्जित, गौण या ऐच्छिक ध्यान की भूमिका आती है। यह बाह्य प्रेरकों, यथा भय या स्वस्थापन की प्रवृत्ति से संचालित होता है। ऐच्छिक ध्यान में सामाजिक शक्तियों का प्रभाव मन पर क्रिया करता है। अन्त में वस्तुगत रुचि की भूमिका आती है। पुनः वस्तुगत रुचि से प्रेरित ध्यान अनायास हो जाता है। यह अर्जित रुचि से निर्धारित होता है। इस प्रकार सप्रयास ध्यान केवल मध्यवर्ती भूमिका में होता है। बच्चा अपनी पुस्तक में बने हुए चित्रों पर अनायास ध्यान देता है। उसका ध्यान प्रारम्भिक, अव्यवहित और अनैच्छिक होता है। तब वह चित्रों की सहायता से अक्षरों, शब्दों और वाक्यों पर ध्यान देता है। क्रमशः वह उन पर ध्यान देने के लिए अपने संकल्प पर ज़ोर डालता है, और उसका ध्यान ऐच्छिक हो जाता है। तब वह अनुच्छेदों और पूरे पाठों को पढ़ने लगता है। उसका ध्यान गौण, अर्जित, सप्रयास और ऐच्छिक हो जाता है। तत्पश्चात् अध्ययन में उसकी वस्तुगत रुचि हो जाती है। और बिना संकल्प पर ज़ोर डाले वह अपने पाठों को पढ़ता है। वह अनायास ही उन पर ध्यान देने लगता है। यह ध्यान की तीसरी भूमिका है। यह आत्म-सम्मान की भावना (Sentiment of self-regard) से स्थिरीकृत स्थायी रुचियों से निर्धारित होता है।

११. ध्यान और चेतना (Attention and Consciousness)।

कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि ध्यान स्पष्ट और सजीव चेतना के

अतिरिक्त कुछ नहीं है। टिचनर कहता है, "यदि हम विशुद्ध वर्णन की दृष्टि से देखें, तो ध्यान मानसिक चेष्टा नहीं, बल्कि मानसिक प्रक्रियाओं की सजीवता है।"[१]

लेकिन यह मत ग़लत है। सजीव (Vivid) चेतना ध्यान का फल है, ध्यान से अभिन्न नहीं। ध्यान प्रकृतितः चेष्टा है। यह मानसिक क्रिया है जो किसी वस्तु पर केन्द्रित होती है और उसकी स्पष्ट और सजीव चेतना उत्पन्न करती है।

वार्ड कहता है कि ध्यान चेतना की पूर्व-स्थिति है। ध्यान मन की न्यूनतम क्रिया है जो चेतना को सम्भव बनाती है। ध्यान के अन्दर ध्यान की गतियाँ होती हैं। ध्यान की ये गतियाँ स्थिरीकरण या मन के केन्द्रीकरण के कार्य हैं। ये स्पष्ट और सजीव चेतना के हेतु हैं।

यह मत भी ग़लत है। वार्ड 'ध्यान' शब्द को असाधारण अर्थ में इस्तेमाल करता है। ध्यान का अर्थ है मन को केन्द्रित करना। केन्द्रीकरण का कार्य स्पष्ट और सजीव चेतना का हेतु है। इस अर्थ में ध्यान धुंधली चेतना का हेतु नहीं है। वास्तव में धुंधली चेतना ध्यान का पूर्व-हेतु है। हम किसी वस्तु पर तब तक ध्यान नहीं दे सकते जब तक हमें पहिले उसकी धुंधली चेतना न हो।

इस प्रकार धुंधली चेतना ध्यान का पूर्व-हेतु (Pre-condition) है। ध्यान स्पष्ट और सजीव चेतना का पूर्व-हेतु है। किन्तु ध्यान और स्पष्ट तथा सजीव चेतना एक नहीं हैं। न यह चेतना-मात्र का हेतु है, न धुंधली और अस्पष्ट चेतना का।

१२. ध्यान पर आदत का प्रभाव (Influence of Attention on Habit)।

ध्यान पर आदत के दो प्रभाव होते हैं। प्रथम, हम प्रासंगिक और वांछनीय वस्तुओं पर ध्यान देने की आदत बना सकते हैं। हम मन पर

[१] प्रारम्भिक मनोविज्ञान : पृ० ९२

स्वस्थ प्रभाव डालने वाले पाठों और वस्तुओं पर मन को केन्द्रित करने की आदत डाल सकते हैं। द्वितीय, हम अप्रासंगिक और अवांछनीय वस्तुओं पर ध्यान न देने की आदत भी बना सकते हैं। जो लोग बाजार में रहते हैं वे वहाँ के शोर-गुल पर ध्यान न देने की आदत डाल लेते हैं। जो रेलवे स्टेशन के पास रहते हैं वे गाड़ियों की सीटी और भड़भड़ पर ध्यान न देने के अभ्यस्त हो जाते हैं। "व्यक्ति सीख लेता है कि किस पर ध्यान देना चाहिए और किस पर नहीं, और इस प्रकार ध्यान और अनवधान की आदतें बना देता है" (वुडवर्थ)। इन आदतों के बिना हमारा जीवन अव्यवस्थित हो जायगा।

१३. ध्यान में गतियों का समायोजन (Motor Adjustments in Attention)

ध्यान में कुछ गतियों के समायोजन होते हैं। प्रथम, इसमें ध्यान की सामान्य मुद्रा होती है। "ध्यान की मुद्रा निश्चलता की मुद्रा होती है जिसमें समग्र शरीर ध्यान की वस्तु की ओर उन्मुख होता है" (वुडवर्थ)। बहिर्ध्यान में सारा शरीर वस्तु से समायुक्त होता है। जब हम कोई खेल देखते होते हैं, तो हम सीधे खड़े होते हैं, आगे की ओर किंचित झुकते हैं, गर्दन ऊँची रखते हैं, और सम्पूर्ण शरीर को ध्यान की वस्तु से समायोजित करते हैं। अन्तर्ध्यान में भी हम ऐसी ही निश्चलता की मुद्रा धारण करते हैं। "शरीर आगे की ओर झुक जाता है, गर्दन दृढ़ रहती है, और आँखें शून्य पर जमी होती हैं, जबकि ध्यान दिखाई पड़ने वाले पदार्थों के दायरे से बिल्कुल बाहर जमा होता है" (वुडवर्थ)।

द्वितीय, ध्यान में ज्ञानेन्द्रियों की गतियों का समायोजन होता है। बहिर्ध्यान में ज्ञानेन्द्रियाँ वस्तुओं से समायोजित होती हैं। उदाहरणार्थ, दृष्टि में आँखों को वस्तु पर केन्द्रित होना चाहिये, और तालों की गोलाई में वस्तु की दूरी के अनुसार परिवर्तन होना चाहिये। सुनने में, कान ध्वनि से समायोजित हो जाते हैं। स्पर्श में, हम हाथ से वस्तु का अनुसन्धान करते हैं। सूंघने में, हम इस प्रकार साँस अन्दर खींचते हैं कि गन्धयुक्त कण

नासा-रन्ध्र के ऊपरी भाग में प्राण-कला के सम्पर्क में आ जाते हैं। चखने में, हम मुँह के अन्दर पदार्थ को जीभ से दबाते हैं। संवेदनाओं में, हम ज्ञानेन्द्रियों को वस्तुओं से समायोजित करते हैं। बहिर्ध्यान सदैव ज्ञानेन्द्रियों की समायोजनकारी गतियों के साथ होता है, जो सम्बन्धित संवेदनाओं को अधिक पर्याप्त और पूर्ण बनाती हैं। ये गतियाँ ध्यान के तात्कालिक फल हैं। अंशतः उनकी प्रकृति अनैच्छिक होती है। वे विचार के बिना हो जाती हैं।

अन्तर्ध्यान में भी सम्बन्धित ज्ञानेन्द्रियों का वस्तुओं से थोड़ा सा समायोजन होता है। यदि हम अपने मकान की प्रतिमा का प्रत्याह्वान करने का प्रयत्न करें, तो हम पाते हैं कि हमारी आँखें कल्पित स्थान की दिशा में मुड़ना चाहती हैं। "किसी गन्ध का प्रत्याह्वान करने के प्रयत्न में हम प्रायः अनिवार्यतः साँस खींचने की सूक्ष्म गतियाँ करते हैं। स्वाद-प्रतिमाओं के प्रत्याह्वान में, जीभ हिलती है और लार बहाने को उत्तेजना मिलती है" (पेंजिल)।

तृतीय, *ध्यान के साथ कर्म-आवेगों के अत्यधिक प्रवाह के कारण शरीर* की अधिकांश पेशियाँ संकुचित होती हैं। "जैसे कोई किसी वस्तु पर प्रबल ध्यान देता है वैसे ही वह तन जाता है, माथे पर बल पड़ जाते हैं, दाँत जम जाते हैं, मुट्ठियाँ भी बंध सकती हैं। तनाव की मात्रा ध्यान के साथ बढ़ती है" (पिल्सबरी)। सारे शरीर में पेशियों के ये उन्मोच जो प्रबल ध्यान के साथ पेशियों के सामान्य संकोचों में प्रतिफलित होते हैं, सब गतियों के अवरोध से सम्बन्धित हैं।

अन्तर्ध्यान और बहिर्ध्यान दोनों में, कुछ अवरोधक (Inhibitory) प्रक्रियायें होती हैं। "संवेद्य वस्तुओं पर बहुत सूक्ष्म ध्यान देने में शरीर एक तनी हुई निश्चल मुद्रा में स्थित होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी श्वास-प्रश्वास की गतियाँ भी स्थगित-सी हो जाती हैं। यह स्थिर और निश्चल मुद्रा विघ्नकारी प्रभावों को, जो अन्यथा ध्यान में हस्तक्षेप कर सकते हैं, हटा कर ध्यान को आसान बनाती है।"[1] अन्तर्ध्यान में भी ध्यान-विक्षेप को रोकने

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान का आधार, १९०१, पृ० २६।

लिये शरीर की विघ्नकारी गतियों का निरोध होता है। "यह गतियों का निरोध विरोधी पेशियों के तनाव से होता है" (सली)।

चतुर्थ, व्यक्ति की विलक्षणताओं के कारण कुछ अन्य गतियाँ भी होती हैं। कुछ लोग सिर खुजलाते हैं; कुछ ओंठों को दबाते हैं; कुछ अपनी दाढ़ी सहलाते हैं; कुछ किसी विशेष दिशा में देखते हैं, इत्यादि।

ध्यान में केवल ये गति-तत्त्व ही शारीरिक प्रक्रियायें नहीं होते। अन्तर्ध्यान में विभिन्न संवेदनाओं से सम्बन्धित ज्ञान-केन्द्रों की क्रिया होती है, तथा कुछ पेशियों को नियंत्रित और समायोजित करने में कर्म-केन्द्रों की भी। और मस्तिष्क में स्थित केन्द्रों की क्रिया के कारण उनकी ओर अधिक मात्रा में रक्त दौड़ता है।

ध्यान में, चेतना के केन्द्र या ध्यान के क्षेत्र में सजीव संवेदनायें होती हैं, तथा चेतना के सीमा-प्रदेश या अनवधान के क्षेत्र में धुंधले संस्कार। टिचनर कहता है, "केन्द्र की सजीव संवेदनायें वे संवेदनायें हैं जिनसे सम्बन्धित स्नायविक प्रक्रियायें पुष्टीकृत होती हैं, और पृष्ठभूमि की धुंधली संवेदनायें वे हैं जिनसे सम्बन्धित स्नायविक प्रक्रियायें निरुद्ध हो चुकी हैं। स्नायविक पुष्टीकरण स्पष्टता के समानान्तर है, और स्नायविक निरोध अस्पष्टता के समानान्तर।"[1]

१४. अनवधान (Inattention)

हम पहिले ही अनवधान के पारिभाषिक अर्थ को स्पष्ट कर चुके हैं। ध्यान का अर्थ है मन का किसी वस्तु पर स्थिर होना। इसमें मन का अन्य वस्तुओं से हट जाना भी शामिल है। मन को हटाने की इस प्रक्रिया का पारिभाषिक नाम अनवधान है। अनवधान हमें वस्तुओं की अस्पष्ट और धुंधली चेतना देता है।

जब अध्यापक विद्यार्थी को उसकी 'असावधानता' के कारण डांटता है, तो विद्यार्थी पूर्णतया असावधान नहीं होता। वह पाठ के अतिरिक्त किसी

[1] प्रारम्भिक मनोविज्ञान; पृ० १०७, १०९।

ऐसी वस्तु पर ध्यान दे रहा होता है जो उस क्षण उसकी रुचि को जाग्रत करती है। इस प्रकार, अनवधान का अर्थ ध्यान का नितान्त अभाव नहीं है: एक चीज़ पर अनवधान का अर्थ किसी अन्य अवांछित चीज़ पर ध्यान है। "सामान्य मनुष्य की अनवधान की तथाकथित अवस्थायें वास्तव में उस समय किसी अवांछित वस्तु पर ध्यान की अवस्थायें हैं" (पिल्सबरी)। स्टाउट ठीक कहता है कि, "सामान्य जाग्रत जीवन में पूर्ण अनवधान बिल्कुल अपवादस्वरूप है। यह आकस्मिक और तीव्र आवेश के धक्के से हो सकता है। यह सोने की तय्यारी की अवस्था में भी होता है। अन्यथा, सामान्य जाग्रत जीवन में, ऐसा प्रतीत होता है कि हम सदैव किसी न किसी वस्तु पर ध्यान देते होते हैं। हो सकता है कि ध्यान प्रत्येक वस्तु को थोड़ा थोड़ा ऊपर से छूता हुआ एक वस्तु से दूसरी पर उड़ता रहे। लेकिन यह प्रायः सदैव किसी रूप और मात्रा में प्रस्तुत रहता प्रतीत होता है। यद्यपि पूर्ण अनवधान दुर्लभ होता है, तथापि आंशिक अनवधान हमारे मानसिक जीवन में निरन्तर रहता है। ऐसी वस्तुयें निरन्तर चेतना में वर्तमान रहती हैं जिन पर ध्यान नहीं जाता क्योंकि मन पहिले से ही दूसरी वस्तु में संलग्न रहता है।"[1] आंशिक अनवधान की वस्तुयें चेतना के सीमा-प्रदेश या अनवधान के क्षेत्र में धुंधले संस्कार बनाती हैं। जाग्रत चेतना में पूर्ण अनवधान असम्भव है। सामान्य जाग्रत जीवन में पूर्ण अनवधान या नितान्त शून्यमनस्कता नाम की कोई चीज़ नहीं पाई जाती।

१५. ध्यान के विघ्न (Distraction)

जब हम एक वस्तु पर ध्यान देते होते हैं, तो बहुधा अन्य वस्तुयें हमारा ध्यान भंग कर देती हैं। जब आप किताब पढ़ते होते हैं, तो आपका ध्यान पड़ोस के मकान में होने वाले संगीत या दोस्तों की बातचीत पर चला जाता है। "ध्यान भंग करने वाली वस्तु वह है जो ध्यान आकर्षित करने के हेतु प्रतियोगिता करती है, जिसके पक्ष में इसके लिये कुछ अनुकूल तत्व होते हैं, और जो इस बल पर स्थिर ध्यान के विरुद्ध कार्य करती है" (वुडवर्थ)।

[1] मनोविज्ञान का आधार, पृ० २४

ध्यान-विक्षेप पर कई प्रकार से विजय पाई जा सकती है। "पहिले, कोई जिस काम को करने का प्रयत्न कर रहा है उसमें अधिक शक्ति लगाई जा सकती है।" पढ़ते समय ध्यान-विक्षेप पर विजय पाने के लिये बाधा देने वाले शोर को दबाने के लिये आप ऊँची आवाज़ से पढ़ सकते हैं। "द्वितीय, प्रायः बार-बार आने वाले विघ्नों पर ध्यान न देने की आदत डाली जा सकती है, और इस प्रकार उनकी अनायास उपेक्षा की जा सकती है।" यदि आप किसी रेलवे स्टेशन के समीप रहते हैं, तो आप अपने ही रोचक कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करके धीरे-धीरे भागने वाली गाड़ियों के शोर के प्रति उदासीन रहने की आदत डाल सकते हैं। यह ध्यान का निषेधात्मक समायोजन है। जब आप किसी रोचक कार्य में तल्लीन रहेंगे, तो विघ्नों की शक्ति स्वयमेव क्षीण हो जायगी। यदि आप जान-बूझकर विघ्नों को दूर करने की चेष्टा करेंगे, तो आप उन्हें पृष्ठभूमि की अपेक्षा अग्रभूमि में रखेंगे। अतः विघ्नों से सचेत होकर मत लड़िये। आपको अपने ही कार्य पर ध्यान बढ़ाना चाहिये। तृतीय, कुछ अवस्थाओं में विघ्न को प्रधान कार्य के साथ संयुक्त करके भी विघ्न पर विजय पाई जा सकती है। नवसिखुआ जब दाहिने हाथ की उंगलियों से हारमोनियम के परदों पर राग बजाने लगता है तो धौंकनी को चलाने के कारण राग से ध्यान छूट जाता है। धौंकना और बजाना दोनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते। लेकिन अभ्यास से वह दोनों कामों को एक साथ संयुक्त कर लेता है।

यह तथ्य कुछ विचित्र सा लगता है कि विघ्न की कुछ मात्रा कार्यक्षमता को घटाने के स्थान पर उसे बढ़ाती है। विघ्न होने पर व्यक्ति को कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। उसे उस अवसर पर परिस्थिति पर अधिकार करने का प्रोत्साहन मिलता है। उसका आत्मनिष्ठता की भाव उसे कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। किन्तु जब विघ्न प्रबल होता है, तो उससे कार्यक्षमता घट जाती है क्योंकि मानसिक शक्ति उसका मुकाबला नहीं कर पाती। विघ्नों पर विजय पाने में मानसिक शक्ति का नाश होता है। और फलतः थकान पैदा होती है।

अध्याय ८

संवेदना

(SENSATION)

१. संवेदना का स्वरूप (The Nature of Sensation)

संवेदना ज्ञान का सबसे सरल स्वरूप है। यह एक मामूली संस्कार है जिसे कोई उत्तेजना मन पर अंकित करती है। उत्तेजना किसी ज्ञानेन्द्रिय या बोध स्नायु के अन्तिम सिरे पर क्रिया करती है; इस प्रकार जो संस्कार बनता है उसे बोध-स्नायु मस्तिष्क में स्थित किसी बोध-केन्द्र तक ले जाता है; तत्पश्चात् मन में संवेदना पैदा होती है। रंगों, ध्वनियों, स्वादों, गन्धों, ताप, शीत इत्यादि की संवेदनाओं में यही होता है। उत्तेजनायें या तो शरीर के बाहर से आती हैं या अन्दर से। या तो वे शरीर बहिःस्थ होती हैं या शरीरान्तःस्थ, भूख, प्यास, थकान, शिरःपीड़ा इत्यादि की आंगिक (Organic) संवेदनायें शरीर की परिवर्तित आन्तरिक दशाओं से उत्पन्न होती हैं। उनकी कोई विशेष ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होतीं। संवेदनायें कुछ गुणों के सरल संस्कार हैं। किन्तु उनके अर्थ ज्ञात नहीं होते। ज्योंही उनके अर्थ ज्ञात हो जाते हैं वे प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाते हैं। एक नवजात शिशु को विशुद्ध संवेदनायें होती हैं। किन्तु प्रौढ़ों को कदापि बिल्कुल विशुद्ध संवेदनायें नहीं हो सकतीं। वे संवेदनाओं के अर्थ ग्रहण करते हैं तथा उन्हें बाह्य जगत् में निश्चित स्थान घेरने वाली वस्तुओं (यथा, घंटी) के गुणों (यथा, ध्वनि) की संवेदनाओं के रूप में जानते हैं। किन्तु एक नवजात शिशु के लिये संवेदनाओं का अर्थ जानना असम्भव है। इस प्रकार विशुद्ध संवेदनाओं की परिकल्पित सत्ता होती है—वे प्रत्याहृत सत्तायें हैं। डा० वार्ड कहते हैं, "विशुद्ध संवेदना एक मनोवैज्ञानिक कल्पना है।" संवेदनायें हमारे ज्ञान की सबसे प्रारम्भिक कच्ची सामग्री हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान में परिणत किया जाता है। हम प्रत्यक्ष ज्ञान के स्पष्टीकरण के लिये उनकी सत्ता में विश्वास करते हैं। वे प्रत्यक्ष ज्ञान के संघटक हैं।

२. उत्तेजना तथा संवेदना (Stimulus and Sensation)

संवेदना की उत्पत्ति का कारण उत्तेजना है। उत्तेजना परिवेश में स्थित एक अपेक्षाकृत सरल तत्व है जो एक आदाता या ज्ञानेन्द्रिय पर क्रिया करता है। यह शरीर के बाहर होती है। प्रकाश की एक रश्मि आँख पर क्रिया करती है और रंग की संवेदना उत्पन्न करती है। उत्तेजना भौतिक जगत् में स्थित एक सरल तत्व होती है। यह परिस्थिति से भिन्न होती है, जो उत्तेजनाओं की एक जटिल समष्टि होती है। हम उसे एक समग्र इकाई के रूप में देखते हैं। यह एक जटिल समष्टि है। यह प्रत्यक्षीकरण का विषय होती है। संवेदना से उसका अनुभव नहीं होता। उत्तेजना संवेदना को पैदा करती है। परिस्थिति का ज्ञान प्रत्यक्षीकरण से होता है।

विभिन्न प्रकार की उत्तेजनायें विभिन्न प्रकार की संवेदनायें पैदा करती हैं। विभिन्न तरंग आयामों (Wave-lengths) की प्रकाश रश्मियाँ विभिन्न प्रकार की रंग-संवेदनायें उत्पन्न करती हैं। विपुलता (Amplitude) आयाम (Length), और रचना (Composition) में अन्तर रखने वाली ध्वनि तरंगें विभिन्न प्रकार की ध्वनि-संवेदनाओं को जन्म देती हैं। स्वाद-कलिकाओं (Taste-buds) को उत्तेजित कर सकने वाले परिमाण के द्रव्य-कणों से पूरित घोल स्वाद की संवेदनायें पैदा करते हैं। नासा-कला (Nasal membrane) को प्रभावित करने वाले गन्धयुक्त पदार्थों से छूटे हुये वायव्य (Gaseous) कण गन्ध की संवेदनाओं को उत्पन्न करते हैं। त्वचा तथा श्लेष्म-कला (Mucous membrane) को प्रभावित करने वाले ठोस पदार्थों से दबाव की त्वक्-संवेदनायें पैदा होती हैं। तेजस्वी उत्तेजनायें (Radiant stimuli) ताप की संवेदनायें उत्पन्न करती हैं। कटना, चुभना, इत्यादि हानिकारक उत्तेजनायें तथा क्षति (Tissue) को क्षति पहुँचाने वाली उत्तेजनायें पीड़ा की संवेदना पैदा करती हैं। ये शरीर के बाहर रहने वाली उत्तेजनायें हैं। ये आदातृ अंगों या ज्ञानेन्द्रियों तथा बोध-स्नायु-कोशाओं पर क्रिया करती हैं।

शरीर के अन्दर भी उत्तेजनायें होती हैं। ये स्वयं शरीर के अन्दर पैदा होने वाले शारीरिक परिवर्तन हैं। ये शरीरान्तःस्थ उत्तेजनायें हैं। आमाशय

की दीवारों में होने वाले पेशी-संकोच भूख की संवेदना पैदा करते हैं। तालु की शुष्कता से प्यास की संवेदना पैदा होती है। पेशियों की गतियाँ गति-संवेदनायें पैदा करती हैं। शारीरिक दशाओं से आंगिक और गति-संवेदनायें पैदा होती हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की संवेदनायें विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती हैं।

३. उत्तेजना और प्रतिक्रिया (Stimulus and Response)

व्यवहारवादी मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान समझता है। व्यवहार उत्तेजना के प्रति एक प्रतिक्रिया है। उसे इस सूत्र में प्रकट किया जाता है—

उ→प्र

शरीर उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया करता है। अतः इस तथ्य को इस सूत्र से व्यक्त किया जायगा :—

उ→श→प्र

यहाँ 'उ' उत्तेजना के स्थान पर है; 'श' शरीर के लिये है; 'प्र' प्रतिक्रिया के लिये। "उत्तेजनायें परिवेश से आती हैं, और प्रतिक्रियायें परिवेश की ओर जाती हैं। हमें 'सं', परिवेश, को अपने सूत्र में लाने की आवश्यकता है, और हमें इसे दोनों सिरों पर रखना चाहिये, एक बार उत्तजना के उद्गम के रूप में और पुनः प्रतिक्रिया के गन्तव्य स्थान के रूप में। इस प्रकार विस्तृत किये जाने पर सूत्र का रूप यह हो जाता है :—

सं—उ—श—प्र—सं

इसे इस तरह पढ़ा जायगा; परिवेश से आने वाली उत्तेजनायें व्यक्ति को प्रतिक्रिया के रूप में गतियाँ करने को प्रेरित करती हैं जो परिवेश को बदलती हैं।"[१]

व्यक्ति परिवेश में स्थित उत्तेजनाओं से संवेदनायें प्राप्त करता है, जो उसके आदाताओं या ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करती हैं। वह उनके प्रति प्रतिक्रिया

---

१ वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ८।

कार्यकारी अंगों या पेशियों और ग्रन्थियों के द्वारा करता है। ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया में वह पैशिक गतियाँ और ग्रन्थि-स्राव (Glandular Reaction) करता है। उसकी सुषुम्ना और मस्तिष्क में केन्द्रीय स्नायु-कोशायें होती हैं जो आदाताओं को कार्यकारी अंगों से जोड़ती हैं। पेशियाँ और ग्रन्थियाँ प्रतिक्रियाकारी अंग होते हैं। पेशियाँ दो प्रकार की होती हैं, राजीव (Striped) और अरेख (Unstriped)। राजीव पेशियाँ इच्छा के शासन में होती हैं। वे, बाहु, टाँगों, धड़, जीभ और स्वर-यंत्र को हिलाती हैं। अरेख पेशियाँ इच्छा के आधीन नहीं होतीं। वे रक्तवाहिनियों, आँतों, मल-विसर्जन और प्रजनन के अंगों पर शासन करती हैं। इसलिये प्रतिक्रिया से हमारा तात्पर्य "एक निर्दिष्ट उत्तेजना से पैदा होने वाले समग्र राजीव और अरेख पेशियों के और ग्रन्थियों के परिवर्तनों" (वाटसन) से है। प्रतिक्रियायें सरल हो सकती हैं या जटिल। व्यवहार परिवेशगत उत्तेजनाओं के प्रति शरीर की सरल प्रतिक्रियाओं से होता है, या जटिल प्रतिक्रियाओं की समष्टियों से होता है, यथा सहज-प्रवृत्ति-जन्य कार्यों से।

४. संवेदनाओं के धर्म (Attributes of Sensations)

संवेदनाओं की कुछ सामान्य ज्ञेय विशेषताएँ होती हैं। संवेदनाओं के गुण, तीव्रता, काल, व्याप्ति और स्थानीय-चिह्न होते हैं। ये उनके धर्म हैं।

गुण (Quality)—संवेदनाओं के गुणों में अन्तर होता है। रंगों, ध्वनियों, स्वादों, गन्धों, ताप और शीत की संवेदनाएँ परस्पर गुण की दृष्टि से भिन्न हैं। उनमें जातिगत भिन्नता (Generic Difference) होती है। ये विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ हैं। उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक् होती हैं। पृथक् प्रकार की उत्तेजनाएँ उनको पैदा करती हैं। रंगों की संवेदनाएँ अक्षिगोलक (Eyeball) के दृष्टि-पटल (Retina) पर व्योम-तरंगों (Ether waves) की क्रिया से उत्पन्न होती हैं। ध्वनियों की संवेदनाएँ श्रवण-अंग पर वायु-तरङ्गों की क्रिया से उत्पन्न होती हैं। रङ्ग की एक ही जाति के अन्तर्गत लाल, हरा, नीला, पीला इत्यादि परस्पर भिन्न होते हैं। उनमें उपजातिगत

अन्तर (Specific Difference) है। लाल और नीला एक ही जाति के अन्दर दो पृथक् उपजातियाँ हैं; ताप और शीत दो भिन्न जातियाँ हैं। संवेदनाओं के जातिगत अन्तर में विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाएँ, विभिन्न प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ, और विभिन्न प्रकार के बोध—या अन्तर्गामी स्नायु होते हैं।

तीव्रता (*Intensity*)—एक ही गुण की संवेदनाओं में तीव्रता की दृष्टि से अन्तर हो सकता है। प्रकाश धुंधला या उज्ज्वल हो सकता है, ध्वनि लघु या विपुल हो सकती है, गन्ध हल्की या तेज़ हो सकती है, स्वाद निर्बल या तीखा हो सकता है, दबाव हल्का या भारी हो सकता है। मन्द प्रकाश प्रकाश की धुंधली संवेदना पैदा करता है। उज्ज्वल प्रकाश प्रकाश की तीव्र संवेदना उत्पन्न करता है। सभी संवेदनाओं में तीव्रता का अन्तर होता है; प्रकाश, ध्वनियाँ, स्वाद, गन्ध, ताप, पीड़ायें, दबाव, भूख, प्यास, थकान इत्यादि सभी में न्यूनाधिक तीव्रता होती है। तीव्रता कम से कम लेकर अधिक से अधिक तक हो सकती है। अन्य दशाओं के स्थिर रहने पर, उत्तेजनाओं की अधिक तीव्रता से संवेदनाओं की अधिक तीव्रता उत्पन्न होती है।

काल (*Duration*)—प्रत्येक संवेदना का एक संवेद्य (Sensible) काल होता है। संवेदना मन में कुछ समय तक रह सकती है। ध्वनि की संवेदना एक कम या अधिक काल तक हो सकती है। पाँच सेकिंड तक रहने वाली ध्वनि समाप्त होने पर बीस सेकिंड तक होने वाली ध्वनि से पृथक् लगती है। यह काल का अन्तर है। गुण और तीव्रता में समान संवेदनाएँ काल में भिन्न हो सकती हैं।

व्याप्ति (*Extensity*)— दृष्टि और स्पर्श की संवेदनाओं की व्याप्ति होती है—यह सभी मनोवैज्ञानिक मानते हैं। पहिले चाँद को देखिये और फिर तारों को। आपको दो दृष्टि-संवेदनायें मिलती हैं। पहिली संवेदना दूसरी से अधिक व्याप्ति वाली है। एक पुस्तक को पहिले अंगुली की नोक से और फिर हथेली से छुओ। आपको दो स्पर्श-संवेदनायें प्राप्त होती हैं। पहिली की

व्याप्ति दूसरी से कम है। व्याप्ति संवेदना की वह विशेषता है जिसका कारण उत्तेजना से प्रभावित होने वाला संवेदनशील तल-प्रदेश (Sensitive Surface) है। व्याप्ति तीव्रता से पृथक है। एक सिक्का अपनी त्वचा पर रखिये। फिर दूसरा सिक्का उसकी बगल में रखिये। दूसरी स्पर्श-संवेदना की व्याप्ति अधिक होगी। अब दूसरे सिक्के को अपनी त्वचा पर पहिले के ऊपर रखिये। आपकी स्पर्श-संवेदना अधिक तीव्र हो जायगी। व्याप्ति विस्तार (Extension) से पृथक है। व्याप्ति संवेदनाओं की विशेषता है। विस्तार भौतिक वस्तुओं की विशेषता है। एक भौतिक वस्तु का विस्तार वही रहता है; लेकिन जैसे-जैसे हम उससे दूर हटते जाते हैं, वह छोटी प्रतीत होती है। यहाँ पर दृष्टि-संवेदना की व्याप्ति परिवर्तित होती है, जबकि वस्तु का विस्तार वही रहता है। वस्तु का विस्तार इंचों, फुटों इत्यादि में नापा जा सकता है। लेकिन संवेदनाओं की व्याप्ति इस प्रकार नहीं नापी जा सकती। विस्तार का प्रत्यक्षीकरण दृष्टि और स्पर्श-संवेदनाओं की व्याप्ति से विकसित होता है।

विलियम जेम्स का विचार है कि अन्य प्रकार की संवेदनाओं में भी व्याप्ति होती है। बिजली की 'कड़क' की संवेदना स्लेट पर चलने वाली पेन्सिल की 'खर-खर' से अधिक व्याप्त होती है। कुनैन के घोल का स्वाद जिसमें जीभ डुबाई जाती है जीभ की नोक पर रखी हुई शक्कर के स्वाद से अधिक व्याप्त होता है। गुलाब के गुच्छे की गन्ध की व्याप्ति एक गुलाब की गन्ध से अधिक होती है। सारे शरीर की पीड़ा सिर दर्द से अधिक व्याप्त होती है। इस प्रकार सभी प्रकार की संवेदनाओं में व्याप्ति होती है। विलियम जेम्स देश (Space) के प्रत्यक्षीकरण को संवेदनाओं की व्याप्ति से विकसित करने का प्रयत्न करता है।

स्थानीय-चिह्न (Local sign)—यदि कोई व्यक्ति एक ही पेन्सिल की नोक से समान दबाव के साथ आपके गाल, माथे और नाक को क्रमशः छूता है, तो आपकी स्पर्श-संवेदनायें परस्पर स्थानीय-चिह्नों में पृथक होंगी। गुण और तीव्रता की दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं होगा। स्थानीय चिह्न एक

फेच्नर ने इस प्रकार नियम बनाया: "संवेदना की तीव्रता में समानान्तर वृद्धि (Arithmetical progression) करने के लिए उत्तेजना में *गुणोत्तर वृद्धि (Geometrical progression)* होनी चाहिए।" "संवेदना उत्तेजना की छेदा (Logarithm) के अनुपात में बढ़ती है।" यह वेबर-फेच्नर नियम के नाम से प्रसिद्ध है। इसका अर्थ यह है कि संवेदना में एक निश्चित इकाई की वृद्धि करने के लिए तत्सम्बन्धी उत्तेजना को एक *स्थिर अंश से गुणा करना चाहिए। कल्पना कीजिए कि 'य' ध्वनि-संवेदना की* न्यूनतम ज्ञेय तीव्रता है, ९ उत्तेजना (वायु-कंपन) की तीव्रता है, १ संवेदना की न्यूनतम ज्ञेय वृद्धि है, और $\frac{४}{३}$ वह स्थिर अंश है जिससे 'य' में १ की वृद्धि करने के लिए उत्तेजना को गुणा करना है। तो संवेदना की य+१, य+२, य+३ इत्यादि तीव्रताओं को पैदा करने के लिए उत्तेजना की तीव्रताओं को क्रमशः १२ ($= ९ \times \frac{४}{३}$), १६ ($= १२ \times \frac{४}{३}$), २१ $\frac{१}{३}$ ($= १६ \times \frac{४}{३}$) इत्यादि होना चाहिए। स्थिर अंश संवेदना का गुणांक (Coefficient of sensibility) कहलाता है।

किन्तु वेबर-फेच्नर-नियम कुछ सीमाओं के अन्दर और लगभग ही ठीक है। प्रथम, इस नियम का स्वाद और गन्ध की संवेदनाओं में सत्यापन (Verification) नहीं हुआ है। ताप में ये निष्कर्ष अनिश्चित पाये गए हैं, श्रवण, दृष्टि, दबाव, और गति-संवेदना के विषय में इस नियम का पूर्ण सत्यापन नहीं हुआ है। द्वितीय, यह नियम सबसे ज्यादा ठीक तीव्रता के विस्तार (Range of intensity) के मध्य में लागू होता है। ऊर्ध्व और निम्न सीमाओं की ओर इसके निष्कर्ष बिल्कुल अनिश्चित पाये गए हैं। यह नियम जितनी माँग करता है उसकी अपेक्षा, संवेदना निम्न सीमा की ओर अधिक शीघ्रता के साथ बढ़ती है, और ऊर्ध्व सीमा की ओर कम शीघ्रता के साथ। तृतीय, यह *नियम गुप्त रूप से मान लेता है कि संवेदना एक निश्चित इकाई से बढ़ती है।* लेकिन यह सत्य नहीं है। २० तोले में १ तोले की वृद्धि का वैसा ही अनुभव होना आवश्यक नहीं है जैसा २० सेर में एक सेर की वृद्धि का होता है। अन्त में, जेम्स और मुंस्टरबर्ग (Munsterberg) इस

बात की ओर संकेत करते हैं कि एक प्रबल संवेदना कई निर्बल संवेदनाओं का योग नहीं है, बल्कि गुण में एक नितान्त नवीन संवेदना होती है।

इस नियम का शरीरशास्त्रीय स्पष्टीकरण यह दिया गया है कि यह स्नायु-तन्त्र के स्वभाव के कारण है। "जब कोई स्नायु उत्तेजित होता है तो उसकी उद्दीप्यता (Sensibility) का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है, इससे तत्सम्बन्धी स्वकीय केन्द्रों (Cortical centres) में कोई प्रभाव पैदा करने के लिए अधिक प्रबल उत्तेजना की आवश्यकता होती है।"[1] इस नियम का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी दिया गया है। वुंड्ट सापेक्षता के सामान्य मनोवैज्ञानिक नियम से इसका स्पष्टीकरण करता है, जिसके अनुसार किसी मानसिक दशा का चेतन प्रभाव पूर्ववर्ती मानसिक दशाओं पर निर्भर है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक और शरीर शास्त्रीय नियमों के प्रकाश में इस नियम का अर्थ निकाला जाता है।

६. संवेदनाओं के भेद (Kinds of Sensations)

संवेदनाओं के तीन भेद हैं: (१) आंगिक संवेदनायें, (२) विशेष संवेदनायें, और (३) गति-संवेदनायें। भूख, प्यास इत्यादि आङ्गिक संवेदनायें हैं। रंग, ध्वनि, स्वाद, गन्ध, दबाव, ताप, शीत, इत्यादि विशेष संवेदनायें हैं। हिलने-डुलने की संवेदनायें गति-संवेदनायें हैं। आंगिक संवेदनायें शरीर के आंतरिक अंगों की दशाओं से उत्पन्न होती हैं। विशेष संवेदनायें विशेष प्रकार की उत्तेजनाओं द्वारा आँख, कान, जीभ, नाक, और त्वचा नामक विशेष ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजन से पैदा होती हैं, गति-संवेदनायें पेशी, कंडरा (Tendon) और जोड़ों में, जो गति के अंग हैं, परिवर्तनों से पैदा होती हैं।

७. आंगिक संवेदनायें (Organic Sensations)

कुछ आंगिक संवेदनाओं का स्थान निर्धारित नहीं हो सकता। ये जीवन वेदनायें (Vital feelings) हैं, यथा, आराम और बेचैनी की संवेदनायें। ये समग्र शरीर की सामान्य स्थिति से पैदा होती हैं। ये संवेदनायें एक समग्र

[1] मेलोन : मनोविज्ञान के तत्व, पृ० ३१९

संवेदना में मिल जाती हैं जिसे सामान्य संवेदना या सह संवेदना (Common sensibility or coenæsthesis) कहते हैं। आराम, बेचैनी, शारीरिक स्वस्थता या अस्वस्थता की संवेदनाओं का स्थानीयकरण नहीं हो सकता। कुछ आंगिक संवेदनाओं के स्थान का अस्पष्ट ज्ञान होता है। सिर दर्द, भूख, प्यास इत्यादि के स्थान अस्पष्ट होते हैं। प्यास गले और तालू में मालूम हो सकती है। सिर दर्द सिर में मालूम हो सकता है। कुछ आंगिक संवेदनाओं का स्थानीयकरण निश्चित होता है, यथा, कटने, जलने, छाले इत्यादि का। क्षतिग्रस्त ऊति (Injured tissue) में उनका अनुभव हो सकता है।

आंगिक संवेदनाओं की विशेष ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होतीं। ये बाह्य उत्तेजनाओं से पैदा नहीं होतीं। शरीर के आन्तरिक अंगों में परिवर्तनों से ये उत्पन्न होती हैं। भूख एक आंगिक संवेदना है। जब आमाशय अपनी मथन-क्रिया शुरू करता है, तब आमाशय की दीवारों के आपस में रगड़ने से भूख की उत्पत्ति होती है। प्यास गले के पिछले भाग में स्थित कला (Membrane) की शुष्कता से पैदा होने वाली संवेदना है। इनका ज्ञान देने में कम महत्व होता है। ये बाह्य जगत के विषय में कोई सूचना नहीं देतीं। ये केवल आपकी जीवन-प्रक्रिया के मापक हैं। ये हमें शरीर की स्वस्थ या अस्वस्थ अवस्था की सूचना देती हैं। इनकी परस्पर संयुक्त होने की प्रवृत्ति होती है। ये एक समष्टि में घुल-मिल जाती हैं। जैसे रंग, ध्वनि इत्यादि की विशेष संवेदनायें एक-दूसरी से पृथक् होती हैं, वैसे ये पृथक् नहीं होतीं। उनको पुनर्जीवित भी आसानी से नहीं किया जा सकता। भूख और प्यास की संवेदनाओं को स्मरण करना बहुत मुश्किल होता है। किन्तु विशेष संवेदनायें आसानी से पुनर्जीवित हो सकती हैं, अधिकांशतः उनका स्थानीयकरण नहीं हो सकता। ये हमारे सुख और दुःख के महत्वपूर्ण हेतु हैं। उनका संवेगात्मक मूल्य (Emotive value) अत्यधिक होता है। आराम, बेचैनी, शारीरिक स्वस्थता और अस्वस्थता की संवेदनायें हमारे सुख-दुःख को गम्भीर रूप से प्रभावित करती हैं।

८. विशेष संवेदनायें (Special Sensations.)

रंग, ध्वनि, स्वाद, गन्ध, ताप, दबाव इत्यादि की संवेदनायें विशेष संवेदनायें हैं। उनकी विशेष अग्रेन्द्रियां (End-organs) या ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं, यथा, आँख, कान, जीभ, नाक और त्वचा। ये विशेष प्रकार की बाह्य उत्तेजनाओं से उत्पन्न होती हैं; यथा, व्योम-तरंगें, वायु-तरंगें इत्यादि। ये एक-दूसरी से अलग स्पष्टतया पहिचानी जा सकती हैं। उनका स्थानीयकरण हो सकता है। वे शरीर पर या बाह्य जगत् में स्थित देश के निश्चित बिन्दुओं से सम्बन्धित की जा सकती हैं, उनका ज्ञानात्मक मूल्य (Cognitive value) भी बहुत होता है। वे हमें बाह्य वस्तुओं के गुणों का ज्ञान देती हैं। रंगों, ध्वनियों, स्वादों, गन्धों, ताप, शीत और दबाव की संवेदनायें बाह्य वस्तुओं के संवेद्य गुणों को हमारे सामने प्रकट करती हैं। ये बाह्य जगत्-विषयक हमारे ज्ञान की कच्ची सामग्री हैं। आंगिक और गति-संवेदनाओं की अपेक्षा उनमें प्रकार और मात्राओं की अधिक विविधता होती है। दार्ष्टिक, श्रवण-संबन्धी, त्वक्-सम्बन्धी, घ्राण-सम्बन्धी और स्वाद-सम्बन्धी संवेदनाओं के बहुत से भेद होते हैं।

९. गति संवेदनायें (Kinaesthetic or Motor Sensations)

गति-संवेदना पेशियों, कंडराओं और जोड़ों की गतियों की सूचना देती है। यह केवल पेशियों की संवेदना नहीं है, बल्कि कंडराओं और जोड़ों की भी। पेशियों, कंडराओं और जोड़ों में रहने वाले स्नायुओं के सिरे पेशियों के सिकुड़ने तथा जोड़ों के हिलने के साथ खिचने और दबने से उत्तेजित होते हैं, तथा तनाव, भार और शारीरिक स्थिति और गति की संवेदनायें देते हैं। यह संवेदना पेशियों, कंडराओं और सन्धियों की संवेदना है, केवल पेशियों की नहीं।

दो प्रकार की पेशियां होती हैं, ऐच्छिक और अनैच्छिक। ऐच्छिक पेशियों पर कृति-शक्ति (Will power) का शासन होता है। बाह्य अंगों, धड़ और चेहरे की पेशियां ऐच्छिक हैं। अनैच्छिक पेशियां कृति-शक्ति के नियंत्रण में नहीं होती। आमाशय की दीवार की, आँतों और हृदय की पेशियां अनैच्छिक हैं। ऐच्छिक पेशियाँ लम्बी और रेखांकित होती हैं। अनैच्छिक पेशियाँ छोटी

और सिरों की ओर पतली होती हैं तथा उन पर रेखायें नहीं होतीं। लेकिन हृदय की पेशियां यद्यपि अनैच्छिक होती हैं, तथापि उन पर रेखायें होती हैं। किन्तु साधारण राजीव-पेशी-तन्तुओं की अपेक्षा वे बहुत छोटी होती हैं।

"राजीव पेशियाँ समग्र शरीर के प्रमुख भाग को बनाती हैं। प्रत्येक पेशी न्यूनाधिक रूप से एक अवयव-समष्टि होती है, जो कई शक्लें और आकार ग्रहण कर सकती है। पेशी की आकारिक इकाई (Morphological unit) एक पेशी-तन्तु या पेशी-कोशा होती है। प्रत्येक पेशी में सूत्र-तुल्य कोशाओं की एक बड़ी संख्या होती है, जो प्रायः पेशी के अक्ष के समानान्तर स्थित होती है। एक या दोनों सिरों पर पेशी पतली हो जाती है और किसी कंडरा से जुड़ जाती है। कंडरायें भी हड्डियों से चिपकी होती हैं। पेशियों के तन्तु बड़े या छोटे गट्ठरों में बंधे होते हैं, प्रत्येक गट्ठर संयोजक ऊति (Connecting tissue) से बंधा होता है। एक कंचुक या आवरण (Sheath) समग्र पेशी को घेरे रहता है"।[1]

कर्म-स्नायु-कोशाओं के छोर पेशियों में होते हैं। केन्द्रीय कर्म-स्नायु-कोशाओं से शक्ति आती है और पेशियों को हिलाती है। पेशियों की गतियों की सूचना बोध-स्नायु-कोशाओं से मस्तिष्क को मिलती है। प्रत्येक पेशी में संकोच की शक्ति होती है और इस प्रकार वह छोटी या बड़ी हो सकती है। क्योंकि इसके सिरे अस्थियों से चिपके होते हैं, इसलिये एक अस्थि दूसरी के समीप आ जाती है और अवयव में गति उत्पन्न हो जाती है। साधारण प्रतिक्रिया में कर्म-स्नायु से आने वाला स्नायविक प्रवाह पेशी को संकुचित करता है। स्वयं पेशी भी उद्दीप्य होती है। जब स्नायुओं से इसका विच्छेद कर दिया जाता है तो भी सीधे उसे उत्तेजना देकर संकुचित किया जा सकता है। चोट से, तापमान में आकस्मिक परिवर्तन से, रासायनिक और वैद्युतीय (Electrical) उत्तेजनाओं से इसे सक्रिय किया जा सकता है।

गति-संवेदनायें पेशियों, कंडराओं और सन्धियों में दबाव से पैदा होती हैं। उनकी अवस्थाओं की सूचना मस्तिष्क को ज्ञानवाही या अन्तर्गामी स्नायु

[1] वाटसन : व्यवहारवादी दृष्टिकोण से मनोविज्ञान, पृ० १८६

से मिलती है, जिनके अग्र-भाग पेशियों, कंडराओं और सन्धियों में स्थित होते हैं। गति संवेदनाओं में त्वचा पर भी दबाव पड़ता है। कभी-कभी स्पर्श की शुद्ध त्वक्-संवेदनायें होती हैं। प्रायः उनके साथ आंगिक संवेदनायें, यथा, बढ़ा हुआ रक्त-संचार, जल्दी-जल्दी श्वासोच्छ्वास, ताप, प्रस्वेदन, थकान इत्यादि होती हैं। पेशियों, कंडराओं और सन्धियों की संवेदनायें गति-संवेदनाओं को महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रदान करती हैं। त्वचा के दबाव की संवेदनायें, बाह्य वस्तुओं के सम्पर्क की संवेदनायें और थकान इत्यादि की आंगिक संवेदनायें गति-संवेदनाओं के साथ होती हैं। "भुजा को हिलाने की प्रक्रिया में प्रत्येक स्थिति में त्वचा विविध प्रकार से सिकुड़ती-फैलती और दबती है। कंडराओं में विविध मात्राओं और प्रकारों में तनाव होता है; सन्धियां परस्पर रगड़ खाती है; पेशियां संकोच की विभिन्न अवस्थाओं में से गुजरती हैं। इन सब क्षतियों में बोध-स्नायु पहुँचे हुए प्रतीत होते हैं; अतः यह सम्भव है कि स्थिति और स्थिति में परिवर्तन के अनुभवों को निर्धारित करने में ये सब अंशदान करते हैं।...... कम से कम जहाँ तक स्थिति और स्थिति-परिवर्तन के ज्ञान का प्रश्न है, उसमें सन्धियों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रतिरोध (Resistance) के प्रत्यक्षीकरण में सम्भवतया कंडराओं का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। तनाव के ज्ञान के लिये ये अवयव विशेष रूप से उपयुक्त हैं"।[1] पेशियों की संवेदनायें भी परिवर्तनशील स्थिति, गति और तनाव के प्रत्यक्षीकरण में अंशदान करती हैं। यदि आप अपनी भुजा को फैलावें, आँखें बन्द कर दें, और अपनी कोहुनी की सन्धि को धीरे-धीरे झुकावें, तथा जिस प्रकार आपको गति की दिशा, वेग (रफ्तार) और काल का ज्ञान होता है उस पर ध्यान दें, तो आप गति-संवेदनाओं की प्रकृति को समझ जावेंगे। जब आपकी आँखें बन्द होती हैं और कोई अन्य व्यक्ति आपके हाथ को हिलाता है, तो आपको गति-संवेदना होती है। जब हम गति-संवेदनाओं के विषय में कहते हैं, तो हम पेशियों, कंडराओं और सन्धियों में स्थित संवेदनाओं की ओर संकेत करते हैं। जिन अन्तर्गामी नाड़ियों के सिरे कंडराओं में होते हैं वे विभिन्न मात्राओं में तनाव की संवेदनायें उत्पन्न करती हैं।

---

[1] स्टाउट: मनोविज्ञान, १६१०; पृ० २०३-२०४

तीन प्रकार की गति-संवेदनायें होती हैं, यथा, स्थिति, स्वच्छन्द गति (Free movement) और प्रतिरुद्ध गति (Impeded movement) की संवेदनायें। जब आप अपनी भुजा को बिना हिलाये फैलाये रखते हैं, तो आपको स्थिति की संवेदना होती है। जब आप शून्य में अपनी भुजा को आगे-पीछे हिलाते हैं, तो आपको स्वच्छंद गति की संवेदना होती है। जब आप कोई भार उठाते हैं, तो आपको प्रतिरुद्ध गति की संवेदना होती है।

गति-संवेदनाओं का अत्यन्त उच्च ज्ञानात्मक मूल्य होता है। ये हमें द्रव्य के आधारभूत धर्मों का ज्ञान देती हैं, यथा, वस्तुओं के विस्तार, अवेध्यता, (Impenetrability), स्थिति, दूरी, दिशा और भार का। आँख की पेशियों में होने वाली संवेदनायें देखी हुई वस्तुओं की दूरी, आकार और शक्ल का निर्णय करने में हमारी बहुत सहायता करती हैं। गति-संवेदनाओं का अत्यधिक वेदनात्मक मूल्य (Affective value) भी होता है। पेशियों का व्यायाम सुख और दुःख का एक उद्गम है। स्वास्थ्य-सुख एक बड़ी सीमा तक पेशियों की दशा पर निर्भर है।

१०. क्या प्रयास की संवेदना नामक कोई चीज है? (Is there any Sense of Effort)?

बेन के मतानुसार, प्रयास की संवेदना नामक कोई चीज़ है जो मस्तिष्क में स्थित कर्म-केन्द्रों से पेशियों की ओर शक्ति के उन्मुक्त होने से होती है। यह गति-उन्मोच (Motor discharge) की विचित्र संवेदना है। विलियम जेम्स इसके अस्तित्व को नहीं मानता। उसके मत से गति-संवेदनायें पेशियों, कंडराओं और सन्धियों की संवेदनायें हैं। कर्म-स्नायु-कोशाओं के उद्दीपन या शक्ति-उन्मोचन की कोई संवेदना नहीं होती। इस सिद्धान्त को सैक (Sach) की पेशियों के अन्दर से उच्च केन्द्रों को जाने वाले बोध स्नायुओं की खोज से बल मिला है। आधुनिक प्रयोगों से बेन का प्रयास की संवेदना-सम्बन्धी सिद्धान्त निश्चित रूप से खंडित हो गया है। "विद्युत् धारा के द्वारा सीधे उत्तेजित किये जाने पर त्वचा के चेष्टाधिष्ठानों से कोई संवेदना नहीं मिलती, जबकि ठीक उनके पीछे स्थित त्वचा और कर्मेन्द्रियों से

अन्तर्गामी स्नायु प्राप्त करने वाले क्षेत्रों से इस प्रकार संवेदना मिल जाती है। इस तथ्य से इस सिद्धान्त का मेल बैठना मुश्किल है। पुनः प्रयास की यह कल्पित संवेदना ऐसी किसी चीज का स्पष्टीकरण नहीं करती जिसका इसके बिना स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है। संकल्प की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक नहीं है; क्योंकि संकल्प किसी प्रकार की संवेदना नहीं है।"[१] यह किसी गति के लिये प्रयास करने का स्पष्टीकरण करने के हेतु आवश्यक नहीं है। गति की हमारी संवेदनायें बोध-स्नायुओं के मार्ग से आती हैं, तथा इस दृष्टि से अन्य संवेदनाओं के तुल्य हैं। किन्तु हमें अन्तर्गामी संवेदनाओं से पृथक्, अपनी चेष्टा का मानसिक प्रक्रिया के रूप में अपरोक्ष ज्ञान होता है। हमें मानसिक चेष्टा की चेतना होती है।

११. संतुलन की संवेदना (The Static Sense : The Sense of Equilibrium)

आन्तरिक कर्ण में स्थित अर्ध-चक्राकार नालियाँ (Semicircular canals) संतुलन की संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। अर्ध-चक्राकार नालियाँ तीन तलों (Planes) में सजी हुई, अस्थि और कला की लघु नलिकायें हैं। उनमें स्थित सूक्ष्म स्नायुओं के सिरे आदातृ-अंग हैं। "इन झिल्लीदार नालियों में एक द्रव होता है जिसमें बाल-सदृश कोशायें प्रक्षिप्त होती हैं। शिर की स्थिति में परिवर्तन होने से इस द्रव तथा उसके लघु अस्थि-सदृश कणों में गति पैदा होती है, और ये लोम-कोशाओं (Hair-cells) पर दबाव डालते हैं जो श्रवण-स्नायु की एक शाखा के तन्तुओं से जुड़ी होती है। इस प्रकार संतुलन का उत्तेजन होता है।"[२] अवयवों की पारस्परिक स्थिति को बनाये रखने में संतुलन की संवेदना का गति-संवेदना से सहयोग होता है। अर्धचक्राकार नालियों में स्थित द्रव में अवाञ्छित उथल-पुथल होने से चक्कर आने की संवेदना होती है। गति-संवेदनाओं के सहयोग से संतुलन की संवेदनायें अवयवों की पारस्परिक स्थिति, संतुलन और शरीर के द्वारा लगाई जाने वाली शक्ति पर नियन्त्रण करती हैं।

---

[१] स्टाउट: मनोविज्ञान, १९३२; पृ० २४८

[२] ट्रो : शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ११९

१२. स्वाद (Taste)

स्वाद एक रासायनिक संवेदना है। जिह्वा के पृष्ठ पर जो लघु उभरे हुये अंकुर होते हैं उनमें स्वाद-कलिकायें (Taste buds) होती हैं जिनके अन्दर लोम-कोशायें एक बोध-स्नायु के सिरों से जुड़ती हैं। स्वाद-कलिकायें बोध-कोशाओं के गुच्छे होते हैं। वे जिह्वा के पृष्ठ पर स्थित नहीं हैं। वे उन छोटी-छोटी खाइयों में स्थित होती हैं जो पृष्ठ से नीचे की ओर फैली रहती हैं।
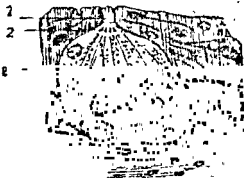
मुँह के लार के साथ घुल सकने वाला या द्रव रूप वाला रासायनिक पदार्थ स्वाद की उत्तेजना है। लोम-कोशाओं को प्रभावित करने और स्वाद देने के लिये इसे या तो द्रव होना चाहिये या घुलनशील। ज्ञानेन्द्रिय और उत्तेजना के मध्य एक रासायनिक क्रिया होती है जिसे स्वाद-स्नायु मस्तिष्क को संवाहित करता है।

मीठा, खट्टा, नमकीन और कड़ुवा ये चार मौलिक स्वाद हैं। वुन्ट ने धात्वीय (Metallic) और क्षारीय (Alkaline) स्वादों को भी इस सूची में जोड़ दिया। किन्तु धात्वीय स्वाद गन्ध और त्वचा-संवेदनाओं के साथ स्वाद का संयोग है। तीव्र क्षार जीभ को चिकनी बना सकते हैं और उसके पृष्ठ पर झुर्रियाँ भी डाल सकते हैं। अब धात्वीय और क्षारीय स्वादों को मौलिक स्वाद नहीं माना जाता। मीठा, खट्टा, नमकीन और कड़ुवा ये चार मौलिक स्वाद और अधिक सरल स्वादों में घटाये नहीं जा सकते। जीभ की नोक मीठे के प्रति, पिछला भाग कड़ुवे के प्रति और किनारे खट्टे के प्रति अधिक संवेदनशील हैं, किन्तु नमकीन के प्रति इसका समग्र पृष्ठ समान रूप से संवेदनशील है। सामान्यतया जितनी चीज़ें हम चखते हैं उनके स्वाद संयुक्त स्वाद होते हैं। उन्हें मौलिक स्वादों में वियुक्त किया जा सकता है। निम्नलिखित

(Lemonade) मीठे और खट्टे के स्वाद पैदा करता है। अंगूर मीठे, खट्टे और कड़ुवे का मिश्रित स्वाद देता है। चॉकलेट, आइसक्रीम और अधिकांश अन्य खाद्यों के स्वाद कई स्वादों के मिश्रण होते हैं। अनेक वस्तुओं से मिलने वाले मिश्रित स्वादों की संख्या अत्यधिक है।

स्वाद अन्य प्रकार की संवेदनाओं से भी संयुक्त हो जाते हैं। स्वाद गन्धों से मिल जाते हैं। प्याज और आलू से निकाले हुए रसों की गन्धों को जब नाक का मार्ग बन्द करके नाक में प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता तो उनके स्वाद लगभग एक-जैसे लगते हैं। "इन दशाओं में कॉफी और कुनैन के हल्के घोल कुछ कड़ुवा-सा, एक सा स्वाद देते हैं; कुछ मदिरायें हल्के सिरके की तरह का स्वाद देती है; कई फलों के रस मीठे और खट्टे की मात्रा-भेद के अतिरिक्त एक-सा स्वाद देते हैं। इन पदार्थों की गन्धें स्वादों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं" (गेट्स)। स्वाद भोजन-प्रणाली (Alimentary canal) की आंगिक संवेदनाओं के साथ मिश्रित हो जाते हैं, यथा स्वादिष्टता और अस्वादिष्टता में। गर्म और ठंडे के आस्वादन में स्वाद स्पर्श से मिल जाते हैं। ठंडी कॉफी गर्म कॉफी से स्वाद के कारण भिन्न नहीं होती, बल्कि गन्ध, शीत और ताप के कारण। प्रभृत जल (सोडावाटर इत्यादि) का स्वाद सादे पानी की तरह होता है लेकिन पहिला दबाव की ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करता है, दूसरा नहीं। काली मिर्च और लाई की तरह के तीखे स्वाद स्वादों और गति-संवेदनाओं के मिश्रण हैं। इस प्रकार स्वाद दबाव की संवेदनाओं के साथ मिल जाते हैं। कभी-कभी स्वाद, गन्ध, दबाव, ताप, शीत इत्यादि की संवेदनायें इस प्रकार घुल-मिल जाती हैं कि उन्हें विश्लेषण करके पृथक् नहीं किया जा सकता।

रंग-विरोध (Colour contrast) के समान स्वाद-संवेदनाओं में भी विरोध प्रतीत होता है। यदि नमक खाने के बाद आप छना हुआ पानी चखें, तो यह मीठा लगेगा। मीठे पदार्थ का एक हल्का घोल नमकीन के विरोध में अधिक मीठा लगता है। मीठे का नमकीन पर कम विरोध-प्रभाव होता है, नमकीन का मीठे पर अधिक। इसी प्रकार के विरोध सम्बन्ध नमकीन और

अम्ल के मध्य, तथा मीठे और अम्ल के मध्य भी होते हैं। कड़ुवे पर विरोध का बिल्कुल प्रभाव नहीं प्रतीत होता है। स्वाद की संवेदना का कम ज्ञानात्मक मूल्य होता है। लेकिन वेदनात्मक मूल्य इसका अधिक होता है। इससे सुख और दुःख की अनुभूति होती है। स्वादों को स्मृति में पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता।

१३. गन्ध (Smell)

गन्ध-ज्ञानेन्द्रिय नासा-रन्ध्र (Nasal cavity) पर चढ़ी हुई एक कला है। इसमें स्तम्भाकार (Cylindrical) कोशाओं की एक परत होती है जिनके बाहरी सिरे वायु-प्रवाहों से छुये जाते हैं। हवा में उड़ने वाले द्रव्य के सूक्ष्म रासायनिक कण इन्हें उत्तेजित करते हैं। उत्तेजना हवा में मिले हुए गन्धयुक्त कण हैं। उत्तेजना और ज्ञानेन्द्रिय के मध्य एक यान्त्रिक या शायद रासायनिक क्रिया होती है जिसे गन्ध-स्नायु मस्तिष्क को ले जाता है। गन्ध-संवेदना को कभी-कभी रासायनिक संवेदना भी कहते हैं।

हेनिंग (Henning) निम्नलिखित छः मौलिक गन्धों को पाता है: (१) फलों की या दग्ध-गन्धें (Fruity or Etherial) जो सेव, अंगूर, तेल इत्यादि में पाई जाती हैं; (२) फूलों की गन्धें या सुगन्धें जो सिलराज, गुलाब इत्यादि फूलों में पाई जाती हैं; (३) मसालों की गन्धें जो लौंग, दालचीनी इत्यादि में पाई जाती हैं; (४) राल की (Resinous) गन्ध जो तारपीन इत्यादि में पाई जाती है; (५) जलने की गन्ध जो जली हुई चीजों में पाई जाती है; (६) दुर्गन्धें जो सड़ने वाले जीवांश (Organic Matter) हाइड्रोजन सल्फाइड इत्यादि में पाई जाती हैं।

ये प्रमुख गन्धें हैं। कई मध्यवर्ती गन्धें भी होती हैं। "भुनी हुई कॉफी की गन्ध राल और जलने की गन्धों की मध्यवर्ती गन्ध है, पेपरमिंट की गन्ध दग्ध और मसालों के बीच की गन्ध होती है" (वुडवर्थ)। विशुद्ध गंधें विरल होती हैं। मिश्रित गन्धें सामान्य होती हैं। उन्हें इन छः गन्धों में से दो या अधिक में विश्लिष्ट किया जा सकता है। मिश्रित गन्धों की संख्या बहुत बड़ी है।

गन्धों का अन्य संवेदनाओं से भी मिश्रण होता है। गन्धें स्वादों से मिलकर उन्हें वास (Flavour) प्रदान करती हैं। वे स्पर्श से भी मिलती हैं, यथा सुंघनी, अमोनिया इत्यादि की 'तीव्र' गन्धों में। वे श्वास-प्रणाली की आंगिक संवेदनाओं के साथ भी मिल जाती हैं, यथा, शुद्ध हवा की 'ताजी गंध' में, बन्द सामान से भरे हुये कमरे की 'दूषित गंध' में।

घ्राण-संवेदना सबसे पुरानी संवेदना है। मनुष्यों की अपेक्षा कुत्तों में यह अधिक शक्तिशाली होती है। मधुमक्खियों और अन्य छोटे कीड़ों में यह शक्तिशाली होती है। यह अत्यधिक सूक्ष्म होती है। कपूर का एक अंश पानी के ४००,००० अंशों के साथ सूंघा जा सकता है। इसका ज्ञानात्मक मूल्य बहुत अधिक नहीं होता, गन्ध-संवेदनायें अस्पष्ट और अविवेच्य (Indistinguishable) होती हैं। लेकिन गन्धें अतीत अनुभवों की सजीव स्मृतियाँ जाती हैं। वे विशेषत: निम्न प्राणियों में कामोद्दीपन से निकट सम्बन्ध रखती हैं। तीव्र सुवासों का भी ऐसा ही असर होता है। पशुओं में गन्ध-संवेदना का अत्यधिक ज्ञानात्मक मूल्य है। वे इसकी सहायता से पदार्थों के सूक्ष्म अन्तरों को ग्रहण कर सकते हैं। सूक्ष्म विवेचन की शक्ति संवेदनशील तल के विस्तार पर निर्भर है। गन्धों का अत्यधिक वेदनात्मक मूल्य है। उनसे हमें सुख और दुःख की वेदनायें मिलती हैं। "प्रत्येक दशा में, भोजन की सुरभि, सुन्दर मदिराओं की सुवास, और पुष्पों की सुगन्ध ने दीर्घकाल तक मनुष्य के सौन्दर्यानुभव को समृद्ध किया है, यद्यपि वे कला का रूप ग्रहण कराने के लिये आवश्यकता से अधिक चंचल होती हैं" (ट्रो)।

घ्राणेन्द्रिय आसानी से थक जाती है। यदि कोई व्यक्ति किसी दुर्गन्ध को देर तक सूँघता रहे, तो उसकी प्रतीति रुक जाती है। इसे समायोजन (Adaptation) कहते हैं। एक व्यक्ति गन्दे कमरे में बैठे-बैठे समायोजन के कारण दुर्गन्ध की प्रतीति को खो देता है, लेकिन दूसरे व्यक्ति को ताजी हवा से कमरे में आते ही दुर्गन्ध का अनुभव तुरन्त होने लगता है।

गन्ध-संवेदनाओं में भी पूर्वोत्तर विरोध प्रभाव (Successive contrast effects) पाये जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति पहले दुर्गन्ध सूंघता है

और फिर सुगन्ध, तो उसे दूसरी की अधिक सजीव अनुभूति होगी। तुल्य रूप से सुगन्ध सूंघने के पश्चात् व्यक्ति को दुर्गन्ध की भी अधिक अनुभूति होती है। परन्तु, घ्राण में समकालिक (Simultaneous) विरोध-प्रभाव इतने स्पष्ट नहीं होते। यदि घ्राणेन्द्रिय को दो उत्तेजनायें साथ-साथ दी जायं, तो एक उत्तेजना की उपलब्धि से दूसरी के प्रति अधिक सक्रिय प्रतिक्रिया नहीं होती।

घ्राण में पश्चात्-प्रतिभायें (After-images) या पश्चात्-संवेदनायें होती हैं। गन्ध-उत्तेजना के हट जाने पर भी गन्ध की संवेदना पश्चात्-संवेदना के रूप में चेतना में कुछ काल तक रहती है। उत्तेजना की समाप्ति के उपरान्त भी संवेदना के अल्पकालीन अस्तित्व का कारण ज्ञानेन्द्रिय के आन्तरिक अंगों की क्रिया का चालू रहना है।

१४. स्वाद और गन्ध-संवेदनाओं की तुलना (Comparison of Taste and Smell Sensations)

स्वाद और गन्ध दोनों रासायनिक संवेदनायें हैं। इनमें उत्तेजनाओं की ज्ञानेन्द्रियों पर जो क्रिया होती है उसकी प्रकृति रासायनिक है। स्वाद की उत्तेजना एक द्रव या क्षार में घुल सकने वाला ठोस पदार्थ है। गन्ध की उत्तेजना एक वायव्य या वायु में घुल सकने वाले द्रव्य-कण होते हैं।

स्वादों और गन्धों दोनों में समायोजन होता है। "उत्तेजना देने के पश्चात् प्रतिक्रिया- स्वाद या गन्ध—पहिले तो शीघ्र ही पराकाष्ठा को पहुँच जाती है, और फिर, यद्यपि उत्तेजना पूर्ववत् जारी रहती है, तथापि चेतन-प्रतिक्रिया की सजीवता धीरे-धीरे कम होती जाती है। जब आप किसी रंगों की दुकान में प्रवेश करते हैं, तो आप ध्यान दे सकते हैं कि वहाँ की विशेष गन्ध तीव्रता में धीरे-धीरे घट जाती है। वह क्लर्क जो बहुत समय से उस वातावरण में रहता आया है शायद ही उस गन्ध का अनुभव करता हो। स्वाद की उत्तेजनाओं से भी समायोजन हो जाता है। आइसक्रीम की एक तश्तरी खा जाने पर कॉफ़ी से वांछित मिठास प्राप्त करने के लिये सदैव अधिक शक्कर की आवश्यकता होती है। जितनी शक्कर आप आमतौर पर लेते

हैं उससे मीठे की निर्बल संवेदना ही जाग्रत होगी। समायोजन इस तथ्य का कथन है कि उत्तेजना की दीर्घकालिकता के साथ प्रतिक्रिया की तीव्रता उत्तरोत्तर घटती जाती है।"[1]

स्वाद और गन्ध दोनों की संवेदनाओं में पूर्वोत्तर विरोध होता है। दोनों में एक उत्तेजना से समायोजन हो जाने पर प्रायः अन्यों की प्रतिक्रिया तीव्रता में बढ़ जाती है। "मीठे से समायोजन होने पर खट्टे के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है; खट्टे से समायोजन होने पर मीठे के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है; नमकीन घोल का आस्वादन खट्टे और मीठे दोनों के प्रभावों को बढ़ा देता है; और कड़ुवे को चखने से मीठे की अनुभूति तीव्र हो जाती है।"[2] दुर्गन्ध से समायोजन हो जाने पर सुगन्ध के प्रति प्रतिक्रियाशीलता बढ़ जाती है। परन्तु समकालिक विरोध-प्रभाव जो दृष्टि में दिखाई देते हैं, स्वाद और गन्ध में उतने स्पष्ट नहीं होते।

पश्चात्-प्रतिमायें या पश्चात् संवेदनायें जो दृष्टि में बहुत सामान्य होती हैं, स्वाद और गन्ध मे भी वर्तमान होती हैं। यदि व्यक्ति को 'गरम' स्वाद की अनुभूति होती है, तो जिह्वा पर उत्तेजना की क्रिया के समाप्त होने पर भी वह कुछ काल तक उसकी चेतना में बनी रहेगी। यह स्वाद-कलिकाओं की क्रिया के कारण होने वाली स्वाद की पश्चात्-संवेदना है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति एक तीव्र सुगन्ध को सूंघता है, तो उत्तेजना के हट जाने पर भी अविरत आन्तरिक प्रतिक्रिया के कारण उसे गन्ध की पश्चात्-संवेदना होती रहेगी।

इस प्रकार समायोजन, पूर्वोत्तर विरोध-प्रभाव, तथा पश्चात्-संवेदनाओं के तथ्य, स्वाद और गन्ध की संवेदनाओं में समान रूप से पाये जाते हैं। उनमें थोड़ा सा ज्ञानात्मक मूल्य होने में भी साम्य है। उनका अत्यधिक वेदनात्मक मूल्य है। उनसे हमें सुख और दुःख मिलते हैं। स्वाद और गन्ध की संवेदनायें आसानी से पुनर्जीवित नहीं हो सकतीं।

---

[1] गेट्स: प्रारम्भिक मनोविज्ञान, पृ० १४७

[2] गेट्स: प्रारम्भिक मनोविज्ञान, पृ० १४७-१४८

१५. त्वक्-संवेदनायें (Cutaneous Sensations)

त्वचा त्वक्—या स्पर्श-संवेदनाओं की इन्द्रिय है। इसके तीन स्तर होते हैं: (१) संवेदनाहीन बाह्य स्तर या अधिचर्म (Epidermis), (२) संवेदनशील मध्य स्तर या निचर्म (Dermis), और (३) वसा (Fat) से निर्मित आन्तरिक स्तर। स्नायु-तन्तु मध्य स्तर से निकलते हैं। अधिचर्म के नीचे शंकाकार अंकुर (Conical papillae) होते हैं जिनमें से कुछ में स्पर्श-देहाणु (Touch corpuscles) कहलाने वाली कोशाओं से निर्मित लघु अंडाकार पिंड रहते हैं। इन पिंडों से स्नायु-तन्तु चिपके होते हैं।

त्वचा में चार पृथक् अंग होते हैं जिन्हें शीत-बिन्दु, ताप-बिन्दु, पीड़ा-बिन्दु, और दबाव के बिन्दु कहते हैं। यदि आप बुनने की सुई जैसी कोई ठण्डी वस्तु लें जिसकी नोक अधिक पैनी न हो, और हाथ के पृष्ठ या त्वचा के किसी अन्य भाग पर उसे हलके से फिरायें तो आप पायेंगे कि कुछ बिन्दुओं पर शीत की एक स्पष्ट संवेदना होती है। उन्हें शीत-बिन्दु (Cold spots) कहते हैं। अन्य बिन्दुओं पर केवल दबाव की अनुभूति होगी, और यदि दबाव बहुत ही मामूली है तो कई स्थलों पर कोई संवेदना नहीं होगी। यदि नोक को कुछ गरम कर दिया जाय, तो कुछ स्थलों पर आप को गर्मी की संवेदना होगी। उन्हें ताप-बिन्दु (Warmth spots) कहते हैं। यदि एक सूक्ष्म तिनका या घोड़े का बाल सूचिका के स्थान पर प्रयुक्त किया जाय और मामूली दबाव के साथ उसे त्वचा पर फिराया जाय, तो कई स्थलों पर स्पष्ट कटने की पीड़ा-संवेदना होगी। उन्हें पीड़ा बिन्दु (Pressure spots) कहते हैं। कुछ स्थलों पर दबाव की संवेदना होगी। उन्हें दबाव के बिन्दु कहते हैं। कभी-कभी शीत-बिन्दुओं को थोड़ी गरम वस्तुओं से उत्तेजित करने पर शीत की संवेदना होती है। ये वॉन फ्रे की विरोधाभासयुक्त संवेदनायें (Paradoxical sensations) हैं। अत्यन्त उष्णता की संवेदना गर्मी और सर्दी की मिश्रित संवेदना है। अत्यन्त उष्णता के लिये पृथक् बिन्दु नहीं हैं। "यदि आप शीत और ताप के बिन्दुओं से युक्त किसी त्वचा-प्रदेश पर बढ़ते हुए ताप वाली कोई वस्तु रखें, तो कुछ समय तक आपको केवल मामूली ताप की अनुभूति होगी, लेकिन जब उत्तेजना एक निश्चित ताप-

मान प्राप्त कर चुकती है, तो शीत-बिन्दु अकस्मात् और विरोधाभास के तुल्य शीत की संवेदनायें देने लगते हैं, और तब मामूली ताप तथा विरोधाभास-ग्रस्त शीत का मिश्रण अत्यधिक उष्णता की संवेदना के रूप में अनुभूत होने लगता है।"[1] जलाने वाली उष्णता शायद ताप, शीत और पीड़ा का संयोग है। जिह्वा तथा अंगुलियों की नोकें स्पर्श के लिये बहुत संवेदनशील हैं; गाल और अग्रबाहु ताप के लिये; कनीनिका (Cornea) पीड़ा के लिये। पीड़ा-बिन्दु एक शीतल या तप्त सूचिका से छूये जाने पर भी पीड़ा की संवेदना देता है। अतः त्वचागत-पीड़ा पीड़ा की वेदना से पृथक् एक संवेदना है। चार मौलिक त्वक्-संवेदनायें हैं : शीत, ताप, दबाव और पीड़ा। कोई-कोई उनसे पृथक् स्पर्श और गुदगुदी को भी मौलिक संवेदनायें मानते हैं। स्पर्श की तुलना में, जैसा पेन्सिल की कुन्द नोक छूने पर होता है, दबाव की अनुभूति अधिक अस्पष्ट और गहरी होती है। हल्के बाल को हाथ के पिछले भाग पर फिराने से गुदगुदी लगती है, विशेषतया तब जब बालों का स्पर्श होता है।

कई त्वक्-संवेदनायें मिश्रित संवेदनायें होती हैं, खुजली, स्पर्श, गुदगुदी और हल्की पीड़ा का मिश्रण है। गीलापन शीत और दबाव का मिश्रण है। कुछ डंक मारने की संवेदनायें स्पर्श, पीड़ा और ताप की संवेदनायें हैं। कठोरता और कोमलता स्पर्श और पेशियों को मिलने वाले प्रतिरोध (Resistance) के मिश्रण हैं। ये वस्तुओं के गुण हैं और उनका प्रत्यक्षीकरण होता है, ये उत्तेजनाओं के गुण नहीं हैं, अतः उनकी संवेदना नहीं होती। खुरदरापन और चिकनाहट भी स्पर्श और दबाव के प्रतिरोध की गति-संवेदनाओं के मिश्रण हैं। खुरदरेपन में अनियमित तथा विच्छिन्न दबाव की संवेदनायें होती हैं। चिकनाहट में समान और अविच्छिन्न दबाव की संवेदनायें होती हैं। गुदगुदी आंगिक संवेदनाओं के साथ मिश्रित मामूली स्पर्श का एक रूप है।

स्पर्श-संवेदना में भी समायोजन होता है। एक व्यक्ति थोड़ी देर में ही ताप, शीत और दबाव के लिये संवेदनाशून्य हो सकता है, लेकिन पीड़ा के लिये नहीं। कपड़ों का दबाव पहिनने के कुछ देर बाद मालूम नहीं पड़ता।

[1] टिचनर : प्रारम्भिक मनोविज्ञान, पृ० ४४-४५

रसोइया को आग में खाना पकाते समय ताप नहीं लगता। मजदूर को कम कपड़े पहन कर जाड़े में काम करते समय जाड़ा नहीं सताता। किन्तु पीड़ा की संवेदना नष्ट नहीं होती। पीड़ा की उपेक्षा की जा सकती है, लेकिन जब उस पर ध्यान आता है तो उसकी अनुभूति होने लगती है। गन्ध समायोजन के कारण निर्बल हो जाती हैं, लेकिन तीव्र पीड़ा की संवेदना काल-क्षेप के साथ कम तीव्र नहीं होती।

स्पर्श-इन्द्रिय प्राचीन ज्ञानेन्द्रिय है। कहा जाता है कि अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ इससे विकसित हुई हैं। इसका अत्यधिक ज्ञानात्मक मूल्य है। यह दबाव, ताप शीत और पीड़ा की विभिन्न मात्राओं में भेद कर सकती है। सक्रिय स्पर्श अर्थात् गति-संवेदनाओं के साथ संयुक्त स्पर्श हमें भौतिक वस्तुओं की गति, प्रतिरोध, स्थिति, दूरी और दिशा का ज्ञान देता है।

१६. श्रवण-संवेदना (Auditory Sensations)

कान ध्वनियों की ज्ञानेन्द्रिय है। वायु के कम्पन श्रवण की उत्तेजना होते हैं। वायु-तरंगें वायु के कणों के क्रमशः एक बार सघन (Condensation) और एक बार विरल (Rarefaction) होने से पैदा होती हैं। कोई भी कम्पनशील वस्तु हवा में ऐसे परिवर्तन पैदा कर सकती है। वायु-तरंगें ध्वनि-संवेदनाओं की उत्तेजनायें हैं।

कान के तीन भाग होते हैं : (१) बाह्य कर्ण (External ear, Auricle); (२) मध्य-कर्ण या कर्ण-पटह (Middle ear, Tympanum) और (३) आन्तरिक कर्ण Internal ear, (Labyrinth)। बाह्य कर्ण ध्वनि-तरंगों को एकत्र

करता है तथा उन्हें मध्य कर्ण को भेजता है। ध्वनि-तरंगें कर्ण पटह को छूती हैं और उसमें कम्पन पैदा कर देती हैं। कर्ण पटह से तीन लघु अस्थियाँ चिपकी होती हैं जिन्हें क्रमशः हथौड़ा (Hammer), निहाई (Anvil) और रकाब (Stirrup) कहते हैं। ये अस्थियाँ कंपन को मध्य कर्ण के अन्त में स्थित कला तक ले जाती हैं। आन्तरिक कर्ण के तीन भाग होते हैं : (१) मध्यगुहा (Vestibule); (२) अर्धचक्राकार नालियाँ (Semi-circular canal) और (३) कोकला (Cochlea)। कोकला में एक कला (Membrane) होती है जिसे आधार-कला (Basilar membrane) कहते हैं और जिस पर शलाकाओं (Rods) और कोशाओं (Cells) वाला श्रवण-चित्य (Organ of corti) स्थित होता है। यही सुननेका वास्तविक अंग है। स्नायु-कोशाओं से बाहर निकलने वाले स्नायु-तन्तु श्रवण-स्नायु को बनाते हैं। मध्य कर्ण के अन्त में स्थित कला का कम्पन कोकला में स्थित कला में अनुचारि आवेपन (Sympathetic vibration) उत्पन्न कर देता है। कोकला की वीणा में रहने वाली स्नायु-कोशायें इन आवेपनों को स्नायु-प्रवाहों में परिवर्तित कर देतीं हैं जिन्हें श्रवण-स्नायु मस्तिष्क में पहुँचा देता है। तत्पश्चात् मन में ध्वनि की संवेदनायें पैदा होती हैं।

श्रवण-संवेदना वायु-कम्पनों के प्रति कान की प्रतिक्रिया है। श्रवण-संवेदनायें दो प्रकार की होतीं हैं, तान (Tones) और कोलाहल (Noises)। तान संगीतमय ध्वनियाँ हैं। कोलाहल संगीतरहित ध्वनियाँ हैं। तान नियमित और नियतकालिक (Periodic) वायु-कम्पनों से पैदा होती हैं। कोलाहल अनियमित और अनियतकालिक (Non-periodic) वायु-कम्पनों से पैदा होते हैं। तान समरस और नियमित होतीं हैं; कोलाहल मिश्रित और अनियमित होते हैं। "कोलाहल कम्पनों के अव्यवस्थित गड़बड़भाले से उत्पन्न होते हैं, तान कम्पनों के समरूप अनुक्रम से" (वुडवर्थ)।

तानों में तारता (Pitch), वैयक्तिक गुण (Timbre), और समस्वरता (Harmony) या विस्वरता (Discord) होते हैं। तारता

का अर्थ है किसी तान का उतार या चढ़ाव। निषाद स्वर की ऊँची तारता होती है, रिषभ की नीची। तारता वायु-कम्पनों की आवृत्ति-संख्या (Rate of frequency) पर अवलम्बित है। कान को अनुक्रमतः उत्तेजित करने वाले कम्पनों की प्रति सेकिंड संख्या जितनी ही अधिक होती है तारता भी उतनी ही ऊँची होती है। अतः ध्वनि की तारता वायु-तरंग की लम्बाई पर निर्भर है, निम्न स्वर लम्बी तरंग पर और उच्च स्वर छोटी तरंग पर निर्भर हैं। वैयक्तिक गुण तान का विलक्षण गुण है जो विशेष वाद्य-यंत्र के कारण उत्पन्न होता है। "एक वायोलिन, एक तुरही और मनुष्य का गला एक ही तारता और विपुलता (Amplitude) वाला स्वर पैदा कर सकते हैं, लेकिन उनके वैयक्तिक गुणों के कारण उनको आसानी से पहिचाना जा सकता है" (वुडवर्थ)। वैयक्तिक गुण वायु-तरंगों की जटिलता (Complexity) पर निर्भर है। इसका कारण मूल-स्वर (Ground tone) का उपस्वरों (Overtones) या आंशिक स्वरों (Partial tones) से मिश्रण है। यह, जिस संगीत स्वर की तारता सुनाई देती है, उसके द्वारा उत्पन्न उपस्वरों की संख्या पर निर्भर होता है। वैयक्तिक गुण किसी तान का विलक्षण गुण है जिससे हम यह पहिचान लेते हैं कि तान एक विशेष वाद्य या विशेष मनुष्य के गले से निकल रही है। कुछ तानें परस्पर घुल-मिल जाती हैं और चेतना में रुचिकर प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इसे संध्वनि या स्वर-साम्य (Harmony or consonance) कहते हैं। यह कम्पन की गतियों के अनुपातों पर निर्भर है। अन्य तानें घुल-मिल नहीं सकतीं और ये हमें कर्ण कटु तथा असमंजस लगती हैं। ये अरुचिकर होती हैं। ये स्वर वैषम्य उत्पन्न करती हैं। ध्वनि की बुलन्दी या तीव्रता वायु-तरंगों की विपुलता पर निर्भर है; विपुलता जितनी ही अधिक होती है, ध्वनि उतनी ही बुलन्द होती है। वायु-तरंगों की विपुलता ध्वनियों की तीव्रता को निर्धारित करती है। ध्वनियों की व्याप्ति ध्वनिकारक वस्तु के विस्तार पर निर्भर है। शेर की दहाड़ मनुष्य की वाणी से अधिक व्याप्त होती है। समुद्र की लहरों का गर्जन नदी की सरसराहट की अपेक्षा अधिक व्याप्त होता है। ध्वनि-संवेदनाके गुणों का उनके

भौतिक हेतुओं से इस प्रकार समीकरण किया जा सकता है: तान (Tone)= नियतकालिक कम्प (Periodic vibration); शोर (Noise) = अनियत कालिक कम्पन (Non-periodic vibration); तारता (Pitch) = कम्पनों की संख्या (Vibration rate); वैयक्तिक गुण (Timbre) = कम्पनों की रचना (Vibration composition); तीव्रता या (Intensity) बुलन्दी (Loudness) = कम्पन की विपुलता (Amplitude of vibration)।

श्रवण-संवेदना में विवेचन-शक्ति ऊँची मात्रा में होती है। सम्भवतया इसमें स्थानीय-चिह्न का अभाव होता है। यह हमें अनुक्रम का ज्ञान दे सकती है और काल के प्रत्यक्षीकरण में हमारी सहायता कर सकती है। भाषा द्वारा ज्ञानार्जन करने में इससे बड़ी सहायता मिलती है। इसका संवेगात्मक मूल्य बहुत है। संगीत का आनन्द इसी से प्राप्त होता है। आन्तरिक कर्ण में स्थित अर्धचक्राकार नालियाँ संतुलन की संवेदना के लिये उत्तरदायी हैं। सुनने से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

१७. दार्ष्टिक संवेदनायें (Visual Sensations)

आँख दृष्टि-संवेदनाओं की ज्ञानेन्द्रिय है। प्रकाश-तरंगें उत्तेजनायें हैं। अक्षिगोलक के अन्दर स्थित दृष्टि-पटल प्रधान अंग है। प्रकाश-तरंगें दृष्टि-पटल पर क्रिया करती हैं, और इसके फलस्वरूप जो भा-रासायनिक (Photo chemical) प्रभाव पैदा होता है उसे दृष्टि-स्नायु मस्तिष्क में पहुँचाता है। दृष्टि-पटल की शलाकायें (Rods) और शंकु (Cones) दृष्टि-संवेदनाओं में उपयुक्त आदाता हैं।

अक्षिगोलक आकार में एक गोला होता है। इसके तीन परत (Coats) होते हैं। इद बाह्य पटल शुक्ल-पटल (Sclerotic) कहलाता है, जिससे छः बाह्य पेशियाँ चिपकी होती हैं जो इसे हिलाती हैं। शुक्ल पटल के अन्दर मध्य पटल (Choroid) होता है जो एक घने काले रंग से

भरा होता है। इसमें से होकर प्रकाश प्रवेश नहीं कर सकता। प्रकाश केवल कनीनिका (Cornea) और तारे में से प्रविष्ट होता है। मध्यपटल के अन्दर दृष्टिपटल (Retina) होता है जो शलाकाओं (Rods) और शंकुओं (Cones) से बना होता है। दृष्टिपटल ही दृष्टि के लिये उपयुक्त ज्ञानेन्द्रिय होता है। शुक्ल पटल के सामने वाले भाग में एक गोल छिद्र होता है जो कनीनिका नामक पारदर्शी पदार्थ से ढका होता है। कनीनिका के पीछे एक अग्रवेश्म (Anterior chamber) होता है जिसमें एक नेत्ररस-नामक (Aqueous humour) द्रव भरा होता है। इसके पीछे उपतारा (Iris) होता है जो एक गोल काला तवा होता है और जिसके केन्द्र में तारा (Pupil) कहलाने वाला एक छिद्र होता है। तारा अक्षिगोलक में अधिक या कम प्रकाश को प्रविष्ट कराने के लिये फैलता या सिकुड़ता है। कम प्रकाश में यह अधिक प्रकाश अन्दर पहुँचाने के लिये फैल जाता है, तीव्र प्रकाश में थोड़ा प्रकाश अन्दर पहुँचाने के लिये सिकुड़ जाता है। उपतारे (Iris) के ठीक पीछे द्वि-उन्नतोदर स्फट-ताल (Double-convex crystalline lens) होता है जो पक्ष्मिकाय पेशी (Piliary muscle) और पक्ष्मि (Piliary process) से घिरा होता है। पक्ष्मि-

काय पेशी और वलि इसे विभिन्न दूरियों पर स्थित वस्तुओं से व्यवस्थापित (Accommodate) करती हैं। ताल और उससे चिपके हुये अवयव व्यवस्थापन के यंत्र हैं। ताल (Lens) के पीछे आँख का वृहत् प्रधान वेश्म होता है जिसमे काचर-रस (Vitreous humour) कहलाने वाला एक द्रव भरा रहता है। यह ताल और दृष्टिपटल के मध्य सम्पूर्ण स्थान में व्याप्त होता है। इसके पीछे दृष्टिपटल (Retina) होता है। दृष्टिपटल के जिस बिन्दु से दृष्टि-स्नायु अक्षिगोलक में प्रवेश करता है उसे अन्ध-बिन्दु (Blind spot) कहते हैं, जो प्रकाश की संवेदना से शून्य होता है। यह शलाकाओं (Rods) और शंकुओं (Cones) से रहित होता है। दृष्टि-पटल के लगभग केन्द्र में पीत-बिन्दु (Yellow spot) होता है। यह सबसे स्वच्छ दृष्टि का स्थल होता है। इसके केन्द्र में एक गड्ढा, मध्य-गर्त्त (*Fovea centralis*) होता है। गर्त में केवल शंकु (Cones) होते हैं। गर्त से ज्यों-ज्यों हटते जाते हैं, शंकुओं की सख्या घटती जाती है, यहाँ तक कि अन्त में शंकु लगभग बिल्कुल नहीं पाये जाते।
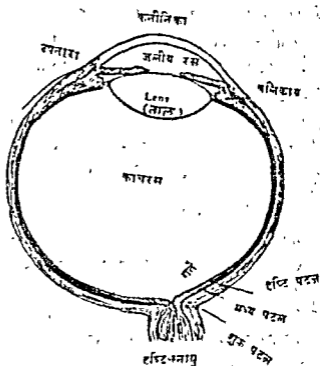
प्रकाश कनीनिका में से प्रविष्ट होता है जहाँ पर यह भुजायित (Refracted) होता है। तत्पश्चात् यह नेत्र रस (Aqueous humour) में से गुज़रता है। उपतारे में तारे से यह अक्षिगोलक के अन्दर प्रविष्ट होता है। फिर यह ताल में से गुज़रता है जहाँ यह पुनः भुजायित होता है। तत्पश्चात् यह काचर-रस (Vitreous humour) में प्रवेश करता है और अन्त में दृष्टिपटल में पहुँचता है जहाँ यह स्नायविक परिवर्तन पैदा करता है जिन्हें दृष्टि-स्नायु मस्तिक में पहुंचाता है। तब मन में रंगों की, उज्ज्वलता की संवेदनायें होती हैं।

दृष्टि-संवेदनायें दो प्रकार की होती हैं : (१) उज्ज्वलता (Brightness) की संवेदनायें, और (२) रंगों (Colour) की संवेदनायें। उज्ज्वलता की संवेदनायें विभिन्न लम्बाइयों की प्रकाश-तरंगों के मिलने से होती हैं। विशुद्ध रंग-संवेदनायें समरूप प्रकाश-तरंगों या प्रायः समान लम्बाई की तरंगों से उत्पन्न होती हैं। प्रकाश-तरंगें जितनी समरूप होंगी, रंग भी

उतना ही शुद्ध होगा। वास्तव में हमें ऐसी रंग-संवेदनायें कदापि नहीं होतीं जो साथ-साथ उज्ज्वलता की भी संवेदनायें न हों। रंग-संवेदनाओं की तीव्रता प्रकाश-तरंगों की विपुलता (Amplitude) पर निर्भर होती है। प्रकाश-तरंगें व्योम (Ether) के अत्यधिक लघु कम्पन हैं। उनमें लम्बाई, विपुलता और रूप की दृष्टि से भेद होते हैं। तरंगों की विभिन्न लम्बाइयों से विभिन्न रंग-संवेदनायें होती हैं। तरंगों की विपुलता में भिन्नता रंग-संवेदनाओं की तीव्रताओं का कारण है। बहुधा हम कई भिन्न-भिन्न लम्बाई या विपुलता की तरंगों को संयुक्त देखते हैं। यह संयोग समग्र तरंग के रूप में भिन्नता लाता है। तरंग-रूप से शुद्धता की संवेदना मिलती है। रंग-संवेदना की शुद्धता तरंग-लम्बाइयों के मिश्रण पर निर्भर है। मिश्रण जितना अधिक होगा, शुद्धता उतनी ही कम होगी।

दृष्टि-संवेदनायें सामान्यतया दो वर्गों में विभक्त की जाती हैं, रंग और रंगहीन गुण। बहुत-से रंग माने जाते हैं, जिनको विशेष नाम दिये गये हैं: लाल, नारंगी, पीला, पीत-हरित, हरा, हरित-नील, नीला, बैंजनी, जामुनी, इत्यादि। क्या ये सब रंग मौलिक हैं? या उनमें से कुछ मौलिक रंगों के संयोग हैं?

चार मौलिक या प्रारम्भिक रंग-संवेदनायें (Primary colour sensations) हैं: लाल, पीला, हरा और नीला। दृष्टि-संवेदना का रंग उत्तेजना के तरंग-आयाम (Wave length) पर निर्भर है। एक मिली-मीटर के दस लाख भागों में से ७६० के बराबर लम्बाई की तरंग लाल रंग की संवेदना देती है, ६०५ का तरंग-आयाम पीले की, ५०० का हरे की, और ४०० का नीले रंग की संवेदना देता है। रक्त, पीत, हरित और नीला मौलिक रंग हैं। सब अन्य रंग इन प्रारम्भिक रंगों के सम्मिश्रण हैं।

नारंगी रंग (Orange) रक्त और पीत का सम्मिश्रण है। गहरे नारंगी में कुछ लाल वर्ण होता है। उसमें पीले की भी कुछ आभा होती है। हमें उसमें अन्य कोई रंग दिखाई नहीं देता। यह रक्त और पीत का मिश्रण

प्रतीत होता है। कुछ नारंगी रंग लाल बहुत समीप होते हैं; अन्य बहुत कुछ पीले के समान होते हैं। हम वर्णों को एक श्रेणी में सजा सकते हैं जिसके आदि में रक्त होगा और अन्त में पीत। पीत के बाद में एक दूसरी श्रेणी में वर्णों को सजा सकते हैं जो पीत से शुरू होते हैं और जिनमें हरे की अल्प आभा होती है, फिर पीत और हरित का समान मिश्रण होता है, और अन्त में पीत शुद्ध हरे में बिलकुल लुप्त हो जाता है। हरित के बाद वर्णों की एक तीसरी श्रेणी सजाई जा सकती है जिसके आरम्भ में हरा, फिर नीली आभा वाले हरे, फिर हरे और नीले का समान मिश्रण नील-हरित या मोर-पंखी और अन्त में शुद्ध नीला होगा।

इस प्रकार नारंगी रक्त और पीत का मिश्रण है, जामुनी (Violet) रक्त और नील का, बैंजनी (Purple) रक्त और जामुनी का, मोरपंखी (Peacock) नीले और हरित का, नील (Indigo) गहरे नीले और हल्के लाल का। नील, जामुनी और बैंजनी नीले और रक्त के मध्य की वर्ण-सन्तान में कुछ चरण है। सब रंग-संवेदनायें अविच्छिन्न होती हैं। वे एक मेखला बनाती हैं जो एक वृत्ताकार पथ का अनुसरण करती हैं जिसे रंग-वृत्त कहते हैं। इसमें या तो रक्त, पीत, हरित और नीले होते हैं या वृत्त में पास-पास रहने वाले किन्हीं दो रंगों के मिश्रण होते हैं।

रंगों के अतिरिक्त काला और श्वेत, ये दो अन्य प्रारम्भिक दार्ष्टिक गुण होते हैं। अन्तर्निरीक्षण से श्वेत न तो रक्त, पीत, हरित और नीले के तुल्य मालूम पड़ता है, और न काले के तुल्य। यही बात काले के विषय में भी ठीक है; न तो यह लाल, पीले, हरे, नीले के समान है और न श्वेत के समान। काला और श्वेत पृथक् संवेदनायें हैं।

मिश्रित रंग (Compound colours) रक्त, पीत, रहित और नीले के हल्की और गहरी छाया के धूसर के साथ मिलने से पैदा होते हैं। गुलाबी लाल और हल्के धूसर का मिश्रण है। जैतूनी, पीत, हरित और थोड़े गहरे धूसर का मिश्रण है। बादामी गहरे धूसर और नारंगी का मिश्रण है। सब दृष्टि-संवेदनायें रक्त, पीत, हरित, नीले, काले और श्वेत, इन प्रारम्भिक गुणों में विश्लिष्ट की जा सकती हैं।

हमें याद रखना चाहिये कि रंग-संवेदनायें हैं, उनका अस्तित्व हमारी चेतना में है; परस्पर मिश्रण उनका हो नहीं सकता। केवल बाह्य-उत्तेजनायें अर्थात् प्रकाश-तरंगें मिश्रित हो सकती हैं जिनसे मन में अनुपम रंग-संवेदनायें उत्पन्न होती हैं जो मिश्रित रंग कहलाते हैं।

व्योम (Ether) के दो तरंग-आयाम (Wave-length) जो दृष्टि-पटल पर क्रिया करते हुये श्वेत या धूसर की संवेदना देते हैं, पूरक (Complementary) कहलाते हैं। लाल और नील-हरित, हरा और बैंजनी, पीला और नील, नारंगी और हरित-नील, जामुनी और पीत-हरित पूरक रंग हैं।

दो प्रकार की दार्शिक परचात्-प्रतिमायें होती हैं, भावात्मक और अभावात्मक। उनका कारण उत्तेजना को हटा देने के पश्चात् दृष्टिपटल का विलम्बित उत्तेजन है। उन्हें पश्चात्-संवेदनायें कहना उचित है। यदि आप एक उज्ज्वल प्रकाश को देखें और तुरन्त एक काले पृष्ठ पर देखें, तो कुछ समय तक आपको एक प्रकाश का पुञ्ज दिखाई देगा। यह भावात्मक परचात्-प्रतिमा है। भावात्मक परचात्-प्रतिमा का रंग वही होता है जो उत्तेजना का होता है। केवल भेद यह है कि उत्तेजना के रंग की अपेक्षा उसका रंग फीका होता है। यदि आप एक लाल कागज़ के टुकड़े को १० या १५ सेकिंड तक देखते रहें और सफ़ेद दीवार या कागज़ पर देखें, तो आपको लाल कागज़ के आकार वाले कुछ हरी आभा लिये हुये स्थल के दर्शन मिलेंगे। यह एक अभावात्मक परचात्-प्रतिमा है। यदि लाल कागज़ के स्थान पर आप नीले कागज़ को इस्तेमाल करें, तो सफेद पृष्ठभूमि पर देखने से आप एक पीला पुञ्ज देखेंगे। यह भी अभावात्मक परचात्-प्रतिमा है। अभावात्मक परचात्-प्रतिमा का रंग उत्तेजना के रंग का पूरक होता है। एक सफ़ेद कागज़ पर देखने का प्रयत्न कीजिये। आप पायेंगे कि अभावात्मक परचात्-प्रतिमा काली होगी।

नीला और पीला, लाल और हरा, परस्पर टकराते हैं। इसे रंग-विरोध (Colour contrast) कहते हैं। लाल बालों वाली लड़की को हरी साड़ी नहीं पहननी चाहिये, क्योंकि हरी पोशाक से बाल अधिक लाल लगेंगे। पीला और नीला अलग-अलग होने की अपेक्षा एक-दूसरे के पार्श्व

में होने पर अधिक पीले और अधिक नीले दिखाई देते हैं। ये समकालिक विरोध के उदाहरण हैं जो दृष्टि-संवेदना ही में पाया जाता है।

रंग-संवेदनाओं में पूर्वोत्तर या क्रमिक विरोध (Successive contrast) भी होता है। पहिले एक उज्ज्वल धरातल पर देखिये और फिर एक मध्यम शुभ्रता वाले धरातल पर; वह काला दिखाई देगा। पहिले एक मध्यम शुभ्रता वाले धरातल पर देखिये और फिर एक शुभ्र धरातल पर; वह अधिक शुभ्र दिखाई देगा। नीला और पीला परस्पर पूरक रंग हैं। नीले पर देखिये और फिर पीले पर; दूसरा अधिक शुद्ध प्रतीत होगा। ये पूर्वोत्तर विरोध के उदाहरण हैं।

कुछ लोग पूर्ण रंगांध (Colour blind) होते हैं। वे विविध रंगों के स्थान में विविध मात्रा की शुभ्रतायें देखते हैं अर्थात् वे उन्हें श्वेत, धूसर और काले दीखते हैं। वे नीले और पीले और लाल, हरे के लिये रंगांध हैं। पूर्ण रंगान्धता (Total colour-blindness) शलाका दृष्टि है, जिससे सफ़ेद और काले, हल्के और गहरे की तो संवेदना होती है, लेकिन इन्द्र-धनुष के किसी भी रंग की नहीं। कुछ व्यक्ति अंशतः रंगांध (Partial colour-blind) होते हैं। उनमें से अधिकांश लाल और हरे तथा उनके मिश्रणों को नहीं देख सकते, लेकिन अन्य रंगों को देख सकते हैं। रक्त-हरित अन्धता स्त्रियों में बहुत कम पाई जाती है। लेकिन तीन या चार प्रतिशत लोगों में पाई जाती है (वुडवर्थ)। नील-पीत-अन्धता आंशिक रंगांधता का एक दूसरा प्रकार है।

दृष्टिपटल के विभिन्न भाग विभिन्न रंगों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। गर्त (Fovea) के आस-पास वाला केन्द्रीय भाग सभी रंगों की संवेदना देता है। लाल और हरा ठीक-ठीक केवल इस प्रदेश के बाहर कुछ दूरी तक ही दिखाई देते हैं। अधिक दूरी पर उनकी संवेदना नहीं होती। उसके बाद पीला और नीला लुप्त हो जाते हैं। अन्तिम सिरों पर सभी रंग सफ़ेद या धूसर दिखाई देते हैं। दृष्टिपटल का सबसे बाहरी प्रदेश जहाँ शंकु बहुत ही विरल होते हैं प्रायः पूर्ण रंगान्ध है।

किसी अन्धेरे कमरे में जाने पर पहिले सब कुछ काला दिखाई देता है। लेकिन धीरे-धीरे आपको वस्तुयें दिखाई देने लगती हैं, क्योंकि आपका दृष्टि-पटल अन्धकार से समायोजित (Dark-adapted) हो जाता है। अन्धेरे कमरे से बाहर आने पर आपकी आँखें चौंधिया जाती हैं लेकिन धीरे-धीरे आपका दृष्टिपटल प्रकाश से समायोजित (Light-adapted) हो जाता है और आपको साफ़-साफ़ दिखाई दे सकता है। अन्धेरे कमरे में रहते हुये आप केवल प्रकाश और छाया देखते हैं, लेकिन रंग कोई भी नहीं। गर्त में केवल शंकु होते हैं। उसमें शलाकायें नहीं होतीं। गर्त में सबसे अच्छी रंग-दृष्टि होती है। यह अन्धकार से भली भाँति समायोजन नहीं कर सकता। सन्ध्या-दृष्टि (Twilight vision) या धुंधले प्रकाश की दृष्टि शलाका-दृष्टि (Rod-vision) है।

१८. संवेदनाओं के मिश्रण और संवेदनाओं के नमूने (Sensation Blend and Sensation Pattern)—यौगिक संवेदनायें प्रारम्भिक या मौलिक संवेदनाओं में वियुक्त की जा सकती हैं। वे दो प्रकार की होती हैं: (१) मिश्रण, और (२) नमूने। संवेदनाओं का मिश्रण और नमूना एक इकाई के रूप में ग्रहण किया जाता है। मिश्रण में संघटक संवेदनायें इस प्रकार घुली-मिली होती हैं कि उन्हें आसानी से एक-दूसरी से पृथक् नहीं किया जा सकता। सांवेदनिक मिश्रण में उनके कुछ अपने गुणों का लोप हो जाता है और एक विशिष्ट गुण का उदय हो जाता है। फिर भी सूक्ष्म ध्यान से उन्हें अलग-अलग पहिचाना जा सकता है। दूसरी ओर, एक नमूने में यौगिक संवेदना में संघटक संवेदनायें अपने विशिष्ट गुणों को नहीं छोड़तीं, किन्तु देश या काल में वे इस प्रकार फैली रहती हैं कि उन्हें आसानी से अलग-अलग पहिचाना जा सकता है। उदाहरणार्थ, निम्बु-रस का स्वाद मीठे, खट्टे, शीतल, और निम्बु-गन्ध का मिश्रण है; यह स्वाद, तापमान और गन्ध की संवेदनाओं का सांवेदनिक सम्मिश्रण है, जिसका एक अकेली विशिष्ट संवेदना का प्रभाव होता है। होशियारी से ध्यान देने पर संघटक संवेदनाओं में इसका विश्लेषण किया जा सकता है, लेकिन साधारण रूप से यह एक इकाई प्रतीत होता है। मिश्रणों की यह विशेषता होती है।

उष्णता ताप, शीत और पीड़ा की त्वक् संवेदनाओं का मिश्रण है। नारंगी का रंग लाल और पीले का दार्ष्टिक मिश्रण है। त्वचा को एक वर्तुल और एक वर्ग से एक साथ छूने पर जो यौगिक संवेदना प्राप्त होती है वह एक देशीय नमूना है। एक रागकालिक नमूना है। एक रंग की पट्टी की दृष्टि-संवेदना देशीय नमूना है। यह देश मे फैली हुई होती है। प्रकाश को बुझाने की दृष्टि-संवेदना एक कालिक नमूना है।

१६. संवेदना और प्रतिक्षेप क्रिया (Sensation and Reflex-Action)—प्रतिक्षेप-क्रिया किसी सांवेदनिक उत्तेजना के प्रति पेशियों या ग्रन्थियों की तुरंत प्रतिक्रिया है। चौंधियाने वाले प्रकाश को देख कर व्यक्ति आंखें बन्द कर देता है। प्रकाश उसके मन में संवेदना उत्पन्न करता है; प्रकाश की संवेदना के अनन्तर उसकी आँखें बन्द हो जाती हैं। इसे सांवेदनिक प्रतिक्षेप कहते हैं। इसमें चेतना होती है। यह सचेतन प्रतिक्षेप है। आंख का तारा धुंधले या तेज प्रकाश में फैल या सिकुड़ जाता है। तारे के फैलने या सिकुड़ने की चेतना नहीं होती। इसे शरीर-व्यापारिक प्रतिक्षेप कहते हैं। यह अचेतन होता है। हृदय की धड़कन, रुधिरवाहिनियों का सिकुड़ना और फैलना, श्वास लेना इत्यादि देह-व्यापारिक प्रतिक्षेप हैं। देह-व्यापारिक प्रतिक्षेप, यथा, तार-प्रतिक्षेप में संवेदना नहीं होती। किन्तु यदि एक धूप का कण आंख में घुस जाता है, तो उत्तेजना न केवल पलक के गिरने की प्रतिक्षेप-गति को जाग्रत करती है, बल्कि साथ-साथ, एक तीव्र और पीड़ाप्रद संवेदना को भी जन्म देती है। इस प्रकार एक देह-व्यापारिक प्रतिक्षेप संवेदना को जन्म नहीं देता, जबकि एक सांवेदनिक प्रतिक्षेप सवेदना को जन्म देता है।

देह व्यापारिक या अचेतन प्रतिक्षेप में मस्तिष्क की प्रतिक्रिया नहीं होती, अतः उसमें चेतना नहीं होती। यह एक शरीर व्यापारिक तथ्य है, मनोवैज्ञानिक तथ्य नहीं। दूसरी ओर, संवेदना मनोवैज्ञानिक तथ्य है। यह मस्तिष्क की प्रतिक्रिया पर निर्भर होता है। मस्तिष्क की प्रतिक्रिया के बिना चेतन संवेदना नहीं हो सकती। संवेदना ज्ञानेन्द्रिय बोध-स्नायु, और मस्तष्कि के ज्ञान-केन्द्रों की क्रिया की सचेतन सहचारिणी है। सांवेदनिक प्रतिक्षेप, यथा, छींकने के

साथ संवेदना होती है, किन्तु प्रतिक्रिया, चाहे पेशियों की हो, चाहे ग्रन्थियों की, संवेदना पर निर्भर नहीं होती, बल्कि पूर्णतया स्नायुतंत्र को प्रभावित करने वाली उत्तेजना पर निर्भर होती है। यह मूलतः एक शरीर व्यापारिक तथ्य है, मनोवैज्ञानिक नहीं। हां, इसके साथ संवेदना अवश्य होती है।

लेकिन संवेदना और प्रतिक्षेप-क्रिया दोनों ही जन्मजात होती हैं। बोधेन्द्रियों को विशेष प्रकार की उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करने की सामर्थ्य प्रकृति प्रदत्त होती है। बच्चे को देखना, सुनना, चखना, सूंघना या छूना सीखना नहीं पड़ता, यद्यपि जो देखा, सुना, चखा, सूंघा या छुआ जाता है उसका अर्थ वह सीखता है। ज्योंही उसकी बोधेन्द्रियों को उत्तेजना मिलती है त्योंही उसे संवेदना मिलती है, लेकिन वह वस्तुओं को पहिचानना और उनका अर्थ समझना अनुभव से सीखता है। एक आम को बच्चे के सम्मुख रखिये और वह उसे देखेगा। लेकिन पहिले-पहल वह आम नहीं देखेगा। प्रौढ़ किसी वस्तु को देखता है, उसे पहिचानता है, और उसका अर्थ समझता है। उसे वस्तु का आम के रूप में प्रत्यक्ष होता है, लेकिन शिशु केवल उसकी संवेदना ग्रहण करता है। प्रत्यभिज्ञा से मुक्त, विशुद्ध संवेदना केवल बहुत छोटे शिशु को ही हो सकती है। बहुत शीघ्र यह प्रत्यभिज्ञा के चिह्नों से मिल जाती है। केवल कुछ ही दिनों के शिशु के व्यवहार में प्रत्यभिज्ञा के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

२०. संवेदनाओं का कार्य (Function of Sensations)

संवेदनाओं के दो कार्य होते हैं। प्रथम, संवेदनायें हमें ज्ञान की कच्ची सामग्री प्रदान करती हैं। हम रंग, ध्वनि, स्वाद, गन्ध, ताप और शीत, सान्द्रता या सघनता, विस्तार इत्यादि गुणों की संवेदनाओं से अपने बाह्य-जगत्-विषयक ज्ञान का निर्माण करते हैं। जेम्स ठीक ही कहता है कि संवेदना हमें वस्तुओं का परिचय देती है, जबकि प्रत्यक्षीकरण तद्विषयक ज्ञान देता है। द्वितीय, संवेदनायें गतियों को आरम्भ करती हैं। जब ज्ञानेन्द्रियां उत्तेजित होती हैं, तो हमें कुछ गुणों की चेतना मात्र नहीं होती, बल्कि हम कुछ गतियां भी करते हैं। उदाहरणार्थ, अप्रिय गन्ध की संवेदना नाक में घुसने की गतियां,

जोर से श्वास बाहर फेंकने की गतियां, गन्ध के स्रोत से दूर शिर हटाने की गतियां, इत्यादि पैदा करती है। इस प्रकार संवेदनायें गतियों को जन्म देती हैं।

अध्याय ६

प्रत्यक्षीकरण (PERCEPTION)

१—प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप (Nature of Perception)

प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का अर्थ जानना है। इससे उनके अर्थ ज्ञात हो जाते हैं। आप एक ध्वनि सुनते हैं। यह एक संवेदना-मात्र है। किन्तु जब आपको यह ज्ञात हो जाता है कि यह रंग, स्वाद, गन्ध इत्यादि से पृथक एक ध्वनि है, तथा यह बाह्य जगत् में एक विशेष स्थान में स्थित घंटी की ध्वनि है, तो आपकी संवेदना प्रत्यक्षीकरण का रूप ले लेती है। संवेदना किसी वस्तु या उसके गुण का "परिचय" (Acquaintance) मात्र है, लेकिन प्रत्यक्षीकरण किसी "वस्तु के विषय में ज्ञान" (Knowledge about) है (जेम्स)। संवेदना किसी ऐसी वस्तु का प्रथम संस्कार (Impression) है जिसका अर्थ ज्ञात नहीं होता। प्रत्यक्षीकरण उसके अर्थ को ग्रहण करना है। प्रत्यक्षीकरण में संवेदना और प्रत्यभिज्ञा (Recognition) का मेल होता है। यह संवेदनाओं के अर्थों या संकेतों को ग्रहण करता है।

प्रत्यक्षीकरण की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं। प्रथम, इसमें गुप्त रूप से तुलना, सदृशीकरण (Assimilation) और पृथक्करण (Discrimination) की प्रक्रियायें होती है। सदृशीकरण सदृश वस्तुओं से तुलना करना है। पृथक्करण असदृश वस्तुओं से तुलना करना है। जब आप घंटी की ध्वनि का प्रत्यक्ष करते हैं तो आप अन्य प्रकार की ध्वनियों से इसे पृथक करते हैं और घंटियों की सदृश ध्वनियों के साथ इसका तादात्म्य करते हैं। द्वितीय, प्रत्यक्षीकरण में विचार-साहचर्य (Association) होता है। आप एक सफेद दीवार देखते हैं। यह आपको ठोस प्रतीत होती है। उसके सफेद रंग

का प्रत्यक्ष तो आप अपनी आँखों से करते हैं। किन्तु, आपको उसके ठोसपन (सघनता) का प्रत्यक्ष आँखों से नहीं हो सकता। साहचर्य के कारण सफेद रंग का प्रत्यक्षीकरण आपके मन में सघनता के विचार को उद्भूत करता है। आपने भूतकाल में स्पर्श से उसकी सघनता का प्रत्यक्ष किया था। अब साहचर्य के कारण आपको उसका स्मरण होता है। और सफेद रंग का प्रत्यक्ष ज्ञान सघनता की प्रतिमा (Image) का सहचारी है। प्रत्यक्षीकरण में स्मरण-प्रक्रिया का प्रारम्भिक रूप वर्तमान होता है। वर्तमान प्रत्यक्षीकरण सदृश वस्तुओं के पूर्व प्रत्यक्षीकरण के अधोचेतन संस्कारों (Subconscious traces) के द्वारा ढाला जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण एक उपलब्धि-स्मृति मूलक (Presentative Representative) प्रक्रिया है। तृतीय, प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यभिज्ञा सन्निहित होती है। प्रत्यभिज्ञा अनिश्चित हो सकती है या निश्चित हो सकती है। प्रत्यक्षीकरण वर्गीकरण है। हम किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करते हैं और यह पहिचानते हैं कि वह वस्तु एक विशेष वर्ग के अन्तर्गत है। हम किसी वस्तु का एक मेज या कुर्सी के रूप में प्रत्यक्ष करते हैं। जब हम किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करते हैं, तो हम उसे पहिचानते हैं। प्रत्यक्षीकरण में निश्चित या अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा होती है। प्रत्यक्षीकरण एक संश्लेषणात्मक (Synthetic) प्रक्रिया है, नये और पुराने का संयोजन जिसका एक आवश्यक अंग है। चतुर्थ, प्रत्यक्षीकरण में पदार्थीकरण (Objectification) या स्टाउट की भाषा में "वस्तुभाव का सहज ज्ञान" होता है। जब आप घंटी की ध्वनि का प्रत्यक्ष करते हैं तो आप उसे किसी पदार्थ (यथा, घंटी) से सम्बन्धित करते हैं। इसे पदार्थीकरण कहते हैं। पंचम, प्रत्यक्षीकरण में एकीकरण (Unification) का गुण होता है। जब हम किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करते हैं, तो हम उसे एक समष्टि (Whole) के रूप में ग्रहण करते तथा उसी रूप में उसके प्रति प्रतिक्रिया भी करते हैं। जब हम एक कुर्सी का प्रत्यक्ष करते हैं तो हम उसे एक इकाई के रूप में देखते हैं अवयवों के समूह के रूप में नहीं। वस्तु में रुचि की एकता (Unity of Interest) होती है जो उसके अवयवों को एक अकेली समष्टि में बाँधती है। अन्त में, प्रत्यक्षीकरण में स्थानीयकरण (Localisation) और बहिःक्षेपण (Projection)

सन्निहित होते हैं। जब कोई वस्तु मेरे शरीर के किसी भाग का स्पर्श करती है (यथा, एक मक्खी मेरे गाल पर बैठती है), तो मैं संवेदना को शरीर के उस भाग से सम्बन्धित करता हूँ। यह स्थानीयकरण है। इसका अर्थ उत्तेजना के द्वारा प्रभावित शरीर के भाग के देशीय-सम्बन्धों (Spatial relations) का प्रत्यक्षीकरण है। जब मैं किसी कुर्सी का प्रत्यक्ष करता हूँ, तो मैं उसे बाह्य जगत् में एक विशेष देश-भाग से सम्बन्धित करता हूँ। यह बहिःक्षेपण कहलाता है। इसका अर्थ शरीर के बाहर स्थित वस्तु के देशीय सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण है। स्थानीयकरण स्थानीय-चिह्नों (Local signs) और गति पर निर्भर है। बहिःक्षेपण गति पर निर्भर है। गेस्टाल्ट (Gestalt) मनोवैज्ञानिक इस बात पर जोर देते हैं कि समष्टि का अनुभव करना ही प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप है। हम किसी वस्तु का एक पृष्ठ भूमि (Background) में स्थिति आकृति (Figure) के रूप में प्रत्यक्ष करते हैं। प्रत्यक्षीकरण एक अकेला अनुभव है। यह प्रारम्भिक अनुभवों का गड़बड़झाला नहीं है।

२. संवेदना और प्रत्यक्षीकरण (Sensation and Perception)

प्रथम, संवेदना किसी उत्तेजना के द्वारा मन में उत्पन्न एक मामूली संस्कार है। यह एक अदानात्मकप्रक्रिया (Presentative process) है। प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का अर्थ-ग्रहण है। यह एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। यह एक आदान-प्रतिदानात्मक (Presentative-representative) प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण = संवेदना + स्मृतियां। "प्रत्यक्ष संवेदना और स्मृतियों का मिश्रण है जिसमें संवेदना और स्मृति अविच्छेद्य होती हैं" (पिल्सबरी)। द्वितीय, संवेदना एक प्रत्याहृत सत्ता (Abstraction) है; इसका परिकल्पित अस्तित्व (Hypothetical existence) है। हम छोटे शिशुओं में इसके अस्तित्व की कल्पना करते हैं। किन्तु प्रत्यक्ष एक मूर्त (Concrete) अनुभव है। शुद्ध संवेदना प्रौढ़ के अनुभव में एक मनोवैज्ञानिक कल्पना है। तृतीय, संवेदनायें गुणों की प्रतीति-मात्र हैं। ये गुणों (यथा, स्वाद, गन्ध, इत्यादि) को वस्तुओं से सम्बद्ध नहीं करतीं। प्रत्यक्षीकरण वस्तुओं का ज्ञान है। प्रत्यक्षीकरण में हम गुणों की संवेदनाओं को वस्तुओं से

सम्बद्ध करते हैं। चतुर्थ, विलियम जेम्स की भाषा में संवेदना "परिचयात्मक ज्ञान (Knowledge of acquaintance) मात्र है, जबकि प्रत्यक्षीकरण "वस्तुविषयक ज्ञान (Knowledge about objects)" है। पंचम, प्रत्यक्षीकरण में नये अनुभव का पुराने अनुभव से सदृशीकरण होता है। प्रत्यक्षीकरण में सदृशीकरण, पृथक्करण, साहचर्य, पदार्थीकरण और स्थानीयकरण होते हैं। षष्ठ, प्रत्यक्षीकरण में मन संवेदना की अपेक्षा सक्रिय रहता है। संवेदना में यह नितान्त निष्क्रिय नहीं होता। उसमें ग्रहणशीलता (Receptivity) के रूप में अल्पतम मानसिक क्रिया की आवश्यकता होती है। प्रत्यक्षीकरण में मन अधिक सक्रिय होता है, क्योंकि उसे उसका अर्थ निकालना पड़ता है। अन्त में, संवेदना और प्रत्यक्षीकरण दोनों बाह्य उत्तेजनाओं के द्वारा उत्पन्न, त्वचा से आने वाले स्नायु-प्रवाहों (Nerve-currents) से पैदा होते हैं। "प्रत्यक्षीकरण में, ये स्नायु-प्रवाह त्वच (Cortex) में व्यापक सहचारी (Associative) या स्मरण-सम्बन्धी (Reproductive) प्रक्रियायें जाग्रत करते हैं, किन्तु जब संवेदना अकेली या न्यूनतम प्रत्यक्षीकरण के साथ होती है तो उसके साथ होने वाली स्मरण-सम्बन्धी प्रक्रियायें न्यूनतम होती हैं" (विलियम जेम्स)।

वुडवर्थ संवेदना को मस्तिष्क की प्रथम प्रतिक्रिया और प्रत्यक्षीकरण को द्वितीय प्रतिक्रिया मानता है। संवेदना में ज्ञानेन्द्रिय, बोध-स्नायु और मस्तिष्क में स्थित ज्ञान-केन्द्रों की क्रिया होती है। प्रत्यक्षीकरण में इनके अतिरिक्त साहचर्य-क्षेत्र (Association area) की भी क्रिया होती है। संवेदना बाह्य उत्तेजनाओं या ज्ञानेन्द्रियों, बोध-स्नायुओं और मस्तिष्कीय ज्ञान-केन्द्रों की प्रतिक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण इनकी और साथ-साथ ज्ञान-केन्द्रों के समीपवर्ती साहचर्य-क्षेत्रों की भी प्रतिक्रिया है। वुडवर्थ कहता है, "संवेदना उत्तेजना के द्वारा उत्पन्न प्रथम प्रतिक्रिया या कम से कम प्रथम चेतन (Conscious) प्रतिक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण संवेदना के अनन्तर होने वाली दूसरी प्रतिक्रिया है, और अधिक उपयुक्त शब्दों में, संवेदना की अव्यवहित प्रतिक्रिया (Direct response) तथा मौलिक उत्तेजना की केवल व्यवहित प्रतिक्रिया (Indirect response)

है। घटनाओं की शृंखला यह है, उत्तेजना, बोधेन्द्रिय और बोध-स्नायु की प्रतिक्रिया, प्रथम त्वचीय प्रतिक्रिया (Cortical response) जो संवेदना है, द्वितीय त्वचीय प्रतिक्रिया जो प्रत्यक्षीकरण है" ।[1]

शरीर शास्त्रीय दृष्टिकोण से तो संवेदना और प्रत्यक्षीकरण का यह भेद ठीक है। किन्तु यही एकमात्र भेद नहीं है। प्रत्यक्षीकरण में संश्लेषण और विश्लेषण, साहचर्य और पूर्वार्जित ज्ञान से मेल, वस्तुभाव का सहज ज्ञान, स्थानीयकरण और बहिःक्षेपण होते हैं। मन इन मानसिक प्रक्रियाओं से संवेदना का अर्थ ज्ञात करता है, किन्तु आधुनिक व्यवहारवादी (Behaviourists) इनकी उपेक्षा करते हैं। यह कहना मात्र कि प्रत्यक्षीकरण उत्तेजना के प्रति द्वितीय त्वचीय प्रतिक्रिया है, पर्याप्त नहीं है। संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में भेद करने में वुडवर्थ व्यवहारवादी दृष्टिकोण अपनाता है। लेकिन प्रत्यक्षीकरण में सन्निहित मानसिक तत्वों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। ये प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में आवश्यक तत्व हैं।

३. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया की विशेषतायें। (Characteristics of the Perceptual Process)

स्टाउट प्रत्यक्षीकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ बताता है। वह प्रत्यक्षीकरण में संलग्न मानसिक तत्वों तथा सक्रिय प्रक्रियाओं को भी महत्व देता है।

(१) प्रत्यक्षीकरण की एकता और अविच्छिन्नता (Unity and Continuity)—कई प्रत्यक्ष अल्पस्थायी होते हैं। वे क्षणिक रुचियों की तृप्ति करते हैं और तत्पश्चात् लुप्त हो जाते हैं। अन्य प्रत्यक्ष दीर्घ काल तक चालू रहते हैं, उनमें मानसिक व्यापारों की एक शृंखला होती है। ये प्रत्यक्षीकरण के सरल व्यापारों की एक शृंखला से बने होते हैं। एक ढलुवां चट्टान पर चढ़ने वाला व्यक्ति अपने ध्यान को पैर रखने और हाथ से पकड़ने के स्थानों को ढूँढ़ने और उन पर जमे रहने पर केन्द्रित करता है। उसके प्रत्यक्षीकरण का व्यापार मुख्यतया ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष (Sense perception) के निर्देशन

[1] मनोविज्ञान, छठा संस्करण, पृ० ४२३

में पेशिक गतियाँ करना है। सुई पर धागा डालने, तनी हुई रस्सी पर चलने, साइकिल पर सन्तुलन बनाये रखने, शारीरिक कौशल के खेलों, इत्यादि में प्रत्ययों को शृंखलायें होती हैं जिनमें एकता और अविच्छिन्नता होती है। इन उदाहरणों में प्रत्यक्ष सरल, क्षणिक व्यापार नहीं है, वे एकता और अविच्छिन्नता वाली एक शृंखला का निर्माण करते हैं। जटिल प्रत्यक्षीकरण में शारीरिक गतियों और बाह्य उत्तेजनाओं पर निर्भर रहने वाले संस्कारों (Impressions) या प्रत्ययों की एक शृंखला होती है। एकता और अविच्छिन्नता प्रत्यक्षीकरण की सर्वसामान्य विशेषता है। इसकी अन्य विशेषतायें भी हैं।

(२) *ध्यान*—प्रत्यक्षीकरण में ध्यान होता है। प्रत्यक्षीकरण की शृंखला में निरंतर परिवर्तनशील उत्तेजनाओं पर ध्यान देना होता है। इसमें आगामी उत्तेजनाओं से ज्ञानेन्द्रियों का पूर्व-समायोजन (Pre-adjustment) होता है। बिल्ली चूहे की प्रतीक्षा करती है। वह आँख और कानों को आगामी उत्तेजनाओं से पहिले समायोजित कर लेती है। प्रत्यक्षीकरण के लिए मानसिक स्फूर्ति और ध्यान आवश्यक है ध्यान के बिना मन ऐन्द्रिय संस्कारों के संकेतों का अर्थ नहीं जान सकता। पूर्ण प्रत्यक्ष में ध्यान आवश्यक है। अपरिचित वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण में ध्यान की अत्यधिक मात्रा रहती है। हम ध्यान से नवीन और अप्रत्याशित वस्तुओं और घटनाओं का प्रत्यक्ष करते हैं।

(३) *प्रयत्न को बदलने के साथ-साथ दृढ़ता (Persistency with varied effort)*—प्रत्यक्षीकरण में कभी-कभी सहज प्रवृत्यात्मक (Instinctive) व्यापार होता है। सहजप्रवृत्यात्मक व्यापारों में परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ दृढ़ता पाई जाती है। पशु किसी वस्तु का प्रत्यक्ष करने में विविध गतियाँ करता है और ऐसा करते-करते सफल हो जाता है। एक छोटी गिलहरी पहिली बार एक मूंगफली देखती है। वह ध्यानपूर्वक उसका निरीक्षण करती है, उसका अनुसन्धान करती है, उसे हिलाती डुलाती है, उसे देखती, सूंघती, खोदती और चखती है। यह प्रत्यक्षीकरण एक प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया है। परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ दृढ़ता दूसरी विशेषता है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण में प्रयत्न और भूल के साथ प्रत्यक्ष तथा परिवर्तनशील

प्रयत्न के साथ दृढ़ता होती है।

परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ दृढ़ता स्वयं अतीत की अपेक्षा वर्तमान अनुभव से समायोजन है। यह वर्तमान संस्कारों (Impressions) के साथ समायोजन है, जो चेष्टा या अविरत आवेग (Continuous impulse) के कारण स्थिर रहता है। क्योंकि आवेग एक लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति होता है, इसलिए वह प्रात्यक्षिक क्रिया की श्रृंखला का पथप्रदर्शन करता है। परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ दृढ़ता गत अनुभव के परिणामों से सीखने का पूर्व-हेतु (Pre-condition) है।

(४) *परिवर्तनशील परिस्थितियों से स्वतंत्र समायोजन (Free adaptation to varying conditions)*—कभी-कभी उत्तेजनायें अपनी स्थिति, दूरी, और दिशा बदलती रहती है। पशु को भी इन परिवर्तनशील उत्तेजनाओं के साथ अपनी गतियों का समायोजन करना पड़ता है। किसी चलते हुए शिकार पर झपटने में गतियों को परिवर्तनशील उत्तेजनाओं से समायोजित करना होता है। मुक्केबाजी में, अपने को बचाने में अपने शरीर को सतत परिवर्तनशील उत्तेजनाओं से समायोजित करने के लिए हमें निरन्तर अपनी गतियों को बदलना होता है।

परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ दृढ़ता में प्रत्यक्ष का विषय नहीं बदलता, किन्तु उसका पर्याप्त प्रत्यक्ष करने के लिए विविध प्रयत्न करने पड़ते हैं; ये प्रयत्न रुचि की एकता और अविच्छिन्नता से तथा सतत आवेग या किसी लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति से पोषण पाते हैं। किन्तु, परिवर्तनशील परिस्थितियों से स्वतंत्र समायोजन करने में, वस्तु की स्थिति, दूरी और दिशा बदलती है और प्रत्यक्षकर्ता अपनी गतियों का स्वतंत्रतापूर्वक परिवर्तनशील परिस्थितियों से समायोजन करता है। जटिल प्रात्यक्षिक प्रक्रियाओं में ये दोनों तत्व होते हैं।

(५) *अनुभव से सीखना (Learning by experience)*—प्रत्यक्षीकरण में वर्तमान अनुभव का विगत अनुभव से संयोग होता है। किसी वस्तु का प्रत्यक्ष एक मानसिक संस्कार छोड़ जाता है जो भविष्य में उसके या किसी सदृश वस्तु के प्रत्यक्ष को ढालता और परिचलित करता है। स्टाउट इसे अर्थ

को उपलब्धि (Acquirement of meaning) कहता है। एक दो दिन पूर्व पैदा होने वाले मुर्गी के बच्चे ने अंडे के सफ़ेद हिस्से से ज़र्दी को छाँटना सीख लिया। उसे ज़र्दी के टुकड़ों के बराबर नारंगी के छिलके दिये गये। उसने शीघ्र ही एक को चुन लिया, लेकिन तुरन्त सिर हिलाकर उसे छोड़ दिया। फिर उसने दूसरा टुकड़ा लिया, कुछ देर तक चोंच में रखा और गिरा दिया। अब उसे तीसरा टुकड़ा उठाने के लिये प्रेरित नहीं किया जा सकता था। फिर नारंगी के छिलकों को हटाकर ज़र्दी के टुकड़े दिये गये। कुछ देर तक उसने उन्हें छुआ नहीं, शायद वह उन्हें नारंगी के छिलके समझे था। फिर उसने संदेह के साथ उन्हें देखा और एक को स्पर्श किया। तत्पश्चात् उसने उसे चुन कर निगल लिया। यह प्रत्यक्षीकरण में होने वाले अनुभव से सीखने का एक अच्छा उदाहरण है।

परिवर्तनशील प्रयत्न के साथ पशु वर्तमान अनुभव से सीखता है। यह अतीत अनुभव से सीखना नहीं है। फिर भी यह अतीत अनुभव से लाभान्वित होने का एक महत्व पूर्ण पूर्व-हेतु (Pre-condition) है।

(६) प्रत्यक्षीकरण में प्रत्याह्वान (Reproduction in Perception)—प्रत्यक्षीकरण में साहचर्य (Association) होता है। प्रथम, एक संवेदना दूसरी ज्ञानेन्द्रिय या अन्यों की संवेदनाओं के साथ संयुक्त हो सकती है। हम आम का फल देखते हैं, छूते हैं, चखते हैं और सूँघते हैं। आम के प्रत्यक्षीकरण में स्पर्श, दृष्टि, स्वाद, और घ्राण की संवेदनायें संगठित होती हैं। द्वितीय, संवेदनायें स्मृति-प्रतिमाओं (Memory image) से संयुक्त होती हैं। हमने भूतकाल में कई बार बर्फ़ को छुआ और देखा था, रंग की दृष्टि-संवेदनायें (Visual sensations) शीतलता की स्पर्श-संवेदनाओं (Tactual-sensations) से संयुक्त हुई थीं। अब हम बर्फ़ को देखते हैं और यह ठंडा 'दीखता' है। यहाँ पर रंग की दृष्टि-संवेदना शीतलता की स्मृति-प्रतिमा का प्रत्याह्वान करती है जो इसे जटिल बना देता है। स्टाउट इसे जटिलीकरण (Complication) कहता है। सभी व्यवहित (Indirect) या अर्जित (Acquired) प्रत्ययों में जटिलीकरण होती है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण

वास्तविक संवेदनाओं का संगठन (Integration) और संवेदनाओं का स्मृतियों से संयोजन (Combination) है।

४. प्रत्यक्षीकरण और प्रत्यभिज्ञा—(Perception and Recognition)

प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का अर्थ ग्रहण करना है। अर्थ ग्रहण करने में प्रत्यभिज्ञा होती है। हम वस्तु का प्रत्यक्ष करते हैं, उसे एक जाति में रखते हैं, और उसे पहिचानते हैं। हम वस्तुओं और घटनाओं का प्रत्यक्ष करते हैं, देश में उनके पारस्परिक सम्बन्धों का, उनके सादृश्यों और असादृश्यों का प्रत्यक्ष करते हैं।

मेलोन प्रत्यक्षीकरण की तीन भूमिकायें (Stages) बताता है: (१) प्रत्यभिज्ञा के बिना प्रत्यक्षीकरण; (२) स्पष्ट विचारों के बिना प्रत्यभिज्ञा; (३) स्पष्ट विचारों के साथ प्रत्यभिज्ञा।

(१) प्रत्यभिज्ञा के बिना प्रत्यक्षीकरण—निम्नतम कोटि के पशुओं में बिना प्रत्यभिज्ञा के प्रत्यक्षीकरण हो सकता है। एक प्रकार की मछली अपने आहार को केवल गन्ध से ढूंढ लेती है; एक दूसरे प्रकार की मछली केवल दृष्टि से ऐसा कर लेती है। एक तीसरे प्रकार की चपटी मछलियाँ अपने निकट आती हुई वस्तुओं का आभास पा लेती हैं; यदि वे जाले से टकरा जाती हैं तो तलहटी में छिप जाती हैं; तथापि वे अपने शिर के ऊपर लटकने वाले कीड़े को नहीं पहिचान पातीं, और यदि वह उनका स्पर्श भी करे तब भी वे उस पर नहीं झपटतीं, लेकिन उसकी गन्ध की संवेदना से उसकी उपस्थिति का आभास पाकर वे तालाब की तलहटी में उसके लिए अनुद्देश्य घूमती रहती हैं। मामूली मछली प्रकाश और अन्धकार, स्वाद और गन्ध का प्रत्यक्ष कर सकती है, लेकिन विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को सम्बन्धित नहीं कर सकती। बिल्ली या उदबिलाव विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को सम्बधित कर सकता है और वस्तुओं को पहिचान सकता है। किन्तु मछली अनुभव से नहीं सीख सकती। उसकी स्मृति-प्रतिमायें स्पष्ट नहीं होतीं। वह संवेदनाओं को जटिल

प्रत्यय में संयुक्त नहीं कर सकती। उसके प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। (मेलोन)

इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण होता है लेकिन प्रत्यभिज्ञा नहीं। मानसिक जीवन के प्रारम्भिक स्तर में ऐसा होना सम्भव है; जिसमें अतीत के सदृश अनुभवों के स्थायी प्रभाव प्राणी के व्यवहार में कोई अन्तर पैदा नहीं करते। जला हुआ पतंगा लौ से नहीं डरता। उसका प्रत्यक्षीकरण प्रत्यभिज्ञा से रहित होता है। वह गत अनुभव के प्रकाश में संवेदनाओं का अर्थ नहीं जान सकता।

(२) *स्पष्ट विचारों से रहित प्रत्यभिज्ञा*—अपरोक्ष या अर्जित (Indirect or acquired) प्रत्यय में संवेदनायें अस्पष्ट विचारों के कारण जटिल हो जाती हैं। बर्फ ठंडा दिखाई देता है। पका हुआ आम मीठा 'दिखाई' देता है। इत्र सुवासित 'दिखाई' देता है। यहाँ दृष्टि-संवेदनायें क्रमशः पूर्वानुभूत स्पर्श, स्वाद और गन्ध की संवेदनाओं के स्थायी प्रभाव के कारण जटिल बन गई हैं। किन्तु गत अनुभवों की स्मृति-प्रतिमायें स्पष्टतया पुनर्जीवित नहीं हुई; यहाँ पर दृष्टि की संवेदनायें क्रमशः स्पर्श, स्वाद और गन्ध की संवेदनाओं के अपने विगत साहचर्य (Association) से उत्पन्न प्रभावों से विशिष्ट हैं। स्टाउट इसे जटिलीकरण (Complication) कहता है। यह अनिवार्यतः अतीत संस्कारों के प्रभावों से विशिष्टीकृत ऐन्द्रिय-संस्कारों की उपलब्धि (Apprehension) है।

प्राणी को अनुभव से सीखने में समर्थ होने के पूर्व प्रत्यक्षीकरण के इस दूसरे स्तर में पहुँचना आवश्यक है। जब छोटा मुर्गी का बच्चा एक ही परिमाण के जर्दी के टुकड़े और नारंगी के छिलके में भेद कर सकता है, तो उसे दृष्टि और स्वाद की संवेदनाओं को संयुक्त करने की तथा उनके साहचर्य के भूतकालिक अनुभव से लाभ उठाने की शक्ति प्राप्त समझनी चाहिए। जब हम यह कहते हैं कि प्रत्यय का निर्माण करने के लिए संवेदनायें संयुक्त होती हैं, तो हमारा तात्पर्य यह नहीं होता कि प्रत्यय मानसिक इकाइयों का एक यांत्रिक समूह (Mechanical aggregate) है। विविध

संवेदनायें प्रत्यक्ष में होती अवश्य हैं, लेकिन उनका संयोजन एक नवीन मानसिक प्रतिक्रिया है, स्वयं एक अकेली समष्टि (Whole) है।

व्यवहित या अर्जित प्रत्यक्षीकरण में संवेदनायें अतीत अनुभव के प्रभावों से विशिष्ट होती हैं। अस्पष्ट विचार संवेदनाओं का विशिष्टीकरण करते हैं और परिचित होने की अनुभूति को जन्म देते हैं। इसे स्टाउट जटिलीकरण कहता है। प्रत्यक्षीकरण के इस स्तर पर किसी गत अनुभव का स्पष्ट प्रत्याह्वान नहीं होता; किन्तु गत अनुभव अपने पीछे एक संचयी प्रभाव (Cumulative effort) छोड़ जाता है, जो वर्तमान और पुनरावृत्त होने वाली संवेदना को परिवर्तित करता है तथा उससे परिचित होने की अनुभूति को जन्म देता है। इसमें धारणा शक्ति (Retentiveness) काम करती है। लेकिन प्रत्याह्वान स्पष्ट नहीं होता। वर्तमान संवेदना पूर्व अनुभव के संचयी प्रभाव से परिवर्तित होती है, जो उसे सार्थकता प्रदान करता है; और यद्यपि इस स्तर में सार्थकता की केवल अनुभूति होती है, पूर्ण चेतना में उसका उदय नहीं होता, तथापि इससे व्यवहार बदल जाता है। यह प्रत्यभिज्ञा का आरम्भ है।

दृष्टि-संवेदना अर्जित प्रत्यक्षीकरण का प्ररूप (Typical form) नहीं है। यदि कोई वस्तु मेरे हाथ पर रखी जाय और मेरी आंखें बन्द हों, तो यदि वह परिचित है तो मुझे उसका प्रत्यक्ष हो जायगा। इसी प्रकार सुनने मात्र से मुझे एक दूरवर्ती गाड़ी का प्रत्यक्ष हो जाता है, या गन्ध मात्र से मुझे पके हुए आम का प्रत्यक्ष हो जाता है। अर्जित प्रत्यक्ष की व्याख्या एक पृथक अधिकरण में की जायगी।

(२) *स्पष्ट विचारों से युक्त प्रत्यभिज्ञा*—अगले स्तर में स्मृति और कल्पना के स्पष्ट विचार स्वयं को अतीत अनुभव की धुंधली पृष्ठ-भूमि से मुक्त कर देते हैं और वर्तमान परिस्थियों से सम्बन्धित हो जाते हैं। यहाँ अतीत अनुभव के संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि वे वर्तमान अनुभव से भिन्न स्पष्ट विचार उत्पन्न कर देते हैं, और उस सीमा तक वर्तमान अनुभव से स्वतन्त्र होते हैं। मैं दूर से एक ऊँची वस्तु को देखता हूँ; कभी मैं उसे

एक खम्भा समझता हूँ और कभी एक मनुष्य। यहाँ पर मेरा प्रत्यक्ष गत अनुभव से पुनर्जीवित दो विरोधी विचारों के कारण अनिश्चित है। ज्यों ही मैं उस वस्तु के समीप जाता हूँ, मैं उसे एक मनुष्य देखता हूँ। 'खम्भे' का विचार निरुद्ध हो जाता है, तथा गत अनुभव से स्मृत 'मनुष्य' के विचार से दृष्टि-संवेदना विशिष्टीकृत हो जाती है। और अधिक समीप जाने पर मैं उसे अपना मित्र देखता हूँ। यहाँ पर निश्चित प्रत्यभिज्ञा है। मेरे मित्र का स्पष्ट विचार वर्तमान दृष्टि-संवेदना से संयुक्त हो जाता है, और उसे निश्चित अर्थ तथा परिचय की अनुभूति प्रदान करता है। यहाँ अर्थ की अनुभूति मात्र नहीं होती बल्कि स्पष्ट चेतना में उसका उदय हो जाता है।

इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण तीन भूमिकाओं में से गुजरता है, प्रत्यभिज्ञा से रहित प्रत्यक्षीकरण, अर्जित प्रत्यक्षीकरण या स्पष्ट विचारों से रहित प्रत्यभिज्ञा, तथा स्पष्ट विचारों से युक्त प्रत्यभिज्ञा।

५. सांवेदनिक चिह्न और अर्थ (Sensory Signs and Meanings)

हम गुणों और सम्बन्धों से युक्त वस्तुओं और घटनाओं का प्रत्यक्ष करते हैं। हम केवल दर्शन-क्षेत्र (Field of view) को नहीं देखते बल्कि वस्तुओं के क्षेत्र को, एक वस्तुगत परिस्थिति (Objective situation) को देखते हैं। हम वस्तुओं की स्थिति, परिमाण, आकृति, दूरी और रंगों को, उनकी गतियों और परिवर्तनों को देखते हैं। इसी तरह हम वस्तुओं को सूँघते, चखते, सुनते और स्पर्श करते हैं। हम पृथक् संवेदनाओं का नहीं बल्कि उनके समूहों का प्रत्यक्ष करते हैं।

प्रत्यक्षीकरण बहुत कुछ सीखने से प्रभावित होता है। प्रत्यक्षीकरण या निरीक्षण और सीखने में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। हम बहुत कुछ निरीक्षण से सीखते हैं। हम बहुत कुछ, जो पहिले सीखा जा चुका है उसके उपयोग से निरीक्षण करते हैं। सीखना निरीक्षण पर निर्भर है। निरीक्षण ... सीखा जा चुका है उस पर निर्भर है।

कभी-कभी हम केवल किसी तथ्य का चिह्न (Sign) देखते हैं, लेकिन प्रत्यक्ष करते हैं तथ्य का। यहाँ पर हम तुरन्त चिह्न का अर्थ निकाल लेते हैं। हम खिड़की से बाहर झांकते हैं और देखते हैं कि 'ज़मीन गीली है।' गीलापन देखा नहीं जा सकता; यह स्पर्श की जाने वाली चीज़ है, देखी जाने वाली नहीं। हम गीलेपन का कोई चिह्न देखते हैं। हम गीलेपन के दार्ष्टिक चिह्न (Visual sign) का अतीत स्पर्शज (Tactual) प्रत्यक्ष के प्रकाश में अर्थ लगाते हैं, तथा गीलेपन का आँखों से प्रत्यक्ष करते हैं। भूखा कुत्ता नियुक्त समय पर मिलने वाले दैनिक भोजन के पहले परम्परागत घंटी सुनता है। घंटी की ध्वनि के प्रत्यक्ष मात्र से उसके मुँह में लार आने लगती है। घंटी की ध्वनि भोजन का चिह्न बन चुकी है। इसी प्रकार, हम ज़मीन की अजीब शक्ल देखते हैं और गीलेपन के अपने पिछले स्पर्श के अनुभव के कारण उसे गीला देखते हैं। उसका दृष्टिगत रूप गीलेपन का चिह्न है। बच्चा अजीब सी दिखाई देने वाली ज़मीन को देखता है, वहाँ जाता है, और उसे गीलेपन का स्पर्श होता है। इस प्रकार दीखने वाली शक्ल गीलेपन का चिह्न बन जाती है।

चिह्न एक ह्रासित संकेत (Reduced cue) है। कुछ दूरी पर दिखाई देने वाले व्यक्ति की तस्वीर पास में होने की अपेक्षा छोटी होती है और उसमें विस्तार की बातें भी कम होती हैं, फिर भी हम उसे पहिचान लेते हैं, और उसका चित्र तथा रूप-रेखा तो निश्चय ही वास्तविक व्यक्ति की दृष्टिगत आकृति (Visual appearance) से बहुत ही कम विस्तार युक्त होते हैं। तथापि हम इन ह्रासित संकेतों के अर्थ जान लेते हैं तथा वस्तु को पहिचान लेते हैं। चिह्न और अर्थ का सम्बन्ध पिछले अनुभव से सीखा जाता है।

६. प्रत्यक्षीकरण और भ्रम (Perception and Illusion)

प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का ठीक-ठीक अर्थ ग्रहण करना है। इसमें सांवेदनिक चिह्नों के अर्थ की ठीक-ठीक प्रत्यभिज्ञा होती है। भ्रम सांवेदनिक चिह्नों या संवेदनाओं का ग़लत अर्थ लगाना है। यह अयथार्थ प्रत्यक्षीकरण

(Selective) क्रिया है। हम दूसरों को छोड़कर एक वस्तु का प्रत्यक्ष करते हैं। प्रत्यक्षीकरण चुनाव के नियम के अधीन है। वह संयोजन के नियम (Law of combination) का अनुसरण करता है। हम विस्तार की पृथक् बातों की अपेक्षा उनके समूहों को अधिक आसानी से देखते हैं। प्रत्यक्षीकरण सुविधा के नियम (Law of Advantage) के अधीन है। हम कुछ वस्तुओं या तथ्यों का अन्यों की अपेक्षा अधिक आसानी से प्रत्यक्ष करते हैं। प्रत्यक्षीकरण में कुछ सुविधाजनक तत्त्व निम्नलिखित हैं :—

(१) तत्त्वों की समीपता (Proximity) : उनके एक नमूने में समूह बद्ध होने के लिए अनुकूल होती है। अनियमित बिन्दुओं में हम उन बिन्दुओं का तुरन्त प्रत्यक्ष कर लेते हैं जो एक-दूसरे के समीप पड़ते हैं, और उन्हें समूह-बद्ध कर देते हैं।

(२) तत्त्वों की समानता (Similarity) : उन के समूहबद्ध होने के लिए अनुकूल होती है। यदि बिन्दु अलग-अलग रंगों के हैं, तो एक ही रंग के बिन्दुओं का एक समूह में प्रत्यक्ष होता है। यदि छोटे-छोटे त्रिभुज, वृत्त और वर्ग दृष्टि के सामने हैं, तो त्रिभुजों का एक समूह में, वृत्तों का दूसरे और वर्गों का तीसरे समूह में प्रत्यक्ष होता है।

(३) नमूने की अविच्छिन्नता (Continuity) : तत्त्वों के नियमित समष्टियों में समूहबद्ध होने के लिए अनुकूल होती है। एक सीधी या वक्र रेखा में पड़ने वाले बिन्दु आसानी से समष्टियों में समूहबद्ध हो जाते हैं।

(४) किसी नमूने की अन्तरावेशिता (Inclusiveness) : एक सुविधाप्रद तत्त्व है। एक समूह जो सब भागों को अपने में अन्तराविष्ट कर लेता है उसकी अपेक्षा जो कुछ भागों को बाहर छोड़ देता है, लाभ में रहता है। समूह या नमूने अपने पृथक् तत्त्वों की अपेक्षा अधिक आसानी से प्रत्यक्षीकृत होते हैं।

(५) किसी नमूने का परिचित होना (Familiarity) : प्रत्यक्षीकरण के लिए अनुकूल होता है। अपरिचित चेहरों के बीच एक परिचित चेहरे को हम आसानी से देख लेते हैं।

(६) *तत्परता* (*Set or readiness*) : किसी क्षण में एक सुविधाजनक तत्व होता है। इससे यह निर्धारित होता है कि उस क्षण में किसका प्रत्यक्ष होगा। यदि कोई व्यक्ति किसी नमूने को देखने या किसी ध्वनि को सुनने के लिए तत्पर है, तो वह आसानी से उसका प्रत्यक्ष कर सकता है। यह अन्य समान रूप से परिचित और सघन समूहों की अपेक्षा लाभ में रहता है।

(७) *जिस समष्टि का प्रत्यक्ष होता है* (*The whole that is perceived*) : उससे उन भागों का प्रत्यक्ष करने में आसानी होती है जो समष्टि से सामंजस्य (Coherence) रखते हैं। समग्र नमूना या परिस्थिति इस बात को निश्चित करती है कि अवयवों का प्रत्यक्ष कैसे होगा। प्रत्यक्षीकरण में समष्टि अवयवों को निर्धारित करती है।

प्रत्यक्षीकरण चुनाव और संयोजन करने वाली क्रिया है। इसमें कोई वस्तु चुनी जाती है, उसके भागों पर ध्यान दिया जाता है, और उन्हें समष्टि में समूहबद्ध किया जाता है। "प्रत्यक्षीकरण के विकास में तीन चरण होते हैं : (१) समावयव समष्टि (Undifferentiated whole); (२) पृथक्-पृथक् संवेदनायें, (३) एक समाकलित नमूना (Integrated pattern)।[1]

११. वाह्य जगत् का प्रत्यक्षीकरण (Perception of External Reality)।

प्रत्यक्षीकरण देश और काल से अवच्छिन्न वाह्य वस्तुओं की चेतन उपलब्धि (Apprehension) है। किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में भिन्न-भिन्न सांवेदनिक गुणों या भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से प्राप्त संवेदनाओं का संश्लेषण या संयोजन होता है। यह समाकलन (Integration) या संश्लेषण का कार्य है। प्रत्यक्षीकृत वस्तु में स्वतंत्रता की कुछ मात्रा होती है। जब हम उस पर क्रिया करना छोड़ देते हैं तब भी उसका अस्तित्व रहता है। उसके देशीय गुण होते हैं; उसकी सघनता, रूप और परिमाण होते हैं। वह

[1] मर्फी : संक्षिप्त सामान्य मनोविज्ञान, पृ० १७७

किसी दूरी और दिशा में स्थिति होती है। उसके कुछ गौण धर्म, (Secondary qualities) रंग, ध्वनि, तापमान, गंध और स्वाद होते हैं। वह धर्मों (Qualities) के परिवर्तन के बावजूद वही रहती है।

प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं को दिये जाने वाले गुण दो प्रकार के होते हैं, जिनमें मौलिक और गौण (Primary and secondary) नाम से भेद किया जाता है। मौलिक गुण सघनता या सान्द्रता (Solidity), विस्तार (Extension) (जिसमें रूप और परिमाण का समावेश होता है), दूरी, दिशा, गति और स्थिरता हैं; गौण गुण रंग, ध्वनि, गन्ध, स्वाद और तापमान हैं। मौलिक गुण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक तात्विक हैं। यदि हमें सघनता, विस्तार इत्यादि का प्रत्यक्ष न हो तो हमें रंगों, ध्वनियों इत्यादि को अन्य "वस्तुओं" से पृथक् देश में स्थित "वस्तुओं" के गुण नहीं समझना चाहिये। हम मौलिक गुणों का प्रत्यक्ष पैशिक (Muscular) संवेदनाओं से करते हैं।

प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं का सबसे अधिक आधारभूत लक्षण हमारी गतियों से उनकी आपेक्षिक स्वतंत्रता है। हमारी गति या पैशिक-संवेदनाओं की उत्पत्ति पेशियों, सन्धियों, कंडराओं (Tendons) इत्यादि की परिवर्तनशील दशाओं से होती है, जो शरीर की गतियों के साथ होती हैं। वे इन गतियों की संवेदनायें हैं। हम इन संवेदनाओं को कदापि बाह्य वस्तुओं के गुण नहीं समझते। किन्तु बाह्य इन्द्रियों की संवेदनायें, यथा, रंग, ध्वनियां, स्वाद, सान्द्रता (Solidity), विस्तार प्रभृति कदापि "संवेदनायें" मात्र नहीं मानी जातीं; उन्हें बाह्य पदार्थों के इन्द्रियज्ञेय गुण माना जाता है। इसका कारण यह तथ्य है कि इन संवेदनाओं में होने वाले परिवर्तन गति-संवेदनाओं (Motor sensations) से अलग पहिचाने जाते हैं, यथा किसी सीमा तक, लेकिन सदैव किसी अन्य वस्तु के द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर पैशिक गतियों से वे नियंत्रित की जा सकती हैं। मैं अपनी आँखें खोलता हूँ, तथा विभिन्न दिशाओं में उन्हें घुमाकर मैं किसी सीमा तक

दृश्य वस्तुओं पर नियंत्रण कर सकता हूं, लेकिन जिस प्रकार से वे मेरे सामने प्रस्तुत होंगी वह मेरे काबू से बाहर है। मैं अपनी आँखें खोलता हूं और धूप, पेड़, फूल और फल देखता हूं। मैं यह निर्धारित नहीं कर सकता हूँ कि मैं अपनी आँखों को घुमाकर क्या देखूँगा। अपने सांवेदनिक गुणों से युक्त प्रत्यक्षीकृत वस्तुयें मेरे शासन से स्वतंत्र हैं।

स्टाउट कहता है कि वाह्यता (Externality) का प्रत्यक्षीकरण पहिले पहल किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास में अर्थात् सप्रयोजन चेष्टा में गतियों के समायोजन के प्रसंग में उत्पन्न होता है। बाह्य जगत् के प्रत्यक्षीकरण में प्रतिरोध (Resistance) का प्रत्यक्षीकरण एक महत्वपूर्ण भाग लेता है। एक शेर अपने शिकार को कुछ दूरी पर देखता है; वह प्रतीक्षा करता है, उसके पास पहुंचता है, उस पर झपटता है, उसे काटता और मारता है, और खींचकर किसी सुरक्षित स्थान में ले जाता है। जहाँ तक उसके शिकार के अनुभव उसके गति-समायोजन (Motor adaptation) से स्वतंत्र हैं, तथा बाह्य दशाओं पर निर्भर हैं वहाँ तक उसे बाह्य जगत् का प्रत्यक्ष होता है।

बाह्य वास्तविकता का प्रत्यक्षीकरण सचेष्ट गति के अनुभव पर अवलम्बित है किसी बाह्य पदार्थ का सचेष्ट गति (Active movement) के अनुभव से प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल जहाँ तक पैशिक चेष्टा को लक्ष्यों की प्राप्ति में विरोध का सामना करना पड़ता है, वहीं तक किसी बाह्य पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है। जब कोई प्राणी अपने शिकार की प्रतीक्षा करता होता है, उस की खोज करता है, उसका अनुसरण करता है और उसके निकट पहुंचता है, तो उसे अपने शिकार का बाह्य पदार्थ के रूप में प्रत्यक्ष होता है।

१२. शरीर का प्रत्यक्षीकरण (Perception of the Body)

शरीर, उसके रूप और आकार का ज्ञान सहज नहीं होता; यह प्रत्यक्षीकरण तथा साहचर्य (Association) का फल है। छोटा बच्चा अपने शरीर

का अनुसन्धान करता है। शरीर की गतियों से उसे गति-संवेदना मिलती है। शरीर के विभिन्न अंगों के स्पर्श से उसे स्पर्श-संवेदनायें मिलती हैं जिनके विभिन्न स्थानीय चिह्न (Local signs.) होते हैं। गति-संवेदनायें स्पर्श-संवेदनाओं से संयुक्त होती हैं। स्थानीय चिह्न प्रारम्भ में शरीर के अंगों की विशेष स्थितियों का अपूर्ण ज्ञान देते हैं। अनुभव से शनैः शनैः गति—और स्पर्श-संवेदनाओं का संश्लेषण हो जाता है। स्थानीय चिह्न सीखने के फलस्वरूप विशेष स्थितियों के सही सूचक हो जाते हैं। छोटे बच्चे को अपने शरीर के अंगों का सही विचार नहीं होता। लड़खड़ा कर चलने वाला बच्चा अपने शिर को एक ओर किसी चीज़ से टकरा देता है, और कभी-कभी दूसरी ओर सहलाता है। शरीर का प्रत्यक्षीकरण धीरे-धीरे स्पर्श, गति और साहचर्य से होने वाले अनुभव के दौरान में अर्जित होता है।

शरीर की गतियाँ कभी-कभी उसे बाह्य वस्तुओं के सम्पर्क में लाती हैं, और तत्पश्चात् स्पर्श-संवेदनायें होती हैं। लेकिन व्यक्ति के अपने ही शरीर को छूने और एक बाह्य वस्तु को छूने में बहुत अन्तर है। पहिले में उसे दो स्पर्श-संवेदनायें होती हैं, एक स्पर्श करने वाले अंग में और दूसरी स्पर्श किये जाने वाले अंग में। वस्तु को छूने में एक ही स्पर्श-संवेदना होती है। इस तथ्य का शरीर और बाह्य वस्तुओं के भेद का प्रत्यय करने में मौलिक महत्त्व है। जब शरीर किसी बाह्य वस्तु को स्पर्श करता है, तो केवल एक ही स्पर्श-संवेदना होती है। जब शरीर अपने-आप को छूता है, तो दो स्पर्शों की संवेदना होती है। जब कोई बाह्य वस्तु शरीर को छूती है (शरीर की गति के फलस्वरूप नहीं) तो निष्क्रिय स्पर्श (Passive touch) का अनुभव होता है; इसमें अकेले स्पर्श की संवेदना होती है। यह सक्रिय स्पर्श (Active touch) के अनुभव से भिन्न है, जिसमें शरीर की गति के साथ या उसके पश्चात् स्वयं का या बाह्य वस्तु का स्पर्श होता है। दो सम्पर्कों की स्पर्श-संवेदनायें, उनके स्थानीय चिह्न और गति-संवेदनायें शरीर के प्रत्यक्षीकरण में अंशदान करती हैं।

किन्तु शरीर के प्रत्यक्षीकरण में सक्रिय स्पर्श ही अकेला तत्त्व नहीं है। दृष्टि, स्पर्श—और गति-संवेदनाओं से संयुक्त होती है, तथा शरीर के प्रत्यक्षी-

करण को अधिक निश्चित बनाती है। शरीर के उन अंगों की गतियां जो गतिमान दिखाई देती हैं गति-संवेदनायें देती हैं और शीघ्र ही बच्चा उनको समझने लगता है। वह अपनी भुजाओं और टांगों को इधर-उधर हिलाता है, और उन्हें हिलता हुआ देखता है। गति-संवेदनायें उसे अपनी भुजाओं और टांगों का तथा उनके विभिन्न भागों का कुछ ज्ञान देती हैं। दृष्टि-संवेदनायें उसके ज्ञान को अधिक निश्चित बना देती हैं। शनैः शनैः बच्चा दृष्टि से अलग गति-संवेदनाओं का अर्थ समझ सकता है। वह दृष्टि की सहायता के बिना शरीर के किसी भी अंग की चाल और दिशा को जानने लगता है।

इस प्रकार दो संपर्कों की स्पर्श-संवेदनाओं, दृष्टि-संवेदनाओं तथा गति-संवेदनाओं के संयोग से शरीर का प्रत्यक्षीकरण होता है। शरीर प्रत्यक्ष-योग्य वस्तुओं का प्ररूप (Type) है। वह तुलना का प्रतिमान (Standard of reference) है। बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण शरीर से तुलना और भेद करते हुये होता है।

१३. बाह्य "वस्तुओं" का प्रत्यक्षीकरण (Perception of External "Objects")

बाह्य वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण में शरीर तुलना का प्रतिमान होता है। शरीर सदैव हमारे साथ रहता है। हम सदैव बाह्य वस्तुओं की तरह इसे देखते और छूते हैं। अतः यह तुलना का प्रतिमान है। अन्य वस्तुयें जो परिवर्तन के मध्य स्थाई दिखाई देती हैं और इन्द्रिय-ग्राह्य गुणों से युक्त तथा शरीर से स्वतन्त्र और बाहर प्रतीत होती हैं, बाह्य वस्तुयें समझी जाती हैं। उनकी शरीर से स्वतंत्र अपनी ही एकता और स्थायित्व (Identity and permanence) होती है। उनमें से कुछ में व्यक्तित्व (Individuality) होता है और उन्हें जीवित समझा जाता है। अन्य परिवेश की परिवर्तनशील दशाओं के प्रति विविध रूपों में प्रतिक्रिया करने की शक्ति रखती हैं। उन्हें मन से युक्त समझा जाता है। अन्य हमारे साथ सामाजिक सहयोग और संघर्ष की शक्ति रखते हैं तथा व्यक्ति समझे जाते हैं।

आदिकालीन मनुष्य और छोटे बच्चे प्रकृति को मानवीय गुणों से युक्त समझते हैं। वे प्रत्येक वस्तु में व्यक्तित्व का आरोप करने की प्रवृत्ति रखते हैं। वे चट्टान, नदी, पेड़-पौदे और सभी प्रकार की निर्जीव वस्तुओं को सोचने, अनुभूति करने और संकल्प करने वाले व्यक्ति समझने के लिये तत्पर रहते हैं। शनैः शनैः अनुभव के दौरान में वे प्रकृति पर आरोपित व्यक्तित्व का अपहरण करते हैं तथा कुछ चीज़ों को "निर्जीव" और अन्यों को "सजीव" समझने लगते हैं।

१४. स्थानीयकरण और प्रक्षेपण (Localisation and Projection)

स्थानीयकरण उत्तेजना से प्रभावित शरीर के संवेदनशील तल (Sensitive surface) के भाग-विशेष के देशीय सम्बन्धों (Spatial relations) का प्रत्यक्षीकरण है। प्रक्षेपण स्वयं ज्ञानेन्द्रिय से बाहर की वस्तु के देशीय सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण है। यदि एक मक्खी चेहरे के ऊपर इधर से उधर निकल जाती है तो हम चेहरे की त्वचा पर और उसके उद्दीप्त भाग पर ध्यान देते हैं। यह स्थानीयकरण कहलाता है। दूसरी ओर, यदि हम किसी बाह्य वस्तु, यथा पुस्तक की रूप-रेखाओं का सक्रिय अनुसन्धान करते हैं, तो हम मुख्यतया वस्तु के देशीय सम्बन्धों पर ध्यान देते हैं, उसके द्वारा प्रभावित संवेदनशील तल के भाग के देशीय सम्बन्धों पर नहीं। स्थानीयकरण शरीर के संवेदनशील तल के देशीय सम्बन्धों का निर्देश करता है। प्रक्षेपण बाह्य वस्तुओं के देशीय सम्बन्धों का निर्देश करता है।

स्थानीयकरण त्वक्-संवेदनाओं और गति-संवेदनाओं के स्थानीय चिन्हों पर निर्भर है। बच्चा अपने शरीर के विभिन्न भागों का स्पर्श करता है और उसे विभिन्न स्थानीय चिन्हों से युक्त त्वक्-संवेदनायें होती हैं। वह सक्रिय रूप से अपने हाथ से अपने शरीर के विभिन्न अंगों का अनुसन्धान करता है और धीरे-धीरे उसके देशीय सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार विभिन्न स्थानीय चिन्हों से युक्त त्वक्-संवेदनायें उसे शरीर के विभिन्न अंगों का धुंधला

ज्ञान देती हैं। विभिन्न अंगों का अनुसन्धान करने और उनको हिलाने-डुलाने की गतियाँ उसके ज्ञान को निश्चित बनाती हैं। यहां स्थानीयकरण और प्रक्षेपण साथ-साथ होते हैं।

प्रक्षेपण सक्रिय गतियों पर निर्भर है। जैसे-जैसे बच्चा विकसित होता जाता है और अपने शरीर के बाहर स्थित वस्तुओं को हिलाने-डुलाने में रुचि लेने लगता है, वह शनैः शनैः बाह्य वस्तुओं के देशीय सम्बन्धों को सीख लेता है। प्रक्षेपण सक्रिय गति पर निर्भर है। बच्चा पहिले उन वस्तुओं को प्रतिक्षेपतः (Reflexly) पकड़ता है जो उसकी हथेली के सम्पर्क में आती हैं। यह पकड़ने की गति धीरे-धीरे ऐच्छिक, तथा अधिक निश्चित और दृढ़ हो जाती है। वस्तु को चेहरे के सम्पर्क में लाया जा सकता है और मुंह में रखा जा सकता है। इससे बच्चे को आनन्द मिलता है। ऐसी गतियों की पुनरावृत्ति करने के लिए उसमें प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार सक्रिय प्रहस्तन (Manipulation) प्रारम्भ होता है। ज्यों-ज्यों बच्चा शक्ति प्राप्त करता जाता है इसका विकास भी अधिकाधिक होता जाता है। कम से कम पहिले तीन महीनों में बच्चे में दृष्टि-प्रत्यक्ष स्पर्श-प्रत्यक्ष से अलग विकसित होता है। धीरे-धीरे वे परस्पर संयुक्त हो जाते हैं। दृष्टि-संवेदनायें बाह्य वस्तुओं की दूरी, दिशा और स्थिति के सूचक बन जाती हैं। दृष्टि-संवेदनाओं में प्रक्षेपण होता है, स्थानीयकरण नहीं होता।

१५. देश या विस्तार का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Space or Intention)

देश का अर्थ है विस्तार। इसमें दो तत्व हैं, द्रव्य (Matter) और आकार (Form)। साथ-साथ रहने वाले और प्रतिरोध की शक्ति रखने वाले विन्दु इसका द्रव्य हैं। उनकी व्यवस्था और सजावट इसका आकार है। हम तीन तत्वों के सहयोग से विस्तार का प्रत्यक्ष करते हैं : (१) व्याप्ति (Extensity), (२) स्थानीय चिन्ह (Local sign), और (३) गति (Movement)। दृष्टि-या स्पर्श-संवेदनाओं की व्याप्ति हमें सहवर्ती, प्रतिरोधशील विन्दुओं की एक साथ उपलब्धि कराती है। उनके स्थानीय चिन्ह

हमें यह सूचना देते हैं कि ये बिन्दु परस्पर भिन्न हैं। सक्रिय गति से हम परस्पर भिन्न सहवर्ती, प्रतिरोधशील बिन्दुओं के क्रम और व्यवस्था का प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रकार गति व्याप्ति (Extensity) को विस्तार (Extension) में परिणत कर देती है। स्पर्श—और दृष्टि संवेदनाओं की व्याप्ति, स्थानीय चिन्ह, और गति-संवेदनायें सहयोग पूर्वक हमें देश (Space) का प्रत्यक्ष कराती हैं।

१६. देश या विस्तार का स्पर्शज प्रत्यक्षीकरण (Tactual Perception of Space)

अब हमें देखना चाहिए कि अन्धे मनुष्य के देश के स्पर्शज प्रत्यक्ष में ये तीन तत्व कैसे सहयोग करते हैं। अन्धा व्यक्ति अपने एक हाथ या साथ-साथ दोनों हाथों से एक विस्तारयुक्त वस्तु, यथा एक मेज को छूता है। लेकिन वह हाथों को हिलाता नहीं। यह स्पर्श-मात्र निष्क्रिय स्पर्श कहलाता है; क्योंकि इसमें वस्तु के एक भाग से दूसरे भाग की ओर सक्रिय गति नहीं होती। स्टाउट इसे संश्लेषणात्मक स्पर्श (Synthetic touch) कहता है, क्योंकि यह वस्तु के सभी या कई भागों का एक साथ समग्र ज्ञान देता है। स्पर्श संवेदनाओं की व्याप्ति से अन्धा व्यक्ति वस्तु के सभी या कई भागों का एक ही समय प्रत्यक्ष कर लेता है। जब उसकी हथेलियाँ मेज के निष्क्रिय सम्पर्क में होती हैं, तो मेज के विभिन्न भाग उसकी हथेलियों के विभिन्न भागों को उत्तेजित करते हैं जिससे उनसे उत्पन्न स्पर्श-संवेदनाओं के स्थानीय चिह्न अलग-अलग होते हैं। इस प्रकार स्पर्श-संवेदनाओं के स्थानीय चिह्नों से वह मेज के विभिन्न भागों को परस्पर पृथक् जानता है। तब वह विविध प्रकार से अपनी उंगलियों की नोकों को मेज के एक भाग से दूसरे पर फिराता है। उंगलियों की नोकों की सक्रिय गति से वह मेज के विभिन्न भागों की दूरी, दिशा और स्थिति का प्रत्यक्ष करता है। यह सक्रिय स्पर्श कहलाता है, क्योंकि इसमें वास्तव में सक्रिय गति होती है। स्टाउट इसे विश्लेषणात्मक स्पर्श (Analytic touch) कहता है क्योंकि यह संश्लेषणात्मक स्पर्श (Synthetic touch) के द्वारा प्रत्यक्षीकृत विस्तारयुक्त समष्टि (Extended whole) का अनुक्रमिक

संस्कारों (Successive impressions) की परम्परा (Series) में विश्लेषण करता है। इस प्रकार देशीय व्यवस्था (Spatial order) के प्रत्यक्षीकरण का कारण संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक स्पर्श का रुचि की एकता और अविच्छिन्नता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग है। न तो निष्क्रिय स्पर्श पर्याप्त है और न सक्रिय स्पर्श मात्र। जन्म से अन्धे व्यक्ति देश का प्रत्यक्ष इस विधि से करते हैं।

१७. देश (या विस्तार) का दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण (Visual Perception of Space)

देश के दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण में भी व्याप्ति, स्थानीय चिन्ह, और गति का परस्पर सहयोग होता है। यहां निष्क्रिय दृष्टि सक्रिय दृष्टि से सहयोग करती है। निष्क्रय दृष्टि निष्क्रिय स्पर्श के तुल्य है, तथा सक्रिय दृष्टि सक्रिय स्पर्श के तुल्य। आप रात में निश्चल आंखों से आकाश के तारों को देखते हैं। आप कई तारों को एक साथ देखते हैं। दृष्टि-संवेदनाओं की व्याप्ति आपको सूचना देती है कि आकाश में कई सहवर्ती तारे हैं। जब आप तारों को देखते हैं तो विभिन्न तारे दृष्टिपटल (Retina) के विभिन्न भागों को उत्तेजना देते हैं। दृष्टि-संवेदनाओं के स्थानीय चिन्हों से आप तारों की पारस्परिक पृथकता का प्रत्यक्ष करते हैं। तत्पश्चात आप अपने अक्षिगोलकों (Eye-balls) की गति से या सक्रिय दृष्टि से तारों की दूरी, दशा और स्थिति का प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रकार सक्रिय दृष्टि से तारों में क्रम और व्यवस्था का आपको प्रत्यक्ष होता है। सक्रिय दृष्टि के सहयोग से निष्क्रिय दृष्टि रुचि की एकता के पथ प्रदर्शन में काम करके देशीय व्यवस्था या विस्तार का प्रत्यक्ष ज्ञान देती है।

प्रायः सामान्य जीवन में देश का दृष्टिज प्रत्यक्ष और देश का स्पर्शज प्रत्यक्ष परस्पर सहयोग करते हैं। यद्यपि दृष्टि या स्पर्श-मात्र हमें देश का ज्ञान दे सकता है, तथापि ऐसा वे सामान्यतया मिल कर करते हैं।

१८. दूरी (या देश की तीसरी विमा) का स्पर्शज प्रत्यक्षीकरण (Tactual Perception of Distance or Space of the Third Dimension)

सक्रिय स्पर्श या गति से हम सीधे दूरी का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। अपने हाथ या पाँव फैला कर हम छोटी दूरी का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। चलने या दौड़ने से हम लम्बी दूरी का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इसे सक्रिय स्पर्श या गति कहते हैं। इसमें दो तत्व होते हैं, (१) स्पर्श-संवेदनायें और (२) पैशिक या गति-संवेदनायें। सक्रिय स्पर्श या स्पर्श-पैशिक संवेदनाओं (Tactuo-muscular sensations) से हमें दूरी का सीधा प्रत्यक्ष होता है।

१६. दूरी या गहराई (देश की तीसरी विमा) का दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण (Visual Perception of Distance or Depth)

दूरी का हमें सक्रिय स्पर्श से सीधा प्रत्यक्ष हो सकता है। दृष्टि से उसका सीधा प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। दृष्टि हमें कुछ दार्ष्टिक चिन्ह (Visual signs) प्रदान करती है जिनका अर्थ समझ कर हमें दूरी का प्रत्यक्ष हो सकता है। इस प्रकार दूरी का दृष्टिज प्रत्यक्ष अर्जित (Acquired) होता है। हम सीधे दृष्टि से दूरी का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते, क्योंकि अक्षिगोलक दूरी मापने के लिए अक्षिकूप (Socket) से निकलकर नहीं जा सकता, तथा एकही दृष्टि-रेखा में पड़ने वाली विभिन्न दूरियों पर स्थित वस्तुयें दृष्टिपटल के एक ही भाग को प्रभावित करती हैं।

(१) एकनेत्रीय दृष्टि (Monocular vision): एकनेत्रीय तत्व (Monocular Factors):

लम्बी दूरियों के दार्ष्टिक चिह्न निम्नलिखित हैं :—

वायव्य नेत्रदशा या रूपरेखा की स्पष्टता (Aerial perspective or clearness of outline)—यदि वस्तु की रूपरेखायें स्पष्ट हैं, तो वह समीप है। लेकिन यदि वे धुन्धली और अस्पष्ट हैं तो वह दूर है। किन्तु यदि वातावरण में कुहरा भरा है, तो एक समीपस्थ वस्तु भी धुन्धली और अस्पष्ट दिखाई देती है।

आच्छादन (Superposition)—दूरस्थ वस्तु समीपस्थ वस्तु से अंशतः ढकी होती है। जब हम देखते हैं कि एक वस्तु की रूपरेखा दूसरी के कारण टूटी हुई है, तो हम निर्णय करते हैं कि पहली दूर है और दूसरी समीप।

छायायें और रंग का उतार-चढ़ाव (Shadows and shading)—दूरी के लिये प्रकाश और अंधकार का वितरण एक महत्वपूर्ण दार्ष्टिक चिह्न है। किसी चित्र का प्रकाशित भाग समीप मालूम पड़ता है और छाया वाला भाग दूर। यदि चित्र में प्रकाश और छायाओं का उचित वितरण है तो हम वस्तुओं को वस्तुतः वैसी ही देखते हैं जैसी विभिन्न दूरियों पर।

गणित-सम्बन्धी नेत्रदशा (Mathematical perspective)—यदि वस्तु का वास्तविक आकार ज्ञात है तो हम दूरी का अनुमान उसके दिखाई देने वाले आकार या परिमाण से कर सकते हैं। जब हम पतंग उड़ाते हैं तो ज्यों-ज्यों वह आकाश में ऊपर चढ़ती जाती है त्यों-त्यों वह छोटी दिखाई देती है। वस्तु जितनी ही समीप होगी उतनी ही बड़ी दिखाई देगी, जितनी ही दूर होगी उतनी ही छोटी दिखाई देगी।

आपेक्षिक गति (Relative motion)—जब हम चलते हैं तो समीपस्थ वस्तुयें दूरस्थ वस्तुओं की अपेक्षा अधिक शीघ्रता के साथ चलती प्रतीत होती हैं। अतः जब हम स्वयं चलते होते हैं तो हम वस्तुओं की प्रतीयमान (Apparent) आपेक्षिक गति से दूरी का अनुमान कर सकते हैं। जब हम भागती हुई रेलगाड़ी में होते हैं तो समीपस्थ वस्तुयें बहुत शीघ्रता के साथ विरुद्ध दिशा में भागती हुई प्रतीत होती हैं, लेकिन दूरस्थ वस्तुयें मन्द गति से भागती हुई प्रतीत होती हैं।

समानान्तर रेखाओं का प्रतीयमान अभिसरण (The apparent convergence of lines known to be parallel)—दूरी जितनी ही अधिक होती है समानान्तर रेखायें उतनी ही पास-पास आती हुई दिखाई देती हैं। बढ़ती हुई दूरी के साथ रेल की समानान्तर पटरियाँ परस्पर पास-पास आती हुई प्रतीत होती हैं। ये मनोवैज्ञानिक संकेत (Psychological cues) हैं।

व्यवस्थापन (Accommodation)—अक्षिगोलक का ताल (Lens) विभिन्न दूरियों के साथ वलिकाय पेशी और वलि (Ciliary muscle and

processes) के द्वारा व्यवस्थापित होता है। दूरी जितनी छोटी होती है ताल की गोलाई उतनी ही बढ़ जाती है। दूरी जितनी अधिक होती है ताल की गोलाई उतनी ही घट जाती है। वलिकाय पेशी और वलि में तनाव की विभिन्न मात्रायें विभिन्न दूरियों का सुझाव देती है। यह शरीर व्यापारिक संकेत (Physiological cue) है।

(२) द्विनेत्रीय दृष्टि (Binocular Vision): द्विनेत्रीय तत्व (Binocular Factors)

केन्द्राभिसरण (Convergence)—बाहर से लगी हुई छः पेशियों से हम अपनी आँखों को एक अकेली वस्तु पर केन्द्रित कर सकते हैं। वस्तु *जितनी ही समीप होती है आँखें उतनी ही पास-पास होती हैं।* दूरी जितनी ही अधिक होती है (एक निश्चित सीमा तक) आँखें उतनी कम पास होती हैं। इस प्रकार केन्द्राभिसरण में आँखों की बाह्य पेशियों पर पड़ने वाले तनाव *की विभिन्न मात्रायें विभिन्न दूरियाँ सुझाती हैं। यह एक शरीर* व्यापारिक संकेत है।

दृष्टिपटल पर पड़ने वाली प्रतिमाओं की विषमता (Disparity of retinal images)—दाहिनी और बाईं आँख पर एक ही वस्तु या परिस्थिति की कुछ भिन्न तस्वीरें बनती हैं। दाहिनी आंख वस्तु के दाहिने भाग को देखती है। बाईं आँख उसके बायें भाग को देखती है। दोनों दृष्टिपटलों की प्रतिमायें भिन्न होती हैं। इस तथ्य को दृष्टिपटल गत विषमता कहते हैं। वस्तु जितनी ही समीप होती है, दृष्टिपटलगत प्रतिमाओं में उतनी ही अधिक विषमता होती है तथा उन्हें एक में संयुक्त करने में उतना ही अधिक जोर पड़ता है। दूरी जितनी ही अधिक होती है दृष्टिपटलगत प्रतिमाओं में उतनी ही कम विषमता होती है और उन्हें एक में संयुक्त करने में उतना ही कम जोर पड़ता है। यह एक शरीर व्यापारिक संकेत है। इन शरीर व्यापारिक संकेतों का अर्थ ग्रहण करने से, जो या तो जन्मजात हैं या अर्जित, दूरी या गहराई का दृष्टिज प्रत्यक्ष होता है।

२०. सघनता या सान्द्रता का दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण (Visual Perception of Solidity)

सघनता का हमें दृष्टि से सीधा प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अक्षिगोलक अक्षिकूपों से बाहर निकलकर किसी वस्तु की मोटाई या सघनता को नहीं माप सकते। किन्तु कुछ दृष्टिगत चिह्न होते हैं जिनका अर्थ जानकर हम सघनता का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। सघनता को सुझाने वाले दृष्टिगत चिह्न निम्नलिखित हैं :—

समीपवर्ती वस्तुओं की सघनता का इस प्रकार प्रत्यक्ष किया जा सकता है, (१) दोनों आंखों की दृष्टिपटलगत प्रतिमाओं में विषमता की अनुभूति से, (२) इन्हें एक दृष्टि-प्रतिमा में संयुक्त करने के मानसिक प्रयत्न से, और (३) दृष्टि के अक्षों की केन्द्रोन्मुखता (Convergence of axes of vision) से। इस प्रकार सघनता के दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण में आंखों की बाह्य पेशियों से सम्बन्धित गति-संवेदनायें शुद्ध दृष्टि-संवेदनाओं से संयुक्त होती हैं, जैसा कि दूरी के दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण में होता है। इसका समर्थन व्हीटस्टोन के स्टीरियोस्कोप की खोज से होता है। स्टीरियोस्कोप (Stereoscope) में किसी ठोस वस्तु की मामूली अन्तर रखने वाली दो तस्वीरें, जो दोनों दृष्टिपटलों के दृष्टिकोणों के समकक्ष कुछ परस्पर भिन्न कोणों से ली गई होती हैं, इस प्रकार आंखों के सामने पेश की जाती हैं कि दोनों तस्वीरों में वही पारस्परिक अन्तर होता है जो उसी ठोस वस्तु की दृष्टिपटलगत प्रतिमाओं में होता है; किन्तु जब हम स्टीरियोस्कोप से देखते हैं तो हमें वस्तु ठोस प्रतीत होती है। यहाँ दो तस्वीरें संयुक्त होकर एक ठोस वस्तु की उपलब्धि कराती हैं। ठोसपन या सघनता का दृष्टिज प्रत्यक्ष दृष्टि और पेशिक संवेदनाओं का मिश्रण है।

बहुत दूरी पर स्थित वस्तुओं की सघनता का प्रत्यक्षीकरण निम्नलिखित दार्शिक संकेतों का अर्थ जानकर हो सकता है : (१) नेत्रदृश्य (Perspective) का प्रभाव या प्रकाश और छाया का वितरण, (२) जिन सीमा रेखाओं का समानान्तर होना ज्ञात है उनकी प्रतीयमान केन्द्रोन्मुखता

चित्रकार अपनी सपाट तस्वीरों को ठोस दिखाने के लिए इन दोनों विधियों से काम लेता है। पहिले वह किनारों और सीमा-रेखाओं को, जो वास्तव में समानान्तर हैं, पास-पास आती हुई दिखाता है। फिर वह विभिन्न भागों में प्रकाश और छाया का असमान वितरण करता है। ये दो उपाय चित्रों को, जो वस्तुतः सपाट हैं, ठोस दिखाते हैं। इस प्रकार ठोसपन का हमारा दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण अर्जित होता है।

२१. परिमाण का दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण (Visual Perception of Magintude)

हम दृष्टि से किसी वस्तु के वास्तविक परिमाण का सीधे प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। किन्तु दृष्टि से हमें कुछ संकेत मिलते हैं जिनका अर्थ जान कर हम वास्तविक परिमाण को परोक्षतः जान सकते हैं। हार्दिक संकेत निम्नलिखित हैं :—

प्रतीयमान परिमाण (Apparent magnitude)—यदि वस्तु की दूरी ज्ञात है तो उसके (यथा, पतंग के) वास्तविक परिमाण का ज्ञान उसके प्रतीयमान परिमाण या दृष्टिपटलगत परिमाण (Retinal magnitude) से हो सकता है। अन्यथा दृष्टि से वस्तु के वास्तविक परिमाण का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। यदि हमें एक इमारत की दूरी ज्ञात है तो प्रतीयमान परिमाण से उसके असल परिमाण का प्रत्यक्ष हो सकता है।

दृष्टिपटलगत कोण (Retinal angles)—किसी वस्तु के परिमाण का प्रत्यक्ष विभिन्न दृष्टिपटलगत कोणों से हो सकता है। एक ही परिमाण वाली वस्तु विभिन्न दूरियों पर विभिन्न दृष्टिपटलगत कोण बनाती है, दूरी अधिक होने पर दृष्टिपटलगत कोण छोटा बनता है। यहाँ भी दूरी को ज्ञात होना चाहिये। हमें परिमाण का सीधा दृष्टिज प्रत्यक्ष नहीं होता, बल्कि केवल अर्जित होता है।

२२. गति का दृष्टिज प्रत्यक्षीकरण (Visual Perception of Movement)

पहिले, जब हम निश्चल आँखों से एक चलती हुई वस्तु को देखते हैं तो हमें दृष्टि-क्षेत्र के आर-पार गुजरने वाली दार्ष्टिक प्रतिमाओं की एक शृंखला प्राप्त होती है जिसका कारण हमारे प्रयत्न का न होना स्पष्ट है। विभिन्न स्थानीय चिह्नों वाली विभिन्न दृष्टि-संवेदनायें हमें वस्तु की गति का प्रत्यक्ष ज्ञान देती हैं। यहाँ हमें पैशिक संवेदनाओं के अभाव के कारण विश्वास रहता है कि हम स्वयं नहीं चल रहे हैं। द्वितीय, हम अपनी आँखों को घुमाकर किसी वस्तु की गति का अनुसरण कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम सीधे दृष्टि से गतिमान वस्तुओं का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। हम आँखों की गति से सम्बन्धित पैशिक संवेदनाओं से गति का प्रत्यक्ष करते हैं।

किन्तु यह कहा जाता है कि हम आँखों को पेशियों की गति को सही-सही नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त जब कोई वस्तु दृष्टि-क्षेत्र में अकेली होती है तो हम उसकी गति का सही अन्दाज नहीं कर सकते। जब दृष्टि-क्षेत्र में निश्चल वस्तुयें होती हैं तो वस्तुओं की गति उनके निश्चल वस्तुओं से होने वाले सम्बन्ध के द्वारा से निर्धारित होती है। इसका निर्धारण आँखों से गतिमान वस्तुओं का अनुसरण करने और आँखों की पेशियों के संकोचों से उनकी गतियों का प्रत्यक्ष करने से नहीं होता (पिल्सबरी)।

२३. सघनता, भार और गति का स्पर्शज प्रत्यक्षीकरण (Tactual Perception of Solidity, Weight and Movement)

हम वस्तुओं की सघनता, परिमाण और गति का सक्रिय स्पर्श या गति से सीधे प्रत्यक्ष करते हैं। सघनता या अभेद्यता (Impenetrability) का बाधित गति (Thwarted movement) से सीधे प्रत्यक्ष होता है। यहाँ तीव्र पैशिक तनाव के साथ दबाव की तीव्र संवेदना होती है। भार का प्रत्यक्ष तब होता है जब किसी वस्तु को उठाने से गति-संवेदनायें और दबाव की संवेदनायें होती हैं। वस्तु की गति का प्रत्यक्ष निष्क्रिय और सक्रिय स्पर्श से होता है। यदि एक अन्धा व्यक्ति अपने हाथ को हिलाये बिना किसी गतिमान वस्तु का स्पर्श करे तो उसे विभिन्न स्थानीय चिह्नों वाली स्पर्श-संवेदनाओं

की एक शृंखला प्राप्त होगी। वह जानता है कि स्पर्श-संवेदनाओं में इस परिवर्तन का कर्ता वह नहीं है। इस प्रकार वह जानता है कि इसका कारण वस्तु की गति है। अथवा, वह अपने हाथ को चलाकर गतिमान वस्तुओं का अनुसरण कर सकता है। उसकी स्पर्श-संवेदना वही रहेगी। किन्तु उसे परिवर्तनशील पैशिक संवेदनाओं की एक शृंखला प्राप्त होगी। इन गति-संवेदनाओं से उसे वस्तु की गति का ज्ञान होता है।

२४. सीधा प्रत्यक्षीकरण और अर्जित प्रत्यक्षीकरण (Direct and Acquired Perception)

हम बर्फ के एक टुकड़े को छूते हैं। हमें उसकी ठंडक का प्रत्यक्ष होता है। यह सीधा प्रत्यक्षीकरण है। हम उसे अपनी आँखों से देखते हैं। वह ठंडा दिखाई देता है। यह अर्जित प्रत्यक्षीकरण है। हमें आंखों से ठंडक का सीधे प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। हमने पहिले स्पर्श से बर्फ की ठंडक को जाना था। अब हम बर्फ के एक टुकड़े को देखते हैं, उसके दर्शन से हमें ठंडक का विचार सूझता है जिसका हमें पूर्व अवसरों पर प्रत्यक्ष हुआ था। दार्ष्टिक प्रत्यक्ष सूझी हुई स्पर्श-प्रतिमा (Tactual image) के कारण जटिल बन जाता है। स्टाउट इसे जटिलीकरण कहता है। सली इसे व्यवहित या अर्जित प्रत्यक्षीकरण कहता है। इसमें एक अप्रकट विचार एक प्रत्यक्ष से बंधा होता है। इसी प्रकार एक आम का फल पका हुआ दिखाई देता है। एक चंदन का टुकड़ा सुगंधित दिखाई देता है। ये अर्जित प्रत्यक्षीकरण के उदाहरण हैं। हम स्पर्श और चखने से पके हुये होने का सीधे प्रत्यक्ष कर सकते हैं जो उसको देखने से सूझता है। हम सूंघने से सुगंध का सीधे प्रत्यक्ष कर सकते हैं, जो उसे देखने से सूझती है। इस प्रकार हमारा दूरी, ठोसपन, गति और परिमाण का दृष्टिज प्रत्यक्ष अर्जित होता है।

२५. देश का अर्जित श्रवणज प्रत्यक्षीकरण (Acquired Auditory Perception of Space)

हमें सुनने से स्थिति, दूरी और दिशा का सीधे प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

हम उनका केवल व्यवहित या अर्जित प्रत्यक्ष कर सकते हैं। हमें देश का सीधे श्रवणज प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

कान से द्वि-वैन देश (Two-dimensional space) या विस्तार का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। कान से वस्तुओं की दूरी और दिशा का जो ध्वनि उत्पन्न करती हैं, परोक्ष ज्ञान हो सकता है। ये स्थानीयकरण (Localizations) अपेक्षाकृत अनिश्चित और गलत होते हैं। एक परिचित ध्वनि (यथा, रेल के इंजन की सीटी) को विभिन्न दूरियों पर सुना गया है; उसकी तीव्रता की विभिन्न मात्राओं का सही-सही निरीक्षण किया गया है। परिचित ध्वनियों की तीव्रता की विभिन्न मात्रायें विभिन्न दूरियाँ सुझाती हैं। दूरी जितनी ही अधिक होती है ध्वनि उतनी ही निर्बल होती है। दूरी जितनी ही कम होती है, ध्वनि उतनी ही तीव्र होती है। लेकिन अपरिचित ध्वनियों की दूरी का हमें अनुमान नहीं हो सकता।

दिशा का श्रवणज प्रत्यक्ष तीन बातों पर निर्भर है—प्रत्येक कान से सुनी जाने वाली ध्वनि की आपेक्षिक तीव्रता, ध्वनि का विशिष्ट गुण (Timbre) और उसकी तीव्रता दाहिनी ओर से आने वाली ध्वनि दाहिने कान को बायें कान की अपेक्षा अधिक उत्तेजित करेगी। बाईं ओर से आने वाली ध्वनि बायें कान को अधिक उत्तेजित करेगी। हम ध्वनि की दिशा का दोनों कानों के ऊपर पड़ने वाले उसके प्रभावों की आपेक्षिक शक्ति से सही निर्णय कर सकते हैं। इस प्रकार जैसे दृष्टि द्विनेत्रीय (Binocular) होती है वैसे ही श्रवण भी द्विकर्णीय (Binaural) होता है।

साधारणतया हमें ध्वनि के उद्गम का ज्ञान गति से होता है। किन्तु ध्वनियों की विभिन्न मात्राओं और गुणों का बार-बार गतियों से साहचर्य होता है, जिनसे हम दूरी और दिशा का प्रत्यक्ष करते हैं। इस प्रकार बाद में ये दूरी और दिशा का सुझाव देने लगते हैं। अतः देश अर्थात् दूरी और दिशा का हमारा श्रवणज प्रत्यक्षीकरण अर्जित होता है।

२६. काल का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Time)

हम केवल वर्तमान का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। किन्तु प्रत्यक्षीकृत काल एक

गणित-शास्त्रीय क्षण (Mathematical moment) नहीं होता बल्कि एक कालावधि (Duration) या काल-मात्रा होता है। इसमें वर्तमान मात्र नहीं होता बल्कि निकट भूत की प्रतिध्वनि और निकट भविष्य का पूर्व-ज्ञान भी सम्मिलित होते हैं। वास्तविक संवेदना वर्तमान काल का चिह्न है। एक भूखा बच्चा खाना खा रहा है; भूख की तृप्ति की वास्तविक संवेदना उसे वर्तमान का प्रत्यक्ष ज्ञान देती है। चेष्टा जितनी ही बाधित या विलम्बित होती है, काल उतना ही दीर्घ प्रतीत होता है। जितनी ही चेष्टा अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर सफलता तथा आसानी के साथ अग्रसर होती है, काल उतना ही अल्प प्रतीत होता है। प्रत्यक्षीकरण के स्तर पर भूत, वर्तमान और भविष्य का भेद केवल अपूर्ण रूप में मालूम होता है। ध्यान की प्रतीक्षापूर्ण मुद्रा (Prospective attitude) में जो "अभी नहीं" की चेतना होती है उससे हमें भविष्य का प्रत्यक्ष होता है। जब हम आतुर होकर भोजन की प्रतीक्षा करते हैं तो हम भविष्य का प्रत्यक्ष करते हैं। "अब नहीं" की चेतना हमें भूत का प्रत्यक्ष कराती है। जब हम तृप्तिदायक भोजन का उपभोग कर चुके होते हैं, तो हम भूत का प्रत्यक्ष करते हैं। जब लक्ष्य-प्राप्ति में विलम्ब या बाधा होती है तो "अभी नहीं" की चेतना को बल मिलता है। जब लक्ष्य-प्राप्ति में अकस्मात् निराशा या असफलता होती है "अब नहीं" की चेतना को बल मिलता है। स्मृति और कल्पना के द्वारा भूत और भविष्य का स्पष्ट ज्ञान होता है।

२७. सामाजिक प्रत्यक्षीकरण (Social Perception)

हम दूसरे व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं का सीधे प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। हम उनके चेहरे की अभिव्यक्तियों, हाव-भावों, मुद्राओं प्रभृति का सीधे प्रत्यक्ष करते हैं, तथा इन दार्शिक संकेतों का अर्थ मालूम करते हैं। वुडवर्थ कहता है, "दूसरे व्यक्ति के क्रोध का अनुभव करना एक जटिल अनुभव है, लेकिन इस अनुभव का एक अकेला तत्त्व समग्र दशा का चिह्न बन सकता है। बच्चे की अनिर्देशित शिक्षा (Undirected education) का एक अच्छा खासा भाग छोटे-छोटे चिह्नों की सहायता से और लोगों के अभिप्रायों

तथा विशेषताओं को जानना सीखना होता है। वह परिवार के वातावरण में परिवर्तन के चिह्नों को पढ़ना सीख लेता है, और वह कुछ हद तक लोगों को पहिचानना सीख जाता है।"[1]

हम केवल चेहरे की अभिव्यक्तियों से मानवीय लक्षणों का प्रत्यक्ष नहीं करते। हम अन्य व्यक्तियों के मानसिक लक्षणों को छोटे-छोटे व्यवहार के चिह्नों से पहिचानते हैं जिनका हम विश्लेषण नहीं करते, तथा इसलिये उन्हें हम दूसरों को नहीं समझा सकते। किसी व्यक्ति की बुद्धिमत्ता को जानने का एकमात्र तरीका उसको कार्य करते हुये देखना या उसके कार्य के परिणामों को देखना है। किसी व्यक्ति के वास्तविक व्यवहार का विविध परिस्थितियों में निरीक्षण करके तथा लोगों के विभिन्न समुदायों में होने वाले उसके व्यवहार का निरीक्षण करके हम उसके मानसिक लक्षणों को पहिचान पाते हैं। हमारा दूसरे व्यक्तियों और उनकी विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण सीखने का फल है। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण अर्जित प्रत्यक्षीकरण है।

"चेहरे में मानवीय अभिवृत्तियों (Attitudes), अभिप्रायों और संवेगों (Emotions) के लक्षणों को ठीक-ठीक पहिचानने का इतना अधिक महत्त्व है कि बच्चे को शुरू में ही यथाशक्ति ऐसी योग्यता प्राप्त करने की उत्तेजना मिलती है। पिता दिन भर दफ्तर में काम करके ऐसी मुद्रा को लेकर घर लौटता है कि माता तुरन्त उसको पहिचान लेती है और तदनुसार अपने शब्दों और कार्यों में परिवर्तन कर देती है। बच्चा उसकी गम्भीर मुद्रा को पहिचानने में असफल होता है, लेकिन जब आमोदपूर्ण शोर-गुल के लिये उस पर एकाएक डांट पड़ती है तो उसे बाध्य होकर सावधानी से परिस्थिति की जाँच-पड़ताल करनी पड़ती है। कई प्रयत्नों और भूलों के पश्चात् बच्चा कई सूक्ष्म बातों को जानना सीख जाता है। तथापि यह सीखने की प्रक्रिया कुछ मन्थर होती है; उदाहरणार्थ, एक औसत दर्जे के बच्चे को सुन्दर और असुन्दर चेहरों में भेद करने वाले लक्षणों को पहिचानने में, या क्रोध, हर्ष, चिढ़, या शोक के चिह्नों को ढूँढ़ने में कई वर्ष लग जाते हैं।"[2]

[1] मनोविज्ञान ११वाँ संस्करण : पृ० ४४३

[2] गेट्स : प्रारम्भिक मनोविज्ञान, पृ० ४०३-०४

२८. प्रत्यक्षीकरण तथा ध्यान (Perception and Attention)

प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का अर्थ ज्ञात करना है। संवेदनाओं का अर्थ जानने में तुलना, एकीकरण और पृथक्करण, संयोजन और प्रत्यभिज्ञा की स्वतःचालित प्रक्रियायें होती हैं। अर्थ ग्रहण करने की इन प्रक्रियाओं में ध्यान सम्मिलित होता है। ध्यान के बिना प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है। मन संवेदनाओं पर ध्यान देता है तथा उनका अर्थ ग्रहण करता है। वुडवर्थ कहता है, "ध्यान प्रत्यक्षीकरण की तय्यारी है। ध्यान निरीक्षक को तथ्य की सन्निधि में लाता है, और प्रत्यक्षीकरण उसके द्वारा तथ्य की जानकारी है। ध्यान अनुसन्धान करता है : प्रत्यक्षीकरण ढूंढ़ निकालता है।"[१] स्टाउट कहता है, प्रत्यक्षीकरण की क्रिया का आवश्यक लक्षण ध्यान है। ध्यान सदैव किसी न किसी रूप में प्रतीक्षा करता है। ध्यान देना सदैव सूक्ष्म रूप से देखना, इन्तज़ार करना, होशियार रहना है। प्रात्यक्षिक प्रक्रिया अपने पूरे दौरान में इस मानसिक प्रतीक्षाश्रिता के लक्षण से युक्त होती है। चूहे या चिड़िया की प्रतीक्षा में लेटी हुई बिल्ली इस का एक उदाहरण है।"[२]

इस प्रकार ध्यान के प्रतीक्षापूर्ण रुख या मानसिक पूर्व-समायोजन के बिना प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है। ध्यान प्रत्यक्षीकरण का मार्ग तय्यार करता है जो किसी नये तथ्य को खोज निकालता है। यह रुचि के द्वारा निर्धारित होता है।

ध्यान प्रत्यक्षीकरण के पहिले की अभिवृत्ति (Attitude) है। यह प्रत्यक्षीकरण का पूर्व-हेतु है। लेकिन इसके पश्चात प्रत्यक्षीकरण का होना अनिवार्य नहीं है। व्यक्ति किसी ध्वनि की प्रतीक्षा कर सकता है, किन्तु हो सकता है कि ध्वनि न आवे। वह किसी वस्तु को खोज सकता है लेकिन सम्भव है वह उसे न दिखाई दे। ध्यान इस बात को निर्धारित नहीं करता कि इस तरह की वस्तु का प्रत्यक्ष होगा। विभिन्न व्यक्ति अपनी

---

[१] मनोविज्ञान : पृ० ४१८

[२] मनोविज्ञान, १९१० : पृ० २२६-२७

विभिन्न रुचियों के अनुसार एक ही परिस्थिति का विभिन्न रूप से प्रत्यक्ष कर सकते हैं।[1]

२६. प्रत्यक्षीकरण तथा पूर्वार्जित ज्ञान (Perception and Apperception)

पूर्वार्जित ज्ञान प्रत्यक्षीकरण के अपेक्षाकृत नवीन तत्वों को अपने में पचा लेता है और इस प्रकार ज्ञान की एक नई समष्टि (System) बन जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि हम पुराने अनुभव के प्रकाश में नये अनुभव को समझते हैं, पहिले से संचित ज्ञान-निधि में ज्ञान की नूतन सामग्री को जोड़ते रहते हैं। "हमारे पहिले के प्रत्यक्ष वर्तमान प्रत्यक्षों मे घुल-मिल जाते हैं, उन्हें परिवर्तित करते हैं और अतीत के अनुसार ढालते हैं। प्रत्यक्षीकरण एक संश्लेषणात्मक अनुभव है, और नये तथा पुराने का संयोग इस संश्लेषण का आवश्यक अंग है" (एँजिल)। इस प्रकार पूर्वार्जित ज्ञान प्रत्यक्षीकरण का सहायक है। प्रत्यक्षीकरण में एकीकरण, पृथक्करण और संयोजन की प्रक्रियायें होती हैं जिनका आधार पूर्वार्जित ज्ञान है।

३०. प्रत्यक्षीकरण तथा आदत (Perception and Habit)

हम वस्तुओं को समष्टियों या इकाइयों के रूप में देखते हैं। हम उन्हें भागों के समूहों के रूप में मात्र नहीं देखते। हम एक कुर्सी को एक इकाई के रूप में देखते हैं और इकाई के प्रति ही प्रतिक्रिया भी करते हैं। हम उसे देखते हैं और उस पर बैठ जाते हैं। हम शब्दों का इकाइयों के रूप में प्रत्यक्ष करते हैं; अक्षरों के समूहों के रूप में नहीं। केवल जब हम इकाई के रूप में उन्हें नहीं पढ़ सकते तब हम अक्षरों को अलग-अलग पढ़ते हैं। और हम आदत के कारण वस्तुओं का इकाई के रूप में प्रत्यक्ष करते हैं। एँजिल कहता है, "पूर्णतया विकसित प्रत्यक्ष स्वयं एक प्रकार की आदत है।" हम धीरे-धीरे वस्तुओं को इकाइयों के रूप में देखने की तथा उन्हें पहिचानने की आदत डाल देते हैं। लेकिन एँजिल कहता है कि प्रत्यक्षीकरण और आदत में कुछ भेद है। "हमारी सब पक्की आदतें अचेतन (Unconscious) होती हैं।

[1] मन : मनोविज्ञान, पृ० ३१२-१४

लेकिन प्रत्यक्षीकरण, स्पष्टतया एक चेतन प्रक्रिया (Conscious process) है।"[1] अभ्यस्त कार्य चेतना और ध्यान के पथ-प्रदर्शन से मुक्त होते हैं। किन्तु प्रत्यक्षीकरण में सदैव चेतना और ध्यान होते हैं। अतः प्रत्यक्षीकरण का आदत से तादात्म्य नहीं हो सकता।

३१. प्रत्यक्षीकरण के कार्य (Functions of Perception)

प्रथम, प्रत्यक्षीकरण से हमें बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है। संवेदना वस्तु से "परिचय" मात्र है। प्रत्यक्षीकरण "वस्तु का ज्ञान" है। संवेदना गुणों का आभास (Awareness) मात्र है। प्रत्यक्षीकरण वस्तुओं का संविकल्प (Determinate) ज्ञान है। वह हमें वस्तुमय संसार का प्रारम्भिक ज्ञान देता है। प्रत्यक्षीकरण मन की परिवेश (Environment.) के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया है। द्वितीय, प्रत्यक्षीकरण पूर्व-अनुभव के द्वारा नियंत्रित गतियों को जाग्रत करता है। घंटी बजती है और हम कक्षा को छोड़ कर चले जाते हैं। घंटी की ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण नियंत्रित गतियों को आरम्भ करता है। जब प्रत्यक्षीकरण अकेला उन्हें जाग्रत नहीं कर सकता तब वह इसे सोच-विचार के हवाले कर देता है। प्रत्यक्षीकरण विचार-प्रेरित क्रियाओं (Ideo-motor actions), अभ्यासजन्य क्रियाओं या ऐच्छिक क्रियाओं को जन्म देता है, जबकि संवेदना सांवेदनिक-प्रतिक्षेपों (Sensation-reflexes) को पैदा करती है। प्रत्यक्षीकरण में द्रष्टा, या व्यक्ति परिवेश से तुरन्त अपना व्यवस्थापन कर लेता है।

३२. प्रत्यक्षीकरण तथा गत्यात्मक प्रतिक्रिया (Perception and Motor Response)

प्रत्यक्षीकरण परिवेश में कुछ तथ्यों को ढूँढ़ लेता है। वह प्रत्यक्षीकृत तथ्य के प्रति गति या गत्यात्मक प्रतिक्रिया को जाग्रत करता है। हम कमरे में जाते हैं, कुर्सियाँ देखते हैं और उन पर बैठ जाते हैं। कुर्सियों का प्रत्यक्षीकरण उन पर बैठने की गतियों को जगाता है। इस प्रकार गत्यात्मक प्रति-

[1] मनोविज्ञान, पृ० १२१

क्रिया से पहले प्रत्यक्षीकरण होता है। "प्रत्यक्षीकरण काम करने की तैयारी से पृथक् तथ्य की जानकारी है। प्रत्यक्षीकरण, तथ्य जिस रूप में है उस रूप से समायोजन है, जबकि गत्यात्मक समायोजन तथ्यों को बदलने की तय्यारी है। प्रत्यक्षीकरण तथ्यों को बदलता नहीं है, बल्कि जैसे वे हैं वैसे ही उनको ग्रहण करता है; गति तथ्यों को बदल देती है या नये तथ्य उत्पन्न करती है। हम कह सकते हैं कि प्रत्यक्षीकरण संवेदना और गति के लिये तय्यारी के मध्य की अवस्था है।"[1]

प्रत्यक्षीकरण गत्यात्मक प्रतिक्रिया का पूर्ववर्ती है। कभी-कभी इसके तुरन्त बाद गत्यात्मक प्रतिक्रिया होती है। मजदूर बारह बजे की सीटी सुनने के तुरन्त बाद अपने औज़ार छोड़ देते हैं। विद्यार्थी कालेज की घंटी सुनते हैं और तुरन्त खड़े हो जाते हैं, तथा घंटा समाप्त होने पर कक्षायें छोड़ देते हैं। मस्तिष्क में चार प्रतिक्रियायें होती हैं: "प्रथम, तैयारी संवेदना; द्वितीय, वस्तु का प्रत्यक्षीकरण; तृतीय, कार्य के लिये संगठित (Co-ordinating preparation) तय्यारी; और चतुर्थ, चेष्टाधिष्ठान (Motor area) का निम्न कर्म-केन्द्रों (Lower motor centre) को और उनसे पेशियों को उत्तेजित करके कार्य को सम्पन्न करना। पहिली प्रतिक्रिया संकेतों या सांकेतिक संदेशों को ग्रहण करने के समान है; दूसरी संदेशों का अर्थ ज्ञात करती है और मामले की जानकारी करती है; तीसरी कार्य की योजना बनाती है; और चौथी कार्यकर्ताओं को आदेश भेजती है जो काम पूरा करते हैं।"[2] जहाँ बाधा या निरोध नहीं होता वहाँ प्रतिक्रियाओं की शृंखला इतनी निर्बाध और क्षिप्र होती है कि वह एक अकेली प्रतिक्रिया प्रतीत होती है। किन्तु कहीं पर भी कोई बाधा गत्यात्मक प्रतिक्रिया को रोक सकती है। एक व्यक्ति तथ्य को देखता है, कार्य की तय्यारी करता है, लेकिन रुक जाता है। यहाँ तय्यारी होती है लेकिन कार्य नहीं होता। जब कोई व्यक्ति तथ्य को देखता है लेकिन उससे करने को कोई बात नहीं पाता, तो कार्य में

[1] वुडवर्थः मनोविज्ञान, छटा संस्करण, पृ० ४३१

[2] वुडवर्थः मनोविज्ञान, छटा संस्करण पृ० ४२८-२६

प्रत्यक्षीकरण और तय्यारी के बीच की बाधा से विलम्ब हो जाता है। जब कोई व्यक्ति अकस्मात् एक जोर का शोर सुनता है और थोड़ी देर के लिये किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है तथा शोर को नहीं पहिचान सकता, तो संवेदना और प्रत्यक्षीकरण के बीच की बाधा से कार्य में विलम्ब हो जाता है। बाधा संवेदना और प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यक्षीकरण और तय्यारी, तथा तय्यारी और गत्यात्मक प्रतिक्रिया के मध्य हो सकती है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण गत्यात्मक प्रतिक्रिया या गति का पूर्ववर्ती है।

लेकिन प्रत्यक्षीकरण का गत्यात्मक प्रतिक्रिया से तादात्म्य नहीं हो सकता। व्यवहारवादी (Behaviourists) ज्ञान या किसी मानसिक प्रक्रिया के लिये कोई गुंजाइश नहीं छोड़ते। अतः वे प्रत्यक्षीकरण का गत्यात्मक क्रियाओं से तादात्म्य कर देते हैं। इस मत का समर्थन नहीं किया जा सकता। प्रत्यक्षीकरण ज्ञान का एक रूप है। यह संवेदनाओं का अर्थ जानने का ज्ञानात्मक व्यापार है। यह गति का पूर्व-हेतु है। यह गति से अभिन्न नहीं है। लेकिन प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन में गत्यात्मक प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वे वस्तुओं और परिस्थितियों के हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती हैं।

अध्याय १०

सीखना (LEARNING)

१. सीखी हुई और न सीखी हुई क्रियायें (Learned and Unlearned Actions)

हम देख चुके हैं कि कैसे प्रत्यक्षीकरण गत्यात्मक क्रियाओं पर निर्भर होता है। प्रत्यक्षीकरण और गत्यात्मक सीखना (Motor learning) साथ-साथ चलते हैं। इस अध्याय में हम गत्यात्मक सीखने पर विचार करेंगे।

सीखे हुए कार्य अनुभव के फल होते हैं। न सीखे हुए कार्य जन्मजात व्यवहार के अंश होते हैं। स्वतःचालित कार्य (Automatic acts) अनियमित क्रियायें (Random acts), प्रतिक्षेप (Reflexes), सहज प्रवृत्तियां (Instincts), वेदनाओं (Feelings) और संवेगों (Emotions) की अनायास अभिव्यक्तियां जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं। ये सीखे हुए कार्यों के आधार हैं। निम्न कोटि के प्राणियों में यह प्रारम्भिक सम्भार (Outfit) उच्च कोटि के प्राणियों की अपेक्षा अधिक दृढ़ होता है। उच्च कोटि के प्राणियों में, विशेषतया मनुष्य में यह प्रारम्भिक सम्भार अधिक लचीला होता है और अनुभव से परिवर्तित हो सकता है। धारणा-शक्ति (Retentivity) तथा स्नायविक मार्गों की परिवर्तनीयता (Modifiability) सीखने की आधारभूत शर्तें हैं। इस प्रकार न सीखे हुए कार्य जन्मजात (Native) होते हैं, जबकि सीखे हुए कार्य अर्जित होते हैं। वे प्रयत्न और भूल की विधि से, या अनुकरण से, या अन्तर्दृष्टि (Insight) से अर्जित होते हैं। सीखे हुए कार्य पहिले किये हुये कार्यों पर निर्भर होते हैं। कोई भी क्रिया जो व्यक्ति का विकास करती है और उसके आगामी व्यवहार और अनुभव को बदलती है, सीखना कही जा सकती है।

(२) सीखने की विधियाँ (Methods of Learning)

(१) सीखना करने का एक तरीका है (Learning is a way of doing)—पशु और मनुष्य प्रतिक्रिया करके सीखते हैं। वे सक्रिय होकर सीखते हैं। सीखना आत्मसात करने की एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है, बल्कि प्रतिक्रिया करने की एक अत्यन्त सक्रिय प्रक्रिया है। निरीक्षण, याद करने, कुशलता प्राप्त करने इत्यादि में प्रतिक्रियायें की जाती हैं। सीखने वाला प्रतिक्रिया करना सीखता है। अभ्यास से प्रतिक्रियायें पुष्ट होती हैं। इस प्रकार सीखना निष्क्रिय होकर आत्मसात् करना मात्र नहीं है, बल्कि सक्रिय प्रतिक्रिया है।

(२) सीखने की प्रतिक्रियायें अभ्यास से सशक्त होती हैं (Learning reactions are strengthened by practice)—कुछ स्नायविक मार्ग जन्म से ही काम करने के लिये तय्यार होकर आते हैं। कोई भी पर्याप्त

उत्तेजना प्रतिक्रिया को पैदा कर देती है। प्रतिक्रिया अभ्यास से सबल होती है। अभ्यास से वह अधिक जल्दी, अधिक आसान और अधिक ठीक हो जाती है। इस प्रकार के सीखने में नये स्नायु-पथ नहीं बनते। नैसर्गिक स्नायु-पथ अभ्यास से पुष्ट होते हैं। मुर्गी के बच्चों की अन्न के दानों को चोंच से उठाने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। उनका नैसर्गिक स्नायु-पथ काम के लिये तय्यार होता है। अन्न के दानों का प्रत्यक्ष उनकी सहज प्रतिक्रिया को जाग्रत करेगा। अभ्यास उसे पुष्ट करेगा। बच्चे इस तरीके से चलना सीखते हैं।

(३) *सीखने की प्रतिक्रियायें स्थानापन्न उत्तेजना से पैदा होती हैं (Learning reactions are evoked by the substitute stimulus)*—कोई उत्तेजना जन्मजात प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है। किन्तु वही प्रतिक्रिया एक स्थानापन्न उत्तेजना (Substitute stimulus) से पैदा हो सकती है। सहज प्रतिक्रिया स्थानापन्न उत्तेजना से सम्बद्ध हो जाती है। जीभ के सम्पर्क में भोजन का आना लार बहने के लिये स्वाभाविक उत्तेजना है। लेकिन यदि कई बार एक घंटी की ध्वनि के साथ इसे सम्बद्ध किया जाय तो ध्वनि, जो स्थानापन्न उत्तेजना है, लार बहने को पैदा करने लगेगी। इस प्रकार, सीखना प्रतिक्रिया को एक स्थानापन्न उत्तेजना से संयुक्त करके उसका नियंत्रण करना है।

(४) *सीखने की प्रतिक्रियायें स्थानापन्न प्रतिक्रियायें हैं (Learning reactions are substitute responses)*—कोई उत्तेजना किसी नैसर्गिक प्रतिक्रिया को पैदा करती है। लेकिन इस प्रतिक्रिया को हटाकर एक स्थानापन्न प्रतिक्रिया बैठाई जा सकती है। यह दूसरे प्रकार की नियंत्रित प्रतिक्रिया (Conditioned response) है। यहाँ अनुभव से गत्यात्मक प्रतिक्रिया परिवर्तित हो जाती है। प्रारम्भिक सहज प्रतिक्रिया सफल नहीं हुई। अन्य प्रकार की प्रतिक्रियाओं की परीक्षा की गई, अन्त में अकस्मात् सफल प्रतिक्रिया हाथ आ गई, उसकी पुनरावृत्ति हुई और अभ्यास से वह पक्की हो गई। 'प्रयत्न और भूल' करते हुये सीखना इस विधि का दृष्टान्त है। एक भूखी

बिल्ली पिंजड़े के छड़ों के बीच घुसने की सहज प्रतिक्रिया से पिंजड़े से मुक्त नहीं हो सकती। अकस्मात् वह एक बटन दबाती है और बाहर आ जाती है। यह सफल क्रिया अभ्यास से उत्तरोत्तर पक्की हो जायगी। इस प्रकार बिल्ली बटन को दबाने की स्थानापन्न प्रतिक्रिया से पिंजड़े से बाहर आना सीख लेती है।

(५) *सीखने की प्रतिक्रिया सरल क्रियाओं का जटिल क्रियाओं में संयुक्त हो जाना है (Learning reaction is combination of simple acts into complex acts)*—विभिन्न सरल क्रियायें जटिल क्रियाओं में संयुक्त हो जाती हैं। सरल क्रियायें जटिल क्रियाओं के भाग हैं। या तो वे जन्मजात होती हैं या अर्जित। स्थानापन्न उत्तेजना या स्थानापन्न प्रतिक्रिया की विधि से सीखने के फलस्वरूप वे अर्जित की जा सकती हैं। जटिल कार्य इन सरल भागों को जटिल क्रियाओं में संयुक्त करने के परिणाम हैं। चलना, दौड़ना, तैरना, टाइप करना इत्यादि इस विधि से सीखे जाते हैं।

(६) *सीखने की प्रतिक्रिया में अनियमित प्रतिक्रियायें होती हैं (Learning reaction consists of random responses)*—उत्तेजना कभी-कभी एक स्नायविक प्रवाह (Nervous current) उत्पन्न करती है जो सुषुम्ना या मस्तिष्क में स्थित केन्द्र को जाता है और कई स्नायु-पथों से बाहर आता है। इस प्रकार पैदा होने वाली गतियां अनियमित गतियाँ कहलाती हैं। उनमें से कुछ लाभदायक पाई जाती हैं, और इसलिए तुल्य अवसरों पर उनकी पुनरावृत्ति की जाती है। यह पुनरावृत्ति उन्हें शरीर में आदतों के रूप में पक्की कर देती है। फलतः जो उत्तेजनायें उन्हें शुरू में निरुद्देश्यतः पैदा करती थी वही उन्हें याद में तत्काल जाग्रत करने लगती है। इस प्रकार अनियमित, निरुद्देश्य और विविध गतियों से नियंत्रित गतियों का प्रादुर्भाव होता है। सीखने की विविध विधियाँ एक दूसरी को समाविष्ट करती हैं। उनका एक दूसरी में लय हो जाता है।

३. सीखने के नियम (Laws of Learning)

(१) *उपयोग का नियम* (*The law of use*)—जन्मजात प्रतिक्रियायें अभ्यास से पुष्ट होती हैं। अन्य बातों के समान होने पर चलना, पकड़ना, तैरना इत्यादि किसी भी प्रतिक्रिया का अभ्यास उसे अधिक सत्वर, निश्चित और आसान बना देता है। किसी भी प्रतिक्रिया का उपयोग या अभ्यास उसे प्रबल बना देता है। अन्य बातों के समान होते हुये जब कभी एक परिस्थिति और एक प्रतिक्रिया के बीच के परिवर्तनीय सम्बन्ध का अभ्यास किया जाता है तो वह अधिक दृढ़ हो जाता है। यह उपयोग का नियम कहलाता है।

(२) *पुनरावृत्ति का नियम* (*The law of frequency*)—यह नियम उपयोग के नियम से अनिवार्यतः सम्बन्धित है। यदि एक प्रतिक्रिया परिस्थिति-प्रतिक्रिया सम्बन्ध (Situation response connection) को दृढ़ बनाती है तो दो प्रतिक्रियायें उसे और दृढ़ बनायेंगी, तीन और भी अधिक दृढ़, और इसी प्रकार आगे भी। इस प्रकार अन्य बातों के समान होने पर जितनी ही अधिक बार सम्बन्ध का अभ्यास होगा, सम्बन्ध उतना ही अधिक पुष्ट बनेगा। इसे पुनरावृत्ति या अभ्यास का नियम कहते हैं।

(३) *अनुपयोग का नियम* (*The law of disuse*)—यदि किसी सीखने की प्रक्रिया का अभ्यास कुछ समय तक नहीं होता तो धीरे-धीरे वह क्षीण हो जाती है। उपयोग परिस्थिति-प्रतिक्रिया सम्बन्ध को पुष्ट करता है। अनुपयोग सम्बन्ध को निर्बल बनाता है। जब एक परिस्थिति और एक प्रतिक्रिया के बीच के सम्बन्ध का दीर्घ काल तक अभ्यास नहीं होता तो सम्बन्ध निर्बल पड़ जाता है। अर्थहीन सामग्री यथा निरर्थक शब्द जल्दी भुला दी जाती है। सार्थक सामग्री यथा कविता इतनी जल्दी नहीं भुलाई जाती। गत्यात्मक कार्य, यथा, टाइप, साइकल चलाना इत्यादि और अधिक देर से विस्मृत होते हैं।

(४) *नवीनता या ताजगी का नियम* (*The law of recency*)—अनुपयोग का नियम नवीनता के नियम से सम्बन्धित है। इस नियम को इस

प्रकार कहा जा सकता है; अन्य बातों के समान होने पर अभ्यास जितना ही नवीन या ताजा होगा परिस्थिति और प्रतिक्रिया के बीच सम्बन्ध भी उतना ही प्रबल होगा। परिस्थिति और प्रतिक्रिया का सम्बन्ध अनुपयोग से उत्तरोत्तर निर्बल पड़ता जाता है। दिन प्रतिदिन वह अधिकाधिक क्षीण होता जाता है।

(५) *प्रारम्भिकता का नियम (The law of primacy)*—अन्य बातों के समान होने पर किसी शृंखला के प्रारम्भिक अनुभव और प्रारम्भिक कार्य लाभ में रहते हैं"।[1] पहिले अनुभव और कार्य नए होते हैं, और ध्यान आकर्षित करने में सम होते हैं। मन पर उनकी छाप शीघ्र पड़ जाती है। स्कूल में पहिला दिन, युद्ध में पहिला दिन, भूलभुलैया को सीखने में पहिला कार्य आसानी से अपनी छाप छोड़ जाते हैं।

(६) *तत्परता का नियम (The law of readiness)*—यदि स्नायु-पथ कार्य के लिए तय्यार है तो प्रतिक्रिया शीघ्र हो जाती है। यदि वह थका हुआ है और कार्य के लिए तत्पर नहीं है, तो प्रतिक्रिया तुरन्त नहीं होती। अतः किसी प्रतिक्रिया को सीखना बोध और कर्म-स्नायु कोशाओं (Sensory and motor neurones) की तत्परता पर निर्भर है।

(७) *परिणाम का नियम (The law of effect)*— सफल प्रतिक्रिया व्यक्ति को सन्तोष देती है, पुनरावृत्ति के लिये प्रवृत्त करती है और आदत के रूप में स्थायी हो जाती है। असफल प्रतिक्रिया व्यक्ति में चिढ़ पैदा करती है, निरोध के लिये प्रवृत्त करती है और लुप्त हो जाती है। सफल प्रतिक्रिया धीरे-धीरे असफल प्रतिक्रिया की अपेक्षा अधिक बार दोहराई जाती है। जो कार्य हमें सन्तोष देते हैं वे पक्के होते हैं और जो कार्य हमें असन्तुष्ट करते हैं वे इतनी आसानी से पक्के नहीं होते। जानवरों के ऊपर दो रास्तों वाले भूल भुलैया को सीखने के विषय में कई प्रयोग किये गये हैं। प्रयोग की योजना इस प्रकार की जाती है कि एक रास्ते में चलने पर जानवर को बिजली का धक्का लगता है और दूसरे में उसे खाना मिलता है। पता चला है कि

[1] मन : मनोविज्ञान, पृ० १२७

जानवर उस रास्ते से जाना सीखता है जो खाने की ओर जाता है। इस प्रकार प्रतिक्रियाओं को सीखने पर सुख और पीड़ा का प्रभाव पड़ता है।

४. पशुओं का सीखना (Animal Learning): (१) प्रयत्न और भूल करते हुये सीखना (Learning by Trial and Error)

"सीखने में ये बातें होती हैं: (अ) प्रेरणा (Motivation), (ब) अनियमित प्रतिक्रियायें, (स) गलत प्रतिक्रियाओं को हटाना, (द) प्रेरक (Motive) को तृप्त करने वाली प्रतिक्रियाओं का स्थिर होना।"[१]

थॉर्नडाइक (Thorndike) ने पिंजरों की सहायता से पशुओं के सीखने की विधि का निरीक्षण करने के लिये बिल्ली, कुत्ते, बन्दर इत्यादि पर प्रयोग किये। उसने एक भूखी बिल्ली को एक ऐसे पिंजरे में बन्द कर दिया जिसका दरवाजा एक चिटकनी घुमाने पर या बटन दबाने पर खुलता था, और खाना पास ही रखा गया था जहाँ बिल्ली उसे देख सकती थी। उसने बहुत सी व्यर्थ गतियाँ कीं। उसने छड़ों के बीच से बाहर निकलने का प्रयत्न किया। उसने दीवारों को पंजों, दाँतों इत्यादि से खुरचा। न्यूनाधिक समय के उपरान्त उसने बिल्कुल संयोग से सिटकनी को घुमाया या बटन को दबा दिया, दरवाजा खुला और वह बाहर निकल आई। किन्तु एक सफल गति से वह दरवाजा खोलने की विधि नहीं सीख पाई। जब दुबारा उसको पिंजरे में रखा गया तो वह फिर अनियमित गतियों की एक श्रृंखला में से होकर गुजरी, और पुनः उसने संयोगवशात् सही प्रतिक्रिया की। प्रत्येक अगले प्रयत्न में औसतन उससे पहिले प्रयत्न से कम समय लगा। कई पुनरावृत्तियों के पश्चात् जिनकी संख्या छोटी से लेकर बहुत बड़ी तक है, बिल्ली पिंजरे में बन्द होते ही तुरन्त सही प्रतिक्रिया करना सीख गई। उसे जो बिल्ली पूरी तरह से इस कुशलता एवं कार्य को करने में पटु हो चुकी है उसको दरवाजा खोलते हुये देखने से कोई लाभ नहीं हुआ। अनुकरण से वह सीख नहीं सकी थी।

पशु का सीखना क्रमशः सम्पन्न हुआ। "सीखने की वक्र-रेखायें (Learning curves) अनियमित किन्तु क्रमिक प्रगति दिखाती हैं, और

[१] मर्फी: संक्षिप्त सामान्य मनोविज्ञान, पृ० २२७

उनमे उत्तर के अज्ञान से उत्तर के ज्ञान की ओर अकस्मात् संक्रमण (Transition) करने का कोई संकेत नहीं मिलता। लेकिन यदि पशु समस्या के ऊपर तर्क-वितर्क कर चुका होता तो उसे किसी विशेष समय में उसका हल मालूम हो गया होता, और तत्पश्चात् उसको उत्तर मालूम रहता और वह सदैव सही काम तो तुरन्त कर डालता। थॉर्नडाइक ने यह निष्कर्ष निकाला कि पशु विचार या तर्क-वितर्क से नहीं सीखते। अनुकरण (Imitation) से सीखने को उसने निश्चित् प्रायोगिक प्रमाणों के आधारों पर बहिष्कृत कर दिया। पशुओं ने न तो निरीक्षण से सीखा, न विचार से, बल्कि करने से सीखा। उन्होंने परिस्थिति के प्रति विविध गत्यात्मक प्रतिक्रियायें कीं, और किसी अन्धी, क्रमिक प्रक्रिया से असफल प्रतिक्रियाओं का लोप हो गया तथा सफल प्रतिक्रिया पुष्ट हो गई और परिस्थिति से दृढ़ता के साथ सम्बद्ध हो गई। "प्रयत्न और भूल करना पशुओं के सीखने की विधि था।"[1] हमें लॉयड मॉर्गन (Loyd Morgan) का नियम याद रखना चाहिये, "यदि कोई कार्य किसी ऐसी मानसिक शक्ति के व्यापार का फल समझा जा सकता है जिसका मनोवैज्ञानिक पैमाने (Scale) में निम्न स्थान है तो हमें किसी भी दशा में उसे एक उच्च मानसिक शक्ति के व्यापार का फल नहीं समझना चाहिये।" यह पशु-मनोविज्ञान का आधारभूत नियम है।

क्या सीखने की प्रयत्न और भूल की विधि अन्धी है या नहीं? जहाँ तक लक्ष्य से सम्बन्ध है यह अन्धी नहीं है। उपायों के सम्बन्ध में यह अन्धी है। सम्भव है कि पशु लक्ष्य को काफी साफ़-साफ़ देखता हो; कम से कम इतना तो सम्भव है कि उसे लक्ष्य की अनुस्थिति का निश्चित ज्ञान हो। किन्तु यह समग्र मार्ग को देखने में असमर्थ होता है। उसे उस मार्ग की चेतना नहीं होती जो उसे लक्ष्य तक पहुँचायेगा। वुडवर्थ कहता है, "प्रयत्न और भूल के व्यवहार की न्यूनतम आवश्यक बातें हैं :

(१) किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की 'तत्परता'

(२) लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्ग को साफ़-साफ़ देखने की अयोग्यता।

[1] वुडवर्थः मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० ४४

(३) परिस्थिति का अनुसन्धान।

(४) लक्ष्य तक पहुँचाने वाले सम्भव मार्गों को देखना या किसी तरह पाना।

(५) इन मार्गों की परीक्षा करना।

(६) एक मार्ग में रुकावट पाने से पीछे हटना और दूसरे से जाने का प्रयत्न करना।

(७) अन्त में एक अच्छा मार्ग पाना और लक्ष्य तक पहुँचना।"[1]

पशु किसी निश्चित लक्ष्य को पाने के लिए 'तत्पर' होता है। लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्ग को वह साफ-साफ नहीं देख पाता। वह परिस्थिति की छानबीन करता है और लक्ष्य तक पहुँचाने वाले कुछ मार्गों को पाता है। इन मार्गों का वह अनुसरण करता है। यदि कोई मार्ग उसे भटकाता है और उसके प्रयत्न को असफल कर देता है तो उसे वह छोड़ देता है और दूसरे मार्गों का अनुसरण करता है। अन्त में उसे सही मार्ग मिल जाता है, वह उसका अनुसरण करता है और लक्ष्य तक पहुँच जाता है। वह परिस्थिति का अनुसन्धान करता है, मार्ग पाता है, क्रमशः उनका अनुसरण करता है, उनमें से बहुतों को ग़लत और एक को सही पाता है। ये प्रयत्न और भूल में होने वाले व्यवहार की आवश्यक बातें हैं।

प्रयत्न और भूल में सीखने में मुख्य चीज़ें निरीक्षण और शारीरिक गतियाँ हैं। पशु निरीक्षण से सीखता है या चलने-फिरने से? वह सही मार्ग का निरीक्षण करना सीखता है या सही गति करना? पहिले वह विविध गतियाँ करता है और कई मार्गों का अनुसरण करता है, किन्तु क्रमशः गलत मार्गों को छोड़ देता है, सही मार्ग का अनुसरण करता है, तथा लक्ष्य तक पहुँच जाता है। वह सही मार्ग पर चलता है या सही गति करता है? पहेली-पात्र (Puzzle box) को सीखने के विषय में बिल्लियों पर किए जाने वाले प्रयोग यह दिखाते हैं कि वे गति की अपेक्षा निरीक्षण से अधिक सीखती हैं। विभिन्न मार्गों की छान बीन करने में गति आवश्यक है किन्तु किसी गति के परिणाम को देखना

[1] मनोविज्ञान, १९५४ : पृ० २८९-९०

उसे करने से अधिक महत्व रखता है। वे परिस्थिति का अनुसन्धान करती हैं, परिस्थिति की विशेषताओं और उसकी वस्तुओं को हिला डुला कर उनकी विशेषताओं का निरीक्षण करती हैं। जब वे वस्तुओं और परिस्थिति की विशेषताओं से प्रभावित हो जाती है, तब वे उपयुक्त गतियां करती हैं। उपयुक्त गतियां परिस्थिति का ठीक निरीक्षण करने के पश्चात् होती हैं। जब बिल्ली पिंजरे के अन्दर बटन की विशेषताओं को जान लेती है जिसे दबाकर वह बाहर आ सकती है, तब वह उपयुक्त गति करती है। इस प्रकार किसी सीखने में निरीक्षण गत्यात्मक क्रिया से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। किन्तु कभी-कभी गतियों को संयुक्त करना अधिक महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। जब चूहा भूल-भुलैये (Maze) के अन्दर बन्द गलियों (Blind alleys) से बचना, और खुले मार्ग से बाहर आना सीख चुकता है, तब वह उपयुक्त गतियों की एक शृंखला को जल्दी-जल्दी और सही-सही करने लगता है। वह गतियों के संगठन से इस कुशलता को प्राप्त करता है। वह गत्यात्मक सीखने से इस जटिल गति पर अधिकार कर लेता है। इस प्रकार सीखने के दो भेद हैं, परिस्थिति का निरीक्षण करके सीखना और गतियों का संयोजन करके सीखना; निरीक्षणात्मक सीखना और गत्यात्मक सीखना।

५. पशुओं का सीखना (Animal Learning), (२) अन्तर्दृष्टि से सीखना (Learning by Insight)

एक जर्मनी के मनोवैज्ञानिक कोहलर (Kohler) ने उच्च श्रेणी के पशुओं पर प्रयोग किए। चिम्पैंजी (मनुष्य-सदृश वानर-विशेष) प्रयत्न और भूल से नहीं सीखते बल्कि अन्तर्दृष्टि से सीखते हैं, लेकिन शर्त यह है कि मार्ग स्पष्टतया दृष्टिगोचर हो। "एक चिम्पैंजी पहिले अपने पिंजरे से बाहर फर्श पर पड़े हुये केले को एक लकड़ी से खींचना सीखना सीख चुका था। इसके बाद उसे बांस की दो लकड़ियां दी गईं, उनमें से एक इतनी संकरी थी कि दूसरी के खुले सिरे में ठीक बैठ सकती थी। और केला इतनी दूरी पर रखा गया था कि प्रत्येक लकड़ी अकेली वहां तक नहीं पहुँच सकती थी। क्या चिम्पैंजी इतनी बुद्धि रखता है कि दोनों लकड़ियों को जोड़कर उनका इस्तेमाल कर

सके ? चिम्पैंज़ी ने एक घंटे से अधिक समय तक अकेली लकड़ियों से केले तक पहुँचने के कई असफल प्रयास किए। ऐसा प्रतीत होता था कि वह हार कर छोड़ बैठा और तब वह अपने पिंजरे के पिछले हिस्से में जाकर बैठ रहा। वहां बैठे हुये उसने दोनों लकड़ियों से खेलना शुरू कर दिया। संयोग से, जैसा कि प्रतीत होता था, वह एक का सिरा दूसरे के सिरे पर ले आया और संकरी लकड़ी को उसने कुछ दूर तक मोटी लकड़ी के अन्दर घुसा दिया। वह खुशी से उछल पड़ा, पिंजरे के सामने वाले भाग में दौड़ा चला गया और अपनी जुड़ी हुई लकड़ी से उसने केले को खींचना शुरू किया। ढीले जुड़े हुए टुकड़े अलग हो गए, लेकिन शीघ्र ही उसने उन्हें फिर जोड़ दिया और केला ले लिया। वह केला खाता गया और अपने नये हथियार की पहुंच के अन्दर पड़ने वाली प्रत्येक वस्तु को खींचने लगा। दूसरे दिन पुनः परीक्षा की जाने पर उसने पहिले कुछ अनुपयोगी गतियां कीं, लेकिन फिर कुछ ही सेकिंड में उसने जुड़ी हुई लकड़ी बना डाली और पहिले की तरह उसका इस्तेमाल किया। अन्तर्दृष्टि का प्रमाण तीन बातों में मिलता है : अन्धे व्यवहार से एकाएक जुड़ी हुई लकड़ी के निश्चित इस्तेमाल की ओर संक्रमण में, दूसरे दिन प्रयत्न और भूल के लगभग नितान्त अभाव में, और पशु की स्वयं हथियार में रुचि लेने में।

अन्तर्दृष्टि कभी पूर्वदृष्टि (Foresight) होती है, कभी परचदृष्टि (Hind-sight)। जब चिम्पैंज़ी ने जुड़ी हुई लकड़ी को बढ़ाकर दौड़कर केले को पाना चाहा, तो उसने पूर्वदृष्टि दिखाई। उस क्षण उसे सफलता का पूर्वाभास हो गया। वह सुदूरस्थ लक्ष्य को प्राप्त हुआ देख सकता था।"[1] किन्तु प्रयत्न और भूल के व्यवहार में परचदृष्टि होती है। पिंजरे में बन्द बिल्ली को अनुसरण करने से पहिले लक्ष्य को जाने वाला मार्ग नहीं दिखाई देता। बटन उसकी दृष्टि से ओझल होता है। वह कई मार्गों का अनुसरण करती है और उनमें से एक को सही पाती है। वह प्रयत्न कर चुकने के बाद एक मार्ग

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, १९७४, पृ० २६३-६२

को अच्छा देखती है। यह पश्चदृष्टि है। "पूर्वदृष्टि लक्ष्य तक पहुंचाने वाले मार्ग को अनुसरण करने से पहिले देख लेना है, और पश्चदृष्टि अनुसरण कर चुकने के बाद यह देखना है कि मार्ग अच्छा है। जब सम्पूर्ण परिस्थिति खुली हुई प्रस्तुत रहती है तो पूर्वदृष्टि के लिए एक अवसर होता है, लेकिन जब परिस्थिति की महत्वपूर्ण विशेषतायें छिपी होती हैं तो हम अधिक से अधिक किसी सीमा तक पश्चदृष्टि की उम्मीद कर सकते हैं।"[1]

पशुओं के सीखने की कुछ अन्य विधियां भी हैं।

(२) *निषेधात्मक समायोजन* (*Negative adaptation*)—जब पशु उत्तेजना का अभ्यस्त हो जाता है तो वह व्यर्थ प्रतिक्रिया का निरास (Elimination) कर देता है। जिस समय मकड़ी अपने जाले में होती है उस समय एक ध्वनिकारक कांटा (Tuning fork) बजाया जाता है। मकड़ी अपने तार के बल लटक जाती है। यह ध्वनि के प्रति रक्षात्मक प्रतिक्रिया है। मकड़ी ध्वनि के प्रति कई बार यही प्रतिक्रिया करती है। लेकिन कई पुनरावृत्तियों के बाद वह लटकना छोड़ देती है। अगले दिन ध्वनि को सुनकर वह फिर लटक जाती है। लेकिन कई दिनों तक कई पुनरावृत्तियों के बाद मकड़ी ध्वनि को सुनकर लटकना बिलकुल छोड़ देती है। यह सदा के लिए ध्वनि से निषेधात्मक समायोजन स्थापित कर लेती है।

पालतू जानवर भी निषेधात्मक समायोजन से सीखते हैं। गाड़ी के बैल दौड़ने वाली मोटरों या रेलगाड़ियों के अभ्यस्त हो जाते हैं। घोड़े काठी के अभ्यस्त हो जाते हैं। कुत्ते घर में बिल्ली की उपस्थिति से परेशान होना छोड़ देते हैं। इस प्रकार पशु निषेधात्मक समायोजन से सीख लेते हैं जिसमें निरर्थक प्रतिक्रियाओं का क्रमशः लोप हो जाता है।

(२) *नियंत्रित या सम्बद्ध प्रतिक्रिया* (*Conditioned response*)—हम पहिले ही सम्बद्ध प्रतिक्रिया की प्रकृति का वर्णन कर चुके हैं। एक प्रतिक्रिया

---

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, १९४७ पृ० २१५

(यथा, लार आना) किसी स्थानापन्न या सम्बद्ध उत्तेजना (यथा, घंटी की ध्वनि) से उत्पन्न होने लगती है। या, एक ही उत्तेजना किसी भिन्न प्रतिक्रिया को जन्म देती है। किसी विचित्र वस्तु को देखने से पास पहुँचने के स्थान पर दूर भागने की प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्रियायें दो तरीकों से नियंत्रित होती हैं। एक प्रतिक्रिया नियंत्रित या स्थानापन्न उत्तेजना से संयुक्त हो जाती है। या, एक ही उत्तेजना किसी स्थानापन्न प्रतिक्रिया को जन्म देती है। पशु नियंत्रित प्रतिक्रियाओं से सीखते हैं।

६. मनुष्यों का सीखना (Human Learning)

मनुष्य पशुओं के सीखने की सभी विधियों से लाभ उठाता है। छोटे बच्चे प्रयत्न और भूल से कौशलपूर्ण गतियों को सीखते हैं। वे लिखना, तैरना, साइकिल पर चढ़ना, टाइप करना, इत्यादि इसी विधि से सीखते हैं। वे अन्तर्दृष्टि से भी सीखते हैं। वे अनिश्चित गतियाँ करते हुए एकाएक एक निश्चित सफल गति पर पहुँच जाते हैं। वे अन्तर्दृष्टि से एक सार्थक तथ्य का निरीक्षण करते हैं या तथ्यों में किसी सम्बन्ध को देख लेते हैं। छोटे बच्चे अंशतः प्रयत्न और भूल से तथा अंशतः अन्तर्दृष्टि से सीखते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं वे प्रयत्न और भूल की विधि से उन्नति करते-करते विचारात्मक (Rational) या बुद्धिमत्तापूर्ण (Intelligent) विधि में पहुँचते जाते हैं। वे नियंत्रित प्रतिक्रियाओं से भी सीखते हैं। छोटे बच्चे चित्रों की सहायता से अक्षर पढ़ना सीखते हैं। पहिले वे अक्षरों के साथ-साथ चित्रों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन बाद में वे चित्रों से अलग अकेले अक्षरों के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। वे नियंत्रित प्रतिक्रियाओं से संकेतों का अर्थ सीखते हैं। वे गीली ज़मीन देखते हैं और उसे छूते हैं। पहिले स्पर्श से वे गीलेपन का प्रत्यक्ष करते हैं। लेकिन कालान्तर में दर्शन मात्र से वे ज़मीन के गीलेपन का प्रत्यक्ष कर सकते हैं। मनुष्य निषेधात्मक समायोजन से भी सीखते हैं। वे महत्त्वहीन उत्तेजनाओं से निषेधात्मक समायोजन कर लेते हैं। कुछ समय के बाद वे उनकी प्रतिक्रिया करना छोड़ देते हैं। मनुष्य निरीक्षण से पशुओं की अपेक्षा अधिक सीख सकते हैं।

पशुओं की अपेक्षा उनकी निरीक्षण की शक्ति अधिक होती है। वे परिस्थिति की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं और वस्तुओं का शीघ्र निरीक्षण कर सकते हैं तथा लक्ष्य तक पहुँचने के लिये उनका उपयुक्त इस्तेमाल कर सकते हैं।

वुडवर्थ के अनुसार पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों के सीखने की श्रेष्ठता निम्नलिखित मुख्य बातों में है :—

"(१) मनुष्य एक अधिक अच्छा निरीक्षक है; वह वस्तुओं, लोगों और परिस्थितियों की उन विशेषताओं का निरीक्षण करता है जो पशु के दायरे के बाहर होती हैं।

(२) मनुष्य किसी समस्या को सुलझाने में अधिक विचार, व्यवस्था और संयम से काम लेता है।

(३) मनुष्य सीखने में नामों, संख्याओं और सामान्यतया भाषा का बहुत इस्तेमाल करता है।

(४) अंशतः भाषा की सहायता से मनुष्य समस्याओं के बारे में सोचने में तब भी समर्थ होता है जब सामग्री उसके सामने प्रस्तुत नहीं होती। विचारणा मनुष्य में किसी भी अन्य पशु की तुलना में अधिक विकसित होती है।"[1]

७. सीखने का पठार (Plateau of Learning)

सीखने की वक्र-रेखाओं में एक या अधिक समतल (Flat) टुकड़े पाये जाते हैं जो यह दिखाते हैं कि कुछ समय के लिये सीखने की प्रगति रुक गई है। इस समतल भाग के पश्चात् वेग से उन्नति होती है। उन्हीं अवस्थाओं में प्रयत्न की वही मात्रा लगाई जाती है, फिर भी उन्नति नहीं होती। यह समतल भाग जो उन्नति के अवरोध का निर्देश करता है "पठार (Plateau)" कहलाता है। इसका कारण अपर्याप्त प्रेरणा (Motivation), सरल आदतों

[1]मनोविज्ञान, १९५४ : पृ० २१४

का जटिल आदतों में अपर्याप्त संगठन और पुरानी तथा नई आदतों में संघर्ष हो सकते हैं।[1]

"सम्भव है कि यह किये जाने वाले कार्य की सच्ची शारीरिक सीमा (Physiological limit) का प्रतिबिम्ब हो, और उनके पश्चात् एक उच्च स्तर को पहुँचाने वाली प्रगति उन्नत विधियों का परिणाम हो" (वुडवर्थ)। इस अवधि में पुराने सम्बन्ध या अपूर्ण आदतें अधिक पक्की हो जाती हैं, और किसी भी अगली प्रगति के लिये ऐसा होना अनिवार्य है। यह पिछली सीखी हुई बातों के घनीभूत (Consolidation) होने का तथा सीखने में अगली प्रगति की तय्यारी का काल है।

८. सीखने के सिद्धान्त (Theories of Learning)।

थॉर्नडाइक का मत है कि सीखना अभ्यास और परिणाम के नियमों से शासित होता है। अभ्यास के नियम में उपयोग, अनुपयोग, पुनरावृत्ति और नवीनता के नियमों का समावेश होता है। अभ्यास किसी गत्यात्मक प्रतिक्रिया को पुष्ट करता है। अभ्यास के अभाव से वह क्षीण हो जाती है। गत्यात्मक प्रतिक्रिया की जितनी अधिक पुनरावृत्ति होगी, वह उतनी ही शक्तिशाली होगी। अभी-अभी जो गत्यात्मक प्रतिक्रिया की गई है वह बहुत समय पूर्व की गई प्रतिक्रिया से प्रबल होती है। परिणाम का नियम यह बतलाता है कि एक रोचक प्रतिक्रिया दोहराई जाती है और आसानी से आदत का रूप ले लेती है, जबकि एक अरोचक प्रतिक्रिया आसानी से पक्की नहीं होती। सफल कार्य तृप्तिकारक होता है और इसलिये दोहराया जाता तथा पक्का हो जाता है। असफल कार्य चिढ़ उत्पन्न करता है और इसलिये दोहराया नहीं जाता तथा नष्ट हो जाता है। व्यवहारवादी वाटसन (Watson) परिणाम के नियम को अस्वीकृत करता है, क्योंकि इससे सुख और दुःख के रूप में चेतना को स्थान मिलता है। वह सीखने का पुनरावृत्ति और नवीनता के नियमों से स्पष्टीकरण करता है। उसके मतानुसार सब सीखना नियंत्रण करना है। उसमें किसी प्रतिक्रिया को किसी स्थानापन्न उत्तेजना से सम्बद्ध

[1] मनः मनोविज्ञान, पृ० ११८

किया जाता है या किसी सहज प्रतिक्रिया का स्थान कोई स्थानापन्न प्रतिक्रिया ले लेती है। थॉर्नडाइक और वाटसन दोनों ही यह मानते हैं कि सब सीखना प्रयत्न और भूल की विधि से होता है—सब सीखना अन्धा और यांत्रिक है। प्रयोजनवादी (Hormic) सम्प्रदाय के संस्थापक मैकडूगल (McDougall) का मत है कि सब सीखना बुद्धिमत्तापूर्वक किसी लक्ष्य को ढूँढ़ना है; कम से कम उसमें सफलता और विफलता की अस्पष्ट चेतना, और सफलता का अनुसरण तथा विफलता को दूर करने का समावेश तो होता ही है। सब व्यवहार सप्रयोजन (Purposive) है। प्रयोजन में लक्ष्य का पूर्वज्ञान और उसकी प्राप्ति की इच्छा रहती है। मैकडूगल पूर्वदृष्टि की अपेक्षा सोद्देश्य प्रयत्न को महत्त्व देता है। कोफ्का (Kofka), कोहलर (Kohler) प्रभृति गेस्टाल्ट-मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि सीखना अंधी और यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, उसमें अन्तर्दृष्टि अथवा परिस्थिति में वस्तुओं का सम्बन्ध देखना शामिल होता है। भूलभुलैय्या को सीखने में पशु प्रारम्भ से ही एक नमूने या समग्र परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है; किन्तु अन्त में जब वह एक गति को पूरी तरह से सीख लेता है, तो वह परिस्थिति का सही गति और लक्ष्य के साथ एक समष्टि के रूप में प्रत्यक्ष करता है। सब सीखना अन्तर्दृष्टि से होता है। सीखने की समस्या अभी अनिर्णीत है।

अध्याय ११

स्मृति (MEMORY)

१—प्रत्यक्षीकरण और स्मृति (Perception and Memory)

प्रत्यक्षीकरण बाह्य उत्तेजनाओं के द्वारा उत्पन्न संवेदनाओं का अर्थ ज्ञात करना है। यह एक उपस्थापन (Presentation) की प्रक्रिया है। किन्तु स्मृति अतीत अनुभव की वस्तुओं का प्रत्याह्वान करने की प्रक्रिया है। स्मरण एक प्रतिनिधान (Representation) की प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करने वाली बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न होता है। किन्तु प्रत्याह्वान बाह्य वस्तुओं से नहीं पैदा होता। कोई व्यक्ति एक कविता को कई बार

(१) प्रत्याह्वान एक अनुकूल मनोभौतिक (Psycho-physical) अवस्था पर निर्भर है—शरीर और मन की स्वस्थ, ताज़ी ... अतीत अनुभवों के प्रत्याह्वान के लिये अनुकूल होती है। शरीर ... को सीखते और प्रत्याह्वान करते समय ताज़ा और स्वस्थ होना चाहिये। ... धारणा और प्रत्याह्वान दोनों के लिये प्रतिकूल है। थकान की अवस्था ... सीखे हुये पाठ आसानी से याद नहीं आते।

(२) प्रत्याह्वान साहचर्य की कड़ियों (Bonds of association) और संकेत पर निर्भर है—अतीत अनुभव में संस्कारों में साहचर्य हो ... है। अतीत अनुभव के अधोचेतन चिह्नों के मध्य साहचर्य की ... हो चुकी हैं। अतः गत अनुभवों का प्रत्याह्वान किसी ऐसे उपयुक्त ... या विचार या संकेत पर निर्भर है जिसके साथ प्रारम्भिक अनुभव ... साहचर्य हुआ था। जिस स्कूल में कोई व्यक्ति पढ़ता था उसके ... उसके मन में उसके अतीत अनुभवों के कई आनन्ददायक ... लौट आयेंगे।

(३) प्रत्याह्वान प्रसंग के प्रभाव (Influence of the context) पर निर्भर है—सहचारी विचार न्यूनाधिक रूप से सम्बन्धित ... खाओं के अंग होते हैं। पूरा प्रसंग इस बात का निर्धारण करता है कि ... विशेष समय पर कई सम्भव विचारों में से कौन पुनर्जीवित होंगे। यदि ६ × ... का विचार मेरी चेतना में आता है तो उसके तुरन्त बाद ६२ का विचार आता है। यदि ६ × ४ का विचार आता है तो उसके बाद २६ का विचार आता है। इस प्रकार प्रसंग एक विशेष विचार के प्रत्याह्वान को निर्धारित करता है।

(४) प्रत्याह्वान पुनरुत्पादन (Reproduction) के समय ... विशेष प्रवृत्ति या प्रधान रुचि पर निर्भर है—किसी चित्र का ... उस क्षण में आपके मन की प्रधान रुचि के अनुसार ... चित्र है, या उसे खींचने वाले की, या उस व्यक्ति की जिसने वह आपको ... है—याद दिला सकता है। इसी प्रकार किसी मेज का दर्शन आपको

कीमत, जिस दुकान से वह ख़रीदी गई थी उस दुकान, या उस पर खाये जाने वाले भोजन की याद दिला सकता है।

४. धारणा या संरक्षण (Retention or Conservation)

सीखने के बाद धारणा होती है। लेकिन धारणा सीखी हुई चीज़ का निरन्तर दोहराया जाना नहीं है। यह सीखे हुये कार्यों को सुरक्षित रखने के लिये उन्हें अचेतन (Unconscious) में करते रहना यथा, सीखी हुई कविता का प्रपाठ (Recitation) करते रहना नहीं है।

अनुभव मानसिक प्रवृत्तियों या संस्कारों के रूप में धारण किये जाते हैं। वे मानसिक संरचनायें (Structures) हैं। वे मानसिक व्यापार या प्रक्रियायें नहीं हैं। वे मन की स्थायी प्रवृत्तियां हैं। वे अधोचेतन संस्कार या मानसिक प्रवृत्तियां हैं।

लेकिन कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि अतीत अनुभव शारीरिक प्रवृत्तियों के रूप में मस्तिष्क में सुरक्षित रहते हैं। वे मस्तिष्क की संरचना में परिवर्तन हैं। अधोचेतन संस्कार या मानसिक प्रवृत्तियों का कोई अस्तित्व नहीं है। केवल अचेतन मस्तिष्क-व्यापार (Unconscious cerebration) होता है, लेकिन अधोचेतन मानसिक परिवर्तन नहीं। धारणा स्नायविक आदत (Neural habit) है। स्नायु-संहति (Nervous system) में जो परिवर्तन होते हैं उनके स्थायित्व के कारण आदतें बनतीं और स्मृति होती है।

लेकिन यह मत पर्याप्त नहीं मालूम होता। अतीत अनुभव मानसिक प्रवृत्तियों (Mental dispositions) के रूप में मन में सुरक्षित रहते हैं। उनके अनुरूप मस्तिष्क में शारीरिक प्रवृत्तियां (Physiological dispositions) भी होती हैं। लेकिन शारीरिक प्रवृत्तियां मानसिक प्रवृत्तियों का स्थान नहीं ले सकतीं। अतीत अनुभव चेतना के स्तर के नीचे रहते हैं। मेलोन (Mellone) ठीक कहता है कि "वे मानसिक प्रवृत्तियों के रूप

में भी रहते हैं और शारीरिक प्रवृत्तियों के रूप में भी"।[१] स्टाउट (Stout) का भी यही मत है। वह कहता है कि अतीत अनुभव मानसिक प्रवृत्तियों के रूप में रहते हैं, जो मानसिक संरचना है। यह मानसिक प्रक्रियाओं से निर्धारित होती हैं। यह उत्तरकालीन मानसिक प्रक्रियाओं को भी निर्धारित और परिवर्तित करती है।

मानसिक प्रवृत्तियां शारीरिक प्रवृत्तियों से अभिन्न नहीं है। शारीरिक प्रवृत्तियां भौतिक सत्तायें हैं। वे मस्तिष्क के गठन (Structure) के परिवर्तन हैं, जो उत्तरकालीन मस्तिष्कीय प्रक्रियाओं के होने तथा उनके स्वरूप को निर्धारित करने में योगदान करते हैं। वे भौतिक प्रक्रियाओं के परिणाम हैं और मस्तिष्क में आगे होने वाली भौतिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करती हैं। मस्तिष्क मन नहीं है। अतः शारीरिक प्रवृत्तियां नहीं हैं।

हम मानसिक प्रवृत्तियों की प्रकृति की परिभाषा नहीं दे सकते। हम केवल यह कह सकते हैं कि वे मानसिक संरचना की प्रकृति की हैं। वे मानसिक व्यापार नहीं है। वे चेतन अनुभव नहीं हैं। गुप्त शक्ति से उनकी तुलना की जा सकती है। जिस प्रकार गुप्त शक्ति गति का वास्तविक रूप नहीं है, उसी *प्रकार मानसिक प्रवृत्ति वास्तविक अनुभव नहीं है।* हम *मानसिक प्रवृत्तियों* के स्वभाव की यथार्थ परिभाषा नहीं दे सकते। उनका स्वभाव मानसिक गठन का है। वे मानसिक प्रक्रियाओं से निर्धारित होते हैं और मानसिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करते हैं। उनके हेतुओं और प्रभावों से उनका अनुमान होता है।

कई आधुनिक *मनोवैज्ञानिक मानसिक प्रवृत्तियों* के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं। वे *शारीरिक* प्रवृत्तियों से उनका तादात्म्य करते हैं। वे अधोचेतन मानसिक प्रक्रियाओं को मानने से इन्कार करते हैं; वे केवल अचेतन मस्तिष्क-क्रिया को मानते हैं। उनके लिये 'मन' चेतना के समान है। लेकिन यह मत निराधार है। चेतना की तीन मात्रायें हैं—चेतना का केन्द्र (Focus) चेतना का सीमा-प्रदेश (Margin) और अधोचेतन (Subcon-

[१] मनोविज्ञान के तत्त्व : पृ० ८२

scious)। "यह सम्भव है कि मानसिक प्रवृत्तियों के निर्माण के साथ इस तरह की शारीरिक प्रवृत्तियों का भी निर्माण होता है। लेकिन यह कहना कि मूलतः और वास्तविक अस्तित्व की दृष्टि से मानसिक प्रवृत्ति शारीरिक प्रवृत्ति है, जड़वाद (Materialism) होगा" (मेलोन)। मस्तिष्क एक भौतिक ढाँचा है; यह कार्यरत कोशाओं (Cells) और प्रगण्डों (Ganglia) का जटिल समूह है। मस्तिष्क के स्नायविक कार्य चेतना में अतीत अनुभवों के उन्मज्जन (Emergence) का स्पष्टीकरण नहीं कर सकते। अतीत अनुभवों का मस्तिष्क में विलीन हो जाना और फिर मस्तिष्क से चेतना में निकल आना चमत्कार मालूम होगा। यह विश्वास करना कठिन है कि जो मानसिक है वह मस्तिष्कीय कैसे हो सकता है और जो मस्तिष्कीय है वह मानसिक कैसे हो सकता है। अतः यह मानना निरापद है कि अतीत अनुभव मानसिक समष्टि (Mental system) में अधोचेतन मानसिक प्रवृत्तियों के रूप में संरक्षित रहते हैं और साथ-साथ मस्तिष्क में शारीरिक प्रवृत्तियाँ (Dispositions) भी रहती हैं।

धारणा को संरक्षण भी कहते हैं। ड्रेवर (Drever) के अनुसार संरक्षण मानसिक प्रक्रिया की एक विशेषता है। प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया—चेतन भी और अन्त: मानसिक (Endopsychic) भी "अपने पीछे स्वयं (मनोभौतिक) देह के अन्दर संरचना के परिवर्तन के रूप में एक स्थायी परिणाम छोड़ जाती है।" प्रत्येक मानसिक प्रक्रिया कुछ संस्कारों का जाल छोड़ जाती है जो व्यक्ति के मानसिक गठन में संरक्षित रहते हैं, और उसमें एक परिवर्तन उपस्थित करती है। संरक्षित तत्व "एक पुंज या समूह मात्र नहीं, बल्कि एक व्यवस्थित समष्टि" बनाते हैं। "यह समष्टि कहीं-कहीं पर अत्यधिक व्यवस्थित" होती है। अधोचेतन प्रवृत्तियाँ पृथक्-पृथक् नहीं संरक्षित रहतीं, बल्कि परस्पर संलग्नता (Cohesion) के कारण व्यवस्थाबद्ध समूहों के रूप में संरक्षित रहती हैं। संलग्नता को प्रायः साहचर्य कहते हैं। विचारों का साहचर्य एक नियम है जिससे एक विचार किसी विशेष सम्बन्ध के कारण दूसरे विचार से बंध जाता है। इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध

विचार साहचर्य के कारण एक दूसरे को जाग्रत करने की क्षमता रखते हैं। ड्रेवर इस तथ्य को संलग्नता कहता है। यह मानसिक गठन में संरक्षित तत्वों को व्यवस्थित करती है। वे मानसिक गठन में असम्बन्धित और पृथक् तत्वों के रूप में नहीं संरक्षित रहते। यह संरक्षण के विषय में एक बहुत महत्वपूर्ण सत्य है। प्रत्येक अनुभव एक गुज़रने वाली घटना होता है। वह एक मानसिक व्यापार होता है। जब वह होता है तो मानसिक संरचना में परिवर्तन पैदा करता है। जब मानसिक घटनायें गुज़र जाती हैं तो वे अपने पीछे कुछ संस्कार-जाल छोड़ जाती हैं जो संरक्षित रहते हैं। वे मानसिक ढांचे में प्रवृत्तियाँ छोड़ जाती हैं। बाद में जब वे जगकर सक्रिय हो जाती हैं तो अतीत अनुभवों का प्रत्याह्वान होता है। स्पीयरमैन (Spearman) का धारणा का यह नियम है कि "ज्ञानात्मक घटनायें (Cognitive events) घटित होकर प्रवृत्तियाँ स्थापित करती हैं जो उनकी पुनरावृत्ति को सरल बनाती हैं"।[1] ज्ञानात्मक घटनायें प्रवृत्तियों की स्थापना करती हैं, जो संरक्षित रहती हैं और उनके प्रत्याह्वान को सुविधा देती हैं। अतीत अनुभव मानसिक ढांचे में ज्यों के त्यों संरक्षित नहीं रहते।

प्रत्याह्वान और प्रत्यभिज्ञा के तथ्य धारणा के तथ्य को सिद्ध करते हैं। ये उसके परोक्ष प्रमाण हैं। धारणा को पुनः सीखने की विधि (Relearning method) से मापा जा सकता है। पहिले आपने कुछ पद्यों को कंठस्थ किया था। आप अब उनकी कोई पंक्ति स्मरण नहीं कर सकते। एक बार जिन पद्यों को आपने कंठस्थ किया था उन्हें आप पहिचान भी नहीं सकते। लेकिन आप पाते हैं कि जिसे आपने पहिले याद किया था उसे दुबारा याद करने में आपको बहुत कम समय लगता है।

५. प्रत्याह्वान (Recall)

प्रत्याह्वान एक ऐसे अतीत अनुभव का विचार में पुनरुत्थान है जिसे मानसिक संरचना में एक मानसिक प्रवृत्ति के रूप में सुरक्षित रखा गया है। यह प्रारम्भिक अनुभव का पुनरुत्पादन है। इसे पुराने अनुभव का पुनः प्रति-

[1] मनुष्य की योग्यतायें : पृ० २७१

स्थापन कहा जाता है। लेकिन हमें इस चीज़ का ख़याल रखना चाहिये कि प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक घटना है और प्रत्याह्वान दूसरी। स्मृति में वही पूर्व प्रत्यक्ष पुनः नहीं होता। प्रत्याह्वान पूर्व प्रत्यक्ष की तरह की एक बिल्कुल भिन्न मानसिक घटना है। ड्रेवर कहता है, "प्रत्यक्ष एक घटना है, उसकी स्मृति एक नवीन घटना है।"[१] प्रत्याह्वान एक पूर्व अवसर पर देखी हुई वस्तु या घटना को मन में ग्रहण करना है लेकिन यह पूर्व प्रत्यक्ष की पुनरावृत्ति मात्र नहीं है। एक बार जो मानसिक घटना बीत चुकी है वह एक प्रवृत्ति मात्र के रूप में संरक्षित रहती है। मानसिक व्यापार के रूप में वह धारणा नहीं की जाती। और न वह एक मानसिक घटना के रूप में दुबारा ही आती है। चेतन प्रक्रिया के रूप में वह सदैव के लिये चली गई होती है। अतः इस प्रचलित मिथ्या विचार को दूर रखना चाहिये कि प्रत्याह्वान किसी पूर्व प्रत्यक्ष की हूबहू प्रतिलिपि (Copy) है।

प्रत्याह्वान धारणा पर निर्भर है। लेकिन अच्छी धारणा से भी प्रत्याह्वान का होना निश्चित नहीं है। एक छात्र जिसने परीक्षा की पूरी तय्यारी कर ली है, कभी-कभी परीक्षा-भवन में ठीक उत्तर को स्मरण नहीं कर सकता। ऐसी दशाओं में किसी प्रकार का निरोध (Inhibition) या विघ्न प्रत्याह्वान को रोक देता है

प्रत्याह्वान में निरोध (Reproductive Inhibition)—(१) कोई संवेग प्रत्याह्वान को निरुद्ध कर देता है। भय प्रत्याह्वान को रोक सकता है। अच्छी तरह से तय्यार किये हुये भाषण के प्रत्याह्वान में श्रोताओं के सामने खड़े होने का भय बाधा दे सकता है। परीक्षा के समय उद्विग्नता या घबड़ाहट ठीक उत्तरों के प्रत्याह्वान को रोक सकती है। संवेगों के साथ आन्तरिक आवेश (Organic excitement) होता है जो प्रत्याह्वान को निरुद्ध कर सकता है। (२) कभी-कभी भूलने की इच्छा प्रत्याह्वान को रोक सकती है। विद्यार्थी स्कूल के हेडमास्टर का नाम भूल सकता है जिसने कभी गम्भीर

[१]शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० २८

अपराध के लिये सब विद्यार्थियों के सामने उसे पीटा था। यहाँ विस्मृति का कारण दमन (Repression) है। (२) "दूसरे प्रकार का विघ्न तब होता है जब दो क्रियायें एक ही समय पर जाग्रत होती हैं और एक दूसरी के रास्ते में आ जाती हैं" (वुडवर्थ)। कभी-कभी वक्ता बोलते-बोलते हिचकिचाने लगता है और हकलाने लगता है, क्योंकि उसी समय अपने विचार को व्यक्त करने के दो तरीके उसके सामने आ जाते हैं। एक प्रत्याह्वान दूसरे को रोक देता है। कभी कभी आप को एक परिचित व्यक्ति का नाम स्मरण नहीं होता, दो-तीन नाम एक साथ आपके सामने आ जाते हैं; एक नाम का प्रत्याह्वान दूसरे को रोक देता है। या एक ग़लत नाम अधिक तत्परता से याद आता है जो सही पथ से आपको विचलित कर देता है। बात को वहीं छोड़ दीजिये और थोड़ी देर बाद सही नाम याद आ जायगा, क्योंकि इसी बीच में निरोध समाप्त हो जायगा।

आंशिक या अपूर्ण प्रत्याह्वान (Partial recall)—कभी-कभी प्रत्याह्वान पूर्ण नहीं होता। आंशिक या अपूर्ण प्रत्याह्वान होता है। यह हीन प्रत्याह्वान है। उदाहरणार्थ, 'मैकडोनल्ड' की जगह 'मैक्डूगल' 'ओडोनेल' की जगह 'मैकडोनेल', 'परेश' की जगह 'रमेश', 'कुसुम' की जगह 'सुषमा', 'पद्मदत्त' की जगह 'धर्मदत्त' याद आता है। ऐसा अपूर्ण प्रत्याह्वान केवल आंशिक ही नहीं होता बल्कि अशुद्ध भी होता है। याद आये हुए भ्रान्त नाम में प्रायः अशुद्ध नाम की सामान्य विशेषतायें, भाषा, राष्ट्रीयता, अक्षरों की संख्या, शुरू की ध्वनि, और नाम का रूप सुरक्षित रहते हैं। बाधित प्रत्याह्वान में हमें लक्ष्य की दिशा तो मालूम रहती है लेकिन हम अन्धेरी गलियों में भटक जाते हैं। भूतकाल में देखी हुई बहुत-सी घटनाओं को हम ठीक स्मरण नहीं कर पाते। हम केवल प्रभावोत्पादक तथ्यों को स्मरण कर सकते हैं, अनावश्यक विस्तृत बातों को हम भूल जाते हैं। जब कोई संवेगात्मक पक्षपात (Emotional bias) होता है तो वह याद की हुई घटनाओं को संवेग के अनुकूल तोड़ मरोड़ देता है।

६. प्रत्यभिज्ञा (Recognition)

पूर्ण स्मृति में धारण और प्रत्यभिज्ञा होती है। प्रत्याहृत वस्तु या घटना को पूर्व अनुभव में कोई तिथि दी जाती है। यह प्रक्रिया प्रत्यभिज्ञा या पहिचान कहलाती है। यह अनुभव को जब और जहां वह पहिले-पहल हुआ था उस समय और स्थान से सम्बन्धित करती है। प्रत्यभिज्ञा स्मृति में प्रत्याहृत सामग्री को स्वीकृत या अस्वीकृत करती है। प्रत्यभिज्ञा के बिना स्मृति पूर्ण नहीं होती।

जब स्मृति बिल्कुल अपूर्ण होती है तो हम किसी अनुभव की किसी प्रतिमा का प्रत्याह्वान नहीं कर पाते; लेकिन हमें उसके परिचित होने की पहिचान होती है। प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष (Percept) का प्रतिमा (Image) से मिश्रण है; जब प्रतिमा का पृथक् प्रत्याह्वान होता है तो वही स्मृति में विकसित हो जाती है। दूसरी बार किसी व्यक्ति से मुलाकात होने पर हमें प्रायः परिचित होने की अनुभूति होती है। लेकिन हमें उसके नाम का, या उस स्थान का जहां हम मिले थे, या पहिली मुलाकात के बारे में किसी निश्चित चीज का स्मरण नहीं हो सकता। यहाँ हमें प्रत्यभिज्ञा होती है लेकिन स्मृति नहीं। जब हमें यह अनुभूति होती है कि वर्तमान प्रत्यक्ष के हमारे मन में साहचर्य हैं जिनका निर्माण किसी पूर्व अवसर पर हुआ था और यह भी कि ये चेतना के द्वार पर मंडरा रहे हैं तो परिचित होने का ज्ञान होता है। प्रत्याह्वान के बिना प्रत्यभिज्ञा के साथ एक अपूर्णता की अनुभूति होती है। लेकिन यह अनुभूति अपने-आप परिचित होने की अनुभूति का स्पष्टीकरण नहीं करती। परिचित होने की अनुभूति में यह बात छिपी होती है कि उस व्यक्ति को जिसे अब यह अनुभव हो रहा है, ऐसा ही अनुभव पहिले भी हो चुका है। आप एक व्यक्ति को देखते हैं जो परिचित मालूम होता है, और आपको अनुभूति होती है कि आपने उसे पहिले अवश्य देखा होगा। आपको यह भी अनुभूति होती है कि आपने उसे अवश्य हाल ही में देखा है। लेकिन और कोई बात आपको स्मरण नहीं होती। यह अनिश्चित प्रत्यभिज्ञा है। यहां परिचित होने की अनुभूति है लेकिन निश्चित प्रत्यभिज्ञा नहीं है। यह भी आंशिक प्रत्यभिज्ञा है।

प्रत्यभिज्ञा वर्तमान अनुभव को उसके पहिले-पहल होने के समय और स्थान से सम्बन्धित कर सकती है। प्रत्यभिज्ञा निश्चित हो सकती है। आंगिक प्रतिक्रिया (Organic reaction) का पुनर्जीवित होना, या सहचारी विचारों (Associated ideas) के एक समूह का पुनः प्रतिष्ठापन (Reinstatement) या ये दोनों साथ-साथ वर्तमान अनुभव को भूतकाल में किसी निश्चित समय से सम्बन्धित कर सकते हैं। यह निश्चित प्रत्यभिज्ञा है। इसमें किसी वस्तु का प्रत्यक्ष परिचित होने की अनुभूति से मिश्रित सहचारी विचारों के एक समूह को पुनर्जीवित करता है (टिचनर)।

प्रत्यभिज्ञा में व्यक्ति को किसी परिचित वस्तु के प्रत्यक्ष से सहायता मिलती है, जबकि उसके प्रत्याह्वान में उसे प्रत्यक्ष नहीं होता। हम किसी पुस्तक का नाम भूल जाते हैं और उसे स्मरण करने में असमर्थ होते हैं। लेकिन यदि हमें कई पुस्तकों के नाम सुनाये जायं और उस पुस्तक का नाम उनमें हो, तो उसके प्रत्यक्षीकरण से सहायता पाकर हमें परिचित होने की अनुभूति होती है और हम उसे पहिचान लेते हैं।

७. कंठस्थीकरण की विधियां (Methods of Memorizing): कंठस्थीकरण में मितव्यय (Economy in Memorizing)

१. *प्रपाठ (Recitation)*—पुनरावृत्ति या बार-बार पढ़ने से पाठ दीर्घ काल के लिए जम जाता है। लेकिन प्रपाठ उसे और अधिक दीर्घकाल के लिए स्थिर कर देता है। प्रपाठ का अर्थ है मन ही मन प्रपाठ करना। पढ़ने वाला दो-तीन बार अपने पाठ को पढ़े, और फिर अपने मन में उसका प्रपाठ करे तथा असफल होने पर अपने-आप को प्रोत्साहित करे। यह अध्ययन की सक्रिय प्रपाठ वाली विधि कंठस्थीकरण में कम समय लेती है। कंठस्थीकरण में प्रपाठ से समय की बचत होती है। सामग्री अधिक दीर्घकाल तक स्मृति में जमी रहती है। यदि निरर्थक शब्दों के स्थान पर सार्थक सामग्री होती है तो परिणाम और भी अच्छा होता है। प्रपाठ तात्कालिक स्मृति (Immediate memory) की अपेक्षा स्थाई स्मृति (Permanent memory) के लिए अधिक लाभदायक है।

(२) *सारी सामग्री को एक साथ याद करें या टुकड़े करके याद करें ? (Whole versus part learning)*—एक लम्बे पाठ को कंठस्थ करने में हमें उसे टुकड़ों में विभाजित करके प्रत्येक टुकड़े का अलग-अलग, जब तक वह कंठस्थ न हो जाय तब तक, अध्ययन करना चाहिये या सारे पाठ को बार-बार पढ़ना चाहिये ? हमें 'समग्र-विधि' (Whole method) का अनुसरण करना चाहिये या 'अंश-विधि' (Part method) का ? प्रौढ़ों के लिये कविता की २४० पंक्तियों तक याद करने में 'अंश-विधि' की अपेक्षा 'समग्र-विधि' अधिक उपयोगी मालूम हुई है। बच्चे लम्बी कविता से हतोत्साहित हो जाते हैं; वे "अंश-विधि' का अनुसरण करके अधिक अच्छे परिणाम दिखा सकते हैं। कुछ लोगों को हर दशा में 'समग्र-विधि' अधिक अच्छी मालूम हुई है। अन्यों में से दो तिहाई लोगों ने 'समग्र-विधि से अच्छा काम किया और एक तिहाई लोगों ने 'अंश-विधि' से। 'समग्र-विधि' स्थायी स्मृति के लिये अच्छी सिद्ध हुई है। 'अंश-विधि' तात्कालिक स्मृति के लिये अच्छी होती है।

विंच (Winch) को मालूम हुआ कि १२ वर्ष तक की आयु वाले बच्चों ने 'समग्र-विधि' की अपेक्षा 'अंश-विधि' से अच्छे परिणाम प्राप्त किये। इसका अपवाद (Exception) उन कविताओं के कंठस्थीकरण में पाया गया जिनमें विचार की पूर्ण एकता थी और सामग्री समावयव (Homogeneous) थी। इस आयु से ऊपर के लड़कों ने 'समग्र-विधि' से अच्छे परिणाम दिखाये। किशोर (Adolescent) अधिक काल तक मानसिक रूप से सक्रिय रह सकते हैं, और, इसलिये, 'समग्र-विधि' का उपयोग करके लाभान्वित हो सकते हैं।

(३) *सान्तर और निरन्तर कंठस्थीकरण (Spaced and unspaced learning)*—क्या हमें पाठ को तब तक दोहराते रहना चाहिए जब तक एक ही बार की बैठक में वह कंठस्थ न हो जाए ? अथवा हमें, जब तक वह कंठस्थ न हो जाय तब तक दिन में एक या दो बार उसे याद करते रहना चाहिये ? "सान्तर पुनरावृत्तियाँ निरन्तर पुनरावृत्तियों से अधिक प्रभावशाली

होती हैं । एक प्रयोग में अभ्यस्त विषय (Subject) ने बीस संख्याओं की एक सूची को ३०-३० सेकंड के अवकाश के बाद पढ़ा, और उसे सूची को कंठस्थ करने के लिये ११ बार पढ़ना पड़ा। पांच-पांच मिनट का अवकाश देने से उसी प्रकार की एक सूची छः बार के पढ़ने में कंठस्थ हो गई, अवकाश को दस मिनट का कर देने से पढ़ाई की संख्या घटकर पाँच हो गई, और अवकाश को बढ़ाते-बढ़ाते दो दिन तक का कर देने पर भी यह संख्या वही रही। इस विशेष प्रकार के पाठ के लिए दस मिनट का अवकाश पर्याप्त रूप से लम्बा था, और वास्तविक अध्ययन में खर्च होने वाले समय की अधिकतम बचत के लिये दो दिनों का अवकाश आवश्यकता से अधिक लम्बा नहीं था।"[1]

स्थायी स्मृति के लिये सान्तर कंठस्थीकरण अच्छे परिणाम देता है, निरन्तर कंठस्थीकरण तात्कालिक स्मृति के लिये अच्छा है। लगातार रटना तात्कालिक स्मृति के लिये सहायक हो सकता है। लेकिन स्थायी स्मृति के लिये यह लाभदायक नहीं हो सकता। सान्तर कंठस्थीकरण से स्मृति अधिक टिकाऊ होती है।

(४) अबोधपूर्वक और बोधपूर्वक सीखना (*Unintelligent and intelligent learning*)—अबोधपूर्वक कंठस्थीकरण या रटना प्रभावपूर्ण नहीं होता। इससे स्मृति टिकाऊ नहीं होती। इससे सामग्री मानसिक संरचना में नहीं बैठ सकती। यह सामग्री तथा मन के अन्य विचारों के मध्य साहचर्य नहीं स्थापित कर सकता। दूसरी ओर बुद्धिग्राह्य सामग्री का बोधपूर्वक कंठस्थीकरण, जिसमें समस्त वस्तु का अर्थ समझ लिया जाता है, अत्यधिक प्रभावपूर्ण होता है। इसमें स्मृति टिकाऊ होती है और स्थायी ज्ञान के लिये भी बहुत-कुछ हासिल होता है। हमें किसी बुद्धिग्राह्य अनुच्छेद (Intelligent passage) को रटने मात्र से कंठस्थ करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। पहिले हमें उसका अर्थ समझ लेना चाहिये और उसे मन में स्थिर कर लेना चाहिये। एक बार हम उसे समझ लें तो हम उसे सीख चुकेंगे।

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, पृ० २६८-६९

(५) स्मरण करने का इरादा (Intention to remember)—किसी वस्तु को प्रभावशाली ढंग से सीखने के लिये सीखने का इरादा आवश्यक है। बग़ैर इरादे के सीखना प्रभावहीन होता है। यदि सीखना है, तो सीखने का संकल्प आवश्यक है। साक्षियों (Witnesses) की गवाही बहुत अविश्वसनीय होती है। केवल उन तथ्यों के लिये उनकी गवाही विश्वसनीय होती है जिन पर उन्होंने घटना होते समय निश्चित रूप से ध्यान दिया था। वे उन्हीं बातों को स्मरण कर सकते हैं जिन पर उन्होंने ध्यान दिया था और जिन्हें स्मरण करने का उनका इरादा था। बग़ैर इरादे के सीखना प्रभावहीन और अविश्वसनीय होता है।

८. अच्छी स्मृति के लक्षण (Marks of Good Memory)

अच्छी स्मृति के लक्षण हैं सीखने या कंठस्थ करने में आसानी और शीघ्रता, धारणा का स्थायित्व, याद आने में शीघ्रता, वास्तविक प्रत्याह्वान की यथार्थता, तथा ठीक मौके पर याद हो आना अर्थात् प्रासंगिकता। सीखने की शीघ्रता, धारणा का स्थायित्व, प्रत्याह्वान की स्फूर्ति और यथार्थता, और समय पर काम देना ये अच्छी स्मृति के चिह्न हैं। अच्छी स्मृति रखने वाले व्यक्ति में वस्तु को जल्दी सीखने की क्षमता होनी चाहिये, अधिक काल तक उसे मन में संरक्षित रख सकने की योग्यता होनी चाहिये, और जिस समय आवश्यकता पड़े उस समय उसे तुरन्त और ठीक-ठीक स्मरण करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। "कुछ व्यक्ति जल्दी और आसानी से सीख सकते हैं, लेकिन जल्दी भूल जाते हैं; अन्य सीखने में देर लगाते हैं लेकिन एक बार सीख चुकने पर धारण भी देर तक करते हैं" (स्टाउट)। जल्दी और आसानी से सीखने की क्षमता की अपेक्षा देर तक धारण करने की क्षमता स्मृति का अधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। प्रत्याह्वान की फुर्ती और यथार्थता अच्छी स्मृति का दूसरा आवश्यक लक्षण है। यदि उपलब्ध सामग्री जल्दी और ठीक-ठीक याद नहीं आ सकती तो वह व्यर्थ है। उपयोगिता अच्छी स्मृति का महत्वपूर्ण चिन्ह है। हममें उचित सामग्री को ठीक मौके पर जब उसकी आवश्यकता हो स्मरण करने की शक्ति होनी चाहिये। अप्रासंगिक

(Irrelevent) सामग्री का प्रत्याह्वान किसी काम का नहीं होता। कुछ व्यक्तियों के मन सब प्रकार की सूचनाओं से भरे रहते हैं, लेकिन वे उचित समय पर जब कि अतीव आवश्यकता होती है उनमें से किसी का प्रत्याह्वान नहीं कर पाते। वे उस समय जब आवश्यकता नहीं है विविध सामग्री का प्रत्याह्वान करते हैं। ऐसी शक्ति व्यर्थ से भी बुरी है। केवल आवश्यक और प्रासंगिक सामग्री को धारण और ठीक समय पर स्मरण करना चाहिये। अनावश्यक और अप्रासंगिक विस्तार की बातों को छोड़ देना चाहिये। अन्यथा व्यर्थ और अनावश्यक बातें उपादेय और आवश्यक बातों को मन से निकाल बाहर करेंगी। स्मृति को उपयोगी होना चाहिये। उचित वस्तुओं का प्रत्याह्वान होना चाहिये जो क्षण की प्रधान रुचि से सम्बन्ध रखें।

याद करने में सरलता और शीघ्रता बहुत-कुछ प्रारम्भिक अनुभव से संलग्न रुचि की तीव्रता पर निर्भर है। जो एक क्षण के लिये ध्यान को आकर्षित करता है वह मन में स्थिर नहीं रह सकता और स्मरण बिल्कुल नहीं होता। जो स्वयं रोचक है वह तथा उससे सम्बन्धित बातें जो स्वयं कम रोचक हो सकती हैं, धारण और स्मरण हो सकते हैं। सीखने की शीघ्रता का कारण नैसर्गिक रुचि है।

समय की दीर्घता, जिसमें प्रत्याह्वान की शक्ति संरक्षित रहती है, भी बहुत कुछ रुचि पर निर्भर होती है। परीक्षार्थी सीखी हुई विस्तृत बातों को परीक्षा की समाप्ति-पर्यन्त धारण किये रहता है। वकील किसी मामले से सम्बन्धित तथ्यों को सीख लेता है, लेकिन मामले के समाप्त होने पर उन्हें शीघ्र भूल जाता है। ये तथ्य अस्थायी रूप से रोचक होते हैं। अतः वह उन्हें अल्पकाल के लिये ही धारण करता है। उसके लिये मामले के कानूनी पहलू स्थायी रूप से रोचक होते हैं। अतः वह उन्हें दीर्घ समय तक धारण किये रहता है। धारणा की अवधि पुनरावृत्तियों (Repititions) की बारंबारता (Frequency) पर भी निर्भर होती है। एक लड़का किसी अनुच्छेद को कंठस्थ करते हुये उसे बार-बार पढ़ेगा, जब तक वह उसे पूरी तरह कंठस्थ न कर चुकेगा। धारणा की अवधि, जिसका कारण रुचि या बारंबार पुनरावृत्ति नहीं है; को नैसर्गिक

गठन (Congenital constitution) पर निर्भर होना चाहिये। लेकिन शायद नैसर्गिक गठन स्वाभाविक रुचि के बल पर धारणा को निर्धारित करता है।

स्मृति की उपयोगिता व्यवस्थित ज्ञान पर निर्भर है। एक व्यक्ति जिसका ज्ञान तंत्रबद्ध (Systematic) है, तुरन्त जिसकी उसे आवश्यकता है उसे और जब आवश्यकता है तब उसका प्रत्याह्वान कर सकता है। लेकिन जिसका ज्ञान अव्यवस्थित है, वह व्यक्ति सही चीज़ का सही मौके पर प्रत्याह्वान नहीं कर सकता। स्मृति का मौके पर काम देना सही प्रकार के साहचर्यों (Association) का निर्माण करने पर निर्भर है (स्टाउट)।

६. स्मृतियों की विविधता (Variety of Memories)

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में स्मृति भिन्न-भिन्न दिशाओं में विकसित होती है। एक ही व्यक्ति की चेहरों के लिये अच्छी स्मृति हो सकती है और नामों के लिये बुरी। अन्य व्यक्ति की तिथियों के लिये अच्छी स्मृति हो सकती है और स्थानों के लिये बुरी। एक तीसरे व्यक्ति की संख्याओं के लिये अच्छी स्मृति हो सकती और घटनाओं के लिये बुरी। विभिन्न प्रकार की स्मृतियां विभिन्न प्रकार की रुचियों पर निर्भर हैं। ये रुचि के अन्तरों से घनिष्टतया सम्बन्धित हैं। अतः यह कहा जाता है, "एक स्मृति तो सर्वत्र होती है, लेकिन स्मृति कहीं नहीं। (A memory is everywhere but the memory nowhere)," सामान्य स्मृति कहीं नहीं है, लेकिन विशेष स्मृतियां सब कहीं हैं।

१०. स्मृति के भेद (Kinds of Memory)

वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक स्मृति (Personal and Impersonal memory)—वैयक्तिक स्मृति में हम केवल भूतकाल में सीखे हुये तथ्यों को ही स्मरण नहीं करते, बल्कि उनसे जुड़े हुये विविध व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्मरण करते हैं। जब आप अपने कालेज के जीवन के पहिले अनुभव का और विख्यात अध्यापकों से अपने पहिले सम्पर्क का प्रत्याह्वान करते हैं तो आपको अपने व्यक्तिगत जीवन की कई विस्मृत बातों का स्मरण हो आता

है। यह वैयक्तिक स्मृति है। निर्वैयक्तिक स्मृति में केवल एक तथ्य का स्मरण होता है लेकिन अन्य व्यक्तिगत विस्तृत बातों के साथ नहीं। जब आप यूक्लिड (Euclid) की पाँचवीं साध्य का स्मरण करते हैं तो आप उसका ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के साथ जुड़ी हुई विशेष घटनाओं का प्रत्याह्वान नहीं करते, अतः यह निर्वैयक्तिक स्मृति है।

तोता-रटन और तार्किक स्मृति (Rote memory and logical memory)—बग़ैर बुद्धिमानी के साथ समझे किसी अनुभव की यांत्रिक पुनरावृत्ति रटना है। इसमें समझना या एकीकरण (Assimilation) नहीं होता। एक लड़का यंत्रवत् एक कविता का बार-बार प्रपाठ करता है और उसे कंठस्थ कर लेता है। यह रटना है। तार्किक स्मृति सामग्री को बुद्धिमानी के साथ समझने और आत्मसात् करने पर निर्भर होती है। यह पुनरावृत्ति मात्र पर निर्भर नहीं होती। एक लड़का रेखागणित की एक साध्य को पूरी तरह समझता है और कई बार उसे पढ़ता है। वह आसानी से उसे धारण कर सकता और उचित अवसरों पर स्मरण कर सकता है। यह तार्किक स्मृति है।

बर्गसों (Bergson) का 'अभ्या[illegible]) और 'शुद्ध स्मृति' (Pure memory) [illegible] स्मृति का है। बर्गसों का विचार है कि अभ्यास या आदत शरीर का व्यापार है, जबकि स्मृति मन का व्यापार है। जब हम किसी सामग्री को यथा, कविता को यंत्रवत् दोहरा कर याद करते हैं तो हम केवल कुछ शब्द-समूहों का प्रपाठ करने की आदत बनाते हैं। कविता का प्रत्याह्वान करने में हम अतीत अनुभव का प्रत्याह्वान नहीं करते बल्कि हम उसका यंत्रवत् प्रपाठ मात्र करते हैं। बर्गसों 'अभ्यासजन्य स्मृति' को शरीर का व्यापार मानता है और 'शुद्ध स्मृति' को मन का। अभ्यासजन्य स्मृति शाब्दिक पुनरावृत्तियों का परिणाम है। यह यांत्रिक आदत का निर्माण है। सच्ची स्मृति साहचर्य (Association) और रुचि पर निर्भर है। अभ्यासजन्य स्मृति रटना है। सच्ची स्मृति

तार्किक स्मृति है। प्राचीन शिक्षा-शास्त्र अभ्यासजन्य स्मृति पर बल देता था। आधुनिक शिक्षा-शास्त्र सच्ची स्मृति पर बल देता है।

तात्कालिक स्मृति और स्थायी स्मृति (Immediate memory and permanent memory)—याद की हुई सामग्री का याद करने के तुरन्त बाद प्रत्याह्वान किया जा सकता है। अथवा कुछ काल व्यतीत हो जाने पर उसका प्रत्याह्वान किया जा सकता है। सीखने के तुरन्त याद की स्मृति तात्कालिक स्मृति कहलाती है। सीखने के बाद कुछ काल व्यतीत हो जाने के बाद की स्मृति स्थायी स्मृति कहलाती है। इस कालावधि में विस्मृति का तत्व सीखी हुई सामग्री के अधिकांश को मिटा सकता है। कालक्षेप जितना अधिक होता है विस्मृति भी उतनी ही अधिक होती है। तात्कालिक स्मृति आयु के साथ बढ़ती है। बच्चा कदापि प्रौढ़ के स्तर को प्राप्त नहीं करता। तात्कालिक स्मृति किशोरावस्था तक अर्थात् १३ वर्ष की आयु तक धीमी रफ्तार से प्रगति करती है। किशोरावस्था में अर्थात् १३ और १७ वर्ष की आयु के अन्दर इसकी प्रगति बहुत शीघ्र होती है। व्यक्ति २५ वर्ष तक तात्कालिक स्मृति की अधिकतम सीमा को प्राप्त कर लेता है। तात्कालिक स्मृति संस्कार-प्रसक्ति के नियम (Law of perseveration) पर निर्भर है। इस नियम के काम करने के कारण अनुभव की प्रवृत्ति अपने को पुनः जाग्रत करने की होती है अथवा स्वयमेव "चेतना में उमड़ आने" की होती है। प्रौढ़ सीखी हुई सामग्री पर सूक्ष्म ध्यान देता है। अतः संस्कार-प्रसक्ति प्रबल हो जाती है, और वह अधिक तात्कालिक स्मृति प्राप्त करता है। स्थायी स्मृति साहचर्य के नियमों (Laws of association) पर निर्भर है। सीखी हुई सामग्री मन में अन्य विचारों के साथ जितनी ही अधिक सम्बद्ध होती है और ज्ञान की समष्टि (System) में जितनी ही अधिक घुल-मिल जाती है, स्मृति का स्थायित्व भी उतना ही अधिक होता है।

निष्क्रिय स्मृति और सक्रिय स्मृति (Passive memory and active memory)—जब अतीत अनुभव हमारे संकल्प के प्रयत्न के बिना हमारी स्मृति में जाग्रत हो जाते हैं तो हमारी स्मृति निष्क्रिय या अनायास होती है।

आम का दर्शन हमें उसके मीठे स्वाद की याद दिलाता है। स्वादिष्ट भोजन का दर्शन हमें उसकी सुगन्ध की याद दिलाता है। ये निष्क्रिय स्मृति के उदाहरण हैं। लेकिन जब हम संकल्प के प्रयत्न से अतीत अनुभव का स्मरण करते हैं तो हमारी स्मृति सक्रिय होती है। हम संकल्प के प्रयत्न से किसी विस्मृति नाम का स्मरण करने की चेष्टा करते हैं और अन्त में उसे स्मरण करने में सफल हो जाते हैं। यह सक्रिय स्मृति है।

स्मृति को विचारों के स्थिरीकरण (Fixation) और निर्देशात्मक शक्तियों के नियंत्रण (Control of suggestive forces) से सहायता मिलती है। विचारों के स्थिरीकरण का अर्थ है अंशतः पुनर्जीवित प्रतिमाओं (Images) पर; उन्हें पूरी तरह जीवित करने के लिये ध्यान को केन्द्रित करना। यदि आप अकबर के विचार पर अपना ध्यान स्थिर करें तो अकबर के विषय में आपका अधिकांश ज्ञान पुनः जीवित हो जायगा। और आपको जिन विचारों को जाग्रत करना है उनके सहचारी विचारों पर ध्यान देकर निर्देशात्मक शक्तियों पर नियंत्रण करना चाहिये। आपको अकबर को एक महाबलाध्यक्ष, एक राजनैतिक शासक और एक धर्म-प्रचारक के रूप में विचारना चाहिये। तब आप उसके विषय में सब प्रासंगिक विचारों को स्मरण कर पायेंगे।

११. स्मृति के प्ररूप (Types of Memory)

अतीत अनुभवों को स्मरण करने के तरीकों में लोगों में भिन्नता होती है। गैल्टन (Galton) तीन प्ररूप बताता है, दृष्टि (Visual), श्रवण (Auditory) और गति (Motor) संबन्धी। बहुत सम्भावना इस बात की है कि घ्राण (Olfactory) और स्वाद-संबन्धी (Gustatory) प्ररूप नहीं होते। राइबट (Ribot) वेदनात्मक प्ररूप (Affective type) को भी मानता है। कुछ व्यक्ति अतीत अनुभवों की दृष्टि-प्रतिमाओं का प्रायः ध्यान करते हैं; कुछ श्रवण-प्रतिमाओं का, और कुछ गति-प्रतिमाओं का। कुछ व्यक्ति प्रायः संवेगात्मक अनुभवों की सजीव स्मृति रखते हैं। उनकी स्मृति का वेदनात्मक प्ररूप होता है। कल्पना के प्ररूपों का वर्णन कल्पना के अध्याय में होगा।

१२. प्रत्यक्ष और स्मृति-प्रतिमा (Percept and Memory Image)

स्टाउट प्रत्यक्ष और स्मृति-प्रतिमाओं में निम्नलिखित अन्तर बताता है।

(१) *प्रतिमा का खण्डित होना (Fragmentariness of Image)*—जब आप एक आम का प्रत्यक्ष करते हैं तो आप उसका रंग, रूप, आकार-इत्यादि देखते हैं; उसको चखते हैं, उसकी गन्ध सूंघते हैं और उसका स्पर्श करते हैं। ये वास्तविक ऐन्द्रिय अनुभव एक अविच्छिन्न समष्टि बनाते हैं। लेकिन जब आप आम का स्मरण करते हैं तो आप उसकी दृष्टि-प्रतिमा मात्र का प्रत्याह्वान करते हैं और आप को अन्य ऐन्द्रिय अनुभवों का स्मरण नहीं होता। इस प्रकार स्मृति-प्रतिमा खण्डित होती है; वह प्रारम्भिक अनुभव में अपने प्रसंग से विच्छिन्न होती है।

(२) *तीव्रता (Intensity)*—प्रत्यक्ष स्मृति-प्रतिमा की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। ह्यूम का विचार है कि प्रतिमायें या विचार प्रारम्भिक संस्कारों या प्रत्यक्षों की धुंधली अनुकृतियां (Copies) होती हैं। तीव्रता या मात्रा की दृष्टि से उनमें अन्तर होता है। आम की प्रतिमा उसके प्रत्यक्ष से धुंधली होती है। लेकिन यह गलत है। स्टाउट ठीक कहता है कि "मूलत: अन्तर प्रकार का होता है, केवल मात्रा का नहीं। प्रतिमायें उसी भांति मन पर कब्जा नहीं करती जिस भांति वास्तविक संवेदनायें।" प्रत्यक्ष आक्रमक होते हैं; वे बाहर से मन पर थोप दिए जाते हैं। लेकिन स्मृति-प्रतिमायें आक्रामक नहीं होतीं; वे मन में बलात् प्रकट होकर चेतना के प्रवाह में बाधा नहीं प्रस्तुत करतीं।

(३) *स्पष्टता (Distinctness)*—प्रतिमा अपूर्ण होती है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष की अन्तर्वस्तु (Content) से पृथक् की गई होती है। प्रत्यक्ष पूर्ण और विस्तृत होता है, जबकि प्रतिमा अपूर्ण और विस्तार की बातों से हीन होती है। प्रत्यक्ष स्पष्ट होता है। आप एक गुलाब का फूल देखते हैं, आपका प्रत्यक्ष स्वच्छ और स्पष्ट है। लेकिन, आप गुलाब के फूल की प्रतिमा को स्मरण करते हैं; यह अस्पष्ट और धुंधली है, क्योंकि आपका गुलाब के फूल की सभी

बातों को स्मरण करना सम्भव नहीं है। प्रतिमा अस्पष्ट होती है, प्रत्यक्ष स्पष्ट होता है। प्रत्यक्ष की अन्तर्वस्तु का कुछ भाग स्मरण नहीं हो पाता। प्रतिमा की अस्पष्टता का कारण अंशतः विस्मृति है और अंशतः पुनरावर्तन (Reduplication)। प्रारम्भिक अनुभव के कुछ तत्त्व विस्मृत हो जाते हैं। प्रत्यक्षों के कुछ अंश मिट जाते हैं, केवल इसलिए कि उन्हें धारण करने की या कम से कम उनका प्रत्याह्वान करने की, हमारी शक्ति न्यून होती है। प्रतिमा एक अकेले प्रत्यक्षीकरण का परिणाम नहीं होती, बल्कि अनेक प्रत्यक्षीकरणों का जिनमें केवल कुछ बातों में साम्य होता है और अन्य बातों में वैषम्य। केवल समान बातों की धारणा और प्रत्याह्वान होता है। विस्तार की विषम बातें अपनी अत्यधिक विषमता के कारण प्रत्याह्वान में व्याघात उत्पन्न करती हैं। पुनः विचार-शृंखला प्रयोजनात्मक होती है। वह किसी व्यावहारिक या सैद्धान्तिक उद्देश्य की पूर्ति करती है। केवल उतना ही पुनर्जीवित होता है जितना उस क्षण की प्रधान रुचि के लिए आवश्यक है।

(४) आत्मगत क्रिया से (*Relation to subjective activity*)—"प्रत्यक्ष अधिक स्थिर, अधिक निश्चित होते हैं, और उनकी वस्तुएँ हमारे सामने के भरे हुये देश में निश्चित स्थान रखती हैं। प्रतिमायें अधिक चंचल होती हैं, और जबकि वे देश में प्रक्षिप्त प्रतीत होती हैं, अधिकांश लोगों के लिए यह वास्तविक प्रत्यक्षीकृत देश नहीं होता। जिस देश में प्रतिमाओं की सत्ता होती है वह पूर्त देश ('Tilled space') नहीं होता; ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों हमारी प्रतिमा के चारों ओर रिक्त देश की एक झालर है"। (मिलोग) प्रत्यक्ष स्थिर होते हैं क्योंकि बाह्य उत्तेजनाओं के कारण वे उत्पन्न और स्थिर होते हैं। प्रतिमायें अन्दर से मन के द्वारा विकसित की जाती हैं और ध्यान उन्हें स्थिर रखता है। लेकिन ध्यान का स्वभाव ही चंचल होता है; वह एक वस्तु से दूसरी पर उड़ता रहता है। अतः प्रतिमायें अस्थिर होती हैं।

(५) गत्यात्मक क्रिया से सम्बन्ध (*Relation to motor activity*)—प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करने वाली बाह्य उत्तेजनाओं से पैदा होते हैं। इसलिए वे शरीर और ज्ञानेन्द्रियों की गतियों के तथा परिवेशगत उत्तेजनाओं

के साथ उनके देशीय सम्बन्धों के साथ परिवर्तित होते हैं। हम चलते समय विभिन्न वस्तुओं पर अपनी आंखें डाल सकते हैं, वे हमारे मन में विभिन्न प्रत्यक्ष पैदा करती हैं। लेकिन हम चलते हुए उसी प्रतिमा को (यथा, अपने मृत मित्र की प्रतिमा को) अपने मन में रख सकते हैं। प्रतिमा शरीर की गतियों से प्रभावित नहीं होती। लेकिन यदि हम शिर फेर लें या आँखें बन्द कर लें तो हम जो पहिले देख रहे थे उसे अब नहीं देख सकते। संवेदनायें हमारी ज्ञानेन्द्रियों के समायोजन के साथ परिवर्तित होती हैं। लेकिन हमारी गतियों के द्वारा हमारी प्रतिमायें इस प्रकार प्रभावित नहीं होतीं।

मेलोन ने प्रत्यक्ष और प्रतिमाओं में ये अन्तर बताए हैं: (६) "जब हम अपने प्रत्यक्षों पर ध्यान देते हैं तो हमारा ध्यान बाहर की ओर उन्मुख प्रतीत होता है; जब हम प्रतिमाओं पर ध्यान देते हैं तो वह अन्दर की ओर उन्मुख प्रतीत होता है। प्रत्यक्षों का गमनागमन हमारे संकल्प से स्वतंत्र है, स्मृति प्रतिमाओं को हम बहुत कुछ संकल्प से जाग्रत कर सकते हैं और संकल्प से हटा सकते हैं" (मेलोन)। (७) प्रत्यक्ष हमारे संकल्प से स्वतंत्र हैं। प्रत्यक्ष की वस्तुयें सब मनुष्यों के लिए समान हैं, सभी उनका प्रत्यक्ष कर सकते हैं। लेकिन प्रतिमायें हमारी व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं; सभी लोगों की लिए वे समान नहीं होतीं। (८) शायद प्रत्यक्ष और प्रतिमाओं में मस्तिष्क की प्रक्रियायें भिन्न होती हैं। ऐंजिल प्रत्यक्ष और प्रतिमाओं में एक और अन्तर बतलाता है। (६) प्रत्यक्ष गतियों को जाग्रत करता है, जबकि प्रतिमायें नहीं। आप एक पका हुआ आम देखते हैं, उसे तोड़ते हैं और खाते हैं। लेकिन एक काल्पनिक आम को तोड़ने और खाने के लिए आप कोई गति नहीं करते।

लेकिन स्मृति-प्रतिमा प्रत्यक्ष से नितान्त भिन्न नहीं होती। यह कई दृष्टियों से प्रत्यक्ष से साम्य रखती है। स्मृति-प्रतिमा अतीत प्रत्यक्ष की प्रतिलिपि होती है। अतः प्रारम्भिक प्रत्यक्ष के कुछ गुणों को उसमें अवश्य आना चाहिए, कुछ गुण प्रत्यक्ष और उसकी स्मृति-प्रतिमा में समान होते हैं। (१) प्रारम्भिक प्रत्यक्ष के संवेदी गुण यथा रंग, ध्वनि इत्यादि उसकी स्मृति प्रतिमा में आ

जाते हैं। (२) जटिलता भी और सामान्यतया (३) इन गुणों का देशीय तथा कालिक रूप स्मृति-प्रतिमा में पुनः उदय हो जाता है। प्रतिमा में वही ज्ञानेन्द्रिय या पेशी कुछ कम मात्रा में सचेष्ट होती है, यदि प्रारम्भिक प्रत्यक्ष को पुनः उत्पन्न करना है। जब आप किसी लय का प्रत्याह्वान करते हैं तो आपको प्रतिमा से अपने कान का समायोजन अंशतः करना होता है। (४) स्मृति-प्रतिमा केवल प्रारम्भिक प्रत्यक्ष की पुनरुत्पत्ति नहीं है, बल्कि किसी हद तक प्रारम्भिक प्रत्यक्ष में होने वाली शारीरिक प्रक्रियाओं का विचार में पुनर्जागरण और वास्तविक पुनःप्रतिष्ठापन है। प्रत्यक्ष और प्रतिमा परस्पर अंशतः समान और अंशतः विषम हैं। (५) वे परस्पर अपेक्षाकृत स्वतंत्र हैं। नीले आकाश को देखते हुये हम उसके एक भाग को नीले के स्थान पर लाल कल्पित कर सकते हैं। अधिकांश लोग आकाश के एक भाग को लाल कल्पित करते हुये उसे नीला भी देखते हैं। वे एक ही साथ उसका नीला प्रत्यक्ष और लाल प्रतिमा देखते हैं। प्रत्यक्ष और प्रतिमा एक-दूसरे को रद्द नहीं करते, यद्यपि वे विरोधी स्वभाव के हैं। वे परस्पर स्वतंत्र हैं। अपने हाथ को गरम पानी में डुबाइये। आपको उष्णता की संवेदना होगी। उसी समय आप यह कल्पना भी कर सकते हैं कि यदि आपका हाथ ठंडे पानी में होता तो आपको कैसी अनुभूति होती। किन्तु आपकी मानस प्रतिमा आपकी वास्तविक संवेदना को नहीं हटाती। आपको दोनों की अनुभूति साथ होती है। शायद प्रत्यक्ष और प्रतिमा की आपेक्षिक स्वतंत्रता इस तथ्य के कारण है कि वास्तविक प्रक्रिया में उद्दीप्त होने वाले स्नायु-पथ विचार-प्रक्रिया में उद्दीप्त होने वाले स्नायु-पथों के पूर्णतया संपाती (Coincident) नहीं हैं।

१३. प्रतिमा और विचार (Image and Idea)।

विचार प्रतिमा का अर्थ है। प्रतिमा विचार की ऐन्द्रिय अन्तर्वस्तु (Sensory content) है। विचार प्रतिमा के बिना नहीं रह सकता। लेकिन प्रतिमा उसमें मूर्तिमान विचार से अभिन्न है, यह बात नहीं है। "प्रतिमा विचार का एक घटक (Constituent) है; दूसरा और अधिक महत्त्वपूर्ण घटक अर्थ है जिसे प्रतिमा रखती है" (स्टाउट)। जब आप गांधी जी के

बारे में सोचते हैं तो आपके मन में उनके दन्तहीन मुख की प्रतिमा आ सकती है। लेकिन यह आपका गांधी जी का विचार नहीं है। एक ही प्रतिमा के प्रसंग और परिस्थिति के अनुसार बिल्कुल भिन्न अर्थ हो सकते हैं। गांधी जी की प्रतिमा चर्चिल को पीड़ाप्रद विचार दे सकती है क्योंकि उन्होंने भारत को आज़ादी दी। वही इसी कारण भारतीयों को सुखकर विचार देती है।

१४. प्रत्यक्ष और पश्चात्-प्रतिमा (Percept and After-Image)।

हम सूर्य को देखते हैं और हमें उसका प्रत्यक्ष होता है। यदि हम सूर्य को कुछ सेकंड तक देखें और उससे आंखें हटा लें, तो हम श्वेत प्रकाश का एक वृत्त देखते हैं। यह भावात्मक (Positive) पश्चात्-प्रतिमा है। धीरे-धीरे यह धूसर या काले वर्ण के धब्बे में बदल जाता है। यह अभावात्मक (Negative) पश्चात्-प्रतिमा है। भावात्मक पश्चात्-प्रतिमा का कारण उत्तेजना के हट जाने के बाद प्रारम्भिक ऐन्द्रीय उद्दीपन (Peripheral excitation) का जारी रहना है। अभावात्मक पश्चात्-प्रतिमा का कारण इस उद्दीपन के तुरन्त पश्चात् जो थकान या मरम्मत (Repairs) होती है उसके परिणाम हैं।

पश्चात् प्रतिमा को पश्चात्-संवेदना (After sensation) कहना उचित है क्योंकि यह उत्तेजना के हट जाने के पश्चात् ज्ञानेन्द्रिय पर उत्तेजना के अविरत प्रभाव के कारण होती है। इस प्रकार पश्चात्-प्रतिमा और प्रत्यक्ष में साम्य होता है, क्योंकि दोनों में ज्ञानेन्द्रियों का उत्तेजन होता है। दार्ष्टिक भावात्मक पश्चात् प्रतिमाओं में वही गुण (यथा, रंग) पुनः उत्पन्न होते हैं जो प्रारम्भिक प्रत्यक्षों में थे। लेकिन दार्ष्टिक अभावात्मक पश्चात्-प्रतिमाओं के रंग प्रत्यक्षों के रंगों के पूरक (Complementary) होते हैं।

प्रत्यक्ष और पश्चात्-प्रतिमाओं में कुछ अन्तर होते हैं। प्रत्यक्ष तब उत्पन्न होता है जब उत्तेजना ज्ञानेन्द्रिय के सामने वर्तमान रहती है, जब कि पश्चात्-प्रतिमा उत्तेजना के समाप्त हो जाने के तुरन्त बाद उदित होती है। यह

उत्तेजना के हट जाने के बाद भी ज्ञानेन्द्रिय के विलम्बित उत्तेजन (Protected stimulation) के कारण प्रत्यक्ष का जारी रहना है। प्रत्यक्ष में अर्थ-ग्रहण की प्रक्रियायें, यथा, विवेचन, एकीकरण, संयोजन और पूर्वार्जित ज्ञान से मिलान, होती हैं। लेकिन पश्चात्-प्रतिमा में ये प्रक्रियायें नहीं होतीं। यह एक सरल मानसिक प्रक्रिया है।

प्रत्यक्ष उपस्थित उत्तेजना पर ध्यान देकर चेतना के क्षेत्र में रोका जा सकता है। लेकिन पश्चात्-प्रतिमा ध्यान से नहीं रोकी जा सकती; यह चेतना का क्षणिक कार्य है; यह हमारे संकल्प से स्वतंत्र है।

एक भावात्मक दार्ष्टिक पश्चात्-प्रतिमा में तत्संबन्धी प्रत्यक्ष के संवेद्य गुण होते हैं, लेकिन अभावात्मक दार्ष्टिक पश्चात्-प्रतिमा में प्रारम्भिक प्रत्यक्ष के पूरक वर्ण होते हैं।

प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं की देशीय व्यवस्था जैसी भी रही हो, तत्संबन्धी पश्चात्-प्रतिमायें एक चौरस विस्तार (Flat Expanse) में फैली रहती हैं।

१५. पश्चात्-प्रतिमायें और पुनरावर्ती प्रतिमायें (After-image and Recurrent Image)।

पश्चात्-प्रतिमा चेतना का क्षणिक कार्य है; यह उत्तेजना के तुरन्त बाद उदित होती है, लेकिन एक ही क्षण में लुप्त भी हो जाती है। किन्तु पुनरावर्ती प्रतिमा कुछ कुछ मध्यान्तर के बाद उदित होती रहती है और जब तक उसके अन्दर लचीलापन (Elasticity) वर्तमान रहता है तब तक वह कुछ कुछ विश्राम के बाद चेतना में आती रहती है। जब उसका लचीलापन समाप्त हो जाता है तो फिर चेतना में उसका आना रुक जाता है। पुनरावर्ती प्रतिमायें आकर्षक और प्रभावशाली प्रत्यक्षों के अवशेष होती हैं। ये अचानक भौतिक उत्तेजनाओं तथा ज्ञानेन्द्रियों पर उनके प्रभावों के पूर्णतया नष्ट हो चुकने के पश्चात् कई घंटों या दिनों के बाद लौट आती हैं। "इस प्रकार चित्रकार और सूक्ष्मदर्शक यंत्र से काम करने वाले बहुधा उन वस्तुओं को अन्धेरे में साफ़-साफ़ अपने सामने खड़ी देखते हैं जो दिन में उनके ध्यान में थीं" (वार्ड)।

पुनरावर्ती प्रतिमाओं में प्रत्यक्षों के वे सभी चिह्न मौजूद रहते हैं जो पश्चात् प्रतिमाओं में नहीं होते, यथा, निश्चित गतियाँ और ताल (Rhythms), विभ्रमों (Hallucinations) से इनमें अन्तर यह है कि ये आत्मगत निर्देश (Subjective suggestions) या मनोविकृति (Mental derangement) से स्वतन्त्र होती हैं (वार्ड)।

१६. पश्चात् प्रतिमा और प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा (After Image and Primary Memony Image)

"दरवाजे पर खटका, घंटे की ध्वनि, दोस्त का चेहरा जिस पर हमने ध्यान नहीं दिया, कभी-कभी थोड़े क्षणों के बाद बार-बार आने वाली प्रतिमा के द्वारा पहिचान लिये जाते हैं, हालांकि ऐसा मालूम पड़ता है कि वास्तविक संस्कार की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई थी। दृष्टि के मामले में प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा सदैव किसी वस्तु पर एक क्षण तक नज़र जमा कर देखने से और फिर आँखों को बन्द करके या दूसरी दिशा में हटाकर प्राप्त की जा सकती है। वस्तु की प्रतिमा एक क्षण तक बहुत सजीव और स्पष्ट दिखाई देती है और ध्यान के प्रयत्न से लगातार कई बार लौटाई जा सकती है। ऐसे पुनः प्रतिष्ठापन (Reinstatement) में आँखों को जल्दी-जल्दी खोलने और बन्द करने से या अचानक उन्हें किसी ओर चलाने से बहुत सहायता मिलती है" (वार्ड)।

इस दृष्टि से प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा पश्चात्-प्रतिमा के तुल्य है, जो, जबकि अन्यथा वह लुप्त हो गई होती, इस विधि से बार-बार पुनर्जीवित की जा सकती है। प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा पश्चात्-प्रतिमा के समान किसी प्रकार ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा स्थिरीकृत (Sustained) प्रतीत होती है।

प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा विलक्षण रूप से सजीव (vivid) होती है। ध्यान के प्रयत्न से इसका प्रत्यक्षीकरण के तुरन्त पश्चात् प्रत्याह्वान किया जा सकता है और स्थिर रखा जा सकता है। किन्तु पश्चात्-प्रतिमा की स्थिरता ध्यान के प्रयत्न पर निर्भर नहीं होती बल्कि उत्तेजना को हटा देने के पश्चात्

भी ज्ञानेन्द्रिय के अविरत उद्दीपन (Continued excitation) पर निर्भर होती है।

पश्चात्-प्रतिमा एक या दो क्षण तक भावात्मक रहती है और तदुपरान्त अभावात्मक अवस्था (Phase) में चली जाती है। लेकिन प्रारम्भिक स्मृति प्रतिमा में ऐसे परिवर्तन नहीं होते।

१७. प्रत्यक्ष, पश्चात् प्रतिमा, प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा और स्मृति प्रतिमा (A percept, After Image, Primary Memory Image and Memory Image)

प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रिय पर क्रिया करने वाली बाह्य उत्तेजना से उत्पन्न होता है। पश्चात्-प्रतिमा उत्तेजना के हट जाने के बाद भी ज्ञानेन्द्रिय के अविरत उत्तेजन से उत्पन्न होती है। यह प्रत्यक्ष का जारी रहना है। अतः इसे पश्चात् संवेदना या पश्चात-प्रत्यक्ष कहना अधिक उचित है। प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा भी प्रारम्भिक संवेदना के जारी रहने में होती है; किन्तु ध्यानके प्रयत्न से इसे मन में स्थिर रखा जा सकता है। लेकिन पश्चात-प्रतिमा को ध्यान के प्रयत्न से स्थिर नहीं रखा जा सकता। पुनरावर्ती प्रतिमा कई घंटों और दिनों के मध्यान्तर के बाद भी बार-बार चेतना में उभड़ आती है। जब तक उसका लचीलापन वर्तमान रहता है तब तक वह चेतना में बार-बार आती रहती है। लेकिन स्मृति-प्रतिमा प्रारम्भिक संवेदना या प्रत्यक्ष के पूर्णतया तिरोहित हो जाने के दीर्घकाल पश्चात पुनर्जीवित होती है।

१८. ईडीटिक प्रतिमा (Eidetic Image)

चौदह वर्ष की आयु से कम के बहुत से बच्चे, शायद उनमें से आधे, ईडीटिक प्रतिमाओं का अनुभव करते हैं। यदि वे आधे मिनट तक तल्लीन होकर किसी जटिल (Complex) वस्तु या चित्र का निरीक्षण करें और फिर आँखें बन्द कर दें या किसी धूसर (Gray) पृष्ठभूमि को देखें तो वे उस वस्तु को ऐसे देखेंगे जैसे कि मानों वह अभी भी उनके सम्मुख हो। प्रतिमा का यह स्वरूप (Type) बिल्कुल आत्मगत (Subjective) होता

है, लेकिन फिर भी बिलकुल सजीव (Vivid) होता है और सब मिलाकर जिस ज्ञानेन्द्रिय से उसका सम्बन्ध होता है उसकी संवेदना से घनिष्ठ रूप से मेल खाता है। प्रतिमा प्रारम्भिक प्रत्यक्ष की ठीक-ठीक अनुकृति नहीं होती, उसमें परिवर्तनों का होना सम्भव है। "वस्तु आकार में बढ़ सकती है, या अधिक नियमित हो सकती है, या चलती-फिरती दिखाई दे सकती है। रंग अधिक उज्जवल हो सकता है, या बदलकर दूसरा हो सकता है। ये परिवर्तन 'विषय' (Subject) की रुचि के द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं। ये विलक्षण रूप से सजीव और विस्तृत बातों वाली प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमायें ईडीटिक प्रतिमायें कही गई हैं, और जिन व्यक्तियों को इनका अनुभव होता है उन्हें ईडीटिक व्यक्तियों की संज्ञा दी गई है। ईडीटिक प्रतिमा उत्तर-बाल्य (Later Childhood) में सबसे अधिक पाई जाती है और प्रायः किशोरावस्था (Adolescence) में कम हो जाती है, यद्यपि बहुत थोड़े प्रौढ़ों को भी इस प्रकार की प्रतिमाओं का अनुभव होता है।"[1] ई० आर० जेनेश (E. R. Ganesch) ने ईडीटिक प्रतिमाओं के अस्तित्व की खोज की थी।

१६. सहसंवेदना (Synesthesia)

कुछ साधारण व्यक्तियों के अन्दर एक विचित्र शक्ति होती है जिससे वे ध्वनियों को इस रूप में सुनते हैं कि जैसे मानों वे रंगयुक्त हों। वे गम्भीर स्वर को गहरा नीला सुन सकते हैं, तुरही (Trumpet) को शुभ्र लाल सुन सकते हैं। वे अक्षरों को रंगों के रूप में सुन सकते हैं, स्वरों और व्यंजनों को विशिष्ट रंगों के रूप में, और शब्दों को रंगों के नमूनों के रूप में। वे संख्याओं को विशेष रंगों के रूप में सुन सकते हैं। 'रंगयुक्त श्रवण' (Coloured learning) सर्वाधिक सामान्य सहसंवेदना है, यद्यपि सहसंवेदना का यह एकमात्र रूप नहीं है। इसमें एक ज्ञानेन्द्रिय पर क्रिया करने वाली उत्तेजना के प्रति दूसरी ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्ध रखने वाली संवेदनाओं या प्रतिमाओं के द्वारा प्रतिक्रिया की जाती है" (वुडवर्थ)। इसकी उत्पत्ति निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है।

---

[1] वुडवर्थः मनोविज्ञान, पृ० २८८-८९।

२०. निर्देश और साहचर्य (Suggestion and Association)

अतीत प्रत्यक्षों का प्रत्याह्वान या पुनरावृत्ति निर्देश की शक्तियों के कारण होती है जो साहचर्य के नियमों के अनुसार कार्य करती हैं। पुनरावृत्ति (Reproduction) निर्देश के कारण होती है। निर्देश साहचर्य के कारण होता है। एक अतीत प्रत्यक्ष चेतना में पुनर्जीवित होता है, क्योंकि किसी वर्तमान प्रत्यक्ष या विचार से उसका निर्देश या सुझाव मिलता है। और वर्तमान प्रत्यक्ष या विचार अतीत प्रत्यक्ष का निर्देश करते हैं, क्योंकि अतीत अनुभव में उनमें साहचर्य हुआ था। निर्देश या सुझाव वह प्रक्रिया है जिससे एक दिया हुआ प्रत्यक्ष या विचार किसी अतीत प्रत्यक्ष के अधोचेतन संस्कार (Subconscious impression) को जाग्रत करता है और उसे चेतना में स्मृति-प्रतिमा के रूप में पुनर्जीवित करता है। साहचर्य एक प्रत्यक्ष और एक विचार के मध्य या दो विचारों के मध्य का वह सम्बन्ध है जिसकी सहायता से एक का चेतना में आना दूसरे को पुनर्जीवित करने की प्रवृत्ति रखता है। आपने भूतकाल में सदैव एक कलम और एक दवात को साथ-साथ देखा था। आपके मन में दोनों के विचारों के मध्य साहचर्य स्थापित हो चुका है। तब से जब कभी आप उनमें से एक को देखते या सोचते हैं तब आपको दूसरे का स्मरण हो आता है। दवात का प्रत्यक्ष या विचार कलम के विचार को सुझाता है, क्योंकि मन में दोनों विचारों में साहचर्य है। साहचर्य को ड्रेवर आसक्ति (Cohesion) कहता है। विचार परस्पर आसक्त होते हैं तथा समूह या समष्टि बनाते हैं। दो प्रकार के साहचर्य होते हैं (१) मुक्त साहचर्य (*Free association*) और (२) नियंत्रित साहचर्य (Controlled association)।

२१. मुक्त साहचर्य (Free Association)।

मुक्त साहचर्य में एक विचार निर्बाध होकर दूसरे को सुझाता है, दूसरा तीसरे को, और इसी तरह अनन्त तक। दिवा-स्वप्न (Day-dream) मुक्त साहचर्य का सबसे अच्छा उदाहरण है। दिवास्वप्न में विचारों की एक अवि-

छिन्न शृंखला होती है जिसमें विचार मुक्त होकर अन्य विचारों को सुझाते हैं। हवा में महल बनाने (Building castles in the air) में विचार निर्बाध होकर बिना रोक-टोक एक-दूसरे को सुझाते हैं। यहाँ मुक्त साहचर्य है। लेकिन यह संवेगों (Emotions) से प्रेरित होता है।

मुक्त साहचर्य-परीक्षा (Free association test)—प्रयोग से मुक्त साहचर्य की परीक्षा हो सकती है। 'विषय' (Subject) की उत्तेजनाओं के रूप में शब्दों की एक सूची दी जाती है और उससे कहा जाता है कि वह प्रत्येक शब्द की प्रतिक्रिया में कोई दूसरा शब्द, जो भी उसके मन में सूझता हो, कहे। उसे सबसे पहिले प्रत्याहृत शब्द को कहना पड़ेगा। यदि आप 'विषय' को 'मेज' शब्द दें तो वह 'खाना' या 'कुर्सी' कहकर प्रतिक्रिया कर सकता है। कौन-सा विशेष शब्द प्रत्याहृत होगा, यह साहचर्य की बारम्बारता (Frequency), नवीनता (Recency) और तीव्रता (Intensity) पर निर्भर है। यदि दो तथ्यों के सम्बन्ध का उसने बार-बार निरीक्षण किया है तो उनका साहचर्य प्रबल होगा। यदि उनके सम्बन्ध का उसका निरीक्षण एक सजीव अनुभव था तो भी उनका साहचर्य प्रबल होगा। व्यक्ति की वर्तमान दशा का विचार करना भी आवश्यक है। यदि वह प्रसन्न है तो उसके मन में प्रिय विचार आवेंगे। यदि वह अप्रसन्न है तो उसके मन में अप्रिय विचार उठेंगे। यदि बारंबारता, नवीनता और तीव्रता उसी प्रतिक्रिया के पक्ष में सहयोग करते हैं तो वह प्रतिक्रिया अवश्य ही होगी। यदि ये अलग-अलग दिशाओं में खींचती हैं तो उनमें से सबसे शक्तिशाली ही प्रतिक्रिया को निर्धारित करेगी।

साहचर्य-परीक्षा के लाभ (Uses of association tests)—(१) ये परीक्षायें व्यक्ति के विचार करने की आदतों पर कुछ प्रकाश फेंकती हैं। उसके मन में कुछ विचार बारंबारता के कारण प्रबल रूप से जुड़े होते हैं। अतः उसकी "अहंकेन्द्रीय प्रतिक्रियायें" (Egocentric responses) आसानी से उसकी मानसिक पसंदगियों और नापसंदगियों को प्रकट कर सकती हैं।

(२) ये परीक्षायें नवीनता (Recency) के तत्व के आधार पर "रहस्योद्घाटन" (Detection) करने में भी उपयोगी हैं। यदि किसी हत्यारे ने हाल ही में कोई हत्या की है तो उचित रूप से चुने हुये उत्तेजना-शब्द (Stimulus words) उससे हत्या के दृश्य का प्रत्याह्वान करा देंगे, और उसकी प्रतिक्रियायें उसे पकड़वा देंगी; वह प्रतिक्रियाओं को रोकने की चेष्टा कर सकता है, वह झिझक सकता है और इस प्रकार उस पर सन्देह पैदा हो सकता है।

(३) ये परीक्षायें व्यक्ति की संवेगात्मक "ग्रन्थियों" (Emotional complexes) का उद्घाटन कर सकती हैं, जो बहुत तीव्र होती हैं। यदि *वह धन से सम्बन्धित शब्दों की प्रतिक्रिया करने में झिझक और व्यग्रता* प्रदर्शित करता है तो उसकी आर्थिक कठिनाइयाँ प्रकट होती हैं।[1] मनोविश्लेषण शास्त्री (Psychoanalysts) ग्रन्थियों को ढूँढ़ निकालने के लिये मुक्त-साहचर्य-परीक्षाओं का अवलम्बन लेते हैं।

२२. नियंत्रित साहचर्य (Controlled Association)

जब एक निश्चित प्रयोजन साहचर्य की प्रक्रिया का पथ-निर्धारण करता है, तो हम इसे नियंत्रित साहचर्य कहते हैं। दिवास्वप्न में मुक्त साहचर्य होता है, लेकिन परीक्षा में प्रश्नों के उत्तर याद करते समय नियंत्रित साहचर्य काम करता है।

नियंत्रित-साहचर्य-परीक्षा (Controlled association test)—इस परीक्षा में विषय (Subject) को प्रत्येक उत्तेजना शब्द की प्रतिक्रिया उस शब्द से करनी पड़ती है जिसका उससे एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध होता है। उसे उसका विरोधी शब्द बताने के लिये कहा जा सकता है। उसे किसी शब्द के द्वारा निर्दिष्ट वस्तु का एक भाग बताने के लिये कहा जा सकता है। या उसे उत्तेजना-शब्द से सम्बन्धित उच्चतर जाति बताने के लिये कहा जा सकता

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, पृ० ४५८-६१।

है। बुद्धिमान 'विषय' एक आसान नियंत्रित-साहचर्य-परीक्षा में प्रतिक्रिया करने में कम समय लेता है।

नियंत्रित-साहचर्य-परीक्षा में 'विषय' एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिये तत्पर (Set) रहता है। उदाहरणार्थ, वह उत्तेजना-शब्दों के विरोधी शब्द कहने के लिये तत्पर रहता है। और वह तुरन्त 'ऊँचा', 'धनी' इत्यादि उत्तेजना-शब्दों की प्रतिक्रिया 'नीचा' 'निर्धन' इत्यादि शब्द कहकर करता है। प्रारम्भिक तत्परता (Preparatory set) सही प्रत्याह्वान के लिये अनुकूल होती है। वह सही शब्द के चुनाव पर प्रभाव डालती है।

गणित के कार्य में नियंत्रित साहचर्य होता है। अच्छी तत्परता के बिना जल्दी जोड़ना, घटाना, या गुणना असम्भव होगा। यहां तत्परता कार्य के प्रति प्रतिक्रिया है पढ़ने में तत्परता प्रसंग के प्रति प्रतिक्रिया होती है। शब्द का अर्थ प्रसंग से मालूम होता है। वस्तुगत परिस्थिति (Objective situation) एक तत्परता उत्पन्न करती है जो विचार और कार्य दोनों पर नियंत्रण करती है। व्यक्ति एक विशेष विधि से प्रतिक्रिया करता है। वह एक विशेष परिस्थिति में एक विशेष विधि से सोचता और काम करता है।

२३. साहचर्य के नियम (Laws of Association)

निर्देश करने वाली शक्तियाँ कुछ नियमों के अनुसार काम करती हैं। प्रत्यक्ष और विचारों में सम्बन्ध या साहचर्य के अनेक रूप होते हैं। साहचर्य के तीन नियम हैं: (१) सान्निध्य का नियम (Law of contiguity) (२) सादृश्य का नियम (Law of similarity) और (३) विरोध का नियम, (Law of contrast)

(१) सान्निध्य का नियम (Law of contiguity)—जो अनुभव साथ-साथ होते हैं या जो निकट से एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं, उनकी प्रवृत्ति साथ-साथ रहने की होती है तथा वे साहचर्य का निर्माण करते हैं। जो अनुभव एक ही समय या एक अव्यवहित क्रम में होते हैं उनकी प्रवृत्ति याद में एक-दूसरे को पुनर्जीवित करने की होती है। यदि य सदैव अ के साथ देखा गया है या

सान्निध्य के नियम के अन्तर्गत सादृश्य का नियम भी आ जाता है। मैंने भूतकाल में अनेक बार मोहन और सोहन को साथ-साथ देखा है। अतः दोनों के विचारों में मेरे मन में साहचर्य हो गया है। इस समय मैं मोहन को देखता हूँ; और उसका प्रत्यक्ष मुझे सोहन की याद दिलाता है। मोहन का वर्तमान प्रत्यक्ष सादृश्य के कारण मोहन के अधोचेतन संस्कार को पुनर्जीवित करता है, और मोहन के विचार से सोहन के विचार को पुनर्जीवित करता है जिसके साथ इसका भूतकाल में सम्बन्ध हुआ था। यदि क मोहन के प्रत्यक्ष के लिए मान लिया जाय, क′ मोहन के अधोचेतन संस्कार के लिये, और ख′ सोहन के अधोचेतन संस्कार के लिए, तो क पहिले सादृश्य के कारण क′ को पुनर्जीवित करता है और फिर क′ सान्निध्य के कारण ख′ को। इस प्रकार सान्निध्य के नियम में सादृश्य का नियम भी आ जाता है।

सादृश्य के नियम में भी सान्निध्य का नियम अन्तर्निहित है। हम पहिले ही देख चुके हैं कि सादृश्य का नियम तभी काम कर सकता है जब दो वस्तुओं की बीच अत्यधिक साम्य और साथ ही आंशिक भेद होता है। तुल्य तत्वों का दर्शन सादृश्य के कारण अधोचेतन संस्कारों को जाग्रत करता है और ये सान्निध्य के कारण भिन्न तत्वों को जाग्रत करते है। चित्र और जिस व्यक्ति का वह चित्र है उसके मध्य सादृश्य के कई तत्व होते हैं। और कुछ भिन्न तत्व भी होते हैं। उदाहरणार्थ, चित्र छोटा है जबकि व्यक्ति बड़ा है; चित्र में मोटाई, आवाज़, जीवन इत्यादि नहीं होते जबकि व्यक्ति में होते हैं। जब मैं चित्र देखता हूं तो तुल्य तत्व सादृश्य से अपने अधोचेतन संस्कारों को जाग्रत करते हैं, और ये सान्निध्य से भिन्न तत्वों को जाग्रत करते हैं। इस प्रकार सादृश्य के नियम में सान्निध्य के नियम का समावेश हो जाता है।

हैमिल्टन (Hamilton) सान्निध्य के नियम और सादृश्य के नियम को एक में समग्रता के नियम (Law of readintegration) में मिला देता है। इसका अर्थ यह है कि दो प्रत्यक्ष जो चेतना में इकट्ठे होते हैं एक समग्र मानसिक अवस्था को बनाते हैं, इससे जब कभी एक भाग चेतना में आता है तो उसकी प्रवृत्ति समग्र इकाई को जाग्रत करने की होती है। समग्र

मानसिक अवस्था का एक अंश समग्र को प्रत्याहृत किये बिना दूसरे अंश का प्रत्याह्वान नहीं कर सकता। ध्यान की अविच्छिन्नता से अंशों से समग्र इकाई का निर्माण होता है। स्टाउट ध्यान की अविच्छिन्नता (Continuity of attention) को समग्रता के नियम का आधारभूत सिद्धान्त मानता है।

ड्रेवर तथा अन्यों का मत है कि सादृश्य का नियम समष्टिगत सम्बन्धों के नियम (Law of systematic relations) के व्यापार की एक विशेष दशा है। "हमारे अनुभव रुचि की अविच्छिन्नता तथा रुचि से निर्धारित ध्यान की प्रक्रिया की एकता और अविच्छिन्नता के आधार पर समग्र इकाइयों और समष्टियों का निर्माण करने में प्रवृत्त होते हैं। परिणाम यह होता है कि समष्टियों और उनके संघटकों के मध्य, संघटकों में एक-दूसरे के मध्य, और संघटकों तथा समग्र इकाई के मध्य साहचर्य के बन्धन स्थापित हो जाते हैं"।[1] यह नियम उच्च कोटि की विचार-प्रक्रियाओं में काम करता है।

२५. केन्द्राभिसारी और केन्द्रापसारी निर्देश (Convergent and Divergent Suggestion)

जब एक विशेष प्रतिमा को पुनर्जीवित करने के लिये कई प्रत्यक्ष या विचार केन्द्राभिसरण या सहयोग करते हैं, तो निर्देश या सुझाव केन्द्राभिसारी होता है। जब मैं उस स्थान को याद करने की चेष्टा करता हूँ जहाँ चाबियों का गुच्छा रखकर मैं भूल गया हूँ, तो मैं जहाँ-जहाँ गया हूँ उन स्थानों का विचार करता हूँ, और उन सब स्थानों के विचार उस स्थान की प्रतिमा को पुनर्जीवित कर सकते हैं जहाँ मैंने उसे रखा है। "जब शिशु से वियुक्त माँ उसके सोने के कमरे में जाती है, और उसका चित्र, उसके जूते, गुड़िया, तथा दाई को देखती है, तो ये सब मिलकर उसके बच्चे की तीव्रतम स्मृति को ताजी कर देते हैं" (एस० सी० सेन)।

कभी-कभी एक ही अनुभव के अन्य अनुभवों के साथ बहुत से सम्बन्ध हो सकते हैं। लेकिन यह सभी सम्बन्धित अनुभवों को एक साथ जाग्रत नहीं

[1] कोलिन्स और ड्रेवरः प्रायोगिक मनोविज्ञान, पृ० २१५

कर सकता। अतः निर्देशात्मक शक्तियों में संघर्ष हो जाता है, और अन्त में उनमें से एक पुनर्जीवित हो जाता है। "एक प्रत्यय या विचार की एक ही समय कई सहचारी प्रतिमाओं को सुझाने की प्रवृत्ति को केन्द्रापसारी निर्देश कहते हैं" (स्टाउट)। एक चित्र का दर्शन मुझे उस व्यक्ति की जिससे यह सादृश्य रखता है, चित्रकार की, उस मित्र की जिसने मुझे उसको भेंट किया था, उस कमरे की जिसमें पहले वह टंगा हुआ था, तथा कई अन्य घटनाओं की जिनके साथ उसका मेरे अनुभव में साहचर्य है, याद दिला सकता है। इसे केन्द्रापसारी निर्देश कहते हैं। एक ही वस्तु की एक ही समय कई बातें सुझाने की प्रवृत्ति होती है। लेकिन इनमें से किसका वस्तुतः प्रत्याह्वान होगा यह उस समय की प्रधान रुचि पर निर्भर होता है। "प्रत्याह्वान के क्षण में मानसिक क्रिया की सामान्य प्रवृत्ति के साथ जिन वस्तुओं का सामञ्जस्य होता है उनकी विचार में पुनः जाग्रत होने की प्रवृत्ति होती है। वर्षा के दर्शन से छाते का सुझाव मिलेगा, यदि हम बाहर जाना चाहते हैं; अन्यथा इससे केवल किसी अन्य व्यक्ति के भीगने के विचार का सुझाव मिल सकता है" (स्टाउट)।

२६. विस्मृति (Forgetting)

प्रयोगों से विस्मरण की गति (Rate of forgetting) मालूम हो चुकी है। इबिंग हाउस (Ebbinghaus) को ज्ञात हुआ कि भूलने की सबसे बड़ी मात्रा सीखने या कंठस्थीकरण की प्रक्रिया के समाप्त होने के तुरन्त बाद ही हो जाती है। कंठस्थीकृत सामग्री का आधा पहिले आधे घंटे में विस्मृत हो जाता है, उसका दो-तिहाई आठ घंटे से लेकर एक दिन के बीच, तीन चौथाई लगभग छः दिन के अन्दर और चार-बटे-पाँच एक महीने में। प्रारम्भिक स्मृति-भ्रंश (Fall of memory) बाद में होने वाले किसी भी स्मृति-भ्रंश से मात्रा में अधिक होता है। अतः नई सीखी हुई सामग्री को दोहराने का उचित समय सीख चुकने के तुरन्त बाद ही होता है, एक लम्बी अवधि के बाद नहीं। यदि शुरु-शुरु में सीखने के लिये एक घंटा दिया गया है तो आधा घंटा दोहराने के लिये देना चाहिये।

तात्कालिक स्मृति में संस्कार-प्रसक्ति (Perseveration) काम करती है। सीखने की प्रक्रिया के पश्चात् की अवधि में संस्कार-प्रसक्ति में तेज गिरावट होती है। अतः सीखने के समाप्त हो जाने के तुरन्त बाद स्मृति में भी तेज़ गिरावट होती है। स्थायी स्मृति में संस्कार-प्रसक्ति काम नहीं करती। रटने की स्मृति का आधार आदत का नियम है। तार्किक स्मृति का आधार साहचर्य के नियम हैं।

(१) साहचर्यों (Associations) के निर्माण के सम्बन्ध में एक बात होती है जिसे 'प्रतीपकारी निरोध (Retroactive Inhibition) कहते हैं। यदि क और ख के मध्य एक साहचर्य-बन्धन का निर्माण हो चुका है, और इसके तुरन्त बाद ग और घ के मध्य भी एक बन्धन बन गया है, तो परवर्ती का निर्माण पूर्ववर्ती के निर्माण को निरुद्ध करने की प्रवृत्ति रखता है। साहचर्य ठीक तरह से जमने के लिये कुछ समय लेता है। अतः बच्चे को जल्दी-जल्दी एक के बाद दूसरे विचार नहीं देने चाहिये।

(२) विस्मृति का कारण अतीत अनुभवों के अधोचेतन संस्कारों का या अधोचेतन संस्कारों के साहचर्य-बन्धनों का मिट जाना भी हो सकता है। (३) यदि अधोचेतन संस्कार मिट जाते हैं तो चेतना में उन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। और यदि उनके सम्बन्ध मिट जाते हैं तो भी उन्हें पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। (४) यदि मस्तिष्क में संयोजक पथ (Connecting pathways) क्षतिग्रस्त हो जाते हैं, तो भी अतीत अनुभवों का प्रत्याह्वान नहीं हो सकता। (५) कभी-कभी विस्मृति भूलने की इच्छा से भी हो जाती है। एक बार फ्रॉयड (Freud) ने एक रोगिणी का निदान (Diagnosis) गलत किया था। वह वास्तव में पेट के फोड़े से पीड़ित थी। लेकिन फ्रॉयड ने उसे स्नायु-विकृति (Neurosis) की रोगिणी समझ कर उपचार किया था। वह उस मामले को रोगिणी के नाम के सहित भूल गया। यह स्मृति-भ्रंश भूलने की इच्छा का फल था। इस प्रकार विस्मरण प्रेरित (Motivated) होता है। इसका कारण दमन (Repression) है। पीड़ा प्रद

अनुभव जो हमारे आत्म-सम्मान (Self regard) को चोट पहुँचाते हैं उनका दमन कर दिया जाता है और वे विस्मृत हो जाते हैं।

विस्मृति स्मृति का एक हेतु है। यह मन को व्यर्थ विस्तार की बातों के बोझ से मुक्त करती है और नई बातें उपलब्ध करने के लिये स्वतंत्र कर देती है। हमें व्यर्थ और महत्वहीन बातों को भूल जाना चाहिये और आवश्यक तथा उपादेय बातों को ही स्मरण रखना चाहिये। मानसिक शक्ति सीमित है। मन असीम बातों को याद नहीं रख सकता। इस प्रकार राइबट (Ribot) ठीक कहता है कि विस्मृति स्मृति का एक हेतु है।

भूलें किस तरह (How to forget)—सरल नियम यह है कि दोहराइये नहीं। दोहराने के अभाव से साहचर्य-बन्धन धीरे-धीरे शिथिल पड़ते जायँगे और अन्त में विस्मृति आ जायगी। विस्मृति के कुछ मामले दमन के कारण होते हैं। यह सक्रिय विस्मरण (Active forgetting) है। पीड़ाप्रद अनुभवों का दमन करना बिल्कुल भी स्वस्थ तरीका नहीं है। जब हम किसी पीड़ाप्रद परिस्थिति को याद करने से घृणा करते हैं, तो हमें तथ्यों का मुकाबला करना चाहिये, उनको खूब सोचना चाहिये, जो होना चाहिये उसे करना चाहिये, और उस परिस्थिति से अपना पर्याप्त समायोजन कर लेना चाहिये।

विस्मरण को कैसे रोकें (How to avoid forgetting)—किसी सामग्री को कंठस्थ कर चुकने के बाद हमें कुछ समय के लिये आराम करना चाहिये। तब याद की हुई सामग्री मन में बैठ जायगी। सीखी हुई सामग्री का घनीभवन (Consolidation) कुछ समय लेता है। दूसरा नियम है: दोहराओ। समय-समय पर दोहराने से साहचर्य-बन्धन पक्के हो जाते हैं और प्रत्याह्वान में सुविधा होती है। संस्मरण (Reminiscence) अतीत अनुभवों को पुनर्जीवित करने की सामर्थ्य में उन्नति की एक क्रमिक प्रक्रिया है। अच्छी तरह सीखी हुई सामग्री को दीर्घ मध्यान्तरों के बाद दोहराते रहने से वह काफ़ी दीर्घ काल तक धारण की जा सकती है।

कंठस्थीकरण में मितव्यय के लिये जो नियम हैं वे धारणा के लिये भी ठीक ठहरते हैं। विस्मरण रटने की स्मृति (Rote memory) की अपेक्षा तार्किक स्मृति में धीमा होता है जिसमें सामग्रियों के आन्तरिक सम्बन्ध मालूम कर लिये जाते हैं। विस्मरण निष्क्रिय सीखने (Passive learning) के बाद की अपेक्षा सक्रिय प्रपाठ (Active recitation) के बाद मन्द होता है। विस्मरण निरन्तर सीखने (Unspaced learning) के बाद की अपेक्षा सान्तर सीखने (Spaced learning) के बाद, तथा टुकड़े करके सीखने (Part learning) के बाद की अपेक्षा समग्र सीख (Whole learning) के बाद कम होता है।

२७. स्मृति के रोग—स्मृति का क्षय (Diseases of Memory Disintegration of Memory)

स्मृति की कुछ असाधारण अवस्थायें (Abnormalities) होती हैं जिनके नाम स्मृतिकोप (Amnesia), वाक्भ्रंश (Aphasia), और अति-स्मृति (Hypermnesia) हैं। स्मृतिकोप स्मृति की आकस्मिक क्षति है। यह विस्मृति का एक असाधारण रूप है। राइबट स्मृतिकोप को सामान्य स्मृतिकोप और आंशिक स्मृतिकोप इन दो वर्गों में बाँटता है। "पूर्ववर्ती अस्थायी (Temporay) नियतकालिक (Periodical) प्रगामी (Progressive) या सहज (Congenital) हो सकता है" (मेलोन)।

(१) अस्थाई स्मृति कोप (Temporary Amnesia) प्राय: किसी दुर्घटना या अत्यधिक आयास जोर) के कारण होता है; दुर्घटना के ठीक पहिले की घटनाओं का ज्ञान विस्मृत हो जाता है। इसे प्रकोपकारी स्मृति-कोप (Retroactive amnesia) कहते हैं। (२) नियतकालिक स्मृति-कोप (Periodic amnesia) द्वैध व्यक्तित्व (Double personality) में पाया जाता है। इसमें अलग-अलग व्यवस्थित स्मृतियों के दो समूह एक दूसरे से स्वतंत्र हो जाते हैं। एक आदमी दुर्घटना का शिकार हो जाता है, अचानक अपना घर, सम्बन्धियों और सभी पहिले की बातों को भूल जाता है,

के साथ प्राप्त होता है, जिसे बदलने की आशा यह कदापि नहीं कर सकता" (जेम्स)। इसमें सन्देह नहीं है कि यह रोग और स्वास्थ्य में भिन्न होती है, यह स्वास्थ्य में रोग की अपेक्षा अच्छी होती है। लेकिन धारणा-शक्ति जन्मजात होती है और, इसलिए अभ्यास से उन्नत नहीं की जा सकती। किन्तु जेम्स मानता है कि ध्यान को बढ़ाने से सीखने की शक्ति में तरक्की हो सकती है। "स्मरण करने की शक्ति प्रारम्भिक अनुभव पर दिए हुए ध्यान की मात्रा पर निर्भर है। अभ्यास से जिसे प्रशिक्षित किया जा सकता है वह ध्यान की शक्ति है, प्रत्याह्वान की शक्ति नहीं। अभ्यास से सीखने की शक्ति बढ़ती है, धारणा की शक्ति नहीं" (जेम्स)। यह जेम्स का मत है।

जेम्स यह ठीक कहता है कि अभ्यास से स्मृति की उन्नति का अन्तिम कारण ध्यान की वृद्धि है। ठीक तरह से दिया हुआ ध्यान वस्तु को मन में स्थिर कर देता है और उसके संस्कार को अधिक स्थायी कर देता है, उसे अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित करता है और उसे ज्ञान की समष्टि की एक स्थायी इकाई बना देता है। अतः उसका प्रत्याह्वान करना आसान होता है। रुचि ध्यान का एक हेतु है। अतः सीखना ध्यान और रुचि में वृद्धि करके उन्नत किया जा सकता है।

लेकिन स्टाउट के अनुसार यद्यपि सामान्य स्मृति में उन्नति नहीं की जा सकती, तथापि अभ्यास से स्मृति में विशेष दिशा में उन्नति हो सकती है। मानसिक प्रवृत्तियाँ एक दूसरी में प्रवेश करती हैं। अतः "कुछ अनुभवों की स्मृति का व्यायाम तुल्य अनुभवों की स्मृति को बढ़ायगा" (स्टाउट)। यदि एक व्यक्ति ने एक विदेशी भाषा को सीखने में कुछ प्रगति कर ली है, तो उस भाषा की कुछ सामान्य विशेषताओं के उसके ज्ञान से उसकी अगली प्रगति में सुविधा हो जायगी। अभिनेता अपने 'पार्ट' को शीघ्र याद कर सकते हैं; पादरी अपने उपदेशों को; और अध्यापक अपने भाषणों को।

मैकडूगल का विचार है कि कंठस्थीकरण की शक्ति एक सीमा तक बढ़ाई जा सकती है; धारणा-शक्ति में अधिक प्रगति नहीं की जा सकती; प्रत्याह्वान की शक्ति एक सीमा तक बढ़ाई जा सकती है।

मन (Munn) स्मृति-प्रशिक्षा के लिए कुछ संकेत देता है। (१) स्मरण करने के इरादे से सीखो। (२) जो सीखते हो उस पर खूब ध्यान दो। (३) सीखते समय प्रतिमाओं (Images) का इस्तेमाल करो। (४) जो सीखते हो उसका अन्य चीजों से साहचर्य स्थापित करो। (५) लय (Rhythm) का इस्तेमाल करो। इससे धारणा में सहायता मिलती है। (६) थोड़े-थोड़े अवकाश के बाद उसी सामग्री को सीखो। रटो मत। (७) सीखी हुई सामग्री का मन में प्रपाठ करो। प्रपाठ से सीखने में आसानी और धारणा में सहायता मिलती है। (८) अध्ययन के बाद आराम करो या सो जाओ। (९) सारे अध्याय को पढ़ो और तब उसके भागों का अध्ययन करो।[1]

अध्याय १२

कल्पना (IMAGINATION)

स्मृति और कल्पना (Memory and Imagination)

स्मृति अतीत अनुभव की अन्तर्वस्तु (Contents) की उसी क्रम में जिसमें उसका भूतकाल में अनुभव हुआ था हूबहू पुनरावृत्ति है। कल्पना अतीत अनुभव की अन्तर्वस्तु की पुनरावृत्ति करना तथा जिस क्रम में प्रारम्भ में उसका अनुभव हुआ था उससे भिन्न एक नये क्रम में उसे व्यवस्थित करना है। कभी-कभी स्मृति को पुनरावृत्यात्मक कल्पना (Reproductive imagination) कहते हैं क्योंकि उसमें अतीत अनुभव की अन्तर्वस्तु को उसी पुराने रूप और क्रम में पुनरुत्पन्न किया जाता है। आपने अपने मकान के कमरों को भूतकाल में कई बार देखा है। अब आप हूबहू उसी क्रम में उनका स्मरण कर सकते हैं। यह स्मृति है। लेकिन आप अपने मकान के कमरों को अपने मन में एक नये क्रम में भी सजा सकते हैं और एक नई प्रतिमा का निर्माण कर सकते हैं। यह कल्पना है। अतः कभी-कभी कल्पना को उत्पादक या रचनात्मक कल्पना (Productive or constructive imagination) भी कहते हैं।

[1] मनोविज्ञान : पृ० १६४-१६८

१. कल्पना का स्वरूप (Nature of Imagination)

कल्पना रचनात्मक या सृजनात्मक होती है। यह प्रतिमा की सामग्री या तत्वों की सृष्टि नहीं करती। यह अतीत अनुभवों के तत्वों को ही पुनः उत्पन्न करती है और उन्हें नवीन संयोगों (Combinations) में रखती है। कल्पना अतीत अनुभव की हूबहू पुनरावृत्ति नहीं है। अतीत अनुभवों की अन्तर्वस्तुओं की पुनरावृत्ति होती है और उन्हें नवीन क्रम में संयुक्त किया जाता है। इसमें नये ढंग से संयोग होता है। आपने भूतकाल में गुलाब के फूलों और नीले रंग को देखा है, किन्तु नीले गुलाब के फूलों को कभी नहीं। लेकिन *आप एक गुलाब की प्रतिमा और नीले रंग की प्रतिमा का पुनरुत्पादन* कर सकते हैं तथा उन्हें एक नीले गुलाब की प्रतिमा में संयुक्त कर सकते हैं। इसी प्रकार आप एक सुनहरे पहाड़ या एक दश शिर वाले राक्षस की प्रतिमा कल्पित कर सकते हैं। कभी-कभी कल्पना में अतीत अनुभवों के तत्वों का पृथक्करण (Disjunction) होता है। आपने सदैव शिर वाले मनुष्यों को चलते हुए देखा है। लेकिन आप कल्पना में चलते हुए मनुष्यों के शिर पृथक कर सकते हैं और चलते हुए *शिरहीन मनुष्यों की प्रतिमायें कल्पित* कर सकते हैं। कभी-कभी स्थानापत्ति (Substitution) भी की जाती है। कल्पना में भूतकाल में देखी हुई वस्तुओं के कुछ भागों के स्थान पर नये भाग रख दिए जाते हैं। आप एक व्यक्ति को सोने के बने हाथों वाला कल्पित कर सकते हैं। कभी-कभी अतीत अनुभवों की अन्तर्वस्तुओं की आकार-वृद्धि (Augmentation) कर दी जाती है। जब हम मनुष्यों के आकार को सौगुना बढ़ा देते हैं और देवों, राक्षसों इत्यादि की प्रतिमायें कल्पित करते हैं तो यह आकार-वर्द्धन है। कभी-कभी अतीत अनुभवों की अन्तर्वस्तुओं के आकार का ह्रासन (Diminution) होता है। जब हम मनुष्यों के आकार को छोटा कर देते हैं और बौनों इत्यादि की *प्रतिमायें कल्पित* करते हैं तो यह ह्रासन है।

वुडवर्थ कहता है, "कल्पना *मानसिक हस्तन* (*Mental manipulation*) है। जब व्यक्ति पहिले वास्तव में देखे हुये तथ्यों का प्रत्याह्वान करता

है और तत्पश्चात् उन तथ्यों को नये नमूने में संजाता है तो यह कहा जाता है कि वह कल्पना को प्रदर्शित करता है। कल्पना की निर्मित वस्तु कई भागों से बनी होती है जिनकी विभिन्न कालों में उपलब्धि हुई थी और बाद में जिन्हें प्रत्याहृत और संयुक्त किया गया, जैसे नराश्व मनुष्य और घोड़े का तथा मत्स्यनारी नारी और मछली का संयोग है" ।[1]

" कल्पना की प्रक्रिया प्रेरित (Motivated) होती है। यह हमारी इच्छाओं से प्रभावित होती है। बच्चा अपनी इच्छाओं को तृप्त करने के लिये 'हवाई महल' बनाता है। "हम कल्पना करते हैं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये। कल्पना एक प्रकार का समायोजन (Adjustment) है जिसकी उत्पत्ति तनाव (Tension) या अभाव (Want) की अनुभूति से होती है और जिसमें वही प्रयत्न और भूल वाली चेष्टा होती है। कल्पना अप्राप्य लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक उपाय है" ।[2]

३. स्मृति और कल्पना में अन्तर (Difference between Memony and Imagination)

स्मृति पुनरावृत्यात्मक कल्पना है। यह अतीत अनुभवों की हूबहू प्रतिलिपि है। कल्पना रचनात्मक कल्पना है। इसमें अतीत अनुभवों के तत्व मौजूद होते हैं लेकिन उन्हें नये नमूनों में सजाया जाता है। यह उन्हें संयुक्त करती, पृथक करती, स्थानापन्न करती, प्रवृद्ध करती, या ह्रासित करती है और इस प्रकार नवीन प्रतिमाओं का निर्माण करती है।

स्मृति में प्रत्यभिज्ञा होती है। स्मृति में हम अपने अतीत अनुभवों का स्मरण करते हैं और उन्हें भूतकाल के अपने ही अनुभवों के रूप में पहिचानते हैं। उसमें परिचित होने या घनिष्ठता की अनुभूति (Feeling of familiarity) होती है। लेकिन कल्पना में प्रत्यभिज्ञा या घनिष्टता की अनुभूति नहीं होती।

---

[1] मनोविज्ञान : पृ० ४८८

[2] मर्फीः संक्षिप्त सामान्य मनोविज्ञान, पृ० ३४६।

स्मृति में सदैव भूतकाल की ओर संकेत होता है। निश्चित स्मरण में कालिक स्थानीयकरण (Temporal localization) होता है। लेकिन कल्पना स्वतंत्र होती है; उसमें समय का कोई संकेत नहीं होता। कभी-कभी कल्पना भविष्य की ओर संकेत कर सकती है, यथा, जब आप गर्मी की छुट्टियों में किसी यात्रा की योजना बनाते हैं।

४. स्मृति का कल्पना से सम्बन्ध (Relation of Memory to Imagination)

कल्पना स्मृति पर आश्रित होती है। इसमें अतीत अनुभव के तत्वों को स्मरण किया जाता है तथा उन्हें नये नमूनों में क्रमबद्ध किया जाता है। यदि गत अनुभव के तत्वों का स्मरण न हो तो नये नमूनों की कल्पना भी नहीं हो सकती। कल्पना नवीन सामग्री की सृष्टि नहीं कर सकती। एक जन्मान्ध व्यक्ति कदापि रंगों की कल्पना नहीं कर सकता। एक जन्म-बधिर व्यक्ति कभी ध्वनियों की कल्पना नहीं कर सकता। अतः कल्पना के लिये स्मृति आवश्यक है।

स्मृति में भी कभी-कभी कल्पना समाविष्ट रहती है। कभी-कभी अतीत अनुभव की बातों को विस्तार से स्मरण करना अनिवार्य हो जाता है। ऐसे मामलों में सामान्य रूप रेखा (Outline) को तो हम स्मरण रखते हैं लेकिन विस्तार की बातों को कल्पना से भरते हैं। मैं ताजमहल की सामान्य रूपरेखा को स्मरण करता हूँ और सूक्ष्म बातों को कल्पना से उसमें भरता हूँ। कभी-कभी हमें विश्वसनीय व्यक्तियों के द्वारा देखी हुई वस्तुओं के विषय में उन्हीं के साक्ष्य (Testimony) में विरोध दिखाई देता है, क्योंकि वे अपने अतीत अनुभवों को हूबहू स्मरण नहीं कर सकते, बल्कि कल्पना से रिक्त स्थानों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार स्मृति में भी कल्पना समाविष्ट होती है। लेकिन कभी-कभी स्मृति में कल्पना शामिल नहीं भी रहती। जब परीक्षा में किसी विद्यार्थी से स्मृति से किसी कविता को उद्धृत करने को कहा जाता है, तो यह आवश्यक होता है कि वह विरामों के साथ हूबहू उसे पुनरुत्पन्न करे। वहाँ स्मृति में कल्पना का कोई तत्व नहीं है।

५. प्रत्यक्षीकरण, स्मृति और कल्पना (Perception, Memory and Imagination)

प्रत्यक्षीकरण में मन में बाह्य उत्तेजनाओं से उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं का अर्थ ग्रहण किया जाता है। संवेदना और प्रत्यक्षीकरण दोनों में बाह्य उत्तेजनायें ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करती हैं। लेकिन स्मृति और कल्पना में बाह्य उत्तेजनायें ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया नहीं करतीं। संवेदना और प्रत्यक्षीकरण उपस्थापन (Presentation) की प्रक्रियायें हैं। किन्तु स्मृति और कल्पना प्रतिनिधान (Representation) की प्रक्रियायें हैं।

स्मृति पुनरावृत्यात्मक कल्पना है जबकि कल्पना रचनात्मक कल्पना है। स्मृति अतीत अनुभव की प्रतिमाओं को उसी रूप और क्रम में पुनर्जीवित करती है। लेकिन कल्पना अतीत अनुभवों को पुनर्जीवित करती है और उन्हें नये नमूनों में सजाती है। कल्पना अपनी सामग्री की सृष्टि नहीं करती; वह केवल स्मृति से प्राप्त सामग्री को किसी भिन्न क्रम मे रखती है। कल्पना स्मृति में जाग्रत अतीत अनुभव के तत्वों को पुनः व्यवस्थित करती है।

कल्पना के भेद (Kinds of Imagination)

(१) निष्क्रिय और सक्रिय कल्पना (Passive and active Imagination)—मन किसी भी समय पूर्णतया निष्क्रिय नहीं रहता। जब वह सचेतन रहता है तो अंशतः सक्रिय रहता है। निष्क्रिय कल्पना में मन अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहता है; वह प्रतिमाओं को चित्रित करने के लिए कोई संकल्प का प्रयत्न नहीं करता। प्रतिमायें "स्वयं" मन में उदित होती हैं और निर्देशात्मक शक्तियों (Suggestive Forces) के द्वारा स्वयमेव संयुक्त होती हैं। कल्पना की यह अनायास क्रीड़ा निष्क्रिय कल्पना कहलाती है। जब हमारी शिथिलता की मनोदशा (Listless mood) होती है और हम दिवास्वप्न में उतर कर "हवाई महल" बनाने लगते हैं, तो हमारी कल्पना निष्क्रिय होती है।

सक्रिय कल्पना में मन प्रतिमा के चित्रण का प्रयत्न करता है। यह अतीत अनुभव की अन्तर्वस्तुओं को ग्रहण करने तथा उन्हें नये नमूनों में संयुक्त करने का प्रयास करता है। प्रतिमायें निर्देशात्मक शक्तियों के द्वारा अपने आप संयुक्त नहीं होतीं। प्रतिमाओं का संयोग संकल्प के प्रयास का फल होता है। मन सक्रिय होकर कुछ सामग्रियों का चुनाव करता है, अन्यों को अस्वीकार कर देता है और एक नयी प्रतिमा की सृष्टि करता है। जब हम एक निबन्ध लिखते हैं तो हम अतीत ज्ञान के प्रासंगिक तत्वों को याद करने का तथा उन्हें नये सिरे से सजाने का मानसिक प्रयत्न करते हैं। अतः यहाँ पर हमारी कल्पना सक्रिय होती है।

(२) ग्रहणात्मक और रचनात्मक कल्पना (Receptive and creative Imagination) ग्रहणात्मक कल्पना में मन किसी वर्णित दृश्य का चित्रण करने में प्रयत्नशील रहता है। कल्पना की सामग्री तथा उसके संयोग का क्रम बाहर से मन को सुझाया जाता है। जब हम कहानियाँ, उपन्यास, नाटक, कवितायें, इतिहास, भूगोल, यात्रा वर्णन आदि पढ़ते हैं तो हमारी कल्पना ग्रहणात्मक होती है जिसमें हम बाहर से प्रतिमायें ग्रहण करते हैं।

रचनात्मक कल्पना में मन एक काल्पनिक परिस्थिति बनाता है, वह अपने अन्दर से प्राप्त सामग्रियों से एक नई प्रतिमा बनाता है और उन्हें नये क्रम में व्यवस्थित करता है। जब इंजीनियर किसी इमारत की योजना बनाता है तो उसकी कल्पना रचनात्मक होती है। जब एक उपन्यासकार अपनी कहानी की घटनाओं को एक कथानक में सजाता है तो वह रचनात्मक कल्पना करता है।

(३) बौद्धिक, व्यावहारिक और सौन्दर्यात्मक कल्पना (Intellective, Practical and Aesthetic Imagination)—बौद्धिक कल्पना ज्ञान के उद्देश्य की पूर्ति करती है। यह ज्ञानात्मक कल्पना कहलाती है। बौद्धिक सृष्टि में संलग्न कल्पना बौद्धिक कल्पना कहलाती है। जब हम कोई कहानी या नाटक लिखते हैं तो हमारी कल्पना बौद्धिक होती है। जब

न्यूटन (Newton) ने कल्पना से पिण्डों के पृथ्वी पर गिरने की व्याख्या करने के लिये गुरुत्वाकर्षण की परिकल्पना (Hypothesis of Gravitation) प्रस्तुत की तो उसकी कल्पना बौद्धिक थी। ये रचनात्मक कल्पना के उदाहरण हैं। लेकिन ग्रहणात्मक कल्पना भी ज्ञान के उद्देश्य की पूर्ति कर सकती है। जब हम इतिहास, भूगोल, उपन्यास आदि पढ़ते हैं तो हमारी कल्पना ग्रहणात्मक होती है जो हमारी ज्ञान-वृद्धि करती है। इस प्रकार बौद्धिक कल्पना रचनात्मक या ग्रहणात्मक होती है।

व्यावहारिक कल्पना किसी व्यावहारिक उद्देश्य की पूर्ति करती है। इसे उपयोगी कल्पना भी कहते हैं। व्यावहारिक रचनाओं में यह कल्पना होती है। यह वस्तुगत अवस्थाओं (Objective conditions) से नियंत्रित होती है। किसी विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिये इसे बाह्य जगत् की वास्तविक शर्तों का पालन करना पड़ता है, उपयोगी कल्पना को वस्तुगत स्थितियों के अनुकूल होना चाहिये। इसे वस्तुगत नियंत्रण से शासित होना पड़ता है। जब हम किसी भवन या मशीन की योजना बनाते हैं तो हमारी कल्पना व्यावहारिक होती है। जब हम किसी सैर, रेल-यात्रा इत्यादि की योजनायें बनाते हैं तो हमारी कल्पना व्यावहारिक होती है। यह हमारे जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है।

सौंदर्यात्मक कल्पना हमारी सौन्दर्य-लिप्सा (Aesthetic impulse) को तृप्त करती है। यह इसका उद्देश्य सौंदर्य-भावनाओं (Aesthetic sentiments) की तृप्ति होती है। यह किसी व्यावहारिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं करती। यह ज्ञान-वृद्धि नहीं करती। यह न तो व्यावहारिक सृष्टि है न बौद्धिक कल्पना। यह हमारी सौंदर्य-अभिलाषा को शान्त करती है। सौंदर्यात्मक कल्पना वह कल्पना है जो सौंदर्य की सृष्टि और प्रशंसा (Creation and appreciation of beauty) में संलग्न होती है। यहाँ रचनात्मक क्रिया अनिवार्यतः मुक्त होती है। इसे बाह्य शर्तों का पालन नहीं करना पड़ता। रचनात्मक क्रिया का लक्ष्य संवेगात्मक तृप्ति (Emotional satisfaction) है। सौन्दर्यात्मक कल्पना में रचनात्मक क्रिया स्वयं आनन्द

प्रदान करती है। इसका मूल्य यह स्वयं है और बाह्य मूल्यों से स्वतंत्र है। जब एक चित्रकार चित्र बनाता है तो उसकी कल्पना सौंदर्यात्मक होती है। जब एक गायक संगीत बनाता है तो वह सौंदर्यात्मक कल्पना करता है। जब एक कवि कविता करता है तो उसकी कल्पना सौंदर्यात्मक होती है। सौंदर्यात्मक कल्पना कलात्मक (Artistic) हो सकती है या दिवास्वप्न के समान कल्पना का खेल (Fantastic) मात्र। जो कल्पना सत्य, सौन्दर्य इत्यादि के आदर्शों का निर्माण करती है वह कलात्मक है।

७. कल्पना के प्ररूप (Types of Imagery)

स्मृति के प्ररूपों के समान कल्पना के भी प्ररूप होते हैं। विभिन्न व्यक्ति विभिन्न प्रतिमाओं की सहायता से कल्पना करते हैं। कई व्यक्ति आसानी से दृष्टि-प्रतिमाओं का चित्रण कर सकते हैं। अधिकांश लोगों में दृष्टि-कल्पना सर्वाधिक प्रधान होती है। अन्य आसानी से ध्वनि-प्रतिमाओं का चित्रण कर सकते हैं। वे उद्योगशाला (Factory) की कल्पना उसकी ध्वनियों की प्रतिमाओं के द्वारा करते हैं। अन्य आसानी से स्पर्श-प्रतिमाओं का चित्रण कर सकते हैं। अन्धे आदमी स्पर्श-कल्पना करते हैं। कुछ समुद्र की कल्पना उसके जल की शीतलता से करते हैं। अन्य उसकी कल्पना पानी में गोता मारने, पानी को उठाने और इसी प्रकार के पेशिक अनुभवों की सहायता से करते हैं। उनकी गति-कल्पना होती है। इस प्रकार कल्पना के विभिन्न प्ररूप होते हैं। प्रतिमाओं के विभिन्न प्ररूप प्रतीक (Symbols) मात्र समझे जाते हैं : उनसे हमारा तात्पर्य केवल उन्हीं का नहीं होता बल्कि सांवेदनिक अनुभव (Sensory experience) में उनके अन्य सहचारियों का भी होता है।

हमारी प्रतिमाओं का सम्बन्ध संवेदना के प्रत्येक प्रकार से हो सकता है। कल्पना में किसी लय को सुनना ध्वनि-प्रतिमा का उदाहरण है; कल्पना में गुलाब की सुगंध का उपभोग करना घ्राण-प्रतिमा है; कल्पना में आम का आस्वादन स्वाद-प्रतिमा है; और कल्पना में सिकतापत्र (Sand-paper)

पर चित्रांकन करना स्पर्श-प्रतिमा है। हमारी तापमान और पीड़ा की प्रतिमाय भी हो सकती हैं; उदाहरणार्थ, हम स्वयं को कड़ाके की सर्दी में कांपते हुये कल्पित कर सकते हैं। हम बीमारी की बेचैनी की कल्पना कर सकते हैं और इस प्रकार आंगिक प्रतिमा (Organic image) का अनुभव कर सकते हैं। हम स्वयं को पहाड़ी मार्ग पर भारी बोझ ले जाते हुये कल्पित कर सकते हैं और इस प्रकार गतियौं पैशिक-प्रतिमा (Kinaesthetic image) का अनुभव करते हैं। कल्पना के इन प्ररूपों में से कुछ या सभी का होना सम्भव है। व्यक्तियों को दर्शनालु (Visiles), श्रवणालु (Audiles), गमनालु (Motiles), स्पर्शालु (Tactiles), इत्यादि में वर्गीकृत किया जाता है। दर्शनालु (Visiles) प्रायः दृष्टि-प्रतिमाओं पर निर्भर होते हैं। श्रवणालु (Audiles) प्रायः ध्वनि-प्रतिमाओं पर निर्भर होते हैं। गमनालु (Motiles) अधिकतर गति-प्रतिमाओं पर और स्पर्शालु (Tactiles) मुख्यतया स्पर्श-प्रतिमाओं पर निर्भर होते हैं। कुछ लोगों की सजीव घ्राण-प्रतिमायें होती हैं। उन्हें घ्राणालु (Olfactiles) कहा जा सकता है। अधिकांश व्यक्तियों में दृष्टि-प्रतिमायें प्रधान होती हैं।

८. बच्चे में कल्पना (Imagination in the Child)

कल्पना अतीत अनुभव की वस्तुओं का मानसिक प्रहस्तन (Manipulation) है। बच्चा धीरे-धीरे कल्पना-शक्ति का विकास करता है। इसका प्रकाशन हस्त-कौशल (Manual skill), रचना प्रियता (Constructiveness) नाटक करने (Make-believe) और कहानी कहने में होता है।

बच्चे में हाथ से काम करने में दक्षता का विकास यह सिद्ध करता है कि उसमें कल्पना की शक्ति कुछ विकसित हो गई है। वह वस्तुओं को पकड़ता और उलटता-पुलटता है और धीरे-धीरे हस्त-कौशल प्राप्त करता है। हस्त-कौशल मानसिक प्रहस्तन या वस्तुओं की कल्पना पर निर्भर है।

बच्चे की कल्पना की अभिव्यक्ति नाटक करने में होती है जो खेल में एक

महत्वपूर्ण तत्व है। छोटा बच्चा लकड़ी पर सवारी करता है और उसे घोड़ा समझता है। वह जानता है कि यह केवल लकड़ी है, लेकिन कुछ देर के लिये उसे घोड़ा कल्पित कर लेता है। छोटी बच्ची माँ बन जाती है और गुड़िया को अपना शिशु समझ कर व्यवहार करती है। इस प्रकार नाटक कल्पना का प्रकाशन है।

बच्चे की रचनाप्रियता भी उसकी कल्पना-शक्ति का प्रकाशन है। वह गीले रेत या मिट्टी से मकान बनाता है, गुड़ियों को दर्जों में सजाता है; वस्तुओं को तोड़ता और जोड़ता है। निर्माण के इन कार्यों में बच्चा उन तरीक़ों को देखता है जिनमें वस्तुओं को सजाया जा सकता है अर्थात वह कुछ वस्तुओं का मानसिक प्रहस्तन करता है।

बाद में बच्चा कहानी कहने की शक्ति का विकास करता है। वह अतीत अनुभव के तत्वों से एक कहानी का आविष्कार करता है। इस प्रकार वह रचनात्मक कल्पना की शक्ति प्रदर्शित करता है। नाटक में बच्चा वास्तविक वस्तुओं का प्रहस्तन करता है। कहानी कहने में बच्चा कुछ वस्तुओं के बारे में सोचता है और अपने ही तरीके से उन्हें संयुक्त करता है। कुछ बच्चों में कविता करने की योग्यता होती है, और यह भी कल्पना का प्रकाशन है (वुडवर्थ)।

६. कल्पना का विकास (Development of Imagination)

कल्पना स्मृति पर निर्भर है। स्मृति प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर है। तीन साल से कम आयु के बच्चों में केवल स्मृति या पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना होती है। वे केवल अपने अतीत अनुभवों को पुनर्जीवित कर सकते हैं। कुछ बाद में उनकी कल्पना मुख्यतया ग्रहणात्मक होती है। दूसरे व्यक्तियों या पुस्तकों के द्वारा सुझाई हुई प्रतिमाओं का ये चित्रण कर सकते हैं। वे प्रतिमाओं की सृष्टि नहीं कर सकते। तीसरे और चौथे वर्ष में बच्चों में निर्माणात्मक कल्पना का बाहुल्य होता है। उन्हें वास्तविकता की उपेक्षा करने और परियों की कहानियों में बहुत आनन्द मिलता है। चार और आठ वर्ष के बीच में उनकी निर्माणात्मक कल्पना का वस्तुस्थिति (Reality) से कोई सरोकार नहीं

रहता। वह वास्तविक जगत् से बहुत दूर रहती है। इसका कारण उनका बाह्य जगत् और उसके नियमों का अज्ञान है। हस्त-कौशल, निर्माण प्रियता, खेल में नाटक और कहानी कहना बच्चों में कल्पना के विकास को प्रदर्शित करते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं उन्हें बाह्य जगत् का ज्ञान होता जाता है और वे व्यावहारिक अधिक हो जाते हैं। उनकी निर्माणात्मक कल्पना वस्तुस्थिति के समीप आ जाती है तथा अधिक उपयोगी हो जाती है। उपयोगी (Pragmatic) कल्पना वास्तविकता की माँगों को पूरा करती है। यह आत्मनिष्ठ (Subjective) होने की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ (Objective) अधिक होती है। किशोरावस्था में कल्पना में पुनः संवेग के प्रबल तत्वों का प्राधान्य हो जाता है। वह दिवास्वप्न का रूप ले लेती है। किशोर अपने दिवास्वप्नों के नायक बन जाते हैं। किशोरावस्था प्रधानतया दिवास्वप्नों की वय है। व्यक्ति के लिये अत्यधिक दिवास्वप्न देखना हानिप्रद है। यह उसे सांसारिक व्यवहार के लिये अयोग्य और व्यर्थ बना देता है। किशोरावस्था के व्यतीत हो जाने पर पुन: कल्पना उपयोगी हो जाती है। वह वस्तुस्थिति से दूर और संवेगात्मक नहीं रहती। उपयोगी कल्पना संवेगात्मक दिवास्वप्न का स्थान ले लेती है। अन्त में कलात्मक कल्पना (Artistic imagination) का प्रादुर्भाव होता है। यह सत्यं, शिवं, सुन्दरं (Truth, good and beauty) के आदर्शों की सृष्टि करती है। यह जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं से ऊपर उठकर मन की गम्भीरतम अभिलाषाओं (Deeper cravings) की तृप्ति करती है। इसे आदर्शवादी कल्पना भी कहा जा सकता है।[1]

१०. दिवास्वप्न : कल्पना-सृष्टि (Day-dreams: Reverie)

दिवास्वप्न निष्क्रिय कल्पना है। इसमें कल्पना-सृष्टि होती है। इसमें हवाई महल बनते हैं। इसमें मुक्त विचार-साहचर्य होता है। प्रतिमायें एक दूसरी का मुकाव साहचर्य की शक्ति से करती हैं। वे स्वतः आती जाती हैं और मन अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहता है। यह पुराने मनोवैज्ञानिकों का मत था। साधा-

[1] बाल्यावस्था का मनोविज्ञान, पृ० २२९-२३१।

रया व्यक्ति दिवास्वप्नों में खोये रहते हैं। बहिर्मुखी व्यक्तियों (Extroverts) की अपेक्षा अन्तर्मुखी व्यक्तियों (Introverts) में दिवास्वप्नों की ओर अधिक झुकाव रहता है। प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों में दिवास्वप्नों की अधिक प्रचुरता होती है। ब्लूलर (Bleuler) के शब्दों में दिवास्वप्न का स्वरूप "स्वयं-पर्याप्त विचार" (Autistic thinking) का है जो आलोचना का विषय नहीं होता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि दिवास्वप्न प्रेरित होते हैं। वे कुछ इच्छाओं को तृप्त करते हैं। एडलर (Adler) के अनुसार ये भविष्य की ओर देखते हैं। वे एक भावी कार्य की योजना बनाते हैं, यद्यपि यह योजना गम्भीर नहीं होती। वे कल्पना के खेल मात्र होते हैं जो कुछ इच्छाओं को तृप्ति देते हैं। दिवास्वप्न कुछ इच्छाओं के प्रकाशन होते हैं जो कल्पना को बल देती हैं। कभी-कभी वे दबी हुई इच्छाओं (Repressed desires) की नग्न पूर्ति करते हैं। वे वासना के पूर्तिकारक (Wish fulfilling) होते हैं। एडलर के मतानुसार दिवास्वप्न (Self-assertion) की नैसर्गिक प्रवृत्ति की पूर्ति करते हैं।

"दिवास्वप्नों में प्रायः एक नायक होता है, और यह नायक प्रायः स्वयं स्वप्नद्रष्टा होता है। कभी द्रष्टा विजेता नायक (Conquering hero) होता है और कभी पीड़ित नायक(Suffering hero)" वुडवर्थ। विजेता नायक का दिवास्वप्न जिसमें स्वप्नद्रष्टा जीवन की सब कठिनाइयों को पार करता है, अपने प्रतिद्वन्द्वियों को पराभूत करता है, और अपने लिए उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करता है, उसके प्रभुत्व-प्राप्ति के प्रेरक (Mastery motive) या स्वस्थापन की सहज प्रवृत्ति को तृप्त करता है। इसमें योजना को वास्तविक जगत् में कार्यान्वित करने के प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे दिवास्वप्न बहुत सामान्य होते हैं। विजेता नायक के दिवास्वप्नों के साथ श्रेष्ठता की भ्रान्ति (Delusion of grandeur) भी हो सकती है।

पीड़ित नायक के दिवास्वप्न प्रारम्भ में अनिर्वचनीय (Inexplicable) प्रतीत होते हैं। किन्तु ये भी प्रभुत्व के प्रेरक को तृप्त कर सकते हैं। एक युवक

जिसे उसके मां-बाप ने कड़ी डांट दी हैं अपने लिए एक संपन्न जीवन की कल्पना कर सकता है। वह स्वयं को शहीद या किसी अन्य प्रकार का पीड़ित नायक कल्पित कर सकता है। इस प्रकार इस कोटि के दिवास्वप्न में भी स्व-स्थापन की सहज प्रवृत्ति को तृप्ति मिलती है। पीड़ित नायक के दिवास्वप्नों के साथ सताये जाने की भ्रान्ति (Delusion of persecution) हो सकती है।

११. स्वयंपर्याप्त विचार (Autistic Thinking)

स्वयंपर्याप्त विचार स्वतः पर्याप्त होता है। वह किसी मानदण्ड (Standard) के आगे नहीं झुकता। वह वस्तुस्थिति या समाज के मानदंड की परवाह नहीं करता। यह यथार्थवादी विचार (Realistic thinking) और समाजीकृत विचार (Socialized thinking) के विपरीत है। यह अपनी या और लोगों की आलोचनाओं की परवाह नहीं करता। यह आत्म-पूर्ण (Self-sufficient) है। वास्तविकता से इसका मेल नहीं होता।

दिवास्वप्न "स्वयंपर्याप्त विचार" का एक उदाहरण है। यह किसी इच्छा की पूर्ति करता है, और यही उसके लिए काफी है। स्वयंपर्याप्त विचार साधारण लोगों में पाया जाता है जो अपनी कल्पनाओं तथा वास्तविकता से दूर अपने काल्पनिक सुखों में खोये रहते हैं। यह विक्षिप्त (Insane) व्यक्तियों में भी पाया जाता है। उनमें से कुछों से विचारों का आदान-प्रदान नहीं हो सकता और वे परिवेश (Environment) के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करने में असमर्थ होते हैं। वे अपने ही काल्पनिक जगत् में विचरण करते हैं और बाह्य जगत् पर ध्यान देने से इन्कार कर देते हैं। अन्य जगत् को एक नाटकीय जगत् बना देते हैं और अपने चारों-ओर की वस्तुओं और व्यक्तियों में अपने ही व्यक्तिगत प्रयोजन और अर्थ देखते हैं। थोड़ा सा दिवास्वप्न देखना तो हमारी दबी हुई वासनाओं के लिए अभय-कपाट (Safety valve) है। लेकिन अत्यधिक दिवास्वप्न देखना मानसिक विकृतियों का द्वार है। दिवास्वप्न उन इच्छाओं के प्रकाशन हैं जिनकी वास्तविक जगत् में पूर्ति नहीं होती। मैकडूगल कहता है, "आवेग (Impulse) और इच्छा का प्रत्येक रूप ऐसी सम्पन्-

कारी कल्पना-सृष्टि को पोषण और प्रोत्साहन दे सकते हैं : काम (Sex), भय, जिज्ञासा, महत्त्वाकांक्षा (Ambition), व्यग्रतापूर्ण वात्सल्य (Anxious tenderness), प्रतिशोधात्मक क्रोध (Vengeful anger), आतंक और घृणा, ये विशेषतया ऐसे अंशतः स्मृतिमूलक और अंशतः रचनात्मक कल्पना-प्रवाहों को बनाये रखने वाले प्रेरक हो सकते हैं" ।[१]

१२. चिन्ता (Worry)

"जब वास्तविक कर्म सम्भव नहीं होता तो चिन्ता वास्तविक कर्म की स्थानापन्न (Substitute) होती है" ।[२] विद्यार्थी परीक्षा की तैयारी कर चुका है; परीक्षा भी हो चुकी है; उसने काम भी अच्छा किया है; अब उसे कुछ नहीं करना है । इसलिए उसे बात को मन से निकाल देना चाहिए । लेकिन वह ऐसा नहीं कर सकता; वह विचार करता है और चिन्तातुर हो जाता है । यही चिन्ता वास्तविक कार्य की स्थानापन्न है ।

चिन्ता के कुछ असाधारण मामले दबी हुई वासनाओं (Repressed desires) के वेषान्तरित प्रकाशन (Disguised expressions) होते हैं । जब कोई व्यक्ति अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी की गम्भीर रोग से मुक्ति के लिए आयन्त चिन्ता का अनुभव करता है तो उसकी चिन्ता उससे पिंड छुड़ाने की अस्वीकृत इच्छा (Unacknowledged desire) को छिपाने का साधन हो सकती है ।

चिन्ता घर बैठे खेलने (Indoor sport) का भी एक साधन हो सकती है । बच्चा खेलने के लिये गया है; उसे घर आने में देरी हो गई है । माँ इससे चिन्तित हो जाती है । यदि कोई वास्तविक खतरा होता तो वह बच्चे को बचाने के लिए कुछ करती । किन्तु माँ जब बच्चा आ जायगा उस समय उसके साथ के सुख का अधिक उपभोग करने के लिए चिन्तातुर हो जाती है ।

---

१. असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा : पृ० २०६

२. असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा : पृ० २११

१३. स्वप्न (Dream)

दिवास्वप्न निष्क्रिय कल्पना है। स्वप्न भी इसकी निद्रा में निष्क्रिय कल्पना है। यह दिवास्वप्न की अपेक्षा नियंत्रण और आलोचना से अधिक मुक्त होता है। निर्देशात्मक शक्तियों के कारण प्रतिमायें स्वत: आती हैं और विविध रूपों में संयुक्त होती हैं। वे अधोचेतन मन के कार्य होते हैं। वे निद्रा में वास्तविक प्रत्यक्ष (Actual perceptions) प्रतीत होते हैं। किन्तु वे बाह्य वस्तुओं से उत्पन्न प्रत्यक्ष नहीं होते और उनसे सामंजस्य नहीं रखते। वे अधोचेतन मन से उत्पन्न प्रतिमायें होते हैं। कभी-कभी स्वप्न-प्रतिमायें सजीव और स्पष्ट होती हैं। बाहरी देश में उनका प्रक्षेप (Projection) होता है और वे प्रत्यक्षीकरण की वास्तविक वस्तु प्रतीत होती हैं। आलोचना-शक्ति (Critical faculty) अधिकांशतः निरुद्ध होती है। अतः स्वप्न प्रतिमायें प्रायः असंगत ढंग से संयुक्त होती हैं। "सहचारी प्रत्याह्वान (Associative recall), प्रत्याह्वान की सामग्री के मिश्रण और आलोचना की नितान्त अनुपस्थिति के साथ स्वप्न की प्रक्रिया का कारण है"।[1]

स्वप्न का भ्रम-जाल बाह्य उत्तेजनाओं से भी प्रभावित होता है। अच्छी तरह प्रकाशित कमरे में सोने वाला व्यक्ति कभी-कभी आग लगने का स्वप्न देखता है। अपर्याप्त कपड़े पहन कर सोने वाले व्यक्ति पर यदि वर्षा की बूंदें पड़ें तो वह नदी में तैरने का स्वप्न देख सकता है। "एक आदमी ने जिसके पैरों से गर्म पानी की बोतल का स्पर्श कराया गया था एटना ज्वालामुखी के ऊपर चलने का स्वप्न देखा था" (हॉफडिंग)। ये स्वप्न के भ्रम (Illusions) हैं।

स्वप्न-विभ्रम (Dream hallucinations) विचारों और प्रतिमाओं की शृंखलाओं से उत्पन्न होते हैं। केन्द्रीय उत्तेजनायें (Central stimuli) इन्हें उद्दीप्त करती हैं। किसी लड़की पर मुग्ध युवक अपनी प्रेयसी के स्वप्न देखता है। कुछ स्वप्न अतृप्त काम-वासना (Ungratified sex desire) से उत्पन्न होते हैं (फ्रॉयड)। कुछ अन्य इच्छाओं से भी उत्पन्न होते हैं,

[1] असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा : पृ० २०१

यथा, कविता, संगीत, कला इत्यादि की रुचियों से। कुछ स्वप्नों का कारण प्रभुत्व का प्रेरक (Mastery motive) होता है, (यथा उड़ान के स्वप्न)। कुछ कल्पना के विचित्र खेल मात्र होते हैं। प्रतिमायें स्वतः एक-दूसरी को सुझाती हैं और कोई इच्छा उन्हें बल देती रहती है।

१४. फ्रॉयड का स्वप्न-सिद्धान्त (Freud's Theory of Dreams)

फ्रॉयड के अनुसार स्वप्न बचपन में अतृप्त इच्छाओं के नग्न प्रकाशन होते हैं। प्रौढ़ जीवन में भी कुछ स्वप्न (यथा, आराम के स्वप्न) सीधे इच्छा की पूर्ति करते हैं। लेकिन प्रौढ़ों के स्वप्न अधिकांशतः दबी हुई और, इसलिए, अचेतन काम वासनाओं तथा काम (Sex) के विरोध से उत्पन्न होने वाली द्वेष वासनाओं (Spite wishes) के परोक्ष या प्रातीकिक प्रकाशन (Symbolic expressions) होते हैं। काम-वासनाओं पर प्रायः समाज में प्रतिबन्ध होता है। जाग्रत जीवन में उन्हें पर्याप्त तृप्ति देना निषिद्ध होता है। इसलिए उनका दमन कर दिया जाता है और वे अचेतन हो जाती हैं। किन्तु उनकी शक्ति क्षीण नहीं होती; जब कभी उन्हें अवसर मिलता है वे चेतना के क्षेत्र में बलात् प्रवेश कर देती हैं। जाग्रत अवस्था में असामाजिक काम-वासनायें चेतना के क्षेत्र में प्रवेश करने से प्रतिरोधक (चौकीदार) (Censor) के द्वारा रोक दी जाती हैं। निद्रा में 'प्रतिरोधक' के सावधान रहने में शिथिलता आ जाती है; अतः दबी हुई अचेतन काम-वासनायें वेष बदलकर स्वप्न में अभिव्यक्त होती हैं। दबी हुई काम-वासनायें स्वप्नों में परोक्षतः अपनी पूर्ति करती हैं। स्वप्नों की प्रकट और गुप्त अन्तर्वस्तुओं (Manifest and latent contents) में भेद है। प्रकट अन्तर्वस्तुयें घटनायें होती हैं, लेकिन गुप्त अन्तर्वस्तुयें वासनायें होती हैं। इस प्रकार दबी हुई वासनायें स्वप्नों में वेषान्तरित होकर अपनी तृप्ति करती हैं। स्वप्न अचेतन काम-वासनाओं या लिबिडो (Libido) के वेषान्तरित या सांकेतिक (Symbolic) प्रकाशन हैं। गूढ़ अन्तर्वस्तुओं अथवा काम-वासनाओं का प्रकट अन्तर्वस्तुओं में वेषान्तरण (Disguise) सामग्री के संघनन (Condensation), लोपन (Omission), संपरिवर्तन (Modification) और पुनः वर्गबन्धन (Regrouping) के

द्वारा होता है। अचेतन काम लिबिडो स्वप्नों में प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्त होता है।

फ्रॉयड के सिद्धान्त में सत्य के कुछ अंश हैं। प्रथम, सहज प्रवृत्तियाँ (Instincts) स्वप्नों के मूल कारण हैं। द्वितीय, प्रायः दबी हुई प्रवृत्तियां स्वप्नों में प्रकाशित होती हैं। तृतीय, कुछ स्वप्न दबी हुई काम-वासनाओं के प्रकाशन होते हैं। वे दबी हुई कामेच्छाओं की सीधे या वेषान्तर में पूर्ति करते हैं। कुछ स्वप्न-प्रतीक (Dream symbols) लैंगिक (Sexual) होते हैं। चतुर्थ, फ्रॉयड ने जिन प्रक्रियाओं का वर्णन किया है उनमें से कुछ, यथा, संघनन, लोपन, पुनः वर्णबन्धन स्वप्न में अवश्य होती हैं (मैकडूगल)। लेकिन फ्रॉयड का सिद्धान्त पूर्णतया सत्य नहीं है। सभी स्वप्न दबी हुई काम-वासनाओं के सीधे या परोक्ष प्रकाशन नहीं होते। वे सभी स्वप्नों को प्रेरित नहीं करतीं। दबा हुआ काम (Libido) सभी स्वप्नों की व्याख्या नहीं कर सकता। कई और तरह के स्वप्न भी होते हैं।

फ्रॉयड काम-प्रेरक (Sex motive) की अत्यधिक खींचतान करता है। मानवीय प्रेरकों का उसका विश्लेषण अपूर्ण है। काम के अतिरिक्त स्वस्थापन की प्रवृत्ति का भी अत्यधिक दमन किया जाता है. और यह बधित (असफल) स्वस्थापन (Self-assertion) स्वप्नों में प्रकट हो सकता है। एडलर ठीक कहता है कि कुछ स्वप्न विफल स्वस्थापन के पूर्तिकारक होते हैं। उनका संकेत भूत की ओर नहीं बल्कि भविष्य की ओर होता है। वे एक अतीत में दबी हुई इच्छा की पूर्ति नहीं करते, बल्कि व्यक्ति के द्वारा सम्पादित होने वाले किसी कर्म की भविष्यवाणी करते हैं। कुछ स्वप्न जैसा कि युंग (Jung) कहता है, हमारे द्वारा वंशक्रम से प्राप्त जातिगत या सामूहिक अचेतन (Racial or collective unconscious) के प्रकाशन हो सकते हैं। भूतों और जादूगरनियों की बातें सोचने के आदिकालीन तरीक़े स्वप्नों में प्रकट हो सकते हैं। जैसा कि युंग का मत है, कुछ स्वप्न व्यक्ति की वर्तमान कठिनाइयों तथा जीवन की समस्याओं के प्रति उसकी अचेतन अभिवृत्तियों (Unconscious attitudes) से सम्बन्धित होते हैं।

कुछ स्वप्न कल्पना के विचित्र खेल मात्र होते हैं। हो सकता है कि वे किसी भी दबी हुई इच्छा का उद्घाटन न करें। वे किसी अतृप्त वासना को सीधे या टेढ़े रूप में तृप्त नहीं भी कर सकते। वे निश्छल (Innocent) दिखाई मात्र नहीं देते बल्कि वस्तुतः होते भी निश्छल हैं। फ्रॉयड का सिद्धान्त वहीं तक ठीक है जहाँ तक वह स्वप्नों की प्रेरणा (Motivation) को महत्व देता है।

वुडवर्थ ठीक कहता है कि "फ्रॉयड अचेतन को बहुत अतिरंजित करता है। प्रायः अतृप्त इच्छायें इतनी अचेतन नहीं होतीं जितनी वह उनको वर्णित करता है; वे अस्वीकृत (Unavowed), असंज्ञात (Unnamed), अविश्लिष्ट अवश्य होती हैं, लेकिन इतने पर भी चेतन होती हैं। स्वप्नों में प्रकट होने वाली इतनी अचेतन इच्छा नहीं होती जितनी कि अतृप्त इच्छा होती है जो पूर्णतया चेतन हो सकती है।"[1]

फ्रॉयड ने अपने सिद्धान्त को विषमायोजित (Maladjusted) या असाधारण (Abnormal) व्यक्तियों के स्वप्नों का अध्ययन और विश्लेषण करने के उपरान्त सूत्रबद्ध किया था और इसलिए उसने स्वप्नों के काम-प्रेरक को महत्त्व दिया। किन्तु हमें साधारण से असाधारण की ओर गमन करना चाहिए, इस क्रम का विपर्यय हमें नहीं करना चाहिए; हमें असाधारण से साधारण की ओर गमन नहीं करना चाहिए।

मैकडूगल ठीक कहता है कि "स्वप्नों का अर्थ जानने के लिये फ्रॉयड का सूत्र कुछ स्वप्नों और विशेषतया कुछ स्नायु-विकृति (Neurosis) के रोगियों के कुछ स्वप्नों को समझने में सहायक हो सकता है; किन्तु प्रत्येक स्वप्न के अर्थ को इस सूत्र के अनुसार समझाने का बलपूर्वक प्रयत्न करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है।"[2]

---

[1] मनोविज्ञान : पृ० ४०७

[2] असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० १८६-८७

१५. विभ्रम (Hallucination)

विभ्रम मुख्यसापेक्ष प्रत्यक्ष (Subjective perception) है। यह एक स्मृति-प्रतिमा (Memory image) होती है जिसमें संवेदना की सजीवता (Vividness) होती है। इसका बाह्य देश में प्रक्षेप किया जाता है और ग़लती से इसे प्रत्यक्षीकरण की वस्तु समझ लिया जाता है। यह स्मृति-प्रतिमा होती है जिसे ग़लती से संवेदना समझ लिया जाता है। इसमें कोई बाह्य उत्तेजना नहीं होती। भ्रम (Illusion) बाह्य उत्तेजना से उत्पन्न होता है। किन्तु विभ्रम बाह्य उत्तेजना से उत्पन्न नहीं होता। एक हत्यारा, जिस व्यक्ति की हत्या हुई है उसकी आत्मा को देखता है। यहाँ कोई बाह्य उत्तेजना नहीं है। हत्यारे के मन में सांवेदनिक सजीवता (Sensory vividness) से युक्त स्मृति-प्रतिमा होती है। प्रतिमा उसके मस्तिष्क की असाधारण अवस्था के कारण उत्पन्न होती है। वह मृत आत्मा की यह आवाज़ सुनता है कि वह अपनी मृत्यु का बदला लेगी। हत्यारा अपराध के गुप्त भय से आविष्ट होकर आवाज़ की कल्पना कर लेता है। विभ्रम में सूक्ष्म ऐन्द्रिय संस्कार (Faint sense impression) का होना भी सम्भव है, लेकिन इसका कार्य महत्वहीन होता है। कल्पना विभ्रम में मुख्य भूमिका में होती है।

मैकडूगल कहता है, "विभ्रम अप्रस्तुत वस्तुओं का दर्शन है; अथवा अधिक पारिभाषिक शब्दों में, विभ्रम सांवेदनिक सजीवता के साथ दूरस्थ वस्तुओं के बारे में सोचना है।"[1] विभ्रम की वस्तु उपस्थित नहीं होती। उसका या तो प्रत्याह्वान होता है या कल्पना विस्तृत अर्थ में यह विचार की वस्तु होती है। किन्तु विभ्रम में सांवेदनिक सजीवता होती है। वह इतना सजीव होता है कि व्यक्ति को वह बाह्य देश में अस्तित्व रखने वाली, वास्तविक प्रत्यक्षीकरण की वस्तु जान पड़ता है। एक धुंधला ऐन्द्रिय संस्कार, जो महत्वहीन कार्य करता है, इसे उद्दीप्त कर सकता है। अथवा ऐन्द्रिय संस्कार इसमें बिलकुल नहीं भी हो सकता। यह मुख्यसापेक्ष प्रत्यक्षीकरण है।

[1] असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा: पृ० १२४

विभ्रम कई प्रकार के होते हैं। दार्ष्टिक और श्रावणिक विभ्रम सामान्य होते हैं। स्पर्श के विभ्रम भी होते हैं। उदाहरणार्थ, रोगी ऐसी वस्तु देखता है जिसका अस्तित्व नहीं होता, अथवा एक काल्पनिक ध्वनि सुनता है। रोगी सामान्यतया ऐसी आवाज़ सुनता है जो सामान्यतया उसके अधिकतम व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखती है, और उसमें प्रायः डाट-फटकार रहती है। वह ऐसी आवाज़ सुन सकता है जो निरन्तर यह घोषणा करती है कि उसकी, जो पाप उसने किये हैं उनके कारण, हत्या कर दी जायगी। वह प्रायः इस विचित्र परिकल्पना (Hypothesis) का आविष्कार करता है कि यह किसी आत्मा का संदेश है (हार्ट)।

विभ्रम मस्तिष्क के द्वारा उद्दीप्त प्रतिमायें हैं। वे बाह्य उत्तेजनाओं के द्वारा उद्दीप्त नहीं होते। वे कल्पना की विशुद्ध उपज होते हैं। वे पूर्णतया द्रष्टा की सृष्टि होते हैं। बाह्य जगत् में उनका प्रक्षेप होता है और वे प्रत्यक्षीकरण की वास्तविक वस्तुयें प्रतीत होती हैं। हत्यारा कभी-कभी मृत आत्मा को अपना पीछा करते हुये देखता है। यह एक विभ्रम है। उसके मन का स्थिर विचार बाह्य जगत् में प्रक्षिप्त होता है और वास्तविक वस्तु प्रतीत होता है। मैकबेथ (Macbeth) ने बैंको (Banquo) की आत्मा को सिंहासन पर बैठी देखा। यह उसके विकृत मस्तिष्क से उत्पन्न विभ्रम था। विक्षिप्त व्यक्ति और हिस्टीरिया (Hysteria) के रोगी प्रायः काल्पनिक भूतों से वार्तालाप करते दिखाई देते हैं। स्वस्थ और साधारण व्यक्ति बहुत कम विभ्रम देखते हैं।

कुछ स्वस्थ लेकिन अत्यधिक निर्देश-ग्रहणक्षम (Suggestible) व्यक्तियों में विभ्रम उत्पन्न किये जा सकते हैं। शाब्दिक निर्देश (Verbal suggestion) अधिकांश व्यक्तियों में सम्मोहितावस्था (Hypnosis) में तथा कुछ व्यक्तियों में सम्मोहनोत्तर अवस्था (Post-hypnotic state) में भाँति-भाँति के विभ्रम उत्पन्न कर सकता है। कुछ में स्फटिक (Crystal) पर दृष्टि जमाने से दार्ष्टिक विभ्रम उत्पन्न किये जा सकते हैं। जो व्यक्ति तुरन्त सम्मोहित हो जाते हैं वे आसानी से स्फटिक में दृश्य देख सकते हैं। स्फटिक-

दर्शन (Crystal vision) में विषय (Subject) तन्द्रावस्था में पहुँच जाते प्रतीत होते हैं। स्फटिक-दृश्य उत्पन्न करने के लिये विषय को स्थिर दृष्टि से काँच, स्फटिक या अन्य किसी चमकीली सतह वाले पदार्थ के गोले पर देखने के लिये कहा जाता है। पहिले उस पर सफ़ेद धुन्ध सी दिखाई पड़ती है। कुछ समय बाद धुन्ध हट जाती है और विषय कभी-कभी विविध प्रकार की शक्लें देखता है अथवा कभी किसी बार-बार पुनरावृत्त होने वाले दृश्य के चित्र देखता है। ये स्फटिक-दृश्य विभ्रम हैं (मैकडूगल)।

भ्रम ऐन्द्रिय उत्तेजन (Sensory stimulation) से उत्पन्न होता है, जबकि विभ्रम केन्द्रीय उत्तेजन (Central stimulation) से उत्पन्न होता है। भ्रम में किसी बाह्य उत्तेजना से उत्पन्न संवेदना का गलत अर्थ लगाया जाता है। जब कोई व्यक्ति रस्सी को सांप समझ बैठता है, तो रस्सी उसके मन में संस्कार पैदा तो करती है, लेकिन वह उसका गलत अर्थ लगाता है। साँप का उसका विचार रस्सी से मेल नहीं खाता। यह एक भ्रम है। किन्तु विभ्रम में बाह्य उत्तेजना नहीं होती। इसकी उत्पत्ति मस्तिष्क की विकृत दशा से होती है।

मैकडूगल कहता है, "हम विभ्रम और भ्रम अथवा ऐन्द्रिय संस्कारों के ग़लत अर्थ के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींच सकते, क्योंकि हमें कभी भी यह विश्वास नहीं हो सकता कि विभ्रम की उत्पत्ति में कोई ऐन्द्रिय संस्कार काम नहीं कर रहा है; लेकिन व्यवहार में हम भ्रम उसे कहते हैं जिसमें ऐन्द्रिय संस्कारों का कार्य स्पष्ट होता है, विभ्रम उसे कहते हैं जिसमें ऐन्द्रिय संस्कारों का कार्य संदिग्ध होता है या उसका गौण महत्त्व होता है। उदाहरणार्थ, श्रवण-स्नायु के आन्तरिक उत्तेजन के कारण होने वाली अस्पष्ट ध्वनियां श्रवण-विभ्रम पैदा करती हैं, लेकिन इस कारण हम आवाज़ों के विभ्रम को भ्रम नहीं कहते।"[1] भ्रम में ऐन्द्रिय-संस्कार सदैव उपस्थित रहते हैं जिनको ग़लत समझा जाता है। विभ्रम में ऐन्द्रिय संस्कार सदैव

[1] असाधारण मनोविज्ञान की रूपरेखा : पृ० १४४।

उपस्थिति नहीं रहते। कभी-कभी ऐन्द्रिय संस्कार रहता है लेकिन उसका कार्य महत्वपूर्ण नहीं होता; केन्द्रीय अर्थग्राही तत्वों (Central interpretative factors) विभ्रम में मुख्य कार्य रहता है। उनका प्रधान महत्व होता है, जबकि ऐन्द्रिय उत्तेजन का महत्त्व गौण होता है।

१६. भ्रान्ति (Delusion)

भ्रान्ति दुर्निवार्य मिथ्या विश्वास (Persistent false belief) है। किसी भी विरोधी युक्ति (Argument) का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बड़ी से बड़ी प्रबल युक्तियां भी भ्रान्ति के रोगी के मिथ्या विश्वास को नहीं हटा सकतीं। कोई व्यक्ति विश्वास कर सकता है कि वह हिटलर या नेपोलियन या संसार का सम्राट है। इस मिथ्या विश्वास के अतिरिक्त वह अन्य सभी बातों में तर्क-बुद्धि रखता है। भ्रम एक ग़लत समझा हुआ ऐंद्रिय संस्कार है। विभ्रम एक सजीव स्मृति-प्रतिमा है जिसे ग़लती से संवेदना समझ लिया गया है। यह एक आत्मगत प्रत्यक्ष है। लेकिन भ्रान्ति एक मिथ्या विश्वास है। भ्रान्ति का जन्म इच्छापूर्तिकारक विचार (Wishful thinking) से हो सकता है। व्यक्ति की प्रवृत्ति उसमें विश्वास करने की होती है जिसका विचार करने के लिये उसकी प्रयोजनात्मक प्रवृत्तियां (Conative tendencies) उसे प्रेरित करती हैं। साधारण व्यक्तियों में भ्रान्तियों का कारण ग़लत निरीक्षण, ग़लत सूचना, या दोषपूर्ण तर्कना (Reasoning) होती है। किसी वेदनात्मक प्रवृत्ति (Affective tendency) से उन्हें बल मिलता है। विश्वास की उत्पत्ति निर्णय (Judgment) से होती है। निर्णय एक विशुद्ध बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। इसका एक प्रयोजनात्मक पहलू भी होता है। कोई प्रेरक, कोई लक्ष्य को पाने का प्रयत्न उसकी उत्पत्ति और स्थिति का कारण होता है। भ्रान्ति, जो एक मिथ्या विश्वास है, लक्ष्य का अनुसरण करने वाली किसी सहेतुक प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न और स्थायी होती है।

१७. भ्रान्ति और विभ्रम (Delusion and Hallucination)

भ्रान्ति एक मिथ्या विश्वास है। विभ्रम सांवेदनिक सजीवता से युक्त एक

प्रतिमा है। भ्रान्ति के साथ विभ्रम भी हो सकता है। "अन्तर यह है कि भ्रान्तियां मिथ्या संवेदनायें नहीं बल्कि मिथ्या विश्वास हैं। इस प्रकार यदि रोगी एक वस्तु देखता है जिसका कोई वास्तविक आधार नहीं है तो यह विभ्रम है; लेकिन यदि उसका विश्वास है कि वह संसार का सम्राट है तो यह भ्रान्ति है।"[1] विभ्रम एक स्मृति-प्रतिमा है जो संवेदना समझ ली जाती है। इसके साथ प्रबल विश्वास नहीं होता, यह अस्थायी होता है। किन्तु भ्रान्ति स्थायी होती है; जब तक रोगी को स्वास्थ्य-लाभ न हो जाय तब तक वह बनी रहती है।

१८. श्रेष्ठता की भ्रान्ति और पीड़न-भ्रान्ति (Delusion of Grandeur and Delusion of Persecution)

दो मुख्य प्रकार की भ्रान्तियां सामान्यतया मानी जाती हैं : श्रेष्ठता की तथा पीड़ित होने की। श्रेष्ठता की भ्रान्ति में रोगी को यह विश्वास होता है कि वह नेपोलियन, हिटलर, ईश्वर या वर्जिन मेरी है। श्रेष्ठता की भ्रान्ति का रोगी अत्यन्त अन्तर्मुखी (Introvert) हो चुका है और वास्तविकता से दूर जा चुका होता है। उसका यह मिथ्या विश्वास होता है कि वह पृथ्वी पर सबसे बलवान, सबसे धनवान्, या सबसे महान् है। ये संबद्ध भ्रान्तियां (Systematic delusions) स्नायु-विकृति-मूलक संगठन (Neurotic organization) प्रदर्शित करती हैं तथा चरम रूप में विकसित होने में काफी लम्बा समय ले सकती हैं। वे किसी प्रकार के मानसिक व्यापार के कारण होती हैं जिसका परिणाम युवक की निश्छल आत्म वृद्धि (Self-aggrandisement) और प्रौढ़ के मामूली आत्मश्लाघायुक्त दिवास्वप्न होते हैं। "विजेता नायक" के दिवास्वप्न चरम रूप में श्रेष्ठता की भ्रान्ति से सादृश्य रखते हैं जो उन्माद के एक रूप भ्रान्त्युन्माद या पैरोनोइया (Paronoia) में पाई जाती है।

पीड़ित होने की भ्रान्तियों में रोगी का यह मिथ्या विश्वास बन जाता है कि प्रबल शत्रु उसका पीछा कर रहे हैं या उस पर आक्रमण कर रहे हैं।

[1] उन्माद का मनोविज्ञान : पृ० ११

पीड़ित भ्रान्ति के कुछ रूप "पीड़ित नायक" के दिवास्वप्नों से बहुत-सी बातों में साम्य रखते हैं। रोगी जो कोई गम्भीर अपराध कर चुका है अपराध की गुप्त वेदना से और अयोग्यता की अनुभूति से परेशान रहता है। वह अप्रत्याशित रूप से संवेदनशील (Sensitive) होता है और दूसरों के कार्यों का अपने भय और शंका के अनुसार अर्थ लगाता है। वह सोचता है कि और लोग उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं। वे उसके जीवन के विरुद्ध साज़िश कर रहे हैं या उसे या उसके परिवार को गाली दे रहे हैं।

"श्रेष्ठता की भ्रान्ति और पीड़न-भ्रान्ति दोनों प्रायः विभ्रमों से साहचर्य रखती हैं; आवाज़ें रोगी को सिंहासन का अधिकारी घोषित करती हैं, या उसे गाली देती हैं और किसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना का भय देती हैं। दोनों पक्ष बहुधा संयुक्त होते हैं, उदाहरणार्थ, रोगी यह विश्वास कर सकता है कि वह राजा है लेकिन एक संगठित षड्यंत्र उसे उसके जन्मसिद्ध अधिकार से च्युत करना चाहता है"।[१] कभी-कभी रोगी अपने जीवन और अनुभव की प्रत्येक घटना को यहां तक तोड़ता-मरोड़ता और ग़लत समझता है कि वह उसकी भ्रान्तिपूर्ण योजना में ठीक बैठ जाती है।

संकेत की भ्रान्ति (Delusion of reference) पीड़न-भ्रान्ति का एक महत्त्वपूर्ण रूप है। रोगी का यह विश्वास हो जाता है कि परिवेश में होने वाली प्रत्येक छोटी से छोटी घटना उसे क्षतिग्रस्त करने के उद्देश्य से होती है। यदि दो आदमी बात कर रहे हैं तो वह समझता है कि वे उसके ख़िलाफ़ षड्यंत्र रच रहे हैं। यदि कमरे का सामान इधर-उधर कर दिया गया है तो यह उसे नुक़सान पहुंचाने का संकेत है। यदि उसके खाने की तश्तरी पर कोई दाग़ है तो यह इस बात का पक्का प्रमाण है कि उसके भोजन में विष मिलाया गया है। वह प्रत्येक घटना को अपनी भ्रान्तियों की योजना में ठीक बैठाने के लिये उसका ग़लत अर्थ लगाता है।

१६. मनोसृष्टि (Fantasy)

मनोसृष्टि दिवास्वप्न देखना है। "मनोसृष्टि या दिवास्वप्न में हम वास्तविक

[१] उनमाद का मनोविज्ञान : पृ० ३२।

जगत् में अपनी ग्रन्थियों (Complexes) को तृप्त करने का प्रयत्न नहीं करते बल्कि रोचक मानसिक चित्र बनाने में सन्तुष्ट रहते हैं जिनमें ग्रन्थियाँ काल्पनिक तृप्ति प्राप्त करती हैं"।[1] "ग्रन्थि एक संवेगयुक्त विचारों का संगठन" है जिनकी प्रारम्भ सामान्यतया काम-वासना और स्वस्थापन इत्यादि की इच्छाओं के दमन से होता है। जब कोई व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में विफल होता है तो वह मनोसृष्टि में उनकी काल्पनिक पूर्ति ढूँढ़ता है। दिवास्वप्न वास्तविकता से काल्पनिक पलायन (Escape) करने का एक साधन होता है और अतृप्त वासनाओं की काल्पनिक तृप्ति का एक मार्ग है। जो व्यक्ति वास्तविकता का मुक़ाबला करने और प्रभावपूर्ण ढंग से उससे समायोजन करने में असफल रहते हैं वे दिवास्वप्नों की काल्पनिक दुनिया में शरण ढूंढ़ते हैं, जहाँ बाधाओं का अन्त हो जाता है, इयर्डों से ऋण मिलता है, तथा आसानी से लक्ष्य-प्राप्ति होती है।

मनोसृष्टि बुद्धिमत्ता के साथ संचालित प्रयत्न का स्थान ले लेती है। "इस प्रकार कई लड़के योद्धा बनने के दिवास्वप्न देखते हैं, और कई लड़कियां महान् गायिका होने के, युवक जल्दी प्रगति करने के, और युवतियां युवकों के लिये सबसे अधिक आकर्षक होने के" (ट्रो)।

मनोसृष्टि प्रभुत्व के प्रेरक (Mastery motive) को भी तृप्त करती है। कई दिवास्वप्न सम्मान और सामाजिक मान्यता (Social recognition) की मौलिक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। विजेता नायक के दिवास्वप्न और पीड़ित नायक के दिवास्वप्न दोनों स्वस्थापन की सहज प्रवृत्ति को तृप्त करते हैं, वास्तविक जगत में जिसका विघात होता है। कभी-कभी ये इतने स्थायी हो जाते हैं कि श्रेष्ठता और पीड़न की भ्रान्तियों का रूप ले लेते हैं। ये उन्माद (Insanity) के सामान्य कारण हैं।

दिवास्वप्न या मनोसृष्टि थोड़ी मात्राओं में काफी हानिरहित है। यह घरेलू खेल (Indoor sport) के समान है। यह व्यक्ति की आवश्यकताओं

---

[1] उन्माद का मनोविज्ञान : पृ० १५३

या इच्छाओं को कल्पना में तृप्त करने का साधन है। लेकिन यदि एक बच्चा या व्यक्ति अपनी मनोसृष्टि मात्र में सन्तोष पाता है और अन्य बच्चों या व्यक्तियों के सम्पर्क से दूर रहता है तो इसके भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मनोसृष्टि में अत्यधिक संलग्न रहने से वास्तविकता से सदा के लिये पलायन हो सकता है और कभी-कभी तो मानसिक अस्तव्यस्तता (Derangement) तक हो जाती है। कम से कम डिमेन्शिया प्रिकोक्स (Dementia precox) के मूल में तो अत्यधिक मनोसृष्टि ही पाई गई है। डिमेन्शिया प्रिकोक्स से पीड़ित रोगी में अत्यधिक दिवास्वप्न पाया जाता है, जो अपनी ही कल्पनाओं में संलग्न रहता है और वास्तविकता से सम्पर्क तोड़ देता है। अत्यधिक मनोसृष्टि का इलाज दुनियाँ से वास्तविकता सम्पर्क स्थापित करके और उससे प्रभावपूर्ण समायोजन स्थापित करके करना चाहिये।

धार्मिक व्यक्ति स्वर्ग के राज्य या बैकुण्ठ की कल्पना करते हैं। मानवतावादी (Humanitarians) असमानताओं से रहित सामाजिक सतयुग के स्वप्न देखते हैं। कवि एक आदर्श समाज के, जिसमें प्रेम और सहानुभूति का एकछत्र राज्य हो, स्वप्न देखते हैं। मेधावान् व्यक्ति प्रायः सांकेतिक रूप में अपने दिवास्वप्नों को कलात्मक ढंग से चित्रित करते हैं। ये दिवास्वप्न यद्यपि अवास्तविक होते हैं, तथापि मन पर उनका उदात्त प्रभाव (Elevating influence) पड़ता है। वे इन आदर्शों की ओर संकेत करते हैं जिनको हमें लक्ष्य बनाना चाहिए। लेकिन प्रभावपूर्ण होने के लिए उन्हें सामान्य जगत् से बहुत ऊपर नहीं होना चाहिए।[1]

२०. एकात्मीकरण (Identification)

"यह स्वयं को अन्य वास्तविक या काल्पनिक व्यक्ति से इस प्रकार एकात्म कर देना है कि हम उसके सुख, शोक और इच्छाओं को अपने सुख, शोक और इच्छायें मानकर अनुभूत करते हैं। जब तक एकात्मीकरण कायम रहता है तब तक हमें यह अनुभूति होती है कि वह हमारे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है तथा

[1] ट्रो : शिक्षा मनोविज्ञान की भूमिका : पृ० ९१-९२

हम उसमें अपने जीवन के एक अंश को व्यतीत कर रहे हैं। इसके सर्वोत्तम उदाहरणों में से एक द्वितीय कोटि के प्रणय-सम्बन्धी उपन्यास के पाठक में प्राप्त होता है। इस प्रकार का कथा-साहित्य जिस रुचि को जाग्रत करता है उसका स्पष्टीकरण इस तथ्य से होता है कि पाठक अपने को नायक से एकात्म कर देता है, उसके विस्मयजनक साहसपूर्ण कार्यों की परम्परा में अपना ही जीवन व्यतीत करता है, नायिका के प्रेम-पाश में आबद्ध हो जाता है, और याद में आनन्दपूर्वक रहता है। उपन्यास वस्तुतः पाठक को प्रतिमा की रचना का कष्ट स्वयं किए बिना दिवास्वप्न देखने के प्रलोभन का उपभोग कराता है"।[1]

एकात्मीकरण मनोसृष्टि का एक रूप है। उपन्यासों, साहसपूर्ण कथाओं और नाटकों के पाठक तथा नाटक और चलचित्रों को देखने वाले भी महत्वपूर्ण चित्रित पात्रों के साथ अपने को अभिन्न करने में प्रवृत्त होते हैं, तथा इस प्रकार कल्पना में थोड़ी देर के लिए अपनी आपत्तियों और अरोचक अनुभवों से पलायन कर जाते हैं। एकात्मीकरण एक प्रकार का दिवास्वप्न है। यह अतृप्त इच्छाओं की काल्पनिक तृप्ति का साधन है। यह कठोर सत्यों, शोकों और आपत्तियों की दुनिया से काल्पनिक पलायन करने का मार्ग प्रदान करता है। कला को समझने में एकात्मीकरण एक महत्वपूर्ण तत्व है।

२१. यौक्तिकीकरण या मिथ्या युक्ति का आविष्करण (Rationalization)

लोग अपनी निर्बलताओं, भूलों या अपराधों को सह नहीं सकते। वे उनके अन्दर आत्म-प्रताड़ना (Self-reproach) उत्पन्न करते हैं। वे उनसे पलायन करना चाहते हैं। इसलिये वे अपने दोषों का यौक्तिकीकरण करते हैं। वे ऐसे तरीकों से उनके स्पष्टीकरण का प्रयत्न करते हैं कि जो उन्हें अपने और दूसरों के सम्मुख अधिक स्वीकार्य बना सकें। यह प्रक्रिया यौक्तिकीकरण कहलाती है। यह उस वास्तविकता से पलायन करने का मार्ग देती है जिसमें कल्पना और संवेग की अपेक्षा सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार विचारने

[1] उन्माद का मनोविज्ञान : पृ० १५८-२१

की अधिक आवश्यकता होती है। "यौक्तिकीकरण एक सूक्ष्म प्रक्रिया है, यह मौलिक प्रेरक को छिपाते हुए स्वीकार्य युक्तियाँ देता है। सबसे अधिक प्रभावशाली प्रलोभन (Temptations) वे हैं जो प्रच्छन्न (Disguised) होकर आते हैं"।[१] किसी कारखाने का व्यवस्थापक अपने ही भतीजे की नियुक्ति किसी नौकरी में करके अन्य अधिक योग्य प्रार्थियों के रहते हुए उसे प्राथमिकता (Preference) देता है। वह उसका औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हुए कहता है कि वह अपने नीचे काम करने के लिए एक विश्वासपात्र व्यक्ति को चाहता है। विद्वत्ता और व्यावसायिक कुशलता की अपेक्षा विश्वासपात्रता अधिक अच्छी योग्यता है। इस प्रकार वह व्यक्ति अपने कार्य की यौक्तिकता को प्रमाणित कर देता है और अपने सच्चे प्रेरक को छिपा देता है।

२२. प्रक्षेपण (Projection)

अधिकार प्राप्ति में, सामाजिक स्वीकृति (Social approval) की प्राप्ति में या किसी प्रबल इच्छा की पूर्ति में असफलता आंशिक रूप में यौक्तिकीकरण के एक रूप प्रक्षेपण के द्वारा दूर की जा सकती है। इसमें यह कल्पना की जाती है कि हमारी अपनी निर्बलता, कमी या कष्ट किसी अन्य काल्पनिक या वास्तविक वस्तु या व्यक्ति के कार्य का परिणाम है। "कठिनाई को अपनी ही कमी के अतिरिक्त किसी अन्य कारण में प्रक्षिप्त करने की एक सार्वभौम प्रवृत्ति होती है। टेनिस में जब हम गेंद पर आघात नहीं कर पाते तो हम जिज्ञासापूर्वक रैकेट, गेंद, या जाली की तरफ देखते हैं। भोंडा मिस्त्री अपने औज़ारों को दोष देता है। जब हम परीक्षा में असफल हो जाते हैं तो प्रश्नों को अन्यायपूर्ण बतलाते हैं। यदि कोई सुरापान का अभ्यस्त है तो इस आदत को पैतृक बताता है। यदि वह कुछ नहीं कर पाया है तो इसका कारण वह अवसर का न मिलना बताता है। प्रक्षेपण के द्वारा हम अपनी असफलताओं और कमियों को स्वीकार करने के फलस्वरूप होने वाली चिड़चिड़ाहट से त्राण पाते हैं"।[२] लोग अपने दोषों को स्वीकार नहीं करते, अन्य वस्तुओं और लोगों में

[१] गेट्स : प्रारम्भिक मनोविज्ञान : पृ० २१७-२१८

[२] गेट्स : प्रारम्भिक मनोविज्ञान : पृ० २१८-२१

उन्हें प्रक्षिप्त करते हैं, और अपनी ही अयोग्यता तथा अकार्यक्षमता के लिए उन पर दोषारोपण करते हैं। प्रक्षेपण अपनी कमी, निर्बलता, अपराध या अतृप्त इच्छा से उत्पन्न होनेवाली दबी हुई ग्रन्थि के फलस्वरूप पैदा होने वाली आत्म-प्रताड़ना से कल्पित पलायन करने का मार्ग है।

२३. कला के मूल्यांकन में कल्पना (Imagination in Art Appreciation).

कला-कृतियों के आस्वादन में दिवास्वप्न का भी एक तत्व होता है। "उपन्यास पढ़ना लेखक के द्वारा प्रदत्त सामग्रियों की सहायता से दिवास्वप्न देखना है, और उन्हीं प्रेरकों को तृप्त करता है। उपन्यास में वास्तव में जनप्रिय होने के लिये एक सच्चा नायक या नायिका का होना आवश्यक है—उसे ऐसा होना चाहिये जिसके साथ पाठक अपना ऐकात्म्य कर सके। निम्न श्रेणी के पाठक के आत्म-सम्मान को कथा के कुलीन, उच्च या रूपवान् पात्र से ऐकात्म्य करने में चोट पहुँचती है।"[1] कला-कृतियों का मूल्यांकन करने में एकात्मीकरण (Identification) होता है। प्रणय-कथाओं और साहसपूर्ण कहानियों के पाठक और नाटक तथा चलचित्रों के दर्शक भी स्वयं का नायक या नायिका से एकात्म करते हैं और थोड़ी देर के लिये अपनी विपत्तियों से कल्पित पलायन कर जाते हैं।

कला के मूल्यांकन में समानुभूति (Empathy) होती है। समानुभूति किसी वस्तु में "अपनी अनुभूति करना (Feeling oneself into something) है।" "दीर्घकाय स्तम्भों को दर्शक को भार और दृढ़ता की अनुभूति देनी चाहिये; तुंग चापों को, उत्कर्ष की; योद्धा की आकृति को, यह अनुभूति कि हम स्वयं ऊँचे कार्य कर रहे हैं; इत्यादि" (ड्रो)। कलात्मक सृष्टि में कोई ऐसी बात होनी चाहिये जो दर्शक के अन्दर एक प्रिय संवेग को जाग्रत करे, जिसके साथ वह अपना ऐकात्म्य करे और जिसमें उसे आनन्द प्राप्त हो। कलाकृति में संवेगोद्दीपन (Emotional appeal) का गुण

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ५१२

होना चाहिये। हास्यरस का संगीत आपको हँसाता है। शोकमय संगीत आपको रुलाता है।

कला के मूल्यांकन में बुद्धि को रुचने का भी प्रभाव (Intellectual appeal) होता है। कालिदास की शकुन्तला संवेग को ही नहीं बल्कि बुद्धि को भी रुचती है। "बौद्धिक तृप्ति अंशतः प्रस्तुत वस्तुओं में होने वाली वस्तुगत रुचियों (Objective interests) को मिलती है, अंशतः कर्म-कौशल (Workmanship) में रुचि को, और अंशतः समस्या हल करने के रूप में प्रभुत्व के प्रेरक का।"[1] कला के आस्वादन में कर्मकौशल (Workmanship), शिल्पकौशल (Craftsmanship), हल की हुई समस्या, तथा प्राप्त आदर्श की बौद्धिक प्रशंसा का समावेश होता है। सौन्दर्यात्मक मूल्यों (Aesthetic values) की बौद्धिक प्रशंसा के बिना कला की आलोचना ऊँचे स्तर पर नहीं पहुँच सकती। विशेषतया आधुनिक समस्यात्मक उपन्यासों (Problem novels) और समस्यात्मक नाटकों (Problem plays) को पूरी तरह समझने में समस्याओं का बौद्धिक विवेचन आवश्यक रहता है।

२४. कला-सृष्टि में कल्पना (Imagination in Creative Art)

आविष्कारात्मक उत्पादन (Inventive production) में रचनात्मक सौंदर्य-कल्पना होती है। उसे कलाविद की स्वयं के ऊपर आरोपित शर्तों से सामंजस्य रखना चाहिये। उदाहरणार्थ, सौंदर्य-कल्पना को कविता और संगीत में लय और ताल (Rhyme and rhythm) के नियमों का अनुसरण करना चाहिये। इन नियमों को वास्तविक जगत की वस्तुगत शर्तें नहीं समझा जाना चाहिये। उन्हें कलाविद् के आत्मगत नियम मानना चाहिये। रचनात्मक आविष्कार में नियंत्रण के तत्व के होने के बावजूद प्रतिभावान् कलाविद् अपने कार्य को खेल बना देता है। रचनात्मक कल्पना उसे आनन्द देती है, आविष्कारात्मक उत्पादन स्वयं उसको रोचक लगता है। पूरी हो जाने पर कला-कृति उसके आनन्द में अभिवृद्धि करती है। स्वयं रचनात्मक

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० २१३

कर्म कलाकार के लिये असीम आनन्द का उद्गम है। वह अपनी सामग्रियों का प्रहस्तन (Manipulation) पसंद करता है, तथा उसकी क्रीड़ा-प्रियता (Playfulness) उसकी मौलिकता को प्रदर्शित करती है। प्रतिभावान् कलाकार काम कभी नहीं करता, बल्कि केवल खेल करता है।

कला-सृष्टि में विभिन्न स्रोतों से प्रासंगिक सामग्रियों को एकत्रित करना होता है। लेकिन यह संश्लेषणात्मक प्रक्रिया केवल आधी चीज़ है। मछली और स्त्री के विचार से मत्स्यनारी की कल्पना नहीं हो जाती। "सामग्रियों के सन्निधान (Juxtaposition) से सार्थक समष्टि (Meaningful whole) तक पहुँचने के लिये एक लम्बी कुदान लेनी पड़ती है। प्ररूपतः (Typically) सार्थक समष्टि तो भ्रूणावस्था (Embryonic state) में सब सामग्रियों को ढूंढ़ने से पूर्व ही वर्तमान रहती है, क्योंकि पहिले से वर्तमान समष्टि को भरने के लिये ही उनकी आवश्यकता होती है। एक रूप-रेखा का आविष्कार किया जाता है और उसमें ठीक बैठाने के लिये ही सामग्री को एकत्रित किया जाता है। विविध घटनाओं को भरने से पूर्व कहानी का कथानक रूपरेखा में वर्तमान होता है"।[1]

कला-सृष्टि में सामान्यतया निम्नलिखित चार चरण माने गये हैं :—

१. *तय्यारी (Preparation)*—समस्या को चारों ओर से देखा जाता है, तथा सामग्रियाँ एकत्रित की जाती हैं, लेकिन यह नहीं मालूम हो सकता कि उन्हें कैसे संयुक्त किया जाय।

२. *सेना (Incubation)*—इस अवधि में समस्या पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

३. *प्रकाश (Illumination)*—एक चमक।

४. *सत्यापन या विस्तृतीकरण (Verification or elaboration)* प्रथम, समस्या का निरीक्षण और विश्लेषण किया जाता है, तत्पश्चात् सारी प्राप्य सूचना को स्मृति से एकत्रित किया जाता है, तथा इस करने के

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ११६

प्रयत्न किये जाते हैं। कई हल दोषपूर्ण मालूम होते हैं और अस्वीकृत कर दिये जाते हैं। यह तय्यारी का चरण है। इसके बाद सेने का चरण आता है। इस अवधि में समस्या पर जान-बूझ कर कोई काम नहीं किया जाता। कुछ कहते हैं कि इस अवधि में अज्ञात रूप से काम होता रहता है। तय्यारी और सेने से एक चमक, एक प्रकाश, या सम्पूर्ण योजना में एक अन्तर्दृष्टि (Insight) प्राप्त होती है। इसके बाद विस्तृतीकरण और सत्यापन का चरण आता है। इसमें चुनी हुई सामग्रियाँ रूपरेखा में भर दी जाती हैं।

आविष्कार (Invention) में एक सामाजिक तत्व (Social factor) होता है। कलाकार किसी आवश्यक सामाजिक समस्या का हल ढूँढ़ता है। ख्याति और समृद्धि के पुरस्कार उसे प्रोत्साहित कर सकते हैं। ये सामाजिक पुरस्कार हैं। इस प्रकार आविष्कारात्मक उत्पादन अंशतः एक सामूहिक क्रिया (Group activity) है। कलात्मक आविष्कारों में सामाजिक तत्व महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। किन्तु वे कलाकार की व्यक्तिगत अन्तर्दृष्टि से गौण होते हैं। एक सच्ची कलाकृति कलाकार की प्रतिभा और रचनात्मक अन्तर्दृष्टि की अभिव्यक्ति होती है।

अध्याय १३

विचार (THINKING)

१. विचार का स्वरूप (Nature of Thinking)

विचार प्रातीकिक प्रक्रियाओं (Symbolic processes) की सहायता से जगत का मानसिक प्रहस्तन (Manipulation) है। इसमें स्मृति कल्पना और तर्क या समस्या को हल करने का उपयोग होता है।[1]

वुडवर्थ के मतानुसार विचार में निम्नलिखित तत्व होते हैं :—

(१) किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना (Orientation towards a goal);

[1] मन : मनोविज्ञान, पृ० ११०

(२) लक्ष्य-प्राप्ति के हेतु इधर-उधर मार्ग ढूँढना (Seeking this way or that for realizing the goal);

(३) पहिले के निरीक्षित तथ्यों का प्रत्याह्वान (Recall of previously observed facts);

(४) प्रत्याहृत तथ्यों को नये नमूनों में बाँधना (Grouping these recalled facts in new patterns);

(५) आन्तरिक वाक्-गतियां और मुद्रायें (Inner speech movements and gestures);

विचार के प्रत्येक कार्य में इन सभी क्रियाओं का वर्तमान रहना आवश्यक नहीं है। अस्तव्यस्त विचार में कोई विशेष लक्ष्य नहीं भी हो सकता। कभी-कभी विचार आन्तरिक वाणी (Inner speech) के बिना भी हो सकता है। लेकिन सामान्यतया जब हम किसी सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या को हल करने के लिये विचार करते हैं तो विचार में पहिले चार तत्व वर्तमान रहते ही हैं। समस्या का हल विचार का लक्ष्य होता है। विचार सामान्यतया किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। हम समस्या को हल करने के लिये इस या उस साधन का विचार करते हैं। हम समस्या से सम्बन्ध रखने वाले अतीत अनुभव के तथ्यों का प्रत्याह्वान करते हैं। विशेष समस्या का हल निकालने के लिये उन्हें हम नये नमूनों में रखते हैं। हम अश्रव्य वाक्-गतियों (Inaudible speech movements) के द्वारा अपने विचार को आंशिक अभिव्यक्ति दे सकते हैं; अथवा विचार को सरल बनाने के लिये हम एक विशेष मुद्रा (Gesture) को अपना सकते हैं। इस प्रकार अन्त में हम समस्या का हल निकालने में फलीभूत हो सकते हैं।

"विचार के दो प्रमुख लक्ष्य होते हैं, अनुसन्धान (Discovery) और आविष्कार (Invention)। यह सत्य को ढूँढता है और किसी अच्छी चीज़ की योजना बनाने का प्रयत्न करता है" (वुडवर्थ)। विचार में सामान्यतया एक लक्ष्य-तत्परता (Goal set) पाई जाती है। यह किसी

लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। वह किसी सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या का हल ढूँढ़ता है। वह एक नये सत्य को ढूढ़ने का प्रयास करता है। वह निरीक्षित या प्रत्याहृत सामग्री में उन्हें नये नमूनों में आबद्ध करके नवीन सम्बन्ध का अनुसन्धान करने की कोशिश करता है। वह विभिन्न कालों और स्थानों में निरीक्षित प्रासंगिक तथ्यों का प्रत्याह्वान करता है, उन्हें नये नमूनों में सजाता है, और उनमें किसी नवीन चीज़ का अनुसन्धान करता है। इस प्रकार विचार में स्मृति और कल्पना का समावेश होता है। इसमें विश्लेषण और संश्लेषण शामिल होते हैं। इसमें निरीक्षित या प्रत्याहृत तथ्यों का उनके संघटकों (Constituents) में विश्लेषण होता है। इसमें चुने हुये संघटकों का अवसर से सम्बन्धित नये नमूने में संश्लेषण होता है।

वुडवर्थ की भाषा में विचार में पश्चदृष्टि और अग्रदृष्टि का समावेश होता है। यह पीछे की ओर भूतकाल को देखता है और अतीत अनुभव की प्रासंगिक सामग्री का प्रत्याह्वान करता है। यह पश्चदृष्टि है। विचार में अग्रदृष्टि भी होती है। यह सामग्रियों के नये संयोग के छिपे हुये परिणामों को देखता है और नया निष्कर्ष निकालता है। तर्क में निरीक्षित या प्रत्याहृत प्रासंगिक सामग्रियों से क्या नया निष्कर्ष निकल सकता है यह देखा जाता है। इस प्रकार विचार में पश्चदृष्टि और अग्रदृष्टि का समावेश होता है। कभी-कभी विचार में स्थानांतरण (Transfer) भी होता है। अतीत अनुभव से प्राप्त अथवा अधिक बुद्धिमान् लोगों से सीखा हुआ कोई नियम, सिद्धान्त या उसूल किसी नई समस्या में लागू किया जाता है। इसे स्थानांतरण कहते हैं।

विचार में प्रत्याहार (Abstraction) का समावेश होता है। यह मूर्त (Concrete) से अमूर्त (Abstract) की ओर जाता है। यह ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष की मूर्त विस्तृत बातों को छोड़ देता है तथा वस्तुओं के सामान्य लक्षणों पर जमता है। इस प्रकार यह विशेष प्रत्यक्षीकृत तथ्यों से उठकर निष्प्रतिम प्रत्ययों (Imageless concepts) पर पहुँच जाता है। पहिले विचार ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष से बंधा रहता है। तत्पश्चात् यह उठकर कल्पनात्मक विचार (*Imaginative thinking*) के स्तर पर पहुँच जाता है जो

मूर्त या शाब्दिक प्रतिमाओं (Concrete or verbal images) के माध्यम से चलता है। अन्ततः यह निष्प्रतिम विचार (Imageless thought) के स्तर में पहुँच जाता है। विचार सांवेदनिक प्रतिमाओं के बिना किया जा सकता है। निष्प्रतिम विचार हमारे बौद्धिक जीवन में ओत-प्रोत रहता है। सांवेदनिक प्रतिमायें (Sensory images), शाब्दिक प्रतिमायें (Verbal images), या अमूर्त प्रतिमायें (Abstract images) सामान्यतया विचार-प्रक्रिया की संगिनी होती हैं। लेकिन यह मत कि विचार प्रक्रिया के साथ सदैव सांवेदनिक या कम से कम शाब्दिक प्रतिमायें रहती हैं, मिथ्या है। सांवेदनिक कल्पना विचार के लिए अनिवार्य नहीं है। यह उच्चतर अमूर्त विचार के लिए उपयोगी भी नहीं कही जा सकती।

२. तर्कना (Reasoning)

तर्कना विचार का रूप है। यह विचारात्मक क्रिया है। वुडवर्थ कहता है, "तर्कना को मानसिक अनुसन्धान (Mental exploration) और कल्पना को मानसिक प्रहस्तन (Mental manipulation) कहा जा सकता है।" स्वभावतः तर्कना का मानसिक अनुसन्धान तथा प्रत्यक्षीकृत या प्रत्याहृत सामग्री में नवीन सम्बन्ध खोजना है। यह गत्यात्मक (Motor) अनुसन्धान का स्थान लेता है। मान लीजिए कि आप किसी नई जगह में रास्ता भूल गए हैं। आप वास्तविक गतियों से विभिन्न मार्गों का अनुसन्धान कर सकते हैं। अथवा आप बैठकर सोच सकते हैं। आप मन में नवीन परिस्थिति का अनुसन्धान कर सकते हैं; और सुराग लगाने की कोशिश कर सकते हैं। एक के बाद दूसरे सुराग का अनुसरण करके अन्त में आपको सही मार्ग मिल सकता है जो आपको आपके गन्तव्य स्थान तक पहुँचा देगा। "एक के बाद दूसरे सुराग का अनुसरण करने वाली तर्कना निश्चित रूप से प्रयत्न और भूल की विधि है। इसका प्रयत्न और भूल मात्र से भेद इसमें है कि यह गत्यात्मक अनुसन्धान की अपेक्षा विचार करके सुरागों का अनुसरण करती है। यह पहिले प्रत्यक्षीकृत तथ्यों के प्रत्याह्वान से उनका अनुसरण करती है" (वुडवर्थ)। इससे समय और शक्ति की बचत होती है। यह हमें गत्यात्मक

अनुसन्धान के शारीरिक परिश्रम से बचाती है। फिर भी यह गत्यात्मक अनुसन्धान की तरह की प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया से सादृश्य रखती है। तर्कना में प्रयत्न और भूल के व्यवहार के सामान्य नमूने की झलक मिलती है। यह एक लक्ष्य की ओर उन्मुख होती है। इसमें एक लक्ष्य-तत्परता (Goal set) होती है। यह अन्यान्य साधनों की परीक्षा करके लक्ष्य तक पहुँचती है। यह समस्या का समाधान प्रत्यक्षीकृत या प्रत्याहृत सामग्री में गर्भित बातों को देखकर तथा उसे नये नमूनों में रखकर करती है। किन्तु यह प्रयत्न और भूल के व्यवहार से भिन्न है। प्रथम, इसमें गत्यात्मक अनुसन्धान नहीं होता। तर्कना में वर्तमान परिवेश (Environment) का वस्तुतः अनुसन्धान नहीं किया जाता। द्वितीय, लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्गों का सदैव वास्तविक-निरीक्षण नहीं किया जाता। अतीत अनुभव से उनका प्रत्याह्वान होता है। सुरागों का वास्तविक प्रहस्तन नहीं होता, बल्कि समस्या के हल के लिये उनका विचार किया जाता है। इस प्रकार विचार या तर्कना प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया से उसके सामान्य नमूने में सादृश्य रखती है, लेकिन इसकी प्रकृति उससे बिलकुल भिन्न है। किन्तु कभी-कभी तर्कना हल पर नहीं भी पहुँचती। इस प्रकार ताज़े तथ्यों के निरीक्षण और वास्तविक गत्यात्मक अनुसन्धान के लिये रास्ता खुल जाता है। यदि आप तर्कना के द्वारा किसी नये स्थान में अपना मार्ग नहीं पा सकते, तो आपको नये सुरागों की ढूँढ़ में इधर उधर फिरना पड़ेगा।

तर्कना में निरीक्षण या प्रत्याह्वान या दोनों से प्राप्त प्रासंगिक सामग्रियों को जोड़ना या सूक्ष्मतया देखना पड़ता है ताकि उनके संयोग से नया निष्कर्ष मिल सके। तत्पश्चात् निष्कर्ष की परीक्षा या सत्यापन (Verification) किया जाता है। "तर्कना का सबसे महत्वपूर्ण चरण है निष्कर्ष निकालना। निष्कर्ष निकालना वस्तुओं के संयोग में गर्भित बातों (Implications) का पता लगाना है—वस्तुएँ चाहे तथ्य हों, चाहे सिद्धान्त हों, चाहे विचार हों, चाहे वाक्य हों.........। समग्र प्रक्रिया में कई अंशभूत प्रक्रियाएँ होती हैं:

१. सामग्री का संग्रह करना (Gathering the data)।

२. सामग्री का संयोग करना (Combining the data)।

३. संयुक्त सामग्री की उपलक्षणाओं को देखना (Seeing the implications of the combined data)।

४. इस प्रकार उपलब्ध निष्कर्ष की परीक्षा करना (Testing the conclusions so reached)।"[1]

तर्कना में पहिला चरण निरीक्षण या स्मृति या दोनों से समस्या से सम्बन्धित सामग्री का संग्रह करना है। दूसरे चरण में सामग्रियों को मिलाया जाता है, उन्हें परस्पर सम्बन्धित किया जाता है, और उनका सूक्ष्म निरीक्षण करके यह देखा जाता है कि उनका संयुक्त होने पर क्या अर्थ निकलता है या उनसे क्या उपलक्षित होता है। तीसरा तर्कना का महत्त्वपूर्ण चरण है। इसमें संयुक्त सामग्रियों की उपलक्षणायें (Implications) देखी जाती हैं। इसमें संयुक्त सामग्रियों में नया सम्बन्ध मालूम किया जाता है। तत्पश्चात निष्कर्ष का, यदि सम्भव हो सके तो नवीन निरीक्षण से सत्यापन (Verification) किया जाता है। तर्कना में मुख्य बात सामग्री का मानसिक अनुसन्धान और नये सम्बन्ध की प्राप्ति है। मनोविज्ञान मुख्यतया अनुमान (Inference) की प्राप्ति कराने वाली अनुसन्धानात्मक प्रक्रिया का अनुशीलन करता है। तर्कशास्त्र मुख्यतया अकेले अनुमान का अनुशीलन करता है।

३. क्या तर्कना प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया है? (Is Reasoning a Trial and Error Process?)

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि तर्कना विचार के स्तर पर एक प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया है। अन्यों का मत है कि तर्कना प्रयत्न और भूल का नितान्त प्रतिवाद (Antithesis) है। प्रयत्न और भूल के व्यवहार में हम देखते हैं कि पशु किसी लक्ष्य के प्रति (यथा, पिंजरे से बाहर आने और भोजन पाने के प्रति) उन्मुख होता है, लेकिन लक्ष्य को जाने वाला पथ उसे स्पष्ट

[1] मनोविज्ञान, १९४४ : पृ० ४२३

दृष्टिगोचर नहीं होता। वह परिस्थिति का अनुसन्धान करता है, कुछ पथों को देखता है और एक के बाद दूसरे की परीक्षा करता है, कई बार विफल होता है, और अन्त में एक अच्छा पथ देखकर लक्ष्य को प्राप्त करता है। पशु मार्गों को देख कर स्थूल गतियों (Overt movements) से लक्ष्य को पाने का प्रयत्न करता है। प्रारूपिक (Typical) प्रयत्न और भूल के व्यवहार में वस्तुतः दिखाई देने वाले उपायों का अनुसरण करने के लिये स्थूल पैशिक गतियाँ की जाती हैं तथा उसमें 'समग्र व्यापार का यह कोशिश-करो यह कोशिश करो का नमूना' रहता है। तर्कना में स्थूल पैशिक गतियाँ नहीं होतीं, और न उसमें सदैव उपायों का वास्तविक प्रत्यक्षीकरण ही होता है। "उसमें प्रयत्न और भूल का सामान्य नमूना लक्षित होता है। अपनी कार्य-पद्धति में यह प्रयत्न और भूल का बिल्कुल प्रतिवाद है, क्योंकि उसमें उपायों की तुरन्त हिलडुल कर परीक्षा करने के स्थान पर उनका विचार होता है, और इसलिये भी कि उसे कुछ उपाय सीधे निरीक्षण के स्थान पर स्मृति से प्राप्त होते हैं। दोनों ही दशाओं में लक्ष्य-तत्परता (Goal set) होती है जो क्रिया को सीमाओं के अन्दर रखती है, लक्ष्य से अधिक दूर भटकने से उसे रोके रखती है, तथा अनुसन्धान को उन्हीं उपायों तक सीमित रखती है जो कुछ आशाजनक हैं"।[1] तर्कना में प्रत्यक्षीकरण या स्मृति से प्राप्त सुरागों का विचार होता है, तथा उनका बार-बार संयोग करके और उनकी उपलब्धियों को देखकर नवीन निष्कर्ष प्राप्त करने का प्रयत्न होता है।

यद्यपि लक्ष्य-तत्परता या लक्ष्योन्मुखता को समाविष्ट करने के कारण तर्कना प्रयत्न और भूल के व्यवहार से साम्य रखती है, तथापि वह प्रयत्न और भूल के व्यवहार का बिल्कुल प्रतिवाद है, क्योंकि उसमें प्रत्यक्षीकृत या प्रत्याहृत सुरागों का अर्थ विचारने, सामग्रियों के संयोग की उपलब्धियाँ देखने, तथा एक नये निष्कर्ष की प्राप्ति करने का समावेश होता है। इसका प्रयत्न और भूल के व्यवहार में अभाव पाया जाता है।

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, १९४७, पृ० ४२१

४. विचार तथा कल्पना (Thinking and Imagination)

वुडवर्थ कल्पना को मानसिक प्रहस्तन तथा विचार या तर्कना को मानसिक अनुसन्धान परिभाषित करता है। कल्पना में मन अतीत अनुभव के तत्वों का प्रत्याह्वान और उनका नये नमूनों में संयोग करता है। कल्पना में हम बाह्य वस्तुओं को वस्तुतः उलटते-पलटते और सजाते नहीं हैं, बल्कि मन में उन्हें उलटते-पुलटते और नये नमूने में सजाते हैं। इस प्रकार हम कुर्सियों और मेज़ों का मन में प्रहस्तन करते हैं और वास्तविक प्रहस्तन किये बिना ही दावत के लिये उन्हें सजाते हैं। अतः कल्पना को मानसिक प्रहस्तन कहते हैं। यह गत्यात्मक प्रहस्तन का स्थानापन्न है। दूसरी ओर, तर्कना जो कि विचार का प्ररूप है, मानसिक अनुसन्धान है। आपका हथौड़ा खो गया है। वास्तव में उसे इधर-उधर ढूँढ़े बिना आप सुराग़ों का विचार करते हैं और यह अन्दाज़ लगाते हैं कि आपने आख़िरी मर्तबे उसे कहाँ रखा था। यह मानसिक अनुसन्धान है। यह गत्यात्मक अनुसन्धान का स्थानापन्न है।

विचार सामन्यतया किसी लक्ष्य या प्रयोजन से संचालित होता है। यह किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होता है। लक्ष्य, चाहे सैद्धान्तिक हो चाहे व्यावहारिक, साहचर्य (Association) का नियंत्रण करता है। अतः विचार में नियंत्रित साहचर्य का समावेश होता है। स्वच्छन्द कल्पना में मुक्त साहचर्य (Free association) का समावेश होता है। उदाहरणार्थ, दिवास्वप्न में मुक्त साहचर्य होता है जिसका कोई प्रयोजन पथप्रदर्शन नहीं करता। लेकिन सैद्धान्तिक या व्यावहारिक उपयोगी कल्पना, जो किसी उपयोगी लक्ष्य की ओर संचालित होती है, में नियंत्रित साहचर्य का समावेश होता है। इस प्रकार विचार में सदैव नियंत्रित साहचर्य होता है, जबकि कल्पना में मुक्त साहचर्य और नियंत्रित साहचर्य दोनों होते हैं।

विचार में स्मृति और कल्पना का समावेश होता है। इसमें अतीत अनुभव के प्रासंगिक तथ्यों का प्रत्याह्वान और किसी लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु एक नये नमूने में उसका संयोग किया जाता है। लेकिन विचार स्मृति और कल्पना की अपेक्षा एक उच्च स्तर की प्रक्रिया है। स्मृति और कल्पना की

मानसिक प्रक्रियायें संवेदनिक प्रतिमाओं की सहायता से होती हैं। लेकिन विचार जो सामान्यतया संवेदनिक या शाब्दिक प्रतिमाओं की सहायता से होता है, उनके बिना भी हो सकता है। अमूर्त विचार (Abstract thought) सभी प्रकार की प्रतिमाओं से मुक्त होता है। यह निष्प्रतिम (Imageless) होता है। यह निष्प्रतिम प्रत्ययों (Concepts) की सहायता से किया जाता है।

५. तर्कना का मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र (Psychology and Logic of Reasoning)

मनोविज्ञान तर्कना की प्रक्रिया (Process) का अध्ययन करता है। तर्कशास्त्र तर्कना या युक्ति के फल (Product) का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान हमें बताता है कि हम वास्तव में सोचते कैसे हैं, चाहे हमारा सोचना सही हो चाहे ग़लत। इसका विचार के संवाद (Consistency) से कोई सम्बन्ध नहीं है। मनोविज्ञान तर्कना की अनुसन्धानात्मक प्रक्रिया का अध्ययन करता है जिसकी समाप्ति अनुमान में होती है। अनुमान (Inference) दो दिये हुए आधार-वाक्यों (Premises) से निष्कर्ष (Conclusion) निकालना है। तर्कशास्त्र अनुमान की प्रक्रिया का अध्ययन करता है। दो दिये हुये आधार-वाक्यों और निष्कर्ष से, जो क्रम में रखे गये होते हैं, न्यायवाक्य (Syllogism) बनता है। उदाहरणार्थ :

सब मनुष्य मरणशील हैं;
सुकरात एक मनुष्य है;
∴ सुकरात मरणशील है।

निष्कर्ष या निगमन आधार वाक्यों से अनुमित होता है। यह दो संयुक्त आधारवाक्यों में गर्भित (Implied) दिखाई देता है। तर्कशास्त्र की दृष्टि से, दो या अधिक निर्णयों या सामग्रियों (Data) से उनके समान तत्व के माध्यम से एक नवीन निर्णय अनुमित करना तर्कना है। इसमें सामग्रियों को मिलाकर रखा जाता है और उनसे एक नया सम्बन्ध उपलब्ध किया जाता है।

६. तर्कना के भेद (Kinds of Reasoning)

तर्कशास्त्र की दृष्टि से तर्कना के तीन भेद होते हैं : आगमन (Induction), उपमान (Analogy) और निगमन (Deduction)। आगमन विशेष निरीक्षित तथ्यों से एक सामान्य सिद्धान्त प्राप्त करना है। उपमान विशेष निरीक्षित तथ्यों से साधर्म्य के आधार पर एक नया विशेष तथ्य निकालता है। निगमन किसी सामान्य सिद्धान्त को एक विशेष तथ्य में लागू करना है। इस प्रकार तर्कना आगमनात्मक, उपमानात्मक या निगमनात्मक हो सकती है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से, तर्कना योजना बनाना हो सकती है या समझना। पहिली दशा में, हमारी एक इच्छा आवश्यकता होती है जिसकी तृप्ति या पूर्ति करनी है और जिसके लिए प्रत्यक्षीकरण की सामग्रियाँ अपर्याप्त होती हैं। "यह वह प्रक्रिया है जो आविष्कार और खोज, योजना और प्ररचना (Designing) में प्रस्तुतः होती है। विचार-रचनायें समय और सामग्रियों की बचत करती हैं।"[1] दूसरी दशा में हम प्राकृतिक घटनायें या तथ्य जिस रूप में होते हैं उसे समझने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की तर्कना में हम सृष्टि के प्रवाह को बदलना अपना सीधा लक्ष्य नहीं बनाते, बल्कि वह कैसे काम करता है, इसे अपना लक्ष्य बनाते हैं। वैज्ञानिक तर्कना नवीन सत्यों की खोज को अपना लक्ष्य बनाती है।

पिल्सबरी (Pillsbury) इस बात की ओर संकेत करता है कि तर्कना के दोनों रूपों की उत्पत्ति प्रगति के रुक जाने से होती है। किसी वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन की इच्छा उन्हें प्रेरित करती है। दोनों की उत्पत्ति विफल प्रतिक्रिया से होती है। सक्रिय योजना में हम वर्तमान परिस्थिति में वांछित परिवर्तन करने का प्रयास करते हैं। हम इच्छित परिवर्तन को तर्कना से प्राप्त करते हैं। समझने में (अवगति में) कोई विचित्र लगने वाली घटना या तथ्य स्पष्ट किया जाता है।

[1] पिल्सबरी : मनोविज्ञान के मूलतत्व, पृ० ४८७।

७. तर्कना या समस्या-समाधान के चरण (Steps in Reasoning or Problem-solving)

तर्कना चिन्तनात्मक विचार (Reflective thinking) है। इसका लक्ष्य किसी समस्या का समाधान करना होता है। कोई सरल या जटिल, सैद्धान्तिक या व्यावहारिक समस्या होती है जो समाधान चाहती है। समाधान पहिले से तैय्यार नहीं होता। ऐंद्रिय प्रत्यक्ष से प्राप्त सामग्री में समस्या के हल की कुंजी नहीं मिलती। अतः समस्याजनक परिस्थिति चिन्तनात्मक विचार या तर्कना को जन्म देती है। वह प्रत्यक्षीकृत और प्रत्याहृत सामग्री की छानबीन करती है ताकि समस्या के हल पर प्रकाश पड़ सके। ड्रेवर तर्कना की मानसिक प्रक्रिया में चार चरण बतलाता है: (१) समस्या को समझना, (२) सक्रियतापूर्वक सुरागों का अनुसरण करना, (३) सूझा हुआ परिकाल्पनिक (अस्थायी)

और (४) परिणामों का अनुमान

(Verification)। समस्या को स्पष्टतया समझ लेना चाहिये अन्यथा उसे हल नहीं किया जा सकता। बुद्धिमत्तापूर्वक समझी हुई समस्या आधी सुलझ जाती है। उसे सभी सूक्ष्म बातों के साथ पूर्णतया समझ लेना चाहिए। जिस समस्या को भली भाँति नहीं समझा जाता उसके सही हल के लिये नासमझी के साथ अंधेरे में भटकना पड़ता है। इसमें झिझक और शंका होती है, लड़खड़ाना पड़ता है, और परिस्थिति क़ाबू में नहीं आती। समस्या जितनी पूरी तरह समझी जायगी, उसे हल करने में उतनी ही अधिक सुविधा होगी। तत्पश्चात् प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त तथा स्मृति से प्रत्याहृत सामग्री को भली भाँति समझ लेना चाहिये। सुरागों का तर्कविधि से अनुसरण करना चाहिए और उन्हें परस्पर सम्बन्धित करना चाहिए। फिर मन को एक हल सूझता है। यह एक परिकाल्पनिक (अस्थाई) हल होता है। परिकल्पना (Hypothesis) से निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यदि अनुमित निष्कर्ष वास्तविक निरीक्षण के तथ्यों से मेल खाते हैं तो परिकल्पना सत्यापित (प्रमाणित) हो जाती है। ये तर्कना के चार चरण हैं।

वुडवर्थ निम्नलिखित चरण बतलाता है : (१) "सामग्री का संग्रह करना; (२) सामग्री को संयुक्त करना; (३) संयुक्त सामग्री की उपलक्षणायें (Implications) देखना; (४) इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष की परीक्षा करना।"[1]

८. तर्कना के प्रेरक (Motives of Reasoning)

वुडवर्थ तर्कना के निम्नलिखित प्रेरक बतलाता है :—

(१) किसी व्यावहारिक समस्या का हल (Solution of a practcial problem)—मान लीजिये कि आप जंगल में रास्ता भूल गये हैं। आपका मुकाबला एक नई परिस्थिति से होता है। आपको आवश्यक सामग्री खोजनी पड़ेगी और नई परिस्थिति की कुंजी मालूम करनी होगी। आपको अपने अतीत अनुभव के तथ्यों का प्रत्याह्वान करना होगा, प्रासंगिक तथ्यों को चुनना और अप्रासंगिक तथ्यों को हटाना होगा, और सामग्री को एक के बाद दूसरे नमूने में रखना होगा, तब तक जब तक आपको ऐसा नमूना न मिल जाय जो परिस्थिति को संभाल सके।

(२) यौक्तिकीकरण या अपनी औचित्य दिखाना (Rationalization or self-justification)—पूर्ववर्ती मामले में हम किसी व्यावहारिक समस्या को सुलझाने या क्या करना चाहिये, यह मालूम करने के लिये तर्कना करते हैं। लेकिन कभी-कभी हम तर्कना इसलिये करते हैं कि जो पहिले किया जा चुका है उसका औचित्य सिद्ध कर सकें। हम एक काम कर चुके हैं। इसका उस आदर्श से विरोध होता है जिसे समाज सामान्यतया स्वीकृत कर चुका है। स्वयं हम तथा अन्य लोग उसकी आलोचना करते हैं। अतः हम अपने काम का कोई युक्तियुक्त प्रेरक मालूम करने के लिये तर्कना करते हैं। हम तर्कना इसलिये करते हैं कि अपने कार्य को उचित सिद्ध कर सकें। हम किसी स्वीकार्य सामान्य सिद्धान्त को पाने का प्रयत्न करते हैं जो हमारे कार्य को स्पष्ट कर सके। यह यौक्तिकीकरण या अपना औचित्य सिद्ध करना कहलाता है।

[1] मनोविज्ञान, १९४४: पृ० ९२३

जब बच्चा शब्दों को समझना शुरू करता है, और जल्दी ही उसके बाद बातचीत करने लगता है तो निश्चय ही वह प्रत्यय बनाता है। पहिले वह सामाजिक परिवेश से सामान्य वस्तुओं के प्रत्ययों को आत्मसात् कर लेता है। वह प्रत्ययीकरण की प्रमुख वस्तुओं के प्रत्ययों का निर्माण करता है। वह उन वस्तुओं के प्रत्यय बनाता है जिनके साथ वह व्यावहारिक विधि से आचरण करता है।

तीन और बारह वर्ष के बीच बच्चा सर्वजीववाद (Animism) या मानवरूपतावाद (Anthropomorphism) और यथार्थवाद (Realism) या यंत्रवाद (Mechanism) के अनुसार भौतिक पदार्थों के प्रत्यय विकसित कर लेता है। जिन प्राकृतिक पदार्थों से उसका व्यावहारिक सम्बन्ध नहीं होता उन्हें वह अपने समान जीवित प्राणियों के तुल्य प्रत्ययित करता है। वह सूर्य, चन्द्रमा, तूफ़ान, वर्षा और अन्य समान पदार्थों के सर्वजीववादी प्रत्ययों का निर्माण करता है। लेकिन जिन भौतिक पदार्थों से उसका व्यावहारिक सम्बन्ध होता है उनके धर्मों के वह यंत्रवादी या यथार्थवादी प्रत्यय बनाता है। धीरे-धीरे वह 'दूध', 'चावल,' तथा व्यावहारिक उपयोग की अन्य वस्तुओं के यथार्थवादी प्रत्यय बना लेता है। बच्चे के मन में प्रकृति के सर्वजीववादी प्रत्ययों से यंत्रवादी प्रत्ययों का क्रमिक विकास होता है। उदाहरणार्थ, उसके गेंद, गुब्बारा, साइकिल, गुड़िया इत्यादि के प्रत्यय सर्वजीववादी होते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों वह उनका प्रहस्तन और उनका उपयोग करता है उसके प्रत्यय यंत्रवादी बन जाते हैं। प्रकृति का उसका प्रत्ययन सर्वजीववाद से यंत्रवाद में चला जाता है। पहिले वह भौतिक पदार्थों में मानवीय अनुभूतियों और इच्छाओं का आरोपण करता है। तत्पश्चात् वह उन्हें अनुभूतियों और इच्छाओं से शून्य जड़ पदार्थों के रूप में देखता है।

बच्चा अहंकेन्द्रीय (Egocentric) प्रत्ययों से यथार्थवादी प्रत्ययों में पहुँच जाता है। वह, जिस रूप में भौतिक पदार्थ उससे सम्बन्धित होते हैं उस रूप के प्रत्यय बनाता है। तत्पश्चात् वह उनके परस्पर सम्बन्धित रूपों के प्रत्यय

बनाता है। उदाहरणार्थ, बच्चा चलते समय सूर्य और चन्द्रमा को अपने साथ चलते देखता है। पहिले वह सोचता है कि वही स्वयं उनको चलाता है या वे उसका अनुसरण करते हैं। वह उनके अहंकेन्द्रीय प्रत्यय बनाता है। तत्पश्चात् वह उन्हें अन्य भौतिक पदार्थों से सम्बन्धित रूपों में सोचता है और उनके यथार्थवादी प्रत्ययों का निर्माण करता है। वुडवर्थ कहता है, "अहंकेन्द्रीय प्रत्यय वह है जो वस्तु को स्वयं व्यक्ति से सम्बन्धित करता है, जबकि यथार्थवादी प्रत्यय एक वस्तु को दूसरी से सम्बन्धित करता है। बच्चा धीरे-धीरे वस्तुओं को परस्पर क्रिया करते हुए या अन्यथा परस्पर सम्बन्धित रूप में देखने लगता है, और इस प्रकार यथार्थवादी प्रत्ययों का निर्माण प्रारम्भ कर देता है। अहंकेन्द्रीय प्रत्यय व्यक्ति की इच्छाओं से घनिष्टता रखते हैं, लेकिन यथार्थवादी प्रत्यय अधिक व्यावहारिक होते हैं, क्योंकि वस्तुओं के वास्तविक रूप से उनकी अधिक संगति होती है और इस प्रकार ये व्यक्ति को परिवेश पर अपने नियंत्रण को अधिक व्यापक बनाने में समर्थ करते हैं।"[1]

यथार्थवादी प्रत्यय भौतिक और सामाजिक परिवेश से सामंजस्य रखते हुये क्रमशः विकसित होते हैं। उनका प्रकृति से संवाद होना चाहिये और वस्तुओं के महस्तन में उन्हें काम देना चाहिये। उनकी सामाजिक समूह के स्वीकृत विचारों से संगति होनी चाहिये। इस प्रकार क्रमशः बालक के प्रत्यय यथार्थवादी हो जाते हैं।

बालक प्रत्ययों का सदृशीकरण, विश्लेषण, और प्रत्याहार से सामान्यीकरण करता है। वह नवीन का प्राचीन के साथ, अपरिचित का परिचित के साथ सदृशीकरण करता है। वह सामान्य प्रत्ययों का निर्माण सादृश्य के द्वारा साहचर्य (Association by similarity) से करता है। इस प्रक्रिया से वह उन पदार्थों के साधर्म्य को पहचानता है जो अभिन्न नहीं है तथा वह समान पदार्थों की जाति का प्रत्यय बनाता है। उसे समान पदार्थों का उनके संघटक गुणों में विश्लेषण करना पड़ता है, तथा मन को केवल समानताओं

[1] मनोविज्ञान, १९४५ : पृ० २४२

पर केन्द्रित करके उसे व्यावर्तक गुणों (Distinguishing qualities) से हटाना पड़ता है। यह प्रक्रिया प्रत्याहार कहलाती है। इस प्रकार बच्चा पदार्थों की विभिन्न जातियों के सामान्य प्रत्ययों का निर्माण करता है।

१४. प्रत्यय और प्रतिमा (Concept and Image)

प्रत्यय प्रतिमा से भिन्न होता है। प्रतिमा विशेष और मूर्त होती है, जबकि प्रत्यय सामान्य और अमूर्त होता है। हमारी प्रतिमा किसी विशेष मनुष्य या पशु की होती है। लेकिन प्रत्यय 'मनुष्य' या 'पशु' का होता है। प्रत्यय एक मानसिक सृष्टि होता है; यह विचार-कर्म का फल होता है जो कई विशेष प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं के सामान्य तत्वों को ग्रहण करता है। प्रत्यय की कल्पना नहीं हो सकती। हम 'मनुष्य' जाति का विचार कर सकते हैं, लेकिन उसकी प्रतिमा नहीं बना सकते। प्रत्ययन कल्पना की अपेक्षा उच्चतर कोटि की मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यय एक संग्रथित या मिश्र (Composite) प्रकाश चित्र (फ़ोटोग्राफ़) नहीं है। यदि हम एक ही प्लेट पर दस आदमियों का फोटो लें ताकि वे एक दूसरे को आच्छादित कर लें तो इस प्रकार जो प्रकाशचित्र होगा वह संग्रथित होगा। यह मनुष्य की एक अस्पष्ट प्रतिमा मात्र होगी जो विभिन्न मनुष्यों की सामान्य बातों को बतायगी। विभिन्न मनुष्यों की विशेषतायें इसमें एक दूसरी को छिपा देंगी। इसी प्रकार एक जाति-प्रतिमा (Generic image) कई प्रतिमाओं के परस्पराच्छादन से प्राप्त होने वाली एक अस्पष्ट प्रतिमा होगी। यह ऐसी प्रतिमा होगी जो कई व्यक्तियों की सामान्य बातों का प्रतिनिधित्व करती है। यह प्रत्यय और प्रतिमा के बीच की अवस्था है। प्रत्यय का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता, जबकि एक जाति-प्रतिमा का हो सकता है। प्रत्यय कई व्यक्तियों के सामान्य तत्वों का विचार है। एक जाति-प्रतिमा कई व्यक्तियों के सामान्य तत्व का प्रतिनिधित्व करती है। यह दोनों का साधर्म्य है। जाति-प्रतिमा प्रतिमा और प्रत्यय की मध्यवर्तिनी है। हमारे बौद्धिक जीवन में निष्प्रतिम (Imageless) विचार होता है।

१५. प्रत्ययों का कार्य (Function of Concepts)

प्रत्यय विचार में एक महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। वे विचार के अनिवार्य उपकरण हैं। प्रथम, वे वर्गीकरण के द्वारा वस्तुओं के विषय में हमारे विचारों में एकता और संगठन लाने में हमारी सहायता करते हैं। प्रत्यय विचार में एक जाति के अन्तर्गत आने वाले सब व्यक्तियों को एक साथ कर देता है। निम्न प्रत्यय उच्च प्रत्ययों के अन्तर्गत ले लिये जाते हैं, और पुनः ये भी अधिक उच्च प्रत्ययों के अन्तर्गत ले लिये जाते हैं। प्रत्ययन वर्गीकरण का आधार है। यह हमारे ज्ञान में एकसूत्रता लाता है। द्वितीय, प्रत्यय विचार की बचत करते हैं। वे असंख्य वस्तुओं के स्थानापन्न थोड़े से प्रत्ययों को कर देते हैं और इस प्रकार अनुभव की वस्तुओं की आश्चर्यजनक विविधता (Variety) को याद करने के भार से मन को मुक्त कर देते हैं। तृतीय, प्रत्यय विचार के क्षेत्र को अतीत, दूरस्थ और भविष्यत् तक विस्तृत कर देते हैं। वे सब कालों और स्थानों में विभिन्न जातियों से सम्बन्ध रखने वाले सब व्यक्तियों के सामान्य तत्वों के विचार होते हैं। अन्त में, प्रत्यय तर्कना के लिये अनिवार्य होते हैं। तर्कना में दिये हुये निर्णयों से उनमें गर्भित एक नये निर्णय (Judgment) को प्राप्त किया जाता है और निर्णय प्रत्यय और विचारों से बनते हैं। इसके अतिरिक्त कोई तर्कना एक प्रत्यय के बिना सम्भव नहीं है जो हेतु-पद (Middle term) का काम करता है।

१६. निर्णय (Judgment)

निर्णय वह मानसिक प्रक्रिया है जिससे मन दो या अधिक विचारों या प्रत्ययों की परस्पर तुलना करता है। यह दो वस्तुओं या गुणों, अथवा एक वस्तु और एक गुण के मध्यवर्ती सम्बन्ध को प्रदत्त करता है। निर्णय दो या अधिक स्पष्ट प्रत्ययों, प्रत्यक्षों, विचारों को ज्ञानपूर्वक एक जटिल विचार में मिलाने की प्रक्रिया है। "आकाश नीला है"। यह एक निर्णय है। यहाँ पर मन ज्ञानपूर्वक आकाश के प्रत्यय को नीले के प्रत्यय के साथ रखता है और उन्हें नीले आकाश के जटिल विचार में संयुक्त करता तथा उसकी सत्यता में विश्वास करता है। 'मनुष्य मरणशील है।' इस निर्णय में मन 'मनुष्य' और

'मरणशीलता' के विचारों को 'मरणशील मनुष्य' के जटिल विचार में संयुक्त करता है तथा उसकी सत्यता में आस्था रखता है।

१७. प्रत्ययन और निर्णय (Conception and Judgment)

तर्क-शास्त्र के दृष्टिकोण से प्रत्ययन निर्णय के पहिले होता है। निर्णय प्रत्ययों का जानकर संश्लेषण करना है। इस प्रकार प्रत्यय निर्णय के तत्व हैं और, इसलिये, निर्णयों से सरलतर होते हैं। निर्णय प्रत्ययों को संयुक्त करने की अधिक जटिल मानसिक प्रक्रिया है।

लेकिन मनोविज्ञान की दृष्टि से निर्णय प्रत्ययन से पूर्व होता है। निर्णय ज्ञान की सरलतम इकाई है। प्रत्यय निर्णयों की शृंखला का फल है। नारंगी एक फल है। यह पीला होता है। यह गोल होता है। यह मीठा होता है। ये सरल निर्णय 'नारंगी' के प्रत्यय में संयुक्त होते हैं। पुनः विस्तृत या जटिल निर्णय प्रत्ययों पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार प्रत्ययन और निर्णय अन्योन्याश्रित होते हैं।

१८. ज्ञान के आधारभूत कर्म के रूप में निर्णय (Judgment as the Fundamental Act of Knowledge)

निर्णय ज्ञान का सबसे प्रारम्भिक कर्म है। यह मन की वह क्रिया है जिससे मन परिवेश का ज्ञान प्राप्त करता है। यह परिवेश का अर्थ ज्ञात करने का कार्य है। हम अपनी विविध ज्ञानेन्द्रियों से परिवेश से सीधा सम्पर्क स्थापित करते हैं। नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा मन और परिवेश के सम्पर्क-स्थल हैं। लेकिन मन की प्रतिक्रिया से पृथक अकेली ज्ञानेन्द्रियाँ हमें जगत् का कोई ज्ञान नहीं दे सकतीं। ज्ञानेन्द्रियों पर क्रिया करने वाले बाह्य पदार्थों से पैदा होने वाली संवेदनायें मन के द्वारा समझी जाती हैं। मन संवेदनाओं का अर्थ ग्रहण करता है। निर्णय मन का अपने परिवेश को समझना है। यह मन की अनुभवों के अर्थ के प्रति जागरूकता है। यह हमारे सांसारिक ज्ञान का उद्गम है, चाहे यह ज्ञान साधारण हो, चाहे वैज्ञानिक, चाहे दार्शनिक। सभी बौद्धिक व्यापारों का सार निर्णय है। ज्ञान निर्णय करने का कार्य है।

यह मन की परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया है। बौद्धिक व्यापार में निर्णय आधार-भूत कर्म है। विचार, वस्तुयें और ज्ञान निर्णयों के विभिन्न पहलू हैं। विचार केवल पदार्थों के अर्थ हैं। निर्णय मन का प्रारम्भिक और सरलतम कार्य है।

प्रत्यक्षीकरण निर्णय का एक रूप है (Perception is a form of judging)—मन संवेदनाओं का इस प्रक्रिया से अर्थ ग्रहण करता है और *बाह्य परिवेश के बारे में सीधे सूचना प्राप्त करता है। प्रत्यक्षीकरण हमें बाह्य* पदार्थों के इन्द्रियज्ञेय गुणों का ज्ञान देता है। प्रत्यक्षीकरण और निर्णय परस्पर मूलतः भिन्न नहीं हैं। प्रत्यक्षीकरण निर्णय का ही एक प्रकार है। हमें इसे प्रात्यक्षिक निर्णय (Perceptual judgment) कहना चाहिये।

प्रत्ययन निर्णय का एक रूप है (Conception is a form of judging)—प्रत्ययन से मन पदार्थों की एक दूसरे से तुलना करता है, उनके साधर्म्यों और वैधर्म्यों को खोजता है, और उनको विभिन्न जातियों में वर्गीकृत करता है। प्रत्ययन भी अर्थ ग्रहण करने का एक कार्य है। मन तुरन्त पदार्थों की एक जाति के सामान्य गुण का प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। इसे सामान्य गुण का अन्वेषण करना पड़ता है जिसके आधार पर वह पदार्थों का वर्गीकरण करता है। अन्वेषण का कार्य अर्थ ग्रहण करने का कार्य है। यह कई निर्णयों का परिणाम होता है। प्रत्ययन निर्णय का एक रूप है। यह पदार्थों के सामान्य गुणों का निर्णय करना है।

तर्कना निर्णय का एक रूप है (Reasoning is a form of judging)—तर्कना भी अर्थ ग्रहण करने का एक रूप है। यह सामग्री या दिये हुये निर्णयों में एक नया सम्बन्ध खोजती है। यह दिये हुये निर्णयों से एक नया निर्णय प्राप्त करती है। यह निर्णय का एक जटिल रूप है। यह उस प्रमात्र का अतीत अनुभव के प्रकाश में अर्थ ग्रहण करता है जो अनुभव का कोई वर्तमान तथ्य किसी समस्या पर डालता है। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण, प्रत्ययन और तर्कना निर्णय के विभिन्न रूप मात्र हैं। ये वे विधियां हैं जिनसे मन अपने परिवेश का अर्थ समझता है। निर्णय बुद्धि का आधारभूत कर्म है।

अध्याय १४

विश्वास (BELIEF)

१. ज्ञान (Knowledge)

ज्ञान विचारों के उस तंत्र (System) को कहते हैं जो बाह्य जगत् में रहने वाली वस्तुओं के तंत्र के अनुसार हो और जिसमें यह विश्वास हो कि यह उसके अनुसार है। इसमें अधोलिखित तत्व होते हैं : (१) मन में विचारों का एक तंत्र, (२) संसार में वस्तुओं का एक तंत्र, (३) विचारों के तंत्र और वस्तुओं के तंत्र के मध्य संवाद (Correspondence) और (४) इस संवाद में विश्वास। ये सब तत्व ज्ञान के लिये अनिवार्य हैं। यदि विचारों का तथ्यों से संवाद नहीं है तो सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। यदि आप गलती से रस्सी को साँप समझते हैं तो आपका ज्ञान भ्रामक होगा। यदि आप रस्सी को रस्सी ही देखते हैं तो आपका ज्ञान यथार्थ है। ज्ञान में एक विश्वास का तत्व समाविष्ट होता है। यदि आपके विचार वास्तविक तथ्यों से मेल खाते हैं लेकिन आप उनके संवाद में विश्वास नहीं करते, तो यह नहीं कहा जा सकता कि आपको उन तथ्यों का ज्ञान है।

२. ज्ञान और विश्वास (Knowledge and Belief)

सारा ज्ञान विश्वास है। लेकिन सब विश्वास ज्ञान नहीं है। विश्वास ज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक है। प्रत्यक्ष और अनुमान पर आधारित विश्वास ज्ञान है। किन्तु साहचर्य, कल्पना, अनुभूति, इच्छा, मूलप्रवृत्ति इत्यादि मात्र पर आधारित विश्वास केवल मत (Opinion) कहा जा सकता है। तार्किक आधार (Logical ground) पर स्थापित विश्वास ही ज्ञान है। अतार्किक आधार पर स्थापित विश्वास केवल मत है। इस प्रकार ज्ञान निश्चित होता है जबकि केवल विश्वास अनिश्चित। ज्ञान तर्कसम्मत होता है जबकि विश्वास-मात्र अतर्कसम्मत। बच्चे और आदिकालीन मनुष्य भूतों, राक्षसों, परियों इत्यादि में विश्वास रखते हैं। ये विश्वास साहचर्य, कल्पना, भय

इत्यादि पर आधारित होते हैं, और इसलिये अतर्कसम्मत हैं। वैज्ञानिक तथ्यों के ज्ञान तथा तर्कना-शक्ति के विकास से धीरे-धीरे उनका निरास (Elimination) हो जाता है।

३. विश्वास और कल्पना (Belief and Imagination)

कल्पना नितान्त स्वतंत्र हो सकती है। इसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं भी हो सकता। आप एक आराम कुर्सी पर बैठे हुये आसानी से अपने आप को मुक्के के आघात से शेर को मारते हुये कल्पित कर सकते हैं। यहाँ पर आप मुक्त कल्पना में निमग्न रहते हैं। लेकिन यदि आराम कुर्सी पर बैठे-बैठे आप शिकार की योजना बनाते हैं और विश्वास करते हैं कि आप शेर का शिकार कर सकते हैं, तो आप ऐसी स्वच्छन्द और व्यर्थ कल्पना में निमग्न नहीं रहते। आपकी विचार-धारा वास्तविक तथ्यों से शासित होनी चाहिये। आप शेर के सम्भावित आक्रमण से बचने के लिये खूब सचेत रहते हैं और उसे मार डालने के लिये प्रत्येक व्यवस्था करते हैं। इस प्रकार कल्पना मुक्त होती है जबकि विश्वास वस्तुगत स्थितियों (Objective conditions) से शासित होता है।

स्टाउट का कहना ठीक है कि "सम्पूर्ण विश्वास में आत्मगत क्रिया (Subjective activity) का वस्तुगत नियंत्रण (Objective control) होता है। जिस पदार्थ का विचार किया जाता है उसकी प्रकृति से बाध्य होकर हम कुछ वैचारिक संयोगों (Thought combinations) को स्वीकार करते हैं और अन्यों को छोड़ देते हैं। लेकिन यह वस्तुगत नियंत्रण निरपेक्ष (Absolute) नहीं होता, बल्कि सापेक्ष (Conditional) होता है। यह उस लक्ष्य पर निर्भर होता है मानसिक चेष्टा जिसकी ओर उन्मुख होती है। जब तक व्यक्ति व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति को अपने प्रयत्न का लक्ष्य बना रहा होता है, तब तक विचारों के केवल कुछ ही संयोग उसके लिये सम्भव हो पाते हैं। लेकिन यदि उसका मन व्यावहारिक परिणाम प्राप्त करने या नवीन ज्ञान प्राप्त करने का इरादा नहीं रखता, तो कोई भी वैचारिक संयोग जिसमें कोई प्रकट विसंवाद (Contradiction) नहीं है

उसके लिये सम्भव हो सकता है" ।[1]

४. विश्वास की प्रकृति (Nature of Belief)

विश्वास का आधारभूत पहलू उसका वास्तविकता के बारे में सत्य होने का दावा है। विश्वास वास्तविकता का बोध है। "मन की एक वास्तविक अवस्था के रूप में विश्वास किसी सत्य के कथन मात्र से और भी बहुत कुछ होता है। यदि एक बार विश्वास किसी भी विधि से स्थापित हो चुका है तो वह उसे परिवर्तित या विनष्ट करने के प्रयत्न का निश्चित रूप से प्रतिरोध करता है" ।[2] विश्वास वस्तुगत स्थितियों से नियंत्रित आत्मगत निश्चय (*Subjective certainty*) की अनुभूति है। इसका उत्थान प्रत्यक्षीकरण, स्मृति या विचार से होता है और इसमें चेष्टा या स्वसमायोजन का एक तत्त्व सन्निहित रहता है।

विश्वास शंका (Doubt) से विपरीत होता है। शंका विश्वास का अभाव है। शंका में मन दो या अधिक वैकल्पिक (Alternative) विचारों के मध्य झूलता रहता है। यह एक पीड़ाजनक अवस्था या विलम्बन (Suspense) की अवस्था है। विश्वास से इसका निराकरण होता है जो शान्ति की अनुभूति प्रदान करता है। विश्वास का अविश्वास से विरोध नहीं है। "अविश्वास विश्वास का अभाव नहीं है, बल्कि विपरीत वस्तु में भावात्मक (Positive) विश्वास है।"

कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि विश्वास स्वभावतः बौद्धिक होता है। विश्वास वास्तविकता को समझने में होता है। यह प्रत्यक्षीकरण, विचार, निर्णय और अनुमान के साथ रहता है। यदि इन मानसिक प्रक्रियाओं से उनके साथ रहने वाला विश्वास छीन लिया जाय, तो वास्तविकता पर उनकी पकड़ न रहे।

---

[1] मनोविज्ञान : पृ० ६०१

[2] मनोविज्ञान के तत्त्व : पृ० ४६३

विश्वास बौद्धिक प्रक्रियाओं के साथ रहता अवश्य है, लेकिन दोनों में तादात्म्य नहीं है। पुनः विश्वास सदैव सब बौद्धिक प्रक्रियाओं के साथ नहीं रहता। कल्पना विश्वास से मुक्त हो सकती है। आप कल्पना करते हैं कि आप अपने मुक्के की चोट से शेर को मार डालते हैं; लेकिन आप इसमें विश्वास नहीं करते।

ह्यूम के अनुसार विश्वास स्वभावतः संवेगात्मक (Emotional) होता है। "गल्प (Fiction) और विश्वास में जो अन्तर है वह यह है कि एक अनुभूति होती है जो परवर्ती से युक्त होती है, पूर्ववर्ती से नहीं, और उसकी उत्पत्ति उस विशेष परिस्थिति से होनी चाहिये जिसमें मन किसी कठिनाई में पड़ जाता है। विश्वास एक ऐसी चीज़ है जिसकी अनुभूति मन को होती है" (ह्यूम)। निश्चय ही विश्वास में अनुभूति का एक तत्व विद्यमान होता है। इसमें बाध्यता (Compulsion) की अनुभूति होती है। हम जिस पर विश्वास करते हैं वह विश्वास की बाध्यता के कारण होता है और यह बाध्यता उन आत्मगत और वस्तुगत स्थितियों से उत्पन्न होती है जो हमारे नियंत्रण के बाहर हैं। इसमें शान्ति (Relief) की अनुभूति भी होती है। अनिश्चय की अवस्था पीड़ादायिनी होती है। विश्वास इस कष्टप्रद अवस्था को हटाकर मन को हलका कर देता है। विलियम जेम्स कहता है कि "आन्तरिक स्वभाव की दृष्टि से विश्वास या वास्तविकता की बुद्धि (Sense of reality) एक प्रकार की अनुभूति है और इसकी अन्य चीज़ों की अपेक्षा संवेगों से अधिक मैत्री है।" मैकडूगल भी विश्वास को एक संवेग मानता है।

विश्वास में अनुभूति का तत्व सर्वाधिक प्रमुख होता है। किन्तु इसकी उत्पत्ति ज्ञान से होती है और यह चेष्टात्मक अभिवृत्ति (Conative attitude) को उत्पन्न करती है। इनमें परिस्थितियों के साथ अपना समायोजन करने का आवेग (Impulse) रहता है।

बेन (Bain) का मत है कि विश्वास स्वाभावतः संकल्पात्मक (Volitional) होता है। विश्वास कर्म को प्रारम्भ करने वाली प्रवृत्ति है। "यह

मानसिक अवस्था जिसे विश्वास की संज्ञा दी जाती है बुद्धि और अनुभूतियों को अपने में समाविष्ट करती है, लेकिन साथ ही वह तत्वतः चेष्टा या संकल्प से भी सम्बन्धित होती है।" "विश्वास और क्रिया का सम्बन्ध इस कथन से प्रकट होता है कि जो हमारा विश्वास होता है उसके अनुसार हम काम करते हैं" (बेन)।

विश्वास स्वभावतया स्वयं को कार्य-रूप में परिणत करता है। इसमें चेष्टा या स्वसमायोजन का एक तत्व समाविष्ट रहता है। लेकिन यह कार्य-तत्परता विश्वास का फल होती है। वह स्वयं विश्वास नहीं होती। विश्वास कार्य में फलित होता है। विश्वास में ज्ञान, वेदना और चेष्टा के तत्व होते हैं। अनुभूति इसमें सर्वप्रमुख तत्व है। ड्यूई (Dewey) कहता है, "विश्वास शायद स्वभावतः संवेगात्मक होता है जबकि संकल्प इसकी कसौटी है, लेकिन इसकी अन्तर्वस्तु (Content) सदैव ज्ञान के द्वारा निर्धारित होती है।" इस प्रकार विश्वास वास्तविकता का बोध है। इसकी उत्पत्ति ज्ञान, यथा, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, निर्णय, या तर्कना से होती है और उसी के साथ यह रहता भी है। यह कर्म की प्रारम्भिक प्रवृत्ति है।

५. विश्वास के आधार (*Grounds of Belief*)

विश्वास के आधार अंशतः ज्ञानात्मक, अंशतः संवेगात्मक और अंशतः चेष्टात्मक हैं।

विश्वास के ज्ञानात्मक आधार (*Intellectual conditons of belief*)–प्रत्यक्षीकरण विश्वास का एक स्रोत (Source) है। हम एक पेड़ देखते हैं और उसकी वास्तविकता में हमें विश्वास हो जाता है। हम उसका स्पर्श करते हैं और वह हमारी चेष्टा का प्रतिरोध करता है। इससे हमें उसकी वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं रह जाता। सभी प्रकार के बाह्य प्रत्यय विश्वास को जन्म देते हैं। लेकिन स्पर्शज प्रत्यय (Tactual perception) सबसे अधिक विश्वास दिलाने वाला होता है। "किसी पदार्थ की वास्तविकता का सबसे प्रबल प्रमाण उसके द्वारा उसे हटाने या परिवर्तित करने के लिये किये गये हमारे शारीरिक प्रयत्नों का किया जाने वाला प्रतिरोध है। टॉसन

(Solidity) वास्तविकता का प्रबल साक्ष्य है। एक साक्ष्य और भी प्रबल है; और वह है सक्रिय दबाव की वस्तु का हमारे प्रयत्नों के विरुद्ध आयास (Exertion) पैदा करना" (मैकडूगल)।

अन्तर्निरीक्षण (Introspection) विश्वास का एक स्रोत है। हम अपनी ही मानसिक प्रक्रियाओं (यथा, उल्लास, शोक आदि) का अन्त-निरीक्षण करते हैं और उनकी वास्तविकता मे हमारा विश्वास हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण बाह्य जगत् का होता है, जबकि अन्तर्दर्शन मन की अपनी ही प्रक्रियाओं का होता है।

स्मृति विश्वास का एक स्रोत है। साक्षी (Witness) जो न्यायालय में गवाही देता है अपने अतीत अनुभव का प्रत्याह्वान करता है, और जिसका उसे स्मरण होता है उस पर विश्वास करता है। परीक्षार्थी प्रश्नों के सही उत्तर लिखता है और विश्वास करता है कि वे सही हैं।

कल्पना विश्वास का एक स्रोत है। बौद्धिक कल्पना या बुद्धि से शासित कल्पना अपनी रचनाओं में विश्वास पैदा करती है। एक वैज्ञानिक किसी घटना के स्पष्टीकरण के लिये कोई सिद्धान्त बनाता है और उसकी सत्यता में विश्वास करता है। वस्तुतः यहाँ पर तर्क विश्वास का स्रोत है। लेकिन स्वच्छंद कल्पना भी जो संकल्प के आधीन नहीं होती, अपनी प्रतिमाओं में विश्वास उत्पन्न करती है। प्रबल संवेगों से परिपालित सजीव कल्पना विश्वास उत्पन्न करती है। बच्चे जिन भूतों और दैत्यों की कहानियाँ सुनते और पढ़ते हैं उनमें दृढ़ विश्वास करते हैं। इस प्रकार जो संकल्प या बुद्धि के शासन में नहीं होती वह कल्पना भी विश्वास पैदा करती है।

तर्कना विश्वास की जननी है। तर्कना में कुछ विश्वासों या निर्णयों को जो पहिले से सत्य ज्ञात हैं, संयुक्त किया जाता है तथा उनसे एक नवीन सम्मिलित निर्णय या विश्वास प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार तर्कना नवीन विश्वासों की जननी है।

विश्वास के संवेगात्मक आधार (Emotonal grounds of beliefs)—साक्ष्य (Testimony) या आप्त-वाक्य (Authority)

विश्वास का एक स्रोत है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ या आप्त-पुरुष का वचन विश्वासों को जन्म देता है। हम इतिहास, भूगोल इत्यादि पढ़ते हैं और स्वयं उनका सत्यापन किये बिना उनके वाक्यों में विश्वास कर लेते हैं क्योंकि हम उनकी विश्वसनीयता को स्वीकार करने के इच्छुक होते हैं। "यह स्पष्ट है कि हममें से प्रत्येक के मन के ज्ञान-भण्डार का अधिकतमांश अन्यों से प्राप्त सूचना (Communication) से उपलब्ध होता है" (मेलोन)।

निर्देश (Suggestion) विश्वास का एक स्रोत है। "निर्देश से हमारा तात्पर्य एक विशेष प्रकार की सूचना से है—अर्थात् उस प्रक्रिया से जिसकी बदौलत एक प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रभाव या शक्ति के कारण विश्वास सीधे मन में घर कर लेते हैं और तार्किक प्रमाण या तर्कना के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रहते हैं। विज्ञापन की कला का बड़ा भाग तथा राजनीति और अन्य विषयों में प्रचार (Propaganda) की कई आधुनिक विधियाँ इसी प्रकार की होती हैं। निर्देशों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति—दूसरे शब्दों में तर्कना के बिना विश्वासों को आत्मसात् करना—निर्देशग्रहणक्षमता (Suggestibility) कहलाती है। प्रत्येक व्यक्ति किसी सीमा तक निर्देशग्रहणक्षम होता है—कुछ तो अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक मात्रा में ऐसे होते हैं। निर्देशग्रहणक्षमता मनुष्य को अपने विश्वास को बनाने में सामाजिक प्रभावों के प्रति संवेदनशील (Sensitive) बना देती है" (मेलोन)। "विचार-रचना एक सामाजिक उपज है। अतः व्यक्ति के विश्वास एक बहुत बड़ी सीमा तक उस समुदाय में प्रचलित विश्वासों के द्वारा ढाले जाते और निर्धारित किये जाते हैं जिसमें वह रहता है" (स्टाउट)। जादू-टोने में विश्वास को व्यक्ति समुदाय से ग्रहण करता है जिसमें वह व्याप्त होता है। इस प्रकार विश्वासों की सृष्टि में सामाजिक तत्व का प्रभाव रहता है।

प्रबल संवेग और वासनायें विश्वासों के स्रोत हैं। कायर व्यक्तियों में भय भूतों में विश्वास उत्पन्न कर देता है। सामान्य लोगों में भय तानाशाहों (Dictators) में विश्वास पैदा कर देता है। अभिमान अपनी श्रेष्ठता में विश्वास उत्पन्न कर देता है। प्रेम प्रेमी के काल्पनिक गुणों में विश्वास पैदा

करता है। घृणा घृणित व्यक्ति के काल्पनिक दुर्गुणों में विश्वास को जन्म देती है। इस प्रकार संवेग और वासनायें पक्षपातपूर्ण विश्वासों के स्रोत हैं।

स्वभाव (Temperament) विश्वास का एक स्रोत है। हंसमुख और आशावादी स्वभाव पदार्थों के उज्ज्वल पहलू में विश्वास पैदा करता है। विषण्ण स्वभाव पदार्थों के अन्धकारमय पहलू में विश्वास उत्पन्न करता है। इस प्रकार स्वभाव विश्वासों को जन्म देता है।

विश्वास के चेष्टात्मक आधार (Conative grounds of belief)—मूलप्रवृत्ति (Instinct) विश्वास का एक स्रोत है। बाह्य जगत, मानवोत्तर शक्ति (Superhuman agency) (यथा, ईश्वर), भावी जीवन इत्यादि में विश्वास करने की हमारी सहज प्रवृत्ति होती है। कुछ अज्ञात विश्वास सहज और मूलप्रवृत्यात्मक माने जाते हैं।

प्रबल इच्छा या सक्रिय आवेग (Impulse) विश्वास का एक उद्गम है। माता की अपने शिशु को रोगमुक्त करने की बलवती इच्छा होती है। अतः वह तत्परता के साथ एक अधकचरे वैद्य की सलाह को मान लेती है। सफलता प्राप्त करने की बलवती इच्छा सफलता में विश्वास पैदा कर देती है। उत्कंठा विचार की जननी है। विलियम जेम्स कहता है कि विश्वास करने की इच्छा (Will to believe) विश्वास का कारण है।

क्रिया विश्वास का स्रोत है। विश्वास क्रिया का एक आधार है। लेकिन क्रिया भी विश्वास को उत्पन्न करती है। स्टाउट कहता है : "सिर्फ इसलिये कि विश्वास क्रिया का आधार है, क्रिया को विश्वास का आधार होना चाहिये। किसी लक्ष्य के लिये प्रयत्न करना उसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक साधनों के लिये प्रयत्न करना है।" अतः किसी लक्ष्य के लिये प्रयत्न करने में हम लक्ष्य और उपायों की व्यवहार्यता (Practicableness) में विश्वास करते हैं। जो विश्वास अव्यवहार्य होते हैं उन्हें नहीं अपनाया जाता। हम उन्हीं विश्वासों को अपनाते हैं जो कार्यों में परिणत किये जा सकते हैं। इस प्रकार क्रिया विश्वास का आधार है।

अध्याय १५
अनुभूति (FEELING)

१. अनुभूति का स्वरूप (Nature of Feeling)

प्रत्येक मूर्त (Concrete) मानसिक प्रक्रिया के तीन पहलू होते हैं : ज्ञान, अनुभूति और चेष्टा। जब किसी मानसिक प्रक्रिया में ज्ञान प्रमुख होता है तो हम उसे ज्ञानात्मक अवस्था कहते हैं। जब अनुभूति प्रमुख होती है तो हम उसे वेदनात्मक (Affective) अवस्था या अनुभूति कहते हैं। और जब चेष्टा प्रमुख होती है तो हम उसे चेष्टात्मक (Conative) अवस्था कहते हैं। जब हम ज्ञान, अनुभूति और चेष्टा के विषय में कुछ कहते हैं तो इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिये। अनुभव के क्रम में पहिले ज्ञान आता है : यह द्रष्टा या व्यक्ति को प्रभावित करता है जो सुख या दुःख की अनुभूति करता है; तत्पश्चात् अनुभूति चेष्टा को, द्रष्टा की क्रिया को जन्म देती है। इस प्रकार ज्ञान अनुभूति को उत्पन्न करता है, और अनुभूति चेष्टा को। चेष्टा या मानसिक सक्रियता शारीरिक गति को जन्म देती है।

इस प्रकार अनुभूति ज्ञान से द्रष्टा के प्रभावित होने का एक ढंग है। यह द्रष्टा की एक निष्क्रिय अवस्था है। या तो यह प्रिय होती है या अप्रिय। या तो यह सुखद होती है या दुःखद। अनुभूति को कभी-कभी वेदना कहा जाता है। यह ज्ञान से उत्पन्न होती है और मानसिक क्रिया या चेष्टा को जन्म देती है। मैं एक फूल देखता हूँ। मुझे उसका ज्ञान होता है। इसका मेरे मन पर प्रिय प्रभाव होता है। दूसरे शब्दों में यह मुझे सुख देता है। तत्पश्चात् यह मेरे मन में उसे तोड़ने का आवेग उत्पन्न करता है। इस प्रकार अनुभूति ज्ञान से पैदा होती है और चेष्टा को जन्म देती है। ज्ञान और चेष्टा के विपरीत अनुभूति आत्मगत अनुभव (Subjective experience) होती है। यह चेतना का एक प्रारम्भिक (Elementary) रूप है। यह न तो ज्ञान का व्यापार है न चेष्टा का। यह चेतना का मौलिक और अव्युत्पन्न (Underived) रूप है। टेटेन्स (Tetens) ने अनुभूति को अपूर्व

(Sui generis) माना था। कान्ट (Kant) ने इस सिद्धान्त का प्रचार किया।

अनुभूति सामान्यतया संवेदनाओं से उत्पन्न होती है। लेकिन अनुभूति में संवेदनाओं को पुंज-रूप मांस में ग्रहण किया जाता है; लेकिन अनुभूति में संवेदनाओं को पुंज-रूप (Mass) में ग्रहण किया जाता है; न उनका विश्लेषण किया जाता है, न उन्हें तथ्य-सूचक समझा जाता है। संवेदनाओं का जितना ही अधिक विश्लेषण किया जाता है और जितना ही अधिक उन्हें तथ्यों के चिह्न समझा जाता है, उतनी ही अनुभूति लुप्त होने की कोशिश करती है। ज्ञानात्मक क्रिया के प्रमुख होने के साथ अनुभूति का लोप हो जाता है।

अनुभूति क्रिया नहीं है। लेकिन इससे क्रिया उत्पन्न होती है। यह एक गति तत्परता (Motor set) है। यह स्वयं को उत्पन्न करने वाली बाह्य परिस्थिति को स्थिर रखने या परिवर्तित करने की शरीर की सामान्य अभिवृत्ति (Attitude) है। यह किसी विशेष कर्म के लिये शरीर की तत्परता नहीं है।

वुडवर्थ कहता है, "अनुभूति सांवेदनिक (Sensory) भी होती है और गत्यात्मक (Motor) भी। सांवेदनिक रूप में, यह संवेदना-पुंज (Sensation mass) है जिसका न तो विश्लेषण किया जाता है और न जिसे तथ्यों का सूचक समझा जाता है। गत्यात्मक रूप में, यह शरीर की सामान्य तत्परता या रुख है। सुखकरता परिस्थिति को यथापूर्व रखने की सामान्य तत्परता है, दुःखकरता परिस्थिति से छुटकारा पाने की। अनुभूति मात्र में किसी विशेष कर्म के लिये तत्परता नहीं होती। सांवेदनिक और गत्यात्मक दोनों रूपों में अनुभूति व्यापक होती है।"[1]

अनुभूति के अधोलिखित लक्षण होते हैं। प्रथम, संवेदनाओं की तुलना में अनुभूतियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं। किसी संवेदना (यथा,

[1] मनोविज्ञान : पृ० ३३७-३८

नीला रंग) पर ध्यान दीजिये तो वह अधिकतम स्पष्ट हो जाती है। दांत की पीड़ा पर ध्यान देने से वह अधिक तीव्र प्रतीत होती है। लेकिन सुख या दुःख की अनुभूति पर ध्यान देने से उसके लुप्त हो जाने की सम्भावना होती है। जिस क्षण आप अनुभूति पर ध्यान देते हैं, आप उसे उत्पन्न करने वाली उत्तेजना से ध्यान हटा लेते हैं और, इसलिये अनुभूति लुप्त हो जाती है। संवेदनायें उत्पन्न या दीर्घित (Prolonged) की जा सकती हैं। लेकिन अनुभूतियां इच्छानुसार सदैव उत्पन्न या दीर्घित नहीं की जा सकतीं। द्वितीय, अनुभूतियों का शरीर के किसी विशेष भाग में स्थानीयकरण (Localization) नहीं हो सकता। लेकिन अधिकांश आंगिक संवेदनाओं (Organic sensations) का शरीर के अन्दर न्यूनाधिक स्पष्टता के साथ स्थानीयकरण किया जा सकता है। तृतीय, सुख और दुःख एक ही काल में नहीं हो सकते। हम सुख और दुःख का एक साथ अनुभव नहीं कर सकते। ये दो प्रकार की अनुभूतियाँ परस्पर व्यावर्तक (Exclusive) होती हैं। चतुर्थ, अनुभूति के साथ सदैव कोई अन्य मानसिक प्रक्रिया होती है, यथा, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, संवेग और संकल्प। इसका उदय एकाकी नहीं होता। यह सदैव किसी अन्य मानसिक प्रक्रिया की संगिनी होती है।

२. ज्ञान और अनुभूति (Cognition and Feeling)

ज्ञान मन को पदार्थ की प्रकृति बतलाता है। अनुभूति इसे अपनी ही निष्क्रिय अवस्था से अवगत कराती है। ज्ञान हमें चेतना की अवस्थाओं की अन्तर्वस्तुओं (Contents) से अवगत कराता है, अनुभूति चेतना की अवस्थाओं के प्रकार से। "आप को किसकी चेतना है? किसी वस्तु या चित्र की। इसका आप पर कैसा प्रभाव पड़ता है? प्रिय। ज्ञान हमें मन से बाहर के पदार्थों और सम्बन्धों की सूचना देता है, जबकि अनुभूति हमें अपनी ही आन्तरिक मानसिक दशा की सूचना देती है।"[1]

दुडवर्थ कहता है, "अनुभूति जानने से भिन्न है। इसमें न तो बाह्य जगत् के तथ्यों का बोध होता है और न अपने शरीर के तथ्यों का। निर्विषय

[1] एंजिल, मनोविज्ञान : पृ० ३०२

विचार, और कर्म का अधिक विश्लेषणात्मक, बौद्धिक, या मस्तिष्कीय होने में अनुभूति से भेद है।"[1] अनुभूति को तो केवल महसूस किया जाता है, यह मन की निष्क्रिय अवस्था है। कभी-कभी यह किसी तथ्य को भी प्रकट कर सकती है। दुःखकर अनुभूति को केवल महसूस किया जा सकता है या उसे किसी तथ्य का संकेत समझा जा सकता है। वह भूख या अपच को सूचित कर सकती है। ज्ञानात्मक व्यापार के अधिक प्रधान होने पर अनुभूति की प्रधानता कम हो जाती है। ज्ञानात्मक व्यापार संश्लेषणात्मक (Synthetic) होता है, जबकि अबकि अनुभूति संश्लेषणात्मक नहीं होती। अनुभूति हमें परिवेश से हमारे सम्बन्ध की सूचना नहीं देती। वह हमें अपने शरीर की दशा की सूचना नहीं भी दे सकती। यह हमें अपने शरीर या परिवेश के विषय में किसी तथ्य की सूचना नहीं भी दे सकती। अनुभूति एक सरल, अविश्लिष्ट, निष्क्रिय अवस्था है। लेकिन निरीक्षण और विचार व्यक्ति और परिवेश के मध्यवर्ती सम्बन्ध से सम्बन्धित हैं, जबकि अनुभूति शरीर से सम्बन्धित है। कभी-कभी ज्ञान प्रमुख होता है और अनुभूति को पृष्ठभूमि में धकेल देता है। अनुभूति सामान्यतया संवेदनाओं से प्रादुर्भूत होती है। संवेदनाओं को दो तरह से लिया जा सकता है। निरीक्षण में उन्हें तथ्यों के सूचक समझा जाता है, जबकि अनुभूति में उन्हें पुंज-रूप में लिया जाता है।

हौफ़डिंग (Hoffding) यह बतलाता है कि ज्ञान और अनुभूति दोनों सापेक्षता के नियम (Law of relativity) के आधीन हैं जो सब मानसिक प्रक्रियाओं पर शासन करता है। लम्बा आदमी ठिगने आदमी के साथ अधिक लम्बा प्रतीत होता है; छोटा आदमी लम्बे आदमी के साथ अधिक छोटा प्रतीत होता है। इस प्रकार सापेक्षता का नियम ज्ञान पर शासन करता है। इसी प्रकार सुख के पश्चात् दुःख विरोध के कारण अधिक तीव्र लगता है, यदि भूख का कष्ट तीव्र है तो भूख के शमन से उत्पन्न होने वाला सुख

[1] मनोविज्ञान : पृ० ३३५-३७

प्रबल होता है। इस प्रकार ज्ञान और अनुभूति दोनों सापेक्षता के नियम के अधीन हैं।

लेकिन ज्ञान एक दूसरे को सीधे पुनर्जीवित कर सकते हैं, जबकि अनुभूतियाँ सीधे अनुभूतियों को पुनर्जीवित नहीं कर सकतीं। परीक्षा का विचार परीक्षा-भवन, परीक्षक, प्राप्तांक इत्यादि के विचारों को पुनर्जीवित कर सकता है, किन्तु पर्वत-शिखर को देखने से उत्पन्न सुख की अनुभूति सीधे शिखर पर चढ़ने के कष्ट को पुनर्जीवित नहीं कर सकती। सुख की अनुभूति परोक्षतः शिखर पर चढ़ने के विचार के द्वारा कष्ट को पुनर्जीवित कर सकती है।

३. संवेदना और अनुभूति (Sensation and Feeling)

संवेदना एक सरल ज्ञान है जिसकी उत्पत्ति किसी बाह्य उत्तेजना से मन में होती है। यह वस्तुसापेक्ष (Objective) होती है क्योंकि यह बाह्य उत्तेजना पर निर्भर रहती है। अनुभूति आत्मसापेक्ष (Subjective) होती है क्योंकि यह मन या आत्मा पर निर्भर होती है। यह आत्मा के प्रभावित होने का ढंग है। कभी-कभी एकही उत्तेजना संवेदना और अनुभूति दोनों को उत्पन्न करती है। यह संवेदना को उत्पन्न करती है; संवेदना किसी रूप में द्रष्टा को प्रभावित करती है, और यह प्रभाव सुख या दुःख होता है। उत्तेजना संवेदना को पैदा करती है, और संवेदना अनुभूति को। यही उत्तेजना उसी संवेदना को पैदा करती है; लेकिन वही संवेदना व्यक्ति को उसी ढंग से प्रभावित नहीं करती, कभी उसका प्रभाव प्रिय हो सकता है, कभी अप्रिय। उदाहरणार्थ, शक्कर को चखने से उत्पन्न मधुरता एक समय प्रिय लगती है, दूसरे समय अप्रिय। इस प्रकार संवेदना और अनुभूति परस्पर पृथक् होती हैं। लेकिन अनुभूति संवेदनाओं से उत्पन्न होती है जो पुंज-रूप में ग्रहण की जाती है। अनुभूति में संवेदनाओं का न तो विश्लेषण किया जाता है और न उन्हें तथ्यों के सूचक जाना जाता है।

कभी-कभी अनुभूति को संवेदना का धर्म समझा जाता है। मैं चन्द्रमा को देखता हूँ। मुझे शुभ्रता (Brightness) की एक संवेदना होती है।

इसमें सुखकरता का आभास होता है। इसे अनुभूति-अंश या सुख-दुःखांश (Feeling-tone or hedonic tone) कहा जाता है। लेकिन यह ठीक नहीं है। शुभ्र चन्द्रमा शुभ्रता की संवेदना उत्पन्न करता है और यह संवेदना सुख की अनुभूति देती है। स्वयं अनुभूति के धर्म (Attributes) होते हैं, यथा, गुण (Quality), तीव्रता (Intensity), और सत्ताकाल (Duration)। अतः उसे संवेदना का एक धर्म नहीं माना जा सकता।

अनुभूति या वेदना के गुण, तीव्रता और सत्ताकाल से युक्त होने में संवेदना से समता है। लेकिन संवेदनाओं के समान इसमें व्याप्ति (Extensity) नहीं होती। संवेदनाओं का स्थानीयकरण हो सकता है। लेकिन अनुभूतियों का स्थानीयकरण नहीं हो सकता।

४. अनुभूति वेदना है (Feeling is Affection)

कभी-कभी अनुभूति और वेदना में भेद किया जाता है। "एक विशुद्ध अनुभूति का निर्देश वेदना शब्द से किया जाता है, जिसका अर्थ है सहचारी संवेदनाओं से पृथक् सुख या दुःख मात्र। इस अवस्था में 'अनुभूति' शब्द संवेदनाओं और वेदना के संकर (Complex) का निर्देश करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं—

अनुभूति = "संवेदना + वेदना"।[१]

यह भेद भ्रान्तिमूलक है। अनुभूति और वेदना में तादात्म्य है। यह द्रष्टा के ज्ञान (यथा, संवेदना) से प्रभावित होने का एक ढंग है। अनुभूति द्रष्टा की एक निष्क्रिय अवस्था है जिसे वेदना कहते हैं। कभी इसकी उत्पत्ति संवेदना से होती है। संवेदना अनुभूति का एक कारण है; अनुभूति संवेदना का एक फल है। अतः संवेदना और सुख या दुःख को एक साथ मिलाकर अनुभूति नहीं कहना चाहिये।

५. अनुभूति या वेदना के प्रारम्भिक रूप (Elementary Forms of Feeling)

---

[१] पी० डी० शास्त्री, प्रारम्भिक मनोविज्ञान : पृ० ४१

अनुभूति या वेदना द्रष्टा की एक निष्क्रिय और आत्मगत अवस्था के रूप में या तो प्रिय होती है या अप्रिय, सुखकर या दुःखकर। सुख और दुःख अनुभूति के प्रारम्भिक रूप हैं। सुख और दुःख अनुभूति के दो प्रकार हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि एक अन्य प्रकार की अनुभूति भी होती है जिसे तटस्थता या उदासीनता की अनुभूति (Neutral feeling or feeling of indifference) कहते हैं। अन्य मनोवैज्ञानिक इसे नहीं मानते।

६. रोयस और वुंट के सिद्धान्त (Theories of Royce and Wundt)

रोयस यह मानता है कि अनुभूति की दो विमायें (Dimension) होती हैं। सुख—दुःख और उद्दीप्ति—शान्ति (Excitement—calm)। इसे अनुभूति का द्विवैम सिद्धान्त (Two-dimensional theory) कहते हैं।

वुंट के मतानुसार अनुभूति की तीन विमायें होती हैं : सुख—दुःख, उद्दीप्ति—शान्ति, और तनाव—शैथिल्य (Tension—relaxation)। इसे अनुभूति का त्रिवैम सिद्धान्त (Tridimensional theory) कहते हैं। इन समूहों के व्यक्तिगत सदस्यों को विविध रूपों में संयुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार, सुख के साथ तनाव और उद्दीप्ति हो सकती है, या अकेली उद्दीप्ति या अकेली शान्ति हो सकती है।

ये दोनों मत गलत हैं। उद्दीप्ति और शान्ति में एक अन्तर होता है। लेकिन ये आंगिक (Organic) और पैशिक (Motor) संवेदनाओं के विभिन्न प्रकार हैं। जब हम उद्दीप्त होते हैं तो हमारी पेशियां तन जाती हैं और श्वास-प्रश्वास द्रुत हो जाता है, इत्यादि। जब हम शान्त होते हैं तो पेशियों का सक्रिय होना रुक जाता है तथा अंगों का व्यापार समंजस हो जाता है, और हमें एकमात्र मानसिक प्रक्रियाओं के प्रवाह की चेतना होती है। इस प्रकार उद्दीप्ति और शान्ति स्वभावतः संवेदनायें हैं। ये सुख या दुःख को उत्पन्न करती हैं। अतः इन्हें अनुभूतियाँ नहीं समझना चाहिये।

इसी प्रकार तनाव और शैथिल्य में भी अन्तर है। लेकिन ये भी स्वभावतः संवेदनायें हैं। उनका कारण पैशिक संवेदनायें हैं जो इन अवस्थाओं में होती हैं और पेशी तंत्र (Muscular system) के तनाव की सूचना देती हैं। आयास (Strain) और शैथिल्य कभी-कभी अपनी वस्तु के प्रति चेतना की समग्र अभिवृत्ति (Total attitude) के सामान्य लक्षण होते हैं। लेकिन ये स्वाभवतः ज्ञानात्मक हैं। अतः उन्हें अनुभूतियों के प्रकार नहीं माना जा सकता। सुख और दुःख ही केवल अनुभूति के दो प्रकार हैं।

७. क्या सुख अभावात्मक है ? (Is Pleasure Negative ?)

प्लेटो (Plato), शोपेनहर (Schopenhauer) प्रभृति यह मानते हैं कि दुःख एक भावात्मक अनुभूति है और सुख दुःख से पलायन या दुःख से मुक्ति है। सुख एक अभावात्मक अनुभूति है। यह दुःख का अभाव है। शोपेनहर अपनी युक्ति को सापेक्षता के नियम पर स्थापित करता है। जीवन सक्रियता है; यह किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न है; यह अभाव की दुःखद अनुभूति को हटाने का प्रयत्न है। जब अभाव दूर हो जाता है तो सुख मिलता है। इस प्रकार सुख एक वास्तविक और भावात्मक अनुभूति नहीं है। यह दुःख-मुक्ति की अभावात्मक अनुभूति है।

यह मत ग़लत है। दुःख की समाप्ति के पश्चात् सुख वैषम्य के कारण बढ़ जाता है। लेकिन यह अपने पूर्ववर्ती दुःख से कम वास्तविक और भावात्मक नहीं है। सुख उतना ही वास्तविक और भावात्मक है जितना दुःख। भावात्मक रूप में उसकी अनुभूति होती है। बहुत प्रायः सुख के पूर्व दुःख होता है, जीवन के साधारण और स्वस्थ व्यापारों के साथ सुख होता है। सौन्दर्यात्मक सुखों के पहिले दुःख नहीं होता। अतः सुख उतना ही भावात्मक है जितना दुःख। सापेक्षता का नियम केवल यही प्रदर्शित करता है कि दुःख से वैषम्य के कारण सुख की अनुभूति तीव्र हो जाती है, तथा सुख से वैषम्य के कारण दुःख की अनुभूति तीव्र हो जाती है। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सुख एक अभावात्मक अनुभूति है।

८. क्या कोई तटस्थ अनुभूति है? (Is there any Neutral Feeling?)

अनुभूति या तो प्रिय होती है या अप्रिय। केवल सुख और दुःख ही अनुभूतियाँ हैं। तटस्थ अनुभूति या उदासीनता की अनुभूति नहीं होती। ये कथित अवस्थायें ज्ञान हैं; वे वेदनायें या अनुभूतियाँ नहीं हैं। स्टाउट ठीक कहता है कि यदि किसी क्षण हम अपनी समग्र चेतना पर ध्यान दें तो हम सदैव उसमें अनुभूति—सुख या दुःख का तत्व वर्तमान पायेंगे। इस प्रकार तथाकथित तटस्थ अवस्थायें समग्र चेतना की पृष्ठभूमि के साथ देखे जाने पर वेदनाशून्य नहीं मालूम होतीं। पिल्सबरी कहता है कि उत्तेजना उदासीन हो सकती है लेकिन अनुभूति उदासीन नहीं हो सकती; उदासीन उत्तेजना अनुभूति को उत्पन्न नहीं करती। विशुद्ध अनुभूति या वेदना को सुखकर होना चाहिये या दुःखकर।

९. अनुभूति और मानसिक सक्रियता (Feeling and Mental Activity)

ज्ञान (यथा, फूल का प्रत्यक्ष) मन को प्रभावित करता है और उसमें अनुभूति (यथा, सुख) को उत्पन्न करता है। अनुभूति चेष्टा या मानसिक सक्रियता को पैदा करती है। इस प्रकार अनुभूति ज्ञान और चेष्टा के मध्य एक कड़ी है। ज्ञान अनुभूति का कारण है; और अनुभूति चेष्टा का कारण है (वार्ड)।

पुनः, चेष्टा किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होती है। जब चेष्टा का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो सुख होता है, और जब चेष्टा का लक्ष्य विफल हो जाता है तो दुःख होता है। "जितनी ही आसानी से सक्रिय प्रवृत्ति अपनी चरम अवस्था में पहुँचती है उतनी ही अधिक सुखकर वह होती है, जितनी ही अधिक उसमें बाधा होती है उतनी ही अधिक वह दुःखदायी होती है" (मेकोन)। इस प्रकार चेष्टा भी अनुभूति का कारण है। सफल चेष्टा सुख उत्पन्न करती है; विफल चेष्टा दुःख उत्पन्न करती है (स्टाउट)।

ध्यान एक प्रकार की चेष्टा या मानसिक कर्म है। ध्यान भी अनुभूति का एक कारण है। ध्यान का किसी वस्तु या विचार के साथ प्रभावपूर्ण व्यवस्थापन सुख उत्पन्न करता है। किसी वस्तु या विचार के प्रति प्रभावहीन ध्यान दुःख उत्पन्न करता है (वार्ड)। ध्यान के रूप में चेष्टा अनुभूति का एक कारण है। इस प्रकार अनुभूति और चेष्टा परस्पर निर्भर हैं।

१०. अनुभूति और इच्छा (Feeling and Desire)

"इच्छा की पूर्ति के लिये किया जाने वाला कार्य जहाँ तक इच्छा के प्रतिकूल किसी वस्तु से बाधित हुए बिना चलता है, इच्छा उसी अनुपात में सुखकर होती है; और जहां तक वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किया जाने वाला कार्य बाधित होता है, इच्छा उसी अनुपात में दुःखकर होती है" (मेलोन)। यदि इच्छा की तृप्ति होती है तो सुख उत्पन्न होता है। यदि इच्छा का विघात होता है तो दुःख उत्पन्न होता है। इच्छा किसी वस्तु की ओर संचालित होती है। यदि वस्तु प्राप्त हो जाती है तो सुख उत्पन्न होता है। यदि वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तो दुःख उत्पन्न होता है। इस प्रकार इच्छा अनुभूति की—सुख या दुःख की जननी है।

अनुभूति भी इच्छा का कारण है। सामान्यतया अभाव की दुःखद अनुभूति कर्म का स्रोत होती है। दुःख अभाव से मुक्त होने की इच्छा को जन्म देता है। भूख की पीड़ा भोजन पाने और खाने की इच्छा उत्पन्न करती है। सुख प्रायः कर्म का स्रोत नहीं होता। इस प्रकार इच्छा अनुभूति पर निर्भर है।

स्वयं इच्छा भी अंशतः सुखकर और प्रधानतः दुःखकर होती है। यह दुःख से प्रायः उत्पन्न ही नहीं होती, बल्कि स्वयं बहुत दुःखद भी होती है, क्योंकि इसमें वास्तविक और आदर्श के अन्तर की तीव्र चेतना होती है। भोजन की इच्छा में भूख की वर्तमान दशा और तृप्ति की भावी दशा के मध्य अन्तर की तीव्र चेतना होती है; और यह चेतना अत्यधिक दुःखद होती है, यद्यपि भावी तृप्ति की प्रत्याशा से मिलने वाले सुख के आभास से शून्य यह नहीं होती। इस प्रकार इच्छा में वेदना का अंश होता है।

११. अनुभूति और स्थूल क्रिया (Feeling and Overt Action)

"अनुभूति क्रिया की तुलना में शरीर की एक निष्क्रिय अवस्था प्रतीत होती है, और यह स्थूल क्रिया के मुकाबले में आन्तरिक होती है। जबकि स्थूल क्रिया बाह्य वस्तुओं से व्यवहार करती है, अनुभूति, एकान्ततया कोई बाह्य परिणाम पैदा नहीं करती।"[१] तथापि अनुभूति स्थूल क्रिया को जन्म देती है जो बाह्य परिस्थिति को या तो यथावत् रखती है या परिवर्तित करती है। सुखकर अनुभूति के कारण उसको उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को स्वीकार किया जाता है, यथावत् रखा जाता है, या प्रवृद्ध किया जाता है। दुःखकर अनुभूति के कारण उसको उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को अस्वीकार किया जाता है, उससे दूर रहा जाता है, या उसे परिवर्तित किया जाता है। अतः अनुभूति कर्म का कारण है, यद्यपि एकान्ततया यह कर्म नहीं है। परिस्थिति को स्थिर रखने या परिवर्तित करने के किसी स्थूल कर्म के बिना भी अनुभूति हो सकती है। इसी प्रकार स्थूल कर्म भी अनुभूति की न्यूनतम मात्रा के बिना हो सकता है।

अतः अनुभूति तथा स्थूल कर्म परस्पर भिन्न हैं। लेकिन अनुभूति को एक गत्यात्मक तत्परता (motor set) माना जा सकता है। "यह शरीर की सामान्य तत्परता (set) या अभिवृत्ति (attitude) है। सुख परिस्थिति को यथापूर्व रखने की सामान्य तत्परता है, दुःख परिस्थिति से छुटकारा पाने की। अनुभूति मात्र में किसी विशेष कर्म के लिये तत्परता नहीं होती।"[२]

१२. पीड़ा की संवेदना और पीड़ा की अनुभूति (Pain-Sensation and Pain-Feeling)

पीड़ा की संवेदना और पीड़ा की अनुभूति में अन्तर होता है। पीड़ा की स्पर्शज संवेदना का स्थानीयकरण हो सकता है और अन्य संवेदनाओं के

[१] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ३३६

[२] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ३३७-३८

साथ वह संयुक्त हो सकती है। आंगिक पीड़ा-संवेदनायें सदैव न्यूनाधिक निश्चय के साथ स्थानीयकृत नहीं हो सकतीं। स्पर्शज और आंगिक पीड़ाएँ संवेदनायें हैं; जलन, चुभन इत्यादि के रूप में इनकी प्रायः अलग-अलग पहिचान हो सकती है। इस प्रकार इनके विभिन्न गुण हो सकते हैं। पीड़ा की विशुद्ध आत्मगत अनुभूतियों के साथ, जिनके वस्तुगत गुण बिल्कुल नहीं होते, उनका तादात्म्य नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त पीड़ा की संवेदनायें कभी-कभी सुखद भी हो सकती हैं। "कई व्यक्तियों को घाव का हल्का स्पर्श करने में सुखद की तृप्ति की अनुभूति होती है; जीभ से किसी घाव या ढीले दाँत को छूने में भी ऐसा ही होता है" (एंजिल)। अतः पीड़ा की अनुभूति पीड़ा की संवेदना से भिन्न है।

१३. अनुभूति का कार्य (Function of Feeling)।

अनुभूतियां हमारे मौलिक अनुभव हैं। कई अनुभवों के साथ सुख और दुःख की वेदनायें होती हैं, जो मानवीय मन के प्रारम्भिक संयन्त्र (equipment) हैं। सामान्यतया सुखद अनुभव प्राणी के लिये हितकारी होते हैं, दुःखद अनुभव हानिकारी होते हैं। लेकिन इनके अपवाद भी हैं। अनुभव सुख और दुःख को महसूस करने की हमारी जन्मजात प्रवृत्तियों को परिवर्तित कर देता है। हम कुछ मूलतः दुःखद वस्तुओं को पसन्द करने लगते हैं; कुछ मूलतः सुखद वस्तुओं को नापसन्द करना हम सीख लेते हैं। लेकिन सामान्यतया सुखद प्रतिक्रियायें जीवनविज्ञान की दृष्टि से लाभकारी होती हैं। जो परिस्थिति सुख उत्पन्न करती है उसे हम सुरक्षित रखना और बढ़ाना चाहते हैं। जो परिस्थिति दुःख उत्पन्न करती है उसे हम दूर रखना या उससे पलायन करना चाहते हैं। सुख भावात्मक शारीरिक समायोजन से सम्बन्धित है। दुःख अभावात्मक शारीरिक समायोजन से सम्बन्धित है। वे प्राणी के लिये हितकारी या हानिकारी आदतों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं।

१४. अनुभूति के नियम (Laws of Feeling)।

(१) उत्तेजन का नियम (The law of stimulation)—वुंट ने संवेदनाओं में प्रयोग-विधि से उत्तेजन के नियम को स्थापित करने की चेष्टा

की थी। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का उत्तेजन जब निम्नतम संवेद्य बिन्दु (Threshold point) से ऊपर उठता है तो पहिले सुखद होता है, सुख उत्तेजना के साथ-साथ कुछ काल तक बढ़ता जाता है और उच्चतम बिन्दु तक पहुँच जाता है; तत्पश्चात् उसका ह्रास शुरु होता है, यहाँ तक कि वह "उदासीनता के बिन्दु" पर पहुँच जाता है, जहाँ संवेदना तटस्थ हो जाती है, ज्यों-ज्यों उत्तेजना की मात्रा बढ़ती जाती है, संवेदना उत्तरोत्तर दुःखद होती जाती है, तथा उसकी दुःखदता पीड़ा के परम बिन्दु पर पहुँच जाती है, जिसके बाद फिर उसमें वृद्धि नहीं होती।

लेकिन वुंट्ट के नियम में एक कमी है। सुख और दुःख उत्तेजनाओं के प्रकारों पर निर्भर होते हैं। शुद्ध मधुर स्वाद की सब मात्रायें प्रिय होती हैं और शुद्ध कटु स्वाद की सब मात्रायें अप्रिय। इसी प्रकार अनियमित ध्वनियों की सब मात्रायें तत्वतः पीड़ाप्रद होती हैं। अतः सुख और दुःख उत्तेजनाओं के गुणों पर भी निर्भर हैं।

(२) *परिवर्तन का नियम (The law of change)*—क्रिया की मात्रा में परिवर्तन अनुभूति का एक कारण है। जब हम मन्द प्रकाश से तीव्र प्रकाश में जाते हैं तो सुख की अनुभूति होती है। क्रिया के प्रकार में परिवर्तन अनुभूति को उत्पन्न करता है। जब मन बौद्धिक कार्य के पश्चात् फुटबॉल के खेल में संलग्न होता है तो उसे सुख की अनुभूति होती है। *विपरीत परिवर्तन* भी अनुभूति को उत्पन्न करता है। भूख की पीड़ा से उसकी तृप्ति के सुख में, बीमारी से स्वास्थ्य में, निर्धनता से धनवत्ता में परिवर्तन अत्यधिक सुखकर होता है।

इस नियम में भी कुछ कमियाँ हैं। परिवर्तन सुख का एक उद्गम है। लेकिन यदि परिवर्तन आकस्मिक होता है तो वह दुःखदायी हो जाता है, क्योंकि मन परिवर्तनशील परिस्थितियों के साथ शीघ्र व्यवस्थापन (adaptation) नहीं कर पाता। इस नियम की दूसरी सीमा है आदत या व्यवस्थापन का भाव जो प्रारम्भ में सुखद होता है वह एकरसता और थकान उत्पन्न करने वाली अनुचित दीर्घता के कारण दुःखद हो सकता है, यथा जब

एक परिचित दवा की बहुत बारंबार आवृत्ति की जाती है। "कुछ दशायें जो प्रारम्भ में अप्रिय होती हैं, मध्यान्तरों पर कई बार दोहराई जाने पर क्रमशः अप्रिय लगना छोड़ सकती हैं, और उदासीन हो जाती हैं या प्रिय तक लगने लगती हैं, क्योंकि शरीर उनसे व्यवस्थापित हो जाता है" (स्टीफ़ेन)। धूम्रपान प्रारम्भ में अप्रिय होता है लेकिन अभ्यास से प्रिय हो जाता है।

(२) *संगति और असंगति का नियम (The law of harmony and discord)*—उत्तेजनाओं (यथा, संगीत की ध्वनियाँ) की संगति या सामंजस्य प्रिय होता है। समकालिक (Simultaneous) या अनुक्रमिक (Successive) उत्तेजनाओं की असंगति (यथा, कोलाहल) अप्रिय होता है। संगत दृश्य और ध्वनियां सुखद होते हैं, जब कि असंगत दृश्य और ध्वनियां दुःखद। जब विचार संगतिपूर्ण होते हैं तो वे सुखदायी होते हैं। जब विचार परस्पर संघर्षशील या विरोधी होते हैं तो वे दुःखदायी होते हैं। जब आवेग और इच्छायें एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित होती हैं तो उनसे सुख मिलता है; लेकिन जब उनका परस्पर विरोध होता है तो वे दुःखद होती हैं। आंगिक अवस्थाओं की संगति सुखद होती है। जब शरीर की अवस्थाओं में सामंजस्य होता है तो सुख की अनुभूति होती है। जब वे एक दूसरी के लिये बाधक होती हैं अर्थात् उनमें संघर्ष होता है तो पीड़ा की अनुभूति होती है।

१५. सुख दुःख के सिद्धान्त (Theories of Pleasure-Pain)

(१) अनुभूति के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological theories of Feeling)

(क) अनुभूति विचारों का कार्य है (Feeling is a function of ideas)—हर्बर्ट (Herbart) का विचार है कि मन में विचार अथवा विचार-शक्तियां होती हैं, जो चेतना के अन्तिम तत्व हैं। सुख की उत्पत्ति विचारों की संगति से, और दुःख की विचारों के तनाव या संघर्ष से होती है। अनुभूति विचारों का एक कार्य है। यह चेतना का प्रारम्भिक और मौलिक प्रकार नहीं है।

लेकिन एक अकेली संवेदना दूसरी संवेदनाओं से संयुक्त हुये बिना एकान्ततया सुख या दुःख की अनुभूति उत्पन्न कर सकती है। मीठे की संवेदना सुख उत्पन्न करती है, और कड़ुवे की संवेदना दुःख को। हम संवेदनाओं को अनेक प्रकार से संयुक्त कर सकते हैं। लेकिन उनसे हमें संवेदनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त हो सकता। संवेदना तथा अनुभूति परस्पर स्वतंत्र होकर रह सकती हैं। उन्हें कृत्रिमतया एक दूसरे से पृथक् किया जा सकता है। संवेदना और अनुभूति अपने नियमों का अलग-अलग अनुसरण करती हैं। जब संवेदना की तीव्रता बढ़ती या घटती है, तो अनुभूति की भी बढ़ती या घटती है; लेकिन ऐसा केवल एक निश्चय बिन्दु तक ही होता है, क्योंकि एक ऐसा क्षण आ जाता है जब उसके गुण में परिवर्तन हो जाता है। (वुंड्ट का उत्तेजन का नियम)।

(ख) *अनुभूति चेष्टा (स्टाउट) या ध्यान (वार्ड) का कार्य है।*
(*Feeling is a function of conation or attention*)।

स्टाउट का मत है कि अनुभूति चेष्टा या मानसिक सक्रियता का कार्य है। सुख की उत्पत्ति मानसिक क्रिया की सफलता से होती है। दुःख की उत्पत्ति मानसिक क्रिया की विफलता से होती है। मन की साधारण अवस्था एक स्थिर संतुलन है। जब संतुलन बिगड़ जाता है तो दुःख पैदा होता है; तथा जब संतुलन पुनः स्थापित हो जाता है तो सुख पैदा होता है। "जो भी स्थितियाँ चेष्टा की लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक होती हैं वे सुख देती हैं। जो भी स्थितियाँ चेष्टा की लक्ष्य-प्राप्ति में विघ्न उपस्थित करती हैं वे दुःख देती हैं" (स्टाउट)।

वार्ड का मत है कि ध्यान का किसी विषय से प्रभावपूर्ण व्यवस्थापन सुख देता है, और प्रभावहीन व्यवस्थापन दुःख देता है। "सुख का अनुपात प्रभावपूर्ण ढंग से दिये हुये अधिक से अधिक ध्यान के अनुसार होता है, और दुःख का अनुपात विघ्नों, धक्कों या अपूर्ण और दोषपूर्ण समायोजनों के द्वारा बाधित प्रभावपूर्ण ध्यान के अनुसार" (वार्ड)।

कुछ मानसिक सुखों और दुःखों का स्पष्टीकरण इस प्रकार हो सकता है। लेकिन ये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त शारीरिक सुखों और दुखों को स्पष्ट नहीं कर सकते। सुख-दुःख के सही सिद्धान्त को केवल मन की अवस्था का ही विचार नहीं करना है, बल्कि शरीर की दशा का भी।

(२) अनुभूति के शरीरशास्त्रीय सिद्धान्त (Physiological Theories of Feeling)

अरस्तू का मत है कि शरीर के अन्दर शक्ति की एक स्थिर मात्रा होती है, जो न बढ़ती है न घटती है। सुख की उत्पत्ति शक्ति के साधारण व्यापार या परिमित उपयोग से होती है; दुःख की उत्पत्ति इस शक्ति के न्यून व्यापार या अति-व्यापार से होती है।

यह सिद्धान्त उस लक्ष्य या उद्देश्य की उपेक्षा करता है जिसके लिये जीवन-शक्ति का व्यय होता है। किसी उद्देश्य के लिये (यथा, किसी रुग्ण मित्र की सेवा के लिये) शक्ति का अति-व्यय सुखद हो सकता है, जबकि उसका परिमित व्यय (यथा, किसी रुग्ण शत्रु की सेवा के लिये) दुःखद हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त साध्य लक्ष्य की प्राप्ति या अप्राप्ति का विचार नहीं करता। शक्ति की उसी मात्रा का व्यय हो सकता है। लेकिन यदि उसका उद्देश्य पूरा होता है तो सुख मिलता है; और यदि उद्देश्य पूरा नहीं होता तो दुःख मिलता है। "जब हम कील के सिर पर आघात करते हैं तो हम प्रसन्न होते हैं और जब ऐसा नहीं कर पाते तो दुःखी होते हैं" (स्टाउट)। इस प्रकार लक्ष्य या उद्देश्य तथा उसकी पूर्ति या अपूर्ति ध्यान में रखनी चाहिये। जीवन-शक्ति का व्यय मात्र, परिमित या अपरिमित, सुख और दुःख का स्पष्टीकरण नहीं कर सकता।

स्पिनोज़ा, कान्ट, बेन और हर्बर्ट स्पेन्सर का मत है कि सुख जीवन-वृद्धि का सूचक है, तथा दुःख जीवन-क्षय का सूचक है। सुख जीवन-शक्ति की वृद्धि का मानसिक सहचर है और दुःख जीवन-शक्ति के क्षय का। सुख जीवन प्रदान करता है; दुःख जीवन नष्ट करता है। कान्ट कहता है, "सुख जीवन के उत्कर्ष की और दुःख जीवन के अपकर्ष की अनुभूति है।"

हर्बर्ट स्पेन्सर जैविक उत्क्रान्ति (Biological evolution) के तथ्यों की सहायता से इस मत को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक प्राणी सुख-लाभ और दुःख-निवृत्ति चाहता है। यदि सुख जीवन-नाशक और दुःख जीवन-वर्धक होता तो जीव बहुत पहिले नष्ट हो चुके होते। लेकिन जीव जीवित हैं और स्वभावतया सुख-प्राप्ति और दुःख-मुक्ति का प्रयत्न करते हैं। यह स्पष्टतया यह सिद्ध करता है कि सुख जीवन की वृद्धि और दुःख उसका ह्रास करता है।

बेन प्रत्यक्ष अनुभव से इस सिद्धान्त को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, "आनन्द रक्त-संचार, पाचन और श्वसन इत्यादि सभी जीवन-व्यापारों को उत्तेजित करता है। दूसरी ओर, शोक का उनके व्यापारों पर अवसादकारी प्रभाव (Depressing effect) होता है।" सुख की अभिव्यक्ति नेत्रों की चमक, मुख की लालिमा इत्यादि में होती है। दुःख की अभिव्यक्ति नेत्रों और मुख के पीलेपन में होती है। "सुख में श्वसन-क्रिया अधिक सक्रिय हो जाती है; पाचन और पोषण की क्रियायें सशक्त हो जाती हैं, जिससे शरीर का स्वास्थ्य बढ़ता है; जबकि दुःख के साथ इन सब जीवन व्यापारों में मन्दता आ जाती है। सुख से निर्गामी स्नायुओं में और पेशियों में भी शक्ति का प्रवाह बढ़ जाता है, जैसा कि स्फूर्ति और गतियों, हाव-भावों, हास्य इत्यादि की क्षिप्रता से सूचित होता है। संक्षेप में, सुख जीवन-शक्ति में वृद्धि की चेतना है। दुःख जीवन-शक्ति का पतन है" (स्टीफेन)।

सभी सुख जीवन-शक्ति की वृद्धि करने वाले नहीं होते। कुछ घातक विष स्वाद में सुखद होते हैं। सभी दुःख जीवन-शक्ति-नाशक नहीं होते। कुनैन और कुछ अन्य दवायें स्वाद में अप्रिय होती हैं। कुछ घातक रोग (यथा, क्षय) उसी अनुपात में पीड़ाजनक नहीं होते। कुछ शारीरिक (यथा, दन्त-पीड़ा) अत्यधिक पीड़ाप्रद होते हैं, लेकिन वे अनुपाततः जीवन-शक्ति-नाशक नहीं होते इस शरीरशास्त्रीय सिद्धान्त के द्वारा केवल शारीरिक सुखों और दुःखों का ही स्पष्टीकरण हो सकता है। यह सिद्धान्त मानसिक सुखों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। स्पेंसर के मत में गड़बड़ यह है कि सुख

और दुःख जीवन-क्रिया के सहचर या उप-प्रभाव मात्र हैं अथवा जीवन-क्रिया को प्रारम्भ करने वाले कारण, यह स्पष्ट नहीं होता। यह अन्तर महत्वपूर्ण है। यदि सुख और दुःख को जीवन-क्रिया के उपप्रभाव (By-products) मात्र माना जाय तो उनका मन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। लेकिन विचार और कर्म पर अनुभूति का प्रभाव हमारे अनुभव का एक स्पष्ट तथ्य है।

अतः सुख दुःख को जीवन-क्रिया का एक व्यापार मात्र नहीं माना जा सकता। इसे बुद्धि या चेष्टा का व्यापार भी नहीं माना जा सकता। अनुभूति मन का एक मौलिक, स्वतंत्र व्यापार है, जिसका एक ओर ज्ञान और चेष्टा से घनिष्ठ सम्बन्ध है, तथा दूसरी ओर जीवन-क्रिया से।

१६. पूर्वरचित साहचर्यों के कारण अनुभूति (Feeling due to Prefomed Associations)

पके आम का दर्शन सुख देता है। इसका कारण इसके दृश्य रूप की अपेक्षा इसके मधुर स्वाद का पूर्व अनुभव अधिक हो सकता है। कव्वे की कांव-कांव स्वयं निस्सन्देह प्रिय नहीं होती। लेकिन जो लोग पहिले बचपन में गांव में रहते थे और अब शहर में रहते हैं उनके लिये यह प्रिय होते हैं। यह सुख इसलिये देती है कि सुखद अनुभवों से इसका साहचर्य है। इस प्रकार सुख-दुःख पूर्वरचित साहचर्यों के कारण हो सकते हैं।

अध्याय १६

सँवेग (EMOTIONS)

१. अनुभूति और संवेग (Feeling and Emotion)

अनुभूतियां सुख और दुःख की सरल ऐन्द्रिय वेदनायें हैं। उनकी उत्पत्ति संवेदनाओं से होती है। उनका प्रारंभ त्वचा में होता है। मैं एक पीले रंग के धब्बे को देखता हूं। इससे मुझे सुख मिलता है। मैं एक कोलाहल सुनता

हूँ। इससे मुझे दुःख होता है। ये ऐन्द्रिय अनुभूतियाँ हैं। संवेग जटिल वेदनात्मक अवस्थायें हैं जिनकी उत्पत्ति परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, या कल्पना से होती है। उनमें सदैव स्मृति और कल्पना होती है। उनका प्रारम्भ केन्द्र में होता है। वे विचारों से पैदा होते हैं। वे अधिक ऊँची और जटिल वेदनात्मक दशायें हैं। किसी रंग की सुन्दरता अनुभूति है, जबकि सफलता-पूर्वक किये गये तर्क से मिलने वाला हर्ष संवेग है। कोलाहल सुनने का दुःख अनुभूति है, जबकि विषाद का दुःख संवेग है। अनुभूतियां और संवेग मानसिक गुण की दृष्टि से भिन्न हैं। गुण में उनके विशेष अन्तर उन सहचारी परिस्थितियों के कारण होते हैं जो उन्हें पैदा करती हैं। विचार के उच्चतर स्तर पर संवेग की रचना में नये तत्व प्रवेश करते हैं, संवेदना से उत्पन्न होने वाली अनुभूति में जिनका अस्तित्व नहीं होता।

संवेगों की आंगिक अभिव्यक्तियां ऐन्द्रिय-अनुभूतियों की आंगिक अभिव्यक्तियों की अपेक्षा अधिक व्यापक होती हैं। अनुभूति अपेक्षाकृत सीमित स्नायविक उद्दीप्ति में प्रकट होती है। दूसरी ओर, संवेग दूर तक विस्तृत उद्दीप्ति में प्रकट होता है, जिसमें ऐच्छिक पेशियों तथा आन्तरिक अंगों (हृदय फुफ्फुस इत्यादि) की उद्दीप्ति शामिल है।

संवेग अनुभूतियों के साथ मिश्रित होते हैं। उनमें सुख, दुःख, या दोनों होते हैं। अनुभूतियां और संवेग दोनों मस्तिष्क के तने (Brain stem) पर निर्भर होते हैं। उन्हें एक साथ वेदना नाम से अभिहित किया जाता है।

२. संवेगों का विश्लेषण (Analysis of Emotions)

भय—यह किसी खतरनाक परिस्थिति के ज्ञान से उत्पन्न होने वाला संवेग है। मैकडूगल के मतानुसार भय का संवेग पलायन की मूलप्रवृत्ति का वेदनात्मक पहलू है। भय अत्यधिक ऊँचे कोलाहल, बिजली की चमक कर देने वाली चमक, आकस्मिक गर्जना इत्यादि से जाग्रत होता है। यह उस वस्तु के दर्शन से उत्पन्न होता है जिसने भूतकाल में पीड़ा या हानि पहुँचाई

थी। जो परिस्थितियां भय जाग्रत करती हैं वे स्वभावत: आक्रामक या विघ्नकारी होती हैं। एक आकस्मिक और तीव्र संस्कार भय उत्पन्न करता है। विपुल ध्वनि जिसके लिये हम तय्यार नहीं होते हमारे, अन्दर भय पैदा करती है। भय हृदय की तेज़ गति, अंगों के कांपने और मुर्झाने, दूर भागने इत्यादि में प्रगट होता है। अत्यन्त आतंक (Terror) शरीर के जकड़ जाने में प्रकट होता है।

क्रोध—यह चेष्टा की विफलता से जाग्रत होता है। इसकी उत्पत्ति किसी भी सहज या अर्जित प्रवृत्ति के बाधित होने से होती है। मैकडूगल के मतानुसार क्रोध का संवेग युद्ध की मूलप्रवृत्ति का वेदनात्मक पहलू है। किसी सहज या अर्जित प्रवृत्ति का किसी भी प्रकार का विरोध या विघात क्रोध उत्पन्न कर सकता है। बिल्ली के बच्चों को यदि छेड़ा जाय तो वह क्रोधित हो जाता है। यदि बच्चे का खिलौना छीन लिया जाय तो वह क्रोधित हो जाता है। अपमानित होने पर कोई भी मनुष्य क्रोधित हो जाता है। क्रोध का संवेग लड़ने या विरोध का अन्त करने की मूलप्रवृत्ति का वेदनात्मक पहलू है। क्रोध और भय की पहचान विरोधी प्रवृत्तियों से होती है। भय में शारीरिक अभिवृत्ति पीछे हटने की होती है, जबकि क्रोध में शरीर आक्रामक मुद्रा को धारण करता है। क्रोध प्रबल गतियों में व्यक्त होता है। भौंह चढ़ाना, गरजना, दांत पीसना, मुट्ठी बांधना, ठोकर मारना, आघात करना इत्यादि क्रोध को प्रकट करते हैं। भय कांपने भागने इत्यादि में प्रकट होता है।

हर्ष—इसकी उत्पत्ति किसी वांछित वस्तु की प्राप्ति से होती है। जब इच्छा की वस्तु उपलब्ध हो जाती है, तो इससे हर्ष होता है। इसकी अभिव्यक्ति सम्पूर्ण शरीर के बढ़े हुये सामान्य तनाव में होती है। सीधे रहने की मुद्रा, छाती का आगे निकलना, आंखों की चमक, मुस्कराता हुआ चेहरा, हँसना, उछलना कूदना इत्यादि हर्ष के प्रकाशन हैं।

शोक—इसकी उत्पत्ति वांछित वस्तु की हानि से होती है। अपनी इच्छाओं को पूरा करने की असफलता इसे उत्पन्न करती है। जब किसी

व्यक्ति से उसकी प्रिय वस्तु छीन ली जाती है तो उसे शोक होता है। हर्ष वह संवेग है जो प्रयत्न की सम्भावना से पैदा होता है, जबकि शोक आंशिक या वास्तविक असफलता का परिणाम है। शोक के लक्षण हर्ष के लक्षणों से विपरीत होते हैं। मुर्झाई हुई मुद्रा, छाती का संकुचित होना, शरीर के तनाव में सामान्य शैथिल्य इत्यादि शोक के लक्षण हैं। आवन्त विषाद का बलान्त करने वाला प्रभाव होता है।

प्रेम—'प्रेम' शब्द भिन्नार्थक है। इसका तीन अर्थों में प्रयोग होता है। प्रथम, इसका अर्थ काम-संवेग है। यह काम-प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाला संवेग है। मैकडूगल इसे काम-वासना का संवेग कहता है। द्वितीय, इसका अर्थ मातृक-प्रवृत्ति (Maternal instinct) से उत्पन्न होने वाला वत्सलता (Tenderness) का संवेग है। तृतीय, इसका अर्थ, यह भावना (Sentiment) या स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति (Permanent emotional disposition) है जो वात्सल्य के संवेग में प्रकट होती है। स्वार्थमूलक प्रेम प्रिय पदार्थ के हित का ध्यान न रखते हुए अपनी तृप्ति चाहता है। लेकिन जब यह प्रिय वस्तु उपस्थिति मात्र से नहीं बल्कि उसके हित के विचार से भी जाग्रत होता है, तो यह सच्चे प्रेम का संवेग है। इसमें आसक्ति (Attachment) का शुद्ध संवेग और सहानुभूति का संवेग होता है। आसक्ति आलिंगन, चुम्बन इत्यादि में प्रकट होती है।

प्रेम में दो तत्व वर्तमान रहते हैं, आसक्ति और सहानुभूति, आलिंगन चुम्बन में आसक्ति होती है। सहानुभूति में दूसरों के संवेग का अनुभव किया जाता है। सली (Sully) का विचार है कि आसक्ति या स्वार्थपरक प्रेम स्वार्थमूलक तत्व है और सहानुभूति प्रेम में परार्थमूलक तत्व है। बेन का विचार है कि आसक्ति वात्सल्य का संवेग है जो किसी प्रकार के शारीरिक सम्पर्क—स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन इत्यादि में अभिव्यक्त होता है। वास्तव में प्रेम के सभी रूपों का स्वाभाविक निरसरण प्रेम की वस्तु की उपस्थिति या संगति में प्रसन्नता का अनुभव करने में होता है।

घृणा—'घृणा' शब्द भी भिन्नार्थक है। इसका प्रयोग भावना के अर्थ

में भी होता है तथा संवेग के अर्थ में भी। मैकडूगल के विचार से घृणा एक मिश्रित संवेग है। इसमें क्रोध, भय और विरक्ति का सम्मिश्रण रहता है। घृणा की वस्तु हमें उत्तेजित करती है, डराती है, और विरक्त करती है। एक बलवान् व्यक्ति जो मेरा अपमान करता है, मेरे क्रोध को भड़काता है। लेकिन उसको मार भगाने में क्रोध का प्रकाशन नहीं किया जा सकता। वह मेरे बल से अधिक बल रखता है। इसलिये वह मुझमें भय उत्पन्न करता है। इस भय-मिश्रित अशक्त क्रोध में उस व्यक्ति के प्रति विरक्ति के कारण और भी जटिलता आ जाती है। घृणा और प्रेम में वैपरीत्य है। घृणा व्यक्ति को घृणित वस्तु से दूर हटाती है। प्रेम व्यक्तित्व का विस्तार करने वाला संवेग है और घृणा व्यक्तित्व का संकोच करने वाला। घृणा के कारण व्यक्ति दूसरों से अपनी रक्षा करता है और उनसे दूर रहता है। यह रक्षात्मक संवेग है।

संवेगों के लक्षण (Characteristics of Emotions)

संवेग व्यक्ति की उसके हित को प्रभावित करने वाली परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया है। यह व्यक्ति की क्षुब्ध दशा (Disturbed state) है। यह मन और शरीर की क्षुब्ध अवस्था है। मन के सम्मुख एक परिस्थिति होती है, यह उसे नहीं सम्भाल सकता, और आन्दोलन हो जाता है। इसका प्रकाशन शरीर की अस्तव्यस्तता में होता है। स्टाउट संवेगों के निम्नलिखित लक्षण बतलाता है।

संवेग का विस्तार व्यापक होता है। एक ही प्रकार का संवेग मानसिक विकास की विभिन्न भूमिकाओं में—प्रत्यक्षीकरण के निम्नतर स्तर से लेकर विचार और प्रत्ययन के उच्चतर स्तरों तक—उत्पन्न हो सकता है। बिल्ली के बच्चों से छेड़छाड़ करने पर बिल्ली क्रोधित हो जाती है। यदि बच्चे का खिलौना छीन लिया जाय तो वह क्रोधित हो जाता है। यहाँ पर प्रत्यक्षीकरण से क्रोध जाग्रत हो जाता है। जब हम शत्रु द्वारा की गई अपनी क्षति का स्मरण करते हैं तो क्रोधित हो जाते हैं। यहाँ क्रोध स्मृति से जाग्रत होता है। हम उस क्षति से चिन्तित हो जाते हैं जो हमें शत्रु से हो सकती है और हम

क्रुद्ध हो जाते हैं। यहाँ कल्पना क्रोध को भड़काती है। जब दूसरे लोग हमारे तर्कों को समझने में असमर्थ होते हैं तब हम क्रुद्ध हो उठते हैं। यहाँ विचार से क्रोध जाग्रत होता है। इस प्रकार वही संवेग मानसिक-विकास की विभिन्न भूमिकाओं में जाग्रत होता है, यद्यपि उसकी जटिलता की मात्रा में विभिन्नता सम्भव है।

विविध परिस्थितियाँ एक ही संवेग को जन्म देती हैं। किसी भी प्रकार का विरोध या विफलता क्रोध पैदा कर सकती है। आप कुत्ते को उस समय छेड़ने से जब वह खा रहा हो, अथवा उसके बच्चों को छेड़ने से, अथवा उसकी पूँछ खींचने से क्रोधित कर सकते हैं। किसी भी प्रकार का खतरा भय उत्पन्न कर सकता है। यदि हिंस्र पशु से आपकी जान को खतरा है, या आपकी नौकरी जाने वाली है, या आपका लड़का बहुत बीमार है, आप भयाक्रान्त हो जाते हैं। एक सामान्य प्रकार की परिस्थिति, वस्तुओं की एक संवेग को जन्म देती है, एक प्रकार की परिस्थिति, वस्तुओं की एक विशेष जाति नहीं, एक संवेग को जन्म देती है। एक प्रकार की परिस्थिति से उत्पन्न संवेग एक ही प्रकार के व्यवहार में प्रकाशित होता है। एक विशेष वस्तु संवेग उत्पन्न नहीं करती। एक परिस्थिति संवेग उत्पन्न करती है। परिस्थिति व्यक्ति को प्रभावित करने वाली स्थितियों का एक जटिल समूह है।

संवेगात्मक दशाओं के दो कारण होते हैं। किसी विशेष परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, या विचार से वे उत्पन्न होती हैं। जब आपको एक सुसमाचार मिलता है तो उसके मन में हर्ष होता है। जब एक व्यक्ति सुरापान करता है तो उसे हर्षोन्माद हो जाता है। पहिली दशा में हर्ष का कारण एक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण और कल्पना है। दूसरी दशा में हर्ष का कारण एक आंगिक अवस्था (Organic state) है। आंगिक अवस्था से संवेग के बजाय मनोदशा (mood) उत्पन्न होती है।

संवेग की प्रवृत्ति मनोदशा के रूप में स्थिर रहने की होती है। वह अपने पीछे एक संवेगात्मक मनोदशा छोड़ जाता है जो उससे समानता रखती है।

आप सवेरे उठते हैं और अपने पाठों के प्रति अपनी असावधानी के कारण मां-बाप की डांट खाते हैं। आप क्रोधित हो जाते हैं। क्रोध एक संवेद है। यह एक चिड़चिड़ाहट की मनोदशा के रूप में बने रहने की कोशिश करेगा। आप बहुत तुच्छ बात पर भी भड़कने लगेंगे। संवेगात्मक मनोदशा अपने लिये विषय पैदा कर लेती है। यदि आपके भाई-बहन आपको छेड़ें तो आप उन्हें डांटेंगे, या अपने नौकर को उसकी सुस्ती या आज्ञोल्लंघन के लिए डांटने लगेंगे।

संवेग स्वभावतः परोपजीवी (Parasite) होता है। संवेगों के पूर्व कुछ मूलप्रवृत्तियों का होना आवश्यक है। उनका प्रादुर्भाव सहज-प्रवृत्तियों से होता है। आप भूखे कुत्ते से हड्डी छीन लेते हैं। वह क्रोधित हो जाता है। कुत्ते के क्रोध की उत्पत्ति भोजन की मूलप्रवृत्ति से होती है। आप गाय के नवजात बछड़े को छेड़ते हैं। वह क्रोधित हो जाती है। उसके क्रोध की उत्पत्ति अपनी सन्तति की रक्षा और पालन करने की मातृक-प्रवृत्ति से होती है। इस प्रकार जहाँ तक संवेग सामान्य परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं, सामान्य आंगिक परिवर्तनों मात्र से नहीं, वहां तक उनके पहिले जन्मजात प्रवृत्तियों का होना आवश्यक है।

सभी तीव्र संवेगों में आंगिक संवेदनायें संवेगात्मक अनुभव के महत्वपूर्ण अंग होती हैं। जब कभी कोई तीव्र संवेग (यथा, क्रोध या भय) होता है तब शरीर के आन्तरिक अंगों में परिवर्तन होते हैं जो आंगिक संवेदनायें उत्पन्न करते हैं। ये संवेग के अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक होते हैं। लेकिन जैसी कि विलियम जेम्स की भ्रान्त धारणा है, आंगिक संवेदनायें संवेग नहीं हैं। प्रबल संवेग में पेशियों में तनाव या शैथिल्य होता है जो पैशिक संवेदनायें उत्पन्न करता है।

संवेगकी रचना या विश्लेषण (Structure or Analysis of Emotion)

प्रत्येक संवेग के दो पहलू होते हैं, शारीरिक और मानसिक। हम संवेग के निम्नलिखित तत्वों को पहिचान सकते हैं :—

(१) मानसिक पहलू में :

(क) किसी ऐसी परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना या विचार जो व्यक्ति की भौतिक, मानसिक, सामाजिक अथवा उच्चतर रुचियों पर प्रभाव डालती हो ;

(ख) सुख अथवा दुःख की वेदना ;

(ग) सक्रिय होने की प्रवृत्ति;

(घ) आंगिक तथा पैशिक संवेदनाओं की जटिलता;

(२) शारीरिक पहलू में :

(ङ) व्यापक आन्तरिक परिवर्तन;

(च) पैशिक गतियाँ ।

मानसिक तत्व एक ऐकिक (Unitary) अनुभव के घटक हैं, जिसे संवेग कहते हैं। ये प्रत्येक संवेग में समान रूप से प्रमुख नहीं होते। शारीरिक तत्व मिलकर अभिव्यक्ति कहलाते हैं।

संवेगात्मक अनुभव की रचना में हमें निम्नलिखित तत्वों पर ध्यान देना चाहिये :

संवेग किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना या विचार से जाग्रत होता है। एक एकान्त वस्तु संवेग को उद्दीप्त नहीं करती। लेकिन एक परिस्थिति जिसका व्यक्ति से सम्बन्ध होता है संवेग उत्पन्न करती है। परिस्थिति व्यक्ति को प्रभावित करने वाली स्थितियों का जटिल समूह है। विविध बाह्य परिस्थितियाँ विविध संवेगों को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, एक मुक्त शेर का दर्शन जो व्यक्ति के जीवन के लिये खतरा उपस्थित करता है, उसमें भय उत्पन्न करता है। लेकिन जब वही शेर लोहे के पिंजरे में बन्द रहता है तब भय उत्पन्न नहीं होता। परिस्थिति प्रायः मूल-प्रवृत्यात्मक क्रिया को जन्म देती है जिसका अनुभव संवेग के रूप में होता है। मुक्त शेर के दर्शन से दूर भागने की मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया उत्पन्न होती है, और इसका अनुभव भय के संवेग के रूप में होता है।

संवेग का एक वेदनात्मक गुण होता है; वह सुखद होता है या दुःखद। सुख या दुःख संवेग का एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। किसी परिस्थिति के दर्शन से सुख या दुःख उत्पन्न होता है। अतः वह तटस्थ, वेदनाशून्य नहीं होती।

संवेग चेष्टा को प्रभावित करता है; वह कुछ करने का आवेग पैदा करता है; इसमें सक्रिय होने की प्रवृत्ति सन्निहित होती है। संवेग किसी परिस्थिति के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया है। "इस प्रतिक्रिया में साधारणतः कम या अधिक व्यापक द्वैध उद्दीपन (Double excitement) होता है जो (क) श्वसन, रक्त-संचार और अन्य प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर देता है, और (ख) विविध ऐच्छिक पेशियों में तनाव या शैथिल्य पैदा कर देता है" (वार्ड)।

संवेग आन्तरिक अंगों में व्यापक आंगिक "प्रतिध्वनियां" उत्पन्न कर देता है। बोध-स्नायु इनकी सूचना मस्तिष्क को देती हैं जो मन में आंगिक संवेदनायें उत्पन्न करती हैं। ये आंगिक संवेदनायें संवेग के प्रमुख तत्व होती हैं। लेकिन ये संवेग नहीं हैं। "संवेग शरीर की आन्दोलित अवस्था है। यह अनुभूति की क्षुब्ध अवस्था है। यह एक अस्त-व्यस्त पैशिक और ग्रंथिक क्रिया (Muscular and glandular activity) है। प्रत्येक संवेग एक संवेदना-पुंज होता है, तथा साथ ही एक गति-तत्परता होता है। भय पलायन की तत्परता है, तथा क्रोध आक्रमण की। उल्लास हंसने की तय्यारी है, तथा शोक रोने की" (वुडवर्थ)।

संवेग विविध पेशियों में गतियां भी उत्पन्न करता है। इन पैशिक गतियों की सूचना बोध-स्नायुओं से मस्तिष्क को मिलती है और ये मन में गति-संवेदनायें उत्पन्न करती हैं। ये गति-संवेदनायें भी संवेग के महत्वपूर्ण घटक हैं। विभिन्न संवेगों में विभिन्न स्थूल प्रतिक्रियायें होती हैं। संवेगों की पहिचान, उनमें एक-दूसरे से भिन्नता उनकी बाह्य परिस्थितियों और स्थूल प्रतिक्रियाओं से होती है। कभी-कभी एक स्थूल प्रतिक्रिया संवेग के बिना भी हो सकती है। आप क्रोध के बिना आक्रमण का प्रतिकार कर सकते हैं। आप भय के बिना

खतरे से दूर भाग सकते हैं। वुडवर्थ कहता है, "यदि स्थूल प्रतिक्रिया शीघ्र और सफल होती है, तो संवेग नहीं भी उत्पन्न हो सकता। यदि उस काम में सम्बन्धों का ज्ञान रखने वाली बुद्धि बलवती होती है तो संवेगात्मक प्रतिक्रिया न्यूनतम होती है। लेकिन यदि परिस्थिति हाथ से निकल जाती है तो परिस्थिति के अनुकूल संवेग उत्पन्न हो जाता है। अतः परिस्थिति और स्थूल प्रतिक्रिया से आपका यह अनुमान करना सन्देहहीन नहीं है कि व्यक्ति संवेगात्मक अनुभव से गुजर रहा है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि उसे कोई संवेग हो रहा है तो वह वही है जो उस परिस्थिति और प्रतिक्रिया के साथ प्रायः होता है।"[1] जब मन परिस्थिति को नहीं सम्भाल सकता तब उसे संवेग का अनुभव होता है।

इस प्रकार संवेग में परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण, स्मृति या कल्पना (ज्ञान), सुख या दुःख (वेदना), कुछ करने की प्रवृत्ति (चेष्टा), आंगिक संवेदनायें (ज्ञान) तथा गति-संवेदनायें (ज्ञान) होते हैं। अतः संवेग में ज्ञान, वेदना और चेष्टा के तत्त्व होते हैं जिनसे उनकी रचना होती है।

वुडवर्थ के अनुसार संवेग में अधोलिखित तत्त्व होते हैं :—

(१) व्यक्ति का परिस्थिति को देखना और समझना।

(२) किसी स्थूल क्रिया के लिये, यथा, खतरे से भागने के लिये, उसकी गति-तत्परता स्नायुओं (Autonomic nerves) और अन्तर्मस्तिष्क (Inter-brain) में स्थित उनके केन्द्र पर निर्भर होती है।

(४) आन्तरिक आंगिक क्रिया, अभिव्यंजक गतियों और स्थूल क्रिया के द्वारा उत्पन्न आंगिक और पैशिक संवेदनाओं का पुंज।

(५) कुछ समय तक परिस्थिति पर काबू न कर पाने की व्यक्ति की असमर्थता, और फलस्वरूप शरीर की व्यापक और अनिर्देशित क्रिया।

(६) सुख या दुःख, उद्दीपन या शान्ति, तनाव या शैथिल्य।

५. संवेग तथा मनोदशा (Emotion and Mood)

मनोदशा संवेग का स्थिर रहने वाला पश्चात्-प्रभाव (After effect)

[1] मनोविज्ञान, १९४४ : पृ० ४११

है। संवेग मनोदशा के रूप में स्थिर रहता है। वह एक सजातीय मनोदशा को अपने पीछे छोड़ जाता है। संवेग मनोदशा का कारण है। मनोदशा संवेग की अपेक्षा कम तीव्र होती है। किन्तु उसका सत्ता-काल अधिक दीर्घ होता है। संवेग मनोदशा की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है, लेकिन कम समय तक टिकता है।

किसी निश्चित विषय के सम्बन्ध में संवेग का अनुभव होता है; क्रोधित होने के लिए कोई विषय चाहिये। बिल्ली की पूंछ खींचने से वह क्रोधित होती है। किसी व्यक्ति के द्वारा अपमानित होने पर आपको क्रोध आ जाता है। संवेग एक निश्चित परिस्थिति में उत्पन्न होता है। दूसरी ओर, मनोदशा का कोई निश्चित विषय नहीं होता। यह संवेग का पीछे रहने वाला प्रभाव है। इसकी प्रवृत्ति मन में स्थिर रहने की तथा चेतना के समग्र क्षेत्र को अपने रंग में रंगने की होती है। इसकी कोई निश्चित वस्तु नहीं होती। यह अपने लिए वस्तु पैदा कर लेती है। यदि एक बार आप क्रोधित हो गए तो क्रोधोद्रेक के पश्चात् कुछ काल तक आपकी मनोदशा चिड़चिड़ाहट की रहेगी। छोटी-छोटी बातों पर आप क्रोधित होने लगेंगे। उदाहरणार्थ, यदि मज़ाक में आपका भाई आपकी कलम या पेन्सिल उठा लेता है तो आप क्रोधित होकर उस पर थप्पड़ जमा देंगे। मनोदशा की प्रवृत्ति स्थिर रहने और संवेग में बदल जाने की होती है। जब आपके अन्दर चिड़चिड़ाहट होती है तो आप क्रुद्ध होने के लिए पहिले से ही तय्यार रहते हैं। मनोदशा संवेग का स्थिर रहने वाला पश्चात्-प्रभाव है। और कभी-कभी यह संवेग का मूल कारण होती है।

मनोदशा कभी-कभी शारीरिक अवस्थाओं से भी उत्पन्न होती है। एक व्यक्ति नित्य अपच से पीड़ित रहता है। ये शारीरिक दशायें उसमें उद्दीप्य मनोदशा (Irritable mood.) उत्पन्न करती हैं। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति अनिद्रा रोग से पीड़ित रहता है तो उसकी मनोदशा उद्दीप्य हो जाती है। दूसरी ओर, उत्तेजक दवाओं के निरन्तर उपयोग से प्रसन्नता की मनोदशा उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार मनोदशायें सदैव सक्रिय संवेगात्मक प्रवृत्ति

के पश्चात्-प्रभाव नहीं होतीं। उनकी उत्पत्ति कभी-कभी आंगिक दशाओं में होती है जो सीधे संवेगों को पैदा करने में अशक्त होती हैं।

६ संवेग तथा भावना या संवेगात्मक प्रवृत्ति (Emotion and Sentiment or Emotional Disposition)

भावना एक स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। शैण्ड भावना की परिभाषा देते हुए कहता है कि "भावना किसी वस्तु पर केन्द्रित संवेगात्मक प्रवृत्तियों की एक सुव्यवस्थित समष्टि है।" मैकडूगल कहता है कि यह "किसी वस्तु के अनुभव से उत्पन्न, उस वस्तु के प्रति एक स्थायी चेष्टात्मक अभिवृत्ति है।" "भावना एक अर्जित प्रवृत्ति है जिसका निर्माण धीरे-धीरे कई संवेगात्मक अनुभवों और क्रियाओं से होता है।" ड्रेवर का कथन है कि "भावना एक प्रवृत्ति है, तथा इसमें संवेगात्मक प्रवृत्तियों अथवा प्रवृत्ति का एक विचार अथवा विचार-समष्टि से साहचर्य होता है।" भावना के निर्माण में संवेगात्मक प्रवृत्तियों का संगठन होता है, और यह मानसिक संरचना को परिवर्तित करता है। इस प्रकार भावनाएँ अर्जित मानसिक प्रवृत्तियाँ या संरचनाएँ हैं।

भावना संवेग का वास्तविक उद्रेक नहीं है। यह एक स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। यह किसी संवेग का अनुभव करने की स्थायी प्रवृत्ति है। "संवेग सदैव चेतना की एक सक्रिय अवस्था होता है, संवेगात्मक प्रवृत्ति किसी वस्तु की उपस्थिति में किसी प्रकार के संवेग अनुभव करने की स्थायी प्रवृत्ति है" (स्टाउट)। संवेग एक अल्पस्थायी उद्रेक होता है, जब कि भावना स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति होती है। संवेग चेतना के केन्द्र में अनुभूत होता है। दूसरी ओर, भावना चेतना-द्वार (Threshold of Consciousness) के नीचे एक अपेक्षाकृत स्थायी अवस्था के रूप में वर्तमान रहती है। माँ को अपने बच्चे के लिए प्रेम होता है। उसे सदैव प्रेम के संवेग का अनुभव नहीं होता। किन्तु उपयुक्त अवसरों पर बच्चे को प्यार करने की स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति उसमें वर्तमान रहती है। उदाहरणार्थ, जब बच्चा भूखा होता है और रोता है, तब माता को प्रेम की अनुभूति होती है और यह शीघ्र उसे खिलाती है। केवल कुछ ही अवसरों पर उसे प्रेम के संवेग की अनुभूति होती है। आपको अपने

शत्रु से घृणा है। शत्रु के प्रति आपकी घृणा एक स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। जब आप अपने शत्रु को देखते हैं या उसने आपको जो क्षति पहुँचायी थी उस पर आप विचार करते हैं, उस समय यह प्रवृत्ति जाग्रत होती है और घृणा के सक्रिय संवेग में परिणत हो जाती है। इस प्रकार प्रेम, घृणा, मैत्री, देशभक्ति इत्यादि भावनायें या संवेगात्मक प्रवृत्तियां हैं। अपेक्षाकृत सरल भावना एक विशेष प्रकार के संवेग के बार-बार अनुभव होने का परिणाम है। इससे संवेगात्मक आदत को बल मिलता है—उस संवेग का अनुभव करने की प्रवृत्ति सशक्त होती है। सरल भावना केवल एक ही प्रकार के संवेग को उत्पन्न कर सकती है। किन्तु जटिल भावना कई प्रकार के संवेगों को उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार मैत्री एक अत्यधिक विकसित भावना है। जब व्यक्ति अपने मित्र से बिछुड़ता है तो यह उसमें शोक उत्पन्न करती है; जब वह लम्बी जुदाई के बाद अपने मित्र से मिलता है तो उसे हर्ष होता है; जब दूसरे लोगों में मित्र रुचि प्रदर्शित करता है तो उसे ईर्षा होती है; मित्र की सफलता के लिए यह आशा को जन्म देती है, उसके खतरे में होने पर भय को, उसके शत्रुओं के प्रति क्रोध को। ये सभी संवेग मैत्री की भावना से उत्पन्न होते हैं, लेकिन उन सब का अनुभव एक साथ नहीं हो सकता। स्वयं भावना इस विविध प्रकार के संवेगों की स्थायी दशा है।

७. भावना और मनोदशा (Sentiment and Mood)

भावना स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। लेकिन मनोदशा किसी संवेगात्मक उद्रेक का अल्पस्थायी पश्चात्-प्रभाव है। भावना चेतना के स्तर के नीचे जीवित रहती है। लेकिन संवेगात्मक मनोदशा का चेतना के क्षेत्र में अनुभव होता है। चेतना में वस्तुतः अनुभव होता है। भावना का अनुभव तब तक नहीं हो सकता जब तक कि यह संवेग के रूप में प्रकट न हो। लेकिन संवेग वही वस्तु नहीं है जो भावना है। भावना संवेग का मूल कारण है।

"संवेगात्मक प्रवृत्ति (या भावना) वही चीज नहीं है जो संवेगात्मक मनोदशा है। मनोदशा चेतना की एक सक्रिय वेदना है, लेकिन प्रवृत्ति उस समय भी वर्तमान रहती है जब न तो मनोदशा का अनुभव होता है, न संवेग

का। पसन्दगी और नापसन्दगी, प्रेम और घृणा संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं; वास्तविक संवेग नहीं" (स्टाउट)। जब कोई व्यक्ति चिड़चिड़ाहट की मनोदशा में होता है, तो उसे इसका चेतना में अनुभव होता है; चिड़चिड़ाहट की दशा एक चेतन अनुभूति है। लेकिन उसे प्रेम या घृणा की भावना की अनुभूति नहीं हो सकती। भावनायें स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं जो अधोचेतन स्तर में वर्तमान रहती हैं।

८. भावना और भावना-ग्रन्थि (Sentiment and Complex)

ड्रेवर का मत है कि भावना विचार के स्तर पर एक प्रकार की ग्रन्थि है। ग्रन्थि "वेदना" से संयुक्त सहचारी वस्तुओं या अनुभवों का एक समूह है। यह संवेग से युक्त विचारों की एक समष्टि (System) है। ग्रन्थि संवेग में परिणत हो सकती है। ग्रन्थि का निर्माण प्रत्यक्ष के स्तर पर होता है। भावना का निर्माण विचार के स्तर पर होता है। जैसा कि फ्रॉयड और अन्य मनोविश्लेषणशास्त्रियों का मत है। ग्रन्थि असमाप्त द्वन्द्व (Conflict) के कारण अनिवार्यतः दबी हुई (Repressed) या असाधारण (Abnormal) नहीं होती।[1]

हार्ट (Hart) ग्रन्थि की परिभाषा देते हुये कहता है कि ग्रन्थि "संवेग-मिश्रित विचारों की समष्टि है।" "यह प्रबल संवेग से मिश्रित संबन्धित विचारों की एक समष्टि है जिसमें किसी निश्चित प्रकार के कार्यों को उत्पन्न करने की प्रवृत्ति रहती है। ग्रन्थियाँ सभी प्रकार की हो सकती हैं, संघटक विचार प्रत्येक प्रकार के हो सकते हैं, सहचारी संवेग प्रिय या अप्रिय, अत्यधिक तीव्र या अपेक्षाकृत निर्बल हो सकते हैं।"[2]

शौक़(Hobby) को एक ग्रन्थि माना जा सकता है। किसी व्यक्ति में एक प्रबल "फ़ोटोग्राफ़ी ग्रन्थि" हो सकती है। किसी राजनीतिज्ञ में एक प्रबल दलगत पक्षपात या "राजनैतिक ग्रन्थि" हो सकती है। एक युवक में प्रबल "प्रणय ग्रन्थि" हो सकती है।

---

[1] ड्रेवर : शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ७४-७७

[2] विक्षिप्त-मनोविज्ञान, पृ० ६१-६२

प्रेम में आसक्त युवक में एक प्रबल "प्रणय ग्रन्थि" होती है। ग्रन्थि से सामंजस्य रखने वाले विचार निरन्तर चेतना में उदित होते रहते हैं। लघु से लघु संकेत उन विचारों को सुझाते हैं। वह प्रेमी के चारों ओर विचारों का ताना-बाना बुनता रहता है। वह साधारण दिनचर्या में अपने मन को नहीं लगा सकता। वह किसी भी होने वाली घटना को अपनी वासना से संयुक्त करता है।

जब उत्तेजना उपस्थित होती है, तब ग्रन्थि चेतना की धारा पर क्रिया करना आरम्भ कर देती है। जब ग्रन्थि का एक संघटक विचार सक्रिय हो जाता है तो समग्र ग्रन्थि सक्रिय हो जाती है, और चेतना-प्रवाह पर क्रिया करती है ग्रन्थि के अनुकूल विचार-धाराएँ, संवेग और क्रियाएँ चेतना में प्रकट हो जाती हैं। ग्रन्थि के अनुकूल विचारों, संवेगों, और कार्यों का प्रबलीकरण (Reinforcement) होता है, जबकि उनका जो उसके प्रतिकूल होते हैं, निरोध (Inhibition) होता है।

विचारों और कार्यों की दिशा का निर्धारण अंशतः ग्रन्थियों या संवेग-मिश्रित विचारों की समष्टियों के द्वारा होता है, यद्यपि हो सकता है कि व्यक्ति को इसकी बिलकुल भी चेतना न हो। व्यक्ति यह विश्वास रख सकता है कि उसके विचार और कार्य अन्य युक्तिसंगत कारणों के फल हैं। वह अपने विचारों और कार्यों का यौक्तिकीकरण करता है। वह अपने विचारों और कार्यों का युक्तिपूर्ण औचित्य दिखाने का प्रयत्न करता है और ग्रन्थियों में उनके मूल को नहीं पहिचानता।

अप्रिय ग्रन्थि जो व्यक्ति के विचारों और क्रियाओं की प्रधान प्रवृत्ति से सामंजस्य नहीं रखती, एक "द्वन्द्व" (Conflict) की अवस्था को जन्म देती है। यह द्वन्द्व ग्रन्थि और व्यक्तित्व के मध्य संघर्ष है। वे एक दूसरे का निरोध चाहते हैं। इस द्वन्द्व का अन्त ग्रन्थि के "दमन" (Repression) अर्थात् चेतना से उसका बहिष्कार करने से होता है। दबी हुई ग्रन्थि नष्ट नहीं होती, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति का साधारण रूप नष्ट हो जाता है।

प्रच्छन्न रूप से अपना प्रकाशन करना जारी रखती है। जिस ग्रन्थि का दमन नहीं हुआ है वह अपना प्रकाशन सीधे रूप में करती है। किन्तु जिस ग्रन्थि का दमन किया गया है वह परोक्षतः चेतना में अपना प्रकाशन करती है। "प्रतिरोधक" (Censor) उसे चेतना के तल तक आने से रोकता है। उसका "प्रतिरोध" होता है। अतः ग्रन्थि प्रतिरोधक को धोखा देने के लिये प्रच्छन्न रूप में अपने को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करती है। चेतना में उसे विकृत अभिव्यक्ति मिलती है। कुछ प्रौढ़ अविवाहित महिलाओं की "काम-ग्रन्थि" को प्रकाशन का स्वाभाविक मार्ग नहीं मिलता और इसलिये उसका दमन किया जाता है। इस दबी हुई ग्रन्थि को काम-सम्बन्धों के विषय में औचित्य-अनौचित्य के अतिरंजित विचार में या जन्म, विवाह और अश्लील वार्तालापों में अस्वाभाविक रूप से रुचि लेने में प्रच्छन्न अभिव्यक्ति मिल सकती है। कभी-कभी दबी हुई ग्रन्थि स्वयं को परोक्षतः प्रतीकों के द्वार अभिव्यक्त करती है। प्रौढ़ अविवाहित महिलाओं की दबी हुई मातृक प्रवृत्ति कुत्तों और बिल्लियों के प्रति अतिरंजित स्नेह में विकृत अभिव्यक्ति पा सकती है। कभी-कभी दबी हुई ग्रन्थि परोक्षतः "प्रक्षेप" (Projection) के रूप में प्रकट होती है। एक अभावग्रस्त या दुर्बल व्यक्ति अप्रिय ग्रन्थि का किसी दूसरे व्यक्ति में प्रक्षेप करता है।

मनोविश्लेषणवादी 'ग्रन्थि' शब्द को उस अर्जित संवेगात्मक और चेष्टात्मक प्रवृत्ति के अर्थ में व्यवहृत करते हैं जो चरित्र से असंगति रखने के कारण किसी अंश में रुग्ण (Morbid) होती है। ग्रन्थि का कारण दमन है जो द्वन्द्व का फल है।

बर्ट (Burt) का कथन है कि "ग्रन्थि संवेगों और विचारों की सम्मिलित समष्टि है जो अपनी अप्रियता के कारण अधिकांश में या पूर्णतः दबाई गई होती है। भावना और ग्रन्थि में अन्तर मुख्यतया मात्रा का है। दोनों ही संवेगात्मक समष्टियाँ हैं; किन्तु एक 'क्रमबद्ध समष्टि' है, दूसरी 'क्रमहीन समष्टि'। एक मुख्यतया तार्किक सम्बन्धों से व्यवस्थित होती है, दूसरी आकस्मिक साहचर्यों से, और इसलिये तुरिक्त

से ही व्यवस्थित कही जा सकती है। एक व्यक्ति को ज्ञात होती है और उसके द्वारा स्वीकृत होती है, दूसरी का व्यक्ति को प्रायः कोई ज्ञान नहीं होता और वह अज्ञात रूप से उसे ध्यान, स्मृति या चेतना से छिपाकर रखता है। जबकि भावना से उत्पन्न होने वाले प्रेरक बहुधा चेतन और युक्ति-पूर्ण होते हैं, ग्रन्थि से उत्पन्न होने वाले प्रेरक कम या अधिक अयौक्तिक और पूर्णतया अचेतन होते हैं।"[1] भावनायें वस्तुओं, व्यक्तियों, अमूर्त गुणों (Abstract qualities), या आदर्शों के प्रति अर्जित संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ होते हैं जिनका निर्धारण तार्किक सम्बन्धों से होता है। ग्रन्थियाँ संवेगों से मिश्रित विचारों की समष्टियाँ होती हैं जो सामान्यतया संघटन (Integration) के अभाव और सामाजिक परिवेश से विषमायोजन (Maladjustment) के कारण दबी हुई और पीड़ाप्रद होती है। दबी हुई ग्रन्थियाँ समाजविरोधी आचरण में प्रकट होती हैं। फ्रॉयड दबी हुई काम-ग्रन्थि के महत्व को अतरंजित करता है जो स्वप्नों, कहने की भूलों, लिखने की भूलों, दिवास्वप्नों, स्नायु-विकृतियों इत्यादि में परोक्षतः प्रकट होती हैं।

६. संवेग और स्वभाव (Emotion and Temperament)

मनोदशा संवेग का अल्पस्थायी पश्चात् प्रभाव है। भावना अधोचेतन स्तर में एक स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्ति है। स्वभाव मनोदशा और भावना से भी अधिक गम्भीर और स्थायी होता है। यह चरित्र के निर्माण में भाग लेता है। यह व्यक्ति के जीवन की सम्पूर्ण अभिवृत्ति (Attitude) को निर्धारित करता है। यह उसके विचारों, संवेगों, और संकल्पों को स्थायी झुकाव देता है। यह एक विशेष रूप में सोचने, अनुभूति और संकल्प करने की स्थायी प्रवृत्ति है। कहा जाता है कि प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ (Endocrine glands) से निकलने वाले रस इसका निर्धारण करते हैं। स्वभाव एक मानसिक गुण है जिसका एक निश्चित भौतिक आधार होता है। मैकडुगल इसका मूल शरीर की ऊतियों (Tissues) के चयापचयात्मक (Metabolic) या

[1] अल्पवयस्क अपराधी, पृ० २४७-४८

रासायनिक परिवर्तनों में ढूँढ़ता है। "मनुष्य के स्वभाव की काम-चलाऊ परिभाषा यह दी जा सकती है कि वह उसके मानसिक जीवन पर उन चयापचयात्मक या रासायनिक परिवर्तनों के प्रभावों का योग है जो उसके शरीर की सभी ऊतियों में निरंतर हो रहे होते हैं।"[1]

स्वभाव व्यक्ति की सामान्य संवेगात्मक प्रकृति की ओर संकेत करता है। शैण्ड (Shand) मिज़ाज (Temper) और स्वभाव में भेद बताता है। मिज़ाज वह प्रकार है जिससे व्यक्ति किसी विशेष संवेग की अनुभूति करता है। स्वभाव उसके विभिन्न संवेगों के सहज मिज़ाजों का महायोग है। स्वभाव मनोदशा से गम्भीर होता है।

चार प्रमुख स्वभाव माने गये हैं, वातुल (Sanguine) तामसिक (Choleric), विषण्ण (Melancholic), और पित्तप्रधान (Phlegmatic)। तामसिक व्यक्ति शीघ्रता करने वाला, सजग, बलवान्, और क्रोधी होता है। विषण्ण स्वभाव वाला व्यक्ति मंद, अवसन्न, और शोकालु होता है, यद्यपि वह चरित्र-बल प्रदर्शित करता है। वातुल व्यक्ति फुर्तीला लेकिन दुर्बल होता है, तथा उसका दृष्टिकोण आशापूर्ण और हंसी-खुशी का होता है। पित्तप्रधान व्यक्ति सुस्त और मन्द होता है, लेकिन उसमें धैर्य और संलग्नता (Persistence) पाई जाती है।

१०. संवेग और आंगिक अभिव्यक्ति—संवेग-विषयक जेम्स-लेंगे सिद्धान्त (Emotion and Organic Expression—James-Lange Theory of Emotion)

साधारण मत (Common-Sense view) यह है कि संवेग किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, या कल्पना से उत्पन्न होता है और आंगिक परिवर्तनों में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार, साधारण मत के अनुसार पहिले प्रत्यक्षीकरण या विचार होता है, तत्पश्चात् उससे संवेग उत्पन्न होता है, और तब संवेग की अभिव्यक्ति आंगिक परिवर्तनों में होती है। इस प्रकार

[1] मैकडूगल : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ३२७

संवेग आंगिक अभिव्यक्ति का पूर्ववर्ती है। आप एक खुले हुए शेर को देखते हैं, यह आपके मन में भय उत्पन्न करता है, भय का संवेग कांपने और दूर भागने को जन्म देता है।

विलियम जेम्स इसके विपरीत मत रखता है। उसका मत है कि किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण सीधे प्रतिक्षेप क्रिया (Reflex action) के रूप में आन्तरिक अंगों में परिवर्तन उत्पन्न करता है; इनकी सूचना बोध-स्नायुओं से मस्तिष्क को मिलती है और आंगिक संवेदनायें उत्पन्न होती हैं। वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के साथ ये आंगिक संवेदनायें संवेग कहलाती हैं। पहिले किसी वस्तु का अनुभूतिशून्य प्रत्यक्षीकरण होता है, जिसके तुरन्त बाद किसी पूर्व-संगठित यंत्र (Preorganized Mechanism) के द्वारा संचालित आंगिक परिवर्तन होते हैं, और तत्पश्चात् जब इन आंगिक "प्रतिध्वनियों" (Reverberation) की सूचना चेतना को मिलती है, इन आंगिक परिवर्तनों के चेतन प्रतिरूप (Conscious Correlate) और प्रारम्भिक प्रत्यक्षीकरण से मिलकर संवेग बनता है। जेम्स के अनुसार संवेग प्रतिक्षेपतः जाग्रत आंगिक संवेदनाओं का समूह है जो किसी वस्तु के प्रत्यक्ष से सम्बद्ध होता है। संवेग में अनुभूति का तत्व वर्तमान नहीं होता। यह प्रतिक्षेपतः जाग्रत आंगिक संवेदनाओं का पुंज है। संवेग आंगिक संवेदनाओं के योग के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह केवल "भौतिक घटनाओं से प्रारम्भ होने वाली आन्तरिक धाराओं (Inward Currents) से उत्पन्न सांवेदनिक प्रक्रियायें, उद्दीपक वस्तु का प्रतिक्षेप-प्रभाव (Reflex effect)" (जेम्स) है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह विलियम जेम्स का प्रारम्भिक सिद्धान्त है।

जेम्स कहता है, "मेरा सिद्धान्त यह है कि शारीरिक परिवर्तन तुरन्त उद्दीपक तथ्य के प्रत्यक्षीकरण के पश्चात् होते हैं, तथा जैसे ये परिवर्तन घटित होते हैं उसी रूप में उनकी अनुभूति संवेग है। सामान्य लोकबुद्धि कहती है कि, हम अपनी सम्पत्ति खोते हैं, हमें शोक होता है और हम रोते हैं; हम एक रीछ को देखते हैं, भयभीत होते हैं और भागते हैं; हम प्रतिद्वन्द्वी से अप-मानित होते हैं, क्रोधित होते हैं और आक्रमण करते हैं। इससे अधिक

तर्कसंगत कथन यह है कि हमें शोक होता है, क्योंकि हम रोते हैं, हम क्रोधित होते हैं क्योंकि हम आक्रमण करते हैं, हम भयभीत होते हैं क्योंकि हम कांपते हैं। यह कथन तर्कसंगत नहीं है कि हमें शोक, क्रोध या भय होता है, इसलिये हम रोते, आक्रमण करते या भागते हैं। प्रत्यक्षीकरण के उपरान्त होने वाली शारीरिक दशाओं के अभाव में प्रत्यक्षीकरण का रूप विशुद्ध ज्ञानात्मक, संवेग के अंश से शून्य होगा।"[1] इस प्रकार जेम्स के अनुसार संवेग आंगिक संवेदनाओं का पुंज है जो किसी उद्दीपक वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के उपरान्त आन्तरिक अंगों में उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का परिणाम है। किसी अनुभव का संवेगांश (Emotional tone) आंगिक संवेदनाओं से मिलता है। यह विलियम जेम्स का प्रारम्भिक सिद्धान्त है।

वह अपने संवेगविषयक सिद्धान्त के पक्ष में निम्नलिखित युक्तियाँ देता है:—

(१) "यदि हम अचानक जंगल में एक काली, चलती-फिरती शक्ल देखें तो ख़तरे के किसी स्पष्ट विचार के उत्पन्न होने से पहिले ही तुरन्त हृदय की धड़कन रुक जाती है और हम हाँफने लगते हैं।"[2] यहाँ प्रत्यक्षीकरण और आंगिक प्रतिक्रियाओं के मध्य कोई संवेग नहीं है। वस्तु का प्रत्यक्षीकरण संवेग को जाग्रत किए बिना तुरन्त आंगिक परिवर्तन पैदा करता है।

(२) "यदि हम किसी संवेग की कल्पना करें, और तब अपनी चेतना से उसके शारीरिक लक्षणों की सब अनुभूतियों को हटाने का प्रयत्न करें, तो हम ऐसी कोई चीज़ नहीं पाते जिससे संवेग बन सके, तथा जो कुछ भी अवशिष्ट रहता है वह केवल बौद्धिक प्रत्यक्षीकरण की अनुभूतिशून्य, तटस्थ अवस्था है।" हम आंगिक अभिव्यक्ति से रहित किसी संवेग की कल्पना नहीं कर सकते। हम ऐसे क्रोध की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें भौंहों में बल न पड़े, छाती ऊपर-नीचे न चले, नथुने न फूलें, दांत न पीसे जायँ, इत्यादि।

(३) "यदि संवेग को प्रकट न होने दिया जाय तो उसका अन्त हो जाता

---

[1] मनोविज्ञान : पृ० ३०१-७६।

[2] मनोविज्ञान : पृ० ३०६।

है।" आंगिक अभिव्यक्तियों का निरोध करने से सम्बन्धित संवेगों का भी निरोध हो जाता है।

(४) आंगिक अभिव्यक्तियों के कृत्रिम उत्पादन से सम्बन्धित संवेग भी उत्पन्न हो जाते हैं। अभिनेता कभी-कभी क्रोध, शोक इत्यादि की अभिव्यक्तियों को उत्पन्न करके उन संवेगों का अनुभव करते हैं।

(५) मद्य तथा अन्य उत्तेजक दवाओं के सेवन से आमोद (Hilarity) साहस इत्यादि संवेग पैदा हो जाते हैं। यहाँ आंगिक दशायें संवेगों के कारण हैं

(६) कुछ आंगिक उपद्रव संवेगों को उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ, "यकृत के रोग अवसाद (Depression) और चिड़चिड़ाहट (Irritability) उत्पन्न करते हैं, स्नायविक रोग निराशा और भय उत्पन्न करते हैं।" "वस्तुशून्य संवेग (Objectless Emotions) वाली रुग्णावस्थाओं में शरीर की रुग्णावस्था संवेग उत्पन्न करती है। पागलखानों में विभिन्न पागल एक ही परिवेश में अप्रेरित (Unmotivated) क्रोध, भय विषाद इत्यादि विभिन्न संवेग प्रदर्शित करते हैं। जेम्स का विचार है कि ये "वस्तुशून्य संवेग" शरीर की रुग्णावस्थाओं से उत्पन्न होते हैं। ये संवेग शारीरिक दशाओं की अनुभूतियों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं, और उनके कारण शारीरिक मात्र हैं।

इस प्रकार विलियम जेम्स की धारणा है कि संवेग उन आंगिक परिवर्तनों का प्रभाव है जो किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण से उत्पन्न होते हैं तथा उन से उत्पन्न आंगिक संवेदनाओं से संवेग बनता है।

डेनिश (Danish) मनोवैज्ञानिक लैंगे ने भी स्वतंत्र रूप से इसी सिद्धान्त को प्रचलित किया। लैंगे के अनुसार संवेग में दो तत्व होते हैं : (१) 'कारण,' एक ऐन्द्रिय संस्कार या एक सहचारी विचार, तथा (२) 'कार्य,' प्रतिक्षेपतः उत्पन्न वाहिनियों और पेशियों के परिवर्तन (Vaso-motor changes) अथवा शरीर के विविध अंगों के रक्त-परिमाण में परिवर्तन, और उन पर आश्रित मानसिक तथा शारीरिक परिवर्तन। इन दो तत्वों के बीच में कोई वेदनात्मक मध्यस्थ (Affective Intermediary) नहीं होता।

उनके मध्य कोई अनुभूति-तत्त्व नहीं होता। लँगे संवेग को वेदनाशून्य आंगिक संवेदनाओं का पुंज भी मानता है। वह कहता है, "हमारे हर्षों और विषादों के लिए, हमारे आनन्दों और व्यथाओं के लिए, हमारे मानसिक जीवन के *सम्पूर्ण संवेगात्मक पहलू के लिए* वाहिनी-पेशी-तंत्र (Vaso-motor system) उत्तरदायी है।" लँगे स्वतंत्र रूप से उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचा जिन पर जेम्स पहुँचा था। अतः इस सिद्धान्त को संवेगविषयक जेम्स-लँगे सिद्धान्त कहते हैं।

११. जेम्स-लँगे सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of James-Lange Theory)

सभी युक्तियाँ यह प्रदर्शित करती हैं कि संवेग स्वयं को अभिव्यक्त किए बिना नहीं रह सकता। लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि संवेग और उसकी अभिव्यक्ति में अभिन्नता है यदि संवेग और उसकी अभिव्यक्ति सदैव साथ रहते हैं तो वे अवियोज्य सहचर कहे जा सकते हैं। *उनकी अभिन्नता आवश्यक नहीं है। यह भी सम्भव है कि आंगिक अभिव्यक्ति सम्पूर्ण संवेग न हो।*

जो आंगिक संवेदनायें संवेग बनाती हैं और जो नहीं बनातीं उनमें क्या अन्तर है? "*निस्सन्देह सभी आंगिक संवेदनायें संवेग नहीं हैं : भूख और उदर पीड़ा संवेगात्मक अनुभव नहीं हैं*" (स्टाउट)। जेम्स संवेग को बनाने वाली आंगिक संवेदनाओं के विलक्षण चिन्हों को साफ़-साफ़ नहीं बताता। किन्तु उसके कथन से हम यही अनुमान कर सकते हैं कि शायद संवेग कई अंगों को प्रभावित करने वाले व्यापक विक्षोभों (diffuse disturbances) से सम्बन्धित हैं। लेकिन इस प्रकार तो सभी आंगिक विक्षोभ व्यापक होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार तो ठंडी फुहार का अनुभव या स्नान के बाद मालिश का अनुभव संवेगात्मक अनुभव होना चाहिए। ये आन्तरिक अंगों में व्यापक विक्षोभ उत्पन्न करते हैं, तथापि संवेग नहीं हैं।

जेम्स संवेगों को आंगिक संवेदनाओं से अभिन्न मानता है। वह इस सिद्धान्त का वर्णन इन शब्दों में करता है : "संवेग आंगिक संवेदनाओं के पुंज

हैं और ये पुंज संवेग हैं, दोनों सहवर्ती मात्र नहीं हैं, बल्कि अभिन्न भी हैं।''[1] किन्तु संवेग वेदनात्मक दशायें हैं, जब कि आंगिक संवेदनायें ज्ञानात्मक दशायें हैं। संवेगों पर यदि ध्यान दिया जाय तो वे लुप्त होने लगते हैं, वे ध्यान की अन्वेषक दृष्टि (Searching gaze of attention) को सहन नहीं कर सकते, विशेष रूप से उस हालत में जब उनकी मात्रा हल्की होती है। किन्तु आंगिक संवेदनायें ध्यान देने पर लुप्त नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, जब हम हल्के क्रोध पर ध्यान देते हैं, तो उसका लोप होने लगता है। लेकिन ध्यान की कोई भी मात्रा भूख को नहीं हटा सकती। वास्तव में, यदि भूख तीव्र होती है, तो हम उस पर ध्यान देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। अतः संवेग और आंगिक संवेदनाओं में तादात्म्य नहीं हो सकता।

यदि संवेग आंगिक अभिव्यक्तियों से अभिन्न हैं, यदि आंगिक अभिव्यक्तियों से संवेग बनते हैं तो एक संवेग की एक ही आंगिक अभिव्यक्ति होनी चाहिए। लेकिन, वस्तुतः विभिन्न संवेगों की एक ही आंगिक अभिव्यक्ति पाई जाती है। आंसू हर्ष के होते हैं, शोक के भी और क्रोध के भी। हम भय और क्रोध दोनों में आक्रमण करते हैं। हम भय में भी कांपते हैं और बेचैनी (Eagerness) में भी। हम बेचैनी और भय दोनों में भागते हैं। इसके अतिरिक्त एक ही संवेग की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं। सुसंस्कृत व्यक्ति क्रोध को एक रूप में प्रकट करता है, असभ्य व्यक्ति दूसरे रूप में। पुनः यह कैसे सम्भव है कि संवेगों की अभिव्यक्तियों से सादृश्य रखने वाली आंगिक अभिव्यक्तियों में संवेग का अंश नहीं होता ? जब हम भयभीत होते हैं तो हम कांपते हैं। कांपना भय की एक अभिव्यक्ति है। लेकिन जब हम जाड़े में कांपते हैं तो हमें भय के संवेग का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार कांपना मात्र भय का संवेग नहीं है। टिचनर (Titchener) कहता है कि "आंगिक संवेदनाओं का एक समूह अन्त में आंगिक संवेदनाओं का ही समूह है, हृदय का ज़ोर से धड़कना स्वयमेव भय का संवेग नहीं है, और मुंह का लाल हो जाना स्वयमेव लज्जा का संवेग

---

[1] मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त : पृ० २०१

नहीं है। जहाँ तक खाली निरीक्षण की सहायता से हम जान सकते हैं वहाँ तक न तीव्रता या गुण में, न प्रकट होने के समय या सत्ताकाल में संवेग तथा आंगिक प्रतिक्रिया के मध्य कोई आवश्यक संवाद (Correspondence) होता है।"[1]

तथाकथित स्वयं "वस्तुविहीन संवेग" यथार्थतः वस्तुविहीन या अप्रेरित नहीं होते। वे पूर्णतया आंगिक उपद्रवों के फल नहीं होते। वस्तुतः ये संवेग नहीं, बल्कि संवेगात्मक मनोदशायें हैं। वे कुछ संवेगों के स्थायी पश्चात्-प्रभाव हैं जिनका अनुभव पागलों को भूतकाल में हुआ था; और ये प्रारम्भिक संवेग अप्रेरित या "वस्तुविहीन" नहीं थे; उनकी उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों को जाग्रत करने के लिये उपयुक्त परिस्थितियों के प्रत्यक्षीकरण या विचार से हुई थी। ये मनोदशायें कुछ आंगिक उपद्रव पैदा कर चुकी हैं। इस प्रकार ये तथाकथित "वस्तुविहीन संवेग" टिचनर के शब्दों में "संवेगिक पूर्व-प्रवृत्तियों (Pre-dispositions) के फलस्वरूप होने वाले प्रेरित संवेगों के अप्रेरित अवशेष हैं।"

मद्य और अन्य उत्तेजक द्रव्य संवेग पैदा नहीं करते, बल्कि संवेगात्मक मनोदशायें पैदा करते हैं। आंगिक उपद्रव भी संवेगात्मक मनोदशायें उत्पन्न करते हैं, संवेगों को नहीं।

जेम्स की धारणा है कि 'वस्तुओं' के दर्शन मात्र से पूर्वसंगठित रचनाओं (Preorganized Mechanism) के द्वारा आंगिक प्रतिक्षेप पैदा होते हैं, जो संवेगों को बनाते हैं। लेकिन यदि आंगिक प्रतिक्रियायें केवल प्रतिक्षेप क्रियायें होतीं तो एक ही उत्तेजनाओं या वस्तुओं से एक ही प्रतिक्रियायें जाग्रत होतीं। प्रतिक्षेप क्रियाओं में प्रतिक्रिया की समरूपता (Uniformity) होती है। लेकिन वास्तव में जिन विभिन्न प्रसंगों का प्रत्यक्षीकरण होता है उनके अनुसार प्रतिक्रियायें भी विभिन्न होती हैं। "मान लो जेम्स का मुक़ाबला पहिले पिंजड़े में बन्द भालू से होता है और तत्पश्चात् खुले हुए भालू

[1] मनोविज्ञान, पृ० ४८२

से ; पहिली वस्तु को वह मूंगफली देता है और दूसरी से भागता है" (वार्ड)। अतः संवेग 'वस्तुओं' मात्र से नहीं, बल्कि 'परिस्थितियों' से जाग्रत होते हैं।

स्टाउट का यह कहना ठीक ही है कि जेम्स संवेगों की परोपजीवी प्रकृति (Parasitical Nature) की उपेक्षा करता है। संवेग मूलप्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। बच्चों को हटाने मात्र से बिल्ली को क्रोध नहीं आता। मातृक प्रवृत्ति (Maternal Instinct) की विफलता से उसे क्रोध आता है। मैकडूगल भी संवेग के प्रयोजनात्मक तत्व (Conative Factor) पर बल देता है। उसके मतानुसार मूल संवेग मूलप्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं। वुडवर्थ का विचार है कि संवेग तब पैदा होते हैं जब किसी परिस्थिति के द्वारा जाग्रत मूलप्रवृत्यात्मक कार्य विफल होते हैं। ड्रेवर का भी यही मत है।

एक ऐसे कुत्ते पर शेरिंगटन (Sherington) ने प्रयोग किये जो कुछ व्यक्तियों को पसंद करता था और कुत्तों से शत्रुता रखता था। इन प्रयोगों ने निश्चित रूप से जेम्स-लैंगे सिद्धान्त को असत्य सिद्ध कर दिया। उसने कुत्ते की उन बोध-स्नायुओं को काट डाला जो धड़ के अन्दर से मस्तिष्क तक स्नायविक प्रवाहों को ले जाती हैं, तथा उसे आन्तरिक अंगों की संवेदनाओं से वंचित कर दिया। फिर भी कुत्ते ने क्रोध, हर्ष, अरुचि, और भय के लक्षणों को प्रदर्शित किया। आन्तरिक संवेदनाओं की हानि से कुत्ते के संवेगात्मक व्यवहार पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। संवेगों में जो प्रकट व्यवहार होता है तथा अभिव्यंजक गतियाँ होती हैं वे आन्तरिक संवेदनाओं पर निर्भर नहीं हैं। अतः संवेग आन्तरिक संवेदनाओं से नहीं बनते। संवेगों का अनुभव तब भी होता है जब मस्तिष्क से मर्माङ्गों (Vital organs) और पेशियों तक जाने वाली कर्म स्नायुओं को काट डाला जाता है। अतः संवेग मर्माङ्गों और पेशियों पर भी निर्भर नहीं हैं।

एक दूसरा प्रयोग भी जेम्स-लैंगे सिद्धान्त का खंडन करता है। एक बिल्ली की सहभावी स्नायुयें (Sympathetic Nerves) काट डाली गईं, और इससे उन स्नायुओं पर निर्भर क्रोध की सम्पूर्ण आंगिक अवस्था से उसे रहित

कर दिया गया। फिर भी बिल्ली ने गुर्राना, हिसहिस करना, दांत दिखाना इत्यादि क्रोध की सब अभिव्यंजक गतियाँ तथा बाह्य व्यवहार प्रदर्शित किया। अतः क्रोध के संवेग में आंगिक अवस्था आवश्यक तत्व नहीं है। संवेग आंगिक संवेदनाओं का पुञ्ज मात्र नहीं है।

इसकी पुष्टि एक चालीस वर्ष की बुद्धिमती महिला के मामले से होती है। घोड़े से गिर जाने के कारण उसकी गर्दन टूट गई थी। गर्दन के स्थल पर उसकी सुषुम्ना टूट गई थी; मस्तिष्क तथा धड़ और हाथ-पैरों के मध्य सभी बोध और कर्म-स्नायु-मार्ग टूट गये थे। सहभावी अथवा स्वतंत्र स्नायु-मंडल का मध्यवर्ती भाग मस्तिष्क से पूर्णतया अलग हो गया था और वह महिला धड़ और हाथ-पैरों से आने वाली सब संवेदनाओं से रहित हो गई थी, फिर भी उसने शोक, प्रेम, और घृणा की सभी अभिव्यंजक गतियाँ और बाह्य व्यवहार किया। अतः संवेग शरीर की संवेदनाओं के बिना भी मस्तिष्क के द्वारा जाग्रत किया जा सकता है। संवेग आंगिक संवेदनाओं से नहीं बनता, यद्यपि आंगिक संवेदनाएँ कई संवेगों में महत्वपूर्ण तत्व होती हैं।[1]

मस्तिष्क के तने में जो 'थेलेमस' (Thalamus) है वह हमारे संवेगों से सम्बन्धित है। मर्माङ्गों और पेशियों के बिना वह संवेग उत्पन्न कर सकता है। अभी हाल में जो प्रयोग हुए हैं उनसे 'थेलेमस' संवेगों का केन्द्र सिद्ध हो गया है। संवेगों का यह केन्द्रीय सिद्धान्त (Central theory) विलियम जेम्स के सिद्धान्त के विपरीत है।

१२. विलियम जेम्स का परिशोधित सिद्धान्त (Revised Theory of William James)

जेम्स ने बाद में अपने सिद्धान्त पर पुनर्विचार किया। उसने अपने प्रारम्भिक सिद्धान्त में दो परिवर्तन किये।

प्रथम, उसने उस प्रत्यक्षीकरण के वेदनांश (Feeling tone) को मान लिया जो आंगिक परिवर्तन पैदा करता है; यह प्रत्यक्षीकरण अनुभूतिशून्य या तटस्थ नहीं होता; उसमें वेदना का अंश रहता है।

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, १९५४, पृ० ४२७-२९

द्वितीय, उसने प्रत्यक्षीकरण पैदा करने वाली वस्तु के परिस्थितिमूलक लक्षण (Situational character) को मान लिया। केवल वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं होता जो पूर्वसंगठित रचना के द्वारा आंगिक प्रतिक्षेप उत्पन्न करती है। किसी परिस्थिति का अनुभूति-मिश्रित प्रत्यक्षीकरण आंगिक परिवर्तन पैदा करता है; जब चेतना को उनकी सूचना मिलती है तब संवेग उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार जेम्स के परिशोधित सिद्धान्त के अनुसार, पहिले किसी परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है जो वेदनांश से मिश्रित होता है; यह वेदना-मिश्रित प्रत्यक्ष आंगिक परिवर्तन उत्पन्न करता है; तत्पश्चात् मस्तिष्क को उनकी सूचना मिलने पर संवेग पैदा होता है।

१३. जेम्स के परिशोधित सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Revised Theory of James)

यह सिद्धान्त व्यवहारतः पुराने सिद्धान्त को निर्बल बना देता है। यह प्रत्यक्षीकरण और आंगिक परिवर्तनों के मध्य अनुभूति के तत्व को स्वीकृत करता है। इस अनुभूति को प्रत्यक्षीकरण और आंगिक अभिव्यक्तियों का मध्यस्थ प्रारम्भिक संवेग माना जा सकता है। इस प्रकार, आंगिक अभिव्यक्तियाँ संवेगों की पूर्ववर्तिनी नहीं हैं। यह सिद्धान्त साधारण सिद्धान्त से वास्तविक भेद नहीं रखता। साधारण मत के अनुसार, (१) किसी परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण, स्मरण या कल्पना (२) एक प्रारम्भिक संवेग उत्पन्न करती है; इसकी अभिव्यक्ति (३) आन्तरिक अंगों के परिवर्तनों में होती है; तत्पश्चात् (४) प्रारम्भिक संवेग पुष्ट होता है। इस प्रकार संवेग आंगिक अभिव्यक्तियों के पूर्ववर्ती हैं।

वस्तु के परिस्थितिमूलक लक्षण को मानना भी संवेग के प्रतिक्षेप-सिद्धान्त को निर्बल बना देता है। परिस्थिति किसी द्रष्टा के लिये परिस्थिति होती है जो उसके स्वयं से सम्बन्धित मूल्य (Value) को पहिचानता है और उसके प्रति तदनुसार प्रतिक्रिया करता है। द्रष्टा के द्वारा परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण और मूल्यांकन होता है और परिस्थिति उसमें अनुभूति या रुचि उत्पन्न करती है; तत्पश्चात् द्रष्टा प्रतिक्रिया करता है। संवेग परिस्थिति के प्रति द्रष्टा की

प्रतिक्रिया है ; और उसकी प्रतिक्रिया उसकी वेदनात्मक दशाओं और चेष्टात्मक प्रवृत्तियों (Conative Tendencies) से निर्धारित होती है (शार्ट)।

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संवेग अभिव्यक्तियों के पूर्ववर्ती होते हैं। संवेग आन्तरिक अंगों और पेशियों के परिवर्तनों में प्रकट होते हैं जो आन्तरिक और पैशिक संवेदनायें उत्पन्न करते हैं। किन्तु आन्तरिक तथा पैशिक संवेदनायें संवेग को नहीं बनातीं, यद्यपि ये उन्हें अधिक तीव्र अवश्य करती हैं। संवेग के सिद्धान्त को जेम्स की देन केवल यह है कि आंगिक संवेदनायें सांगोपांग संवेगों (Full-fledged emotions) के महत्वपूर्ण घटक (Constituents) हैं, यद्यपि वे ही अकेले घटक नहीं हैं।

१४. संवेग और स्वतंत्र स्नायु-तंत्र (Emotion and Autonomic Nervous System)

आधुनिक नवीन अनुसन्धान संवेगों और स्वतंत्र स्नायु-तंत्र के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध प्रदर्शित कर चुके हैं। स्वतंत्र स्नायु-तंत्र आत्मनियंत्रित होता है; यह ऐच्छिक नियंत्रण (Voluntary control) के अधीन कार्य नहीं करता। यह ग्रन्थियों तथा चिकनी पेशियों (Smooth muscles) को जाने वाली स्नायुओं से बना है जो श्वसन, रक्त-संचार और पाचन की क्रियाओं में संलग्न होती हैं। स्वतंत्र स्नायु-तंत्र की स्नायुयें हृदय, रक्तवाहिनियों, फुफ्फुस, आमाशय, अंत्रों और अन्य आन्तरिक अवयवों को जाती हैं। ये स्वेद-ग्रन्थियों (Sweat glands), बालों की लघु पेशियों तथा आँख के उपतारे (Iris) को जाती हैं। ये "चिकनी पेशियों" और ग्रन्थियों को भी जाती हैं। ये स्नायुयें अत्यधिक सूक्ष्म स्नायु-सूत्रों से बनी होती हैं जो मस्तिष्क के तने और सुषुम्ना में स्थित कोशाओं से बाहर निकलते हैं। स्वतंत्र स्नायु-तंत्र सामान्य स्नायु-तंत्र का ही एक भाग है, एक पृथक् तंत्र नहीं जैसा कि पहिले विश्वास किया जाता था।

स्वतंत्र स्नायु-तंत्र के तीन भाग हैं, ऊर्ध्व, मध्य और निम्न। शीर्षभाग मस्तिष्क के तने को उपतारे की पेशी और क्षार-ग्रन्थियों से जोड़ता है, जिससे उपतारा

संकुचित होता है और लार-ग्रन्थियां लार छोड़ती हैं। इस भाग की अन्य स्नायु आमाशय की पेशियों और ग्रन्थियों से जुड़ी हैं, जिनसे आमाशय की ग्रन्थियों को जठर-रस (Gastrice Juice) छोड़ने की उत्तेजना मिलती है, तथा आमाशय की दीवार की पेशियों को मन्थन-गति (Churning movement) करने की। अन्य स्नायु हृदय से जुड़ी हैं और हृदय गति को मन्द करती हैं। सहभावी भाग (Sympathetic division) सुषुम्ना के मध्य भाग से जुड़ा है। "सहभावी" स्नायु, जो छाती के स्तर पर सुषुम्ना से निकलती हैं, हृदय और आमाशय पर इसके विपरीत प्रभाव डालती हैं। वे हृदय की गति में वृद्धि करती हैं और आमाशय की क्रिया को रोकती हैं। त्रैक विभाग (Sacral Division) निचले सिरे पर सुषुम्ना को जननांगों और मूत्राशय तथा मलाशय की पेशियों से जोड़ता है, और उनकी क्रियाओं को उत्तेजित करता है। सहभावी विभाग त्रैक विभाग को अंशतः आच्छादित करता है, जो सुषुम्ना के निम्न भाग से आता है, तथा वह श्रोणि अवयवों (Pelvic organs) पर त्रैक विभाग के उत्तेजक प्रभावों का विरोध करता है। सहभावी नाड़ियों का कार्य शीर्षणी तथा त्रैक नाड़ियों के कार्य से विपरीत होता है। सुषुम्ना के समानान्तर प्रगण्डों (Ganglia) अथवा स्नायु-कोशाओं के गुच्छों की पंक्ति होती है। ये प्रगण्ड सुषुम्ना के साथ प्रगंडपूर्व तन्तुओं (Pre-ganglionic fibres) से जुड़े होते हैं। प्रत्येक प्रगंड से प्रगंडोत्तर तन्तु (Post-ganglionic fibres) विभिन्न पेशियों और ग्रन्थियों तक फैले होते हैं। "ये उपतारे (इसलिए पुतली) को फैलाते हैं; अश्रुग्रन्थियों से आंसू निकलवाते हैं, लार और पाचन की ग्रन्थियों तथा आमाशय और आंतों की पेशियों की पाचन क्रिया को निरुद्ध करते हैं, मूत्राशय और मलाशय की पेशियों से मल-मूत्रोत्सर्ग करवाते हैं, रोमांच पैदा करते हैं, और स्वेद-ग्रन्थियों से त्वचा के ऊपर पसीना निकलवाते हैं।"[1]

सहभावी विभाग भय और क्रोध इत्यादि प्रबल संवेगों में संलग्न रहता है। शीर्ष विभाग और त्रैक विभाग का एक अंग शारीरिक आराम जैसी इतरी,

[1] ड्रो : शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ४१

सुखकर अवस्थाओं में संलग्न रहते हैं। ग्रैंक विभाग का एक अंश कामोद्दीपन से सम्बन्धित है।

१५. संवेग और प्रणालीविहीन ग्रन्थियां (Emotion and the Ductless Glands)

लार, अश्रु, और प्रस्वेद की ग्रन्थियां प्रणालीयुक्त होती हैं। ये अपने उत्पादनों (Products) को लघु नालियों के द्वारा शरीर के तल पर छोड़ती हैं। लेकिन *प्रणालीविहीन ग्रन्थियां या अन्तरासर्गी ग्रन्थियां* (Endocrine glands) अपने उत्पादनों को उन रक्तवाहिनियों की दीवारों में से सीधे रक्त प्रवाह में छोड़ती हैं जो ग्रन्थियों में प्रविष्ट रहती हैं। उनके रसों को न्यासर्ग (Hormones) कहते हैं। उपवृक्कय ग्रन्थियां गलग्रन्थि, पोषग्रन्थि, तथा काम ग्रन्थियां या प्रजन ग्रन्थियां (Adrenal glands, thyroid, pituitary, gonads) संवेगों से मार्मिक सम्बन्ध रखती हैं।

गलग्रन्थि (*Thyroid*)—यह ग्रीवा के मूल में श्वास-प्रणाली के सामने रहती है। इसके रस को गलग्रन्थि-न्यासर्ग (Thyroxin) कहते हैं। इसमें मुख्य पदार्थ आयोडीन (Iodine) होता है। गलग्रन्थि-न्यासर्ग चयापचय की क्रिया (Metabolism) में शीघ्रता लाता है। जब इसकी कमी होती है तो चयापचय का स्तर निम्न हो जाता है। जब गलग्रन्थि रोग से नष्ट हो जाती है, तो व्यक्ति अपने पूर्व उत्साह और स्फूर्ति को खो बैठता है, तथा सुस्त दशा में पहुँच जाता है। यह सुस्त, मूर्ख, गुलक्ष्य तथा सफलतापूर्वक विचार और कार्य करने के लिए चित्त को एकाग्र करने में असमर्थ हो जाता है। यदि यह ग्रन्थि दोषपूर्ण है, तो वृद्धि रुक जाति है और बुद्धि की हानि हो जाती है। जब गलग्रन्थि अतिक्रियाशील (Over-active) होती है तो व्यक्ति चंचल, चिड़चिड़ा, चिन्तित रहने वाला और अस्थिर हो जाता है। अत्यधिक सक्रिय गलग्रन्थि से चिड़चिड़ापन और दूषित गलग्रन्थि से सुस्ती आ जाती है।

उपगलग्रन्थियां (*Parathyroid*)—ये गलग्रन्थि के समीप चार लघु ग्रन्थियां होती हैं। यदि उन्हें नष्ट कर दिया जाय तो व्यक्ति की अवस्था अत्य-

धिक उद्दीप्यता (Over-excitability) की हो जाती है। उपगलग्रन्थियों के न्यासर्ग के अभाव में स्नायु-तंत्र अनुचित रूप से उद्दीप्य हो जाता है। इस न्यासर्ग की उपस्थिति से व्यक्ति को अपेक्षाकृत रूप से शान्ति पुनः उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार उपगलग्रन्थि-न्यासर्ग शान्त करने वाला है जबकि गलग्रन्थि-न्यासर्ग उद्दीप्त करने वाला है। उपगलग्रन्थि न्यासर्ग की अधिकता, सुस्ती और रुचि की कमी को पैदा करती है। उसकी कमी पेशियों का तनाव, उत्तेजनाओं के प्रति शीघ्र और तीव्र प्रतिक्रियायें पैदा करती है।

उपवृक्कय ग्रन्थियाँ (*Adrenal glands*)—ये संख्या में दो हैं, एक प्रत्येक गुर्दे के समीप स्थित होती है। प्रत्येक ग्रन्थि में एक केन्द्रीय भाग होता है जिसे मज्जक (Mudulla) कहते हैं, तथा एक आवरण होता है जिसे त्वच (Cortex) कहते हैं। मज्जक से उत्पन्न न्यासर्ग को उपवृक्कि (Adrenin) कहते हैं, त्वच से उत्पन्न न्यासर्ग को त्वचि (Cortin) कहते हैं। उपवृक्कि हृदय-गति को त्वरित और प्रबल करता है, रक्त चाप (Blood pressure) को बढ़ाता है, आमाशय की पाचन-क्रिया को रोकता है, थकी हुई पेशियों की कार्य-शक्ति बढ़ाता है, आंख के तारे (Pupil) को फैलाता है, तथा रोमांच और पसीना उत्पन्न करता है। उपवृक्कि सहभावी नाड़ियों का सहायक है, क्योंकि वे भी अल्पकाल के लिए इन परिणामों को पैदा करती हैं, जबकि उपवृक्कि इन परिणामों को दीर्घ काल तक बनाये रखता है। त्वचि जीवन के लिए आवश्यक है। यह एक सामान्य उत्तेजक के रूप में कार्य करता है। इसकी कमी दुर्बलता और सुस्ती, काम करने की अनिच्छा, तथा काम प्रवृत्ति की हानि पैदा करती है। त्वचि की अतिक्रियाशीलता (Over-actvity) दोनों लिंगों में पुरुषत्व वृद्धि करती है।

पोष ग्रन्थि (*Pituitary*)—यह मस्तिष्क के निचले भाग से चिपकी हुई है। यह खोपड़ी के मूल में शिर के ठीक बीच में एक गुहा में स्थित होती है। अग्र-पोष (Anterior Pituitary) व्यक्ति की पेशियों को बलवती करती है तथा उसे आक्रमणशील, आत्म-संयमी और परिणामदर्शी बनाती है। अग्र-

पोष की न्यूनक्रियाशीलता पैशिक दुर्बलता और सुस्ती, उत्साह-हीनता और अवसाद पैदा करती है।[1]

प्रजन ग्रन्थियाँ (Gonads)—ये काम-संवेगों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। "पुरुष न्यासर्ग (Male hormones) पुरुषत्व की दिशा में विकास करते हैं, स्त्री-न्यासर्ग (Female hormones) स्त्रीत्व की दिशा में। प्रजन ग्रन्थियों के न्यासर्गों के अभाव से ग्रस्त किसी भी लिंग का व्यक्ति प्रमुख स्त्री-पुरुष लक्षणों से रहित तटस्थ नमूने के रूप में विकसित होता है" (वुडवर्थ)।

१६. संवेग और मूलप्रवृत्ति (Emotion and Instinct)

विलियम जेम्स कहता है कि मूलप्रवृत्ति मूलतः एक शरीरव्यापारिक (Physiological) प्रक्रिया की ओर संकेत करती है, जबकि संवेग एक मानसिक प्रक्रिया की ओर। "संवेग अनुभूति करने की और मूलप्रवृत्ति कार्य करने की प्रवृत्ति है, विशेषतया तब जब परिवेश में कोई वस्तु उपस्थित रहती है।

वुडवर्थ कहता है कि संवेग में आन्तरिक प्रतिक्रियायें होती हैं, जबकि मूलप्रवृत्ति बाहर की ओर संचालित होती है, अथवा कम से कम उसमें बाह्य वस्तुओं पर कार्य किया जाता है।

वह यह भी कहता है कि संवेगात्मक प्रतिक्रियाः प्रकृतित तय्यारी की प्रतिक्रिया होती है, जबकि मूलप्रवृत्ति अन्तिम प्रतिक्रिया की ओर उन्मुख होती है।

संवेग और मूलप्रवृत्ति के निकट सम्बन्ध पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है जितना उनके अन्तर पर ध्यान देना। संवेगों का स्वभाव परोपजीवी (Parasitical) होता है। ये मूलप्रवृत्तियों या अर्जित संदेशक प्रवृत्तियों (Acquired Conative Tendencies) पर आश्रित होते हैं। स्टाउट ने इस बात पर बल दिया है। मैकडूगल का मत है कि संवेग मूलप्रवृत्ति का चेतन सहचर (conscious Correlate) होता है। वह मूलप्रवृत्ति की परिभाषा इस प्रकार देता है : "मूलप्रवृत्ति एक वंशक्रमागत (Inherited) या जन्मजात मनोदैहिक (Psycho-physical) प्रवृत्ति

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० ११०-२१

है जो व्यक्ति को किसी जाति की वस्तुओं का प्रत्यक्ष करने या उन पर ध्यान देने के लिये, उनके प्रत्यक्षीकरण के उपरान्त एक विशेष प्रकार के संवेगात्मक उद्दीपन का अनुभव करने के लिये, तथा उनके सम्बन्ध में एक विशेष विधि से कार्य करने के लिये, अथवा, कम से कम, ऐसे कार्य के आवेग (Impulse) का अनुभव करने के लिये प्रेरित करती है।"[1] वह मौलिक संवेग (Primary Emotion) की परिभाषा देते हुये कहता है कि वह "प्रमुख मूलप्रवृत्तियों में से किसी एक के व्यापार का वेदनात्मक पहलू (Affective Aspect) है।" उसके मतानुसार, मौलिक संवेग मूलप्रवृत्तियों पर आश्रित हैं; प्रत्येक विशिष्ट मूलप्रवृत्ति से एक विशिष्ट मौलिक संवेग संलग्न रहता है।

१७. मैकडूगल का संवेगविषयक सिद्धान्त (McDougall's Theory of Emotion)

मैकडूगल का मत है कि संवेग मूलप्रवृत्तियों के कार्य हैं। मौलिक संवेग मूलप्रवृत्तियों के चेतन सहचर हैं। "प्रमुख मूलप्रवृत्तियों में से प्रत्येक किसी एक प्रकार के संवेगात्मक आवेश (Excitement) को जन्म देती है जिसका गुण उसके लिये विशिष्ट या विलक्षण होता है।" मैकडूगल परस्पर सम्बन्धित मूलप्रवृत्तियों और संवेगों के निम्नलिखित जोड़े देता है :—

मूलप्रवृत्ति (Instinct)	संवेग (Emotion)
पलायन (Flight)	भय (Fear)
युयुत्सा (Combat)	क्रोध (Anger)
विकर्षण (Repulsion)	अरुचि (Disgust)
जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
काम (Sex)	कामुकता (Lust)
सन्तति-पालन (Parental instinct)	वात्सल्य (Tender emotion)
आत्म-लाघव (Self-abasement)	विनीतता (Subjection)
आत्म-गौरव (Self-assertion)	अभिमान (Elation)

[1] समाज-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० २१

सामाजिकता (Gregarious instinct)	एकाकीपन (Loneliness)
संग्रहवृत्ति (Acquisition)	सम्पन्नता या स्वामित्व (Ownership)
रचना (Construction)	सृष्टत्व या रचनात्मक आनन्द (Creativeness)
हास्य (Laughter)	विनोद (Amusement or mirth)

मैकडूगल का यह सिद्धान्त ठीक है कि प्रत्येक सांवेगिक परिस्थिति किसी मूलप्रवृत्ति को जाग्रत करती है। लेकिन इस सिद्धान्त पर आधारित उसकी सूची *अवैज्ञानिक है। उदाहरणार्थ, क्रोध सदैव युयुत्सा से उत्पन्न नहीं होता*; कोमल संवेग या वात्सल्य सन्तति-पालन की मूलप्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य से भी उत्पन्न हो सकता है। मैकडूगल कुछ ऐसी मूलप्रवृत्तियों को भी अपनी सूची में *समाविष्ट करता है जिनकी सांवेगिक प्रतिक्रियायें कम विकसित हैं*, यथा, प्रजनन, सामाजिकता, संग्रह और रचना की मूलप्रवृत्तियाँ। तथापि सुरक्षा, आत्म-विस्तार (Self-expansion), इत्यादि के कुछ स्पष्ट संवेग *होते हैं जिनका समावेश मैकडूगल की सूची में नहीं है।* मैकडूगल का सिद्धान्त बहुत आकर्षक है लेकिन उसे संतोषप्रद रीति से स्थापित नहीं किया गया है। कुछ मूलप्रवृत्तियां (यथा, चलने, बैठने, खड़े होने, दौड़ने इत्यादि *की मूलप्रवृत्तियाँ) विशिष्ट संवेगों से संबद्ध नहीं प्रतीत होतीं।* क्रोध और भय आंगिक दशाओं के रूप में परस्पर निकट सादृश्य रखते हैं, यद्यपि आवेगों (Impulses) के रूप में उनमें अन्तर है। यथार्थ रूप से पृथक् संवेग मूलप्रवृत्तियों की अपेक्षा कम हैं। अतः मैकडूगल के सिद्धान्त को एक काम-चलाऊ परिकल्पना (Hypothesis) माना जा सकता है। जब हम कोई संवेग पाते हैं तो हम उसके साथ कोई कार्य करने की प्रवृत्ति भी पाते हैं जो किसी अन्तिम परिणाम पर पहुँचाती है। लेकिन, यद्यपि संवेग और मूलप्रवृत्ति परस्पर निकटतः सम्बन्धित हैं, तथापि यह नहीं माना जा सकता कि प्रत्येक मूलप्रवृत्ति का एक विशिष्ट संवेग है और प्रत्येक संवेग की एक विशिष्ट मूलप्रवृत्ति। कई मूलप्रवृत्तियां ऐसी हैं जिनके साथ कोई विशिष्ट संवेग नहीं

होता। पुनः एक ही संवेग में विविध मूलप्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। छिपने और भागने की मूलप्रवृत्तियां दोनों ही भय के संवेग में काम करती हैं। फिर एक ही मूलप्रवृत्ति विभिन्न संवेगों से भी सम्बद्ध हो सकती है। जैसे एक ही संवेग विभिन्न भावनाओं में संगठित हो सकता है वैसे ही एक ही मूलप्रवृत्ति भी कई संवेगों में संगठित हो सकती है। उड़ने की मूलप्रवृत्ति पक्षियों में भय और क्रोध दोनों में काम कर सकती है। इसके अतिरिक्त, जब किसी परिस्थिति के द्वारा जाग्रत मूलप्रवृत्त्यात्मक कार्य सुचारु रूप से चलता है तो व्यक्ति को संवेग का अनुभव नहीं होता। लेकिन जब व्यक्ति सफलतापूर्वक परिस्थिति को नहीं सम्भाल सकता और उसकी मूलप्रवृत्त्यात्मक प्रतिक्रिया में बाधा होती है, तब उसे संवेग का अनुभव होता है। अत: मूलप्रवृत्त्यात्मक कार्य सदैव संवेग से संयुक्त नहीं होता। अतः मैकडूगल के सिद्धान्त को एक कामचलाऊ परिकल्पना माना जा सकता है। इसमें सत्य का एक अंश है; यह मूलप्रवृत्ति और संवेग के निकट सम्बन्ध की ओर संकेत करता है।

१८. कैनन का संवेगविषयक सद्यस्कृत्यता-सिद्धान्त (Cannon's Emergency Theory of Emotions)

कैनन के अनुसार सहभावी-तंत्र भौतिक सद्यस्कृत्यता (Physical emergency) में युद्ध या किसी भी अन्य असाधारण प्रयत्न के लिये प्राणी को बलशाली बनाने के हेतु काम करता है। एक जटिल परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण हृदय की क्रिया को क्षिप्र करता है। बढ़ी हुई हृदय-क्रिया रक्त का अधिक शीघ्रता के साथ रक्तवाहिनियों (Blood vessels) में संचार करती है, और इस प्रकार थकान से उत्पन्न द्रव्यों को अधिक शीघ्रता से बहा देती है। इसके अतिरिक्त रक्त आमाशय तथा आंतों से हट जाता है, जिससे पाचन-प्रक्रियायें निरुद्ध हो जाती हैं और अस्थि-पिंजर की पेशियों को अधिक रक्त मिलता है। यकृत् (Liver) अधिक शर्करा (Sugar) छोड़ता है जो अधिक शक्ति प्रदान करता है। उपवृक्कय ग्रन्थि उपवृक्कि छोड़ती है जो हृदय को उत्तेजित करता है, रक्तचाप को बढ़ाता है, और थकी हुई पेशियों को स्फूर्ति देता है। कैनन आन्तरिक अंगों, प्रणालीविहीन ग्रन्थियों और संवेगों से सम्बन्धित पेशियों के परिवर्तनों का स्पष्टीकरण करने की चेष्टा करता है।

किन्तु इस प्रकार अच्छी तरह से संगठित शारीरिक व्यापार से निकाला हुआ संवेगों का सिद्धान्त इस तथ्य के विरुद्ध प्रतीत होता है कि संवेग एक व्यापक और अस्तव्यस्त करने वाली प्रतिक्रिया है। यदि संवेग का केवल "सद्यस्कृत्यता" (Emergency) में उदय होता तो व्यक्ति के साधारण व्यापारों में बहुत बाधा होती, क्योंकि संवेग केवल सद्यस्कृत्यता में ही उदय होता। सद्यस्कृत्यता एक असाधारण परिस्थिति होती है जिसमें असाधारण प्रयत्न की आवश्यकता होती है। "इसका फल यह होता है कि सद्यस्कृत्यता का मुकाबला करने के लिये एक नया संगठन करना होता है जिसमें उचित शारीरिक परिवर्तनों का समावेश होता है। यदि केवल अधिक भौतिक शक्ति और सहनशीलता ही आवश्यक है तो परिणाम सफल हो सकता है। यदि सूक्ष्म संगठन या वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये साधनों का बुद्धिमत्तापूर्ण चुनाव आवश्यक है, तो स्वतंत्र स्नायु-तंत्र की क्रिया से उत्पन्न तूफानी प्रतिक्रियाओं के कारण संकट की ही अधिक सम्भावना होती है। वे किसी आक्रमणकारी को पराभूत करने या उससे बच निकलने के लिये सहायक हो सकती हैं, किन्तु घड़ी की मरम्मत करने या प्रयोग की योजना बनाने में वे बिलकुल असफल सिद्ध होंगी।"[1]

१६. संवेगों का वर्गीकरण (Classification of Emotions)

मैकडूगल संवेगों को मौलिक, मिश्र और व्युत्पन्न संवेगों में विभाजित करता है। (१) मौलिक (Primary) संवेग प्रारम्भिक होते हैं। इन्हें अन्य संवेगात्मक अनुभवों को अपने अवयव बनाने की अपेक्षा नहीं रहती। किन्हीं पूर्व संवेगात्मक अनुभवों पर वे आश्रित नहीं रहते। उनका मूल मूलप्रवृत्तियों में रहता है। भय, क्रोध, हर्ष, विषाद, और प्रेम अपने अविकसित रूपों में मौलिक संवेग प्रतीत होते हैं। (२) मिश्र संवेग (Compound emotions) दो या अधिक सक्रिय मूलप्रवृत्तियों से उत्पन्न दो या अधिक सरल संवेगों के संयुक्त होने के फल हैं। मौलिक संवेग उनके संघटक होते हैं, अतः वे उन पर आश्रित होते हैं। यथा, वात्सल्य और सहानुभूतिमूलक व्यथा का

[1] ट्रो : शिक्षा-मनोविज्ञान की भूमिका, पृ० ४२

का मिश्रण है। उपेक्षा क्रोध और अरुचि का मिश्रण है। घृणा क्रोध, भय और अरुचि का मिश्रण है।

मौलिक संवेग तीन प्रकार से परिष्कृत होते हैं। प्रथम, उनका परिष्कार गत्यात्मक प्रतिक्रिया के उन परिवर्तनों से होता है जिनके द्वारा चिल्लाना, पैर मारना, नाखून मारना, काटना इत्यादि आदिम संवेगात्मक अभिव्यक्तियों के स्थान पर सामाजिक दृष्टि से स्वीकार्य प्रतिक्रियायें कर दी जाती हैं। एक सुसंस्कृत मनुष्य की संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ बालक या असभ्य मनुष्य की अभिव्यक्तियों से भिन्न होती हैं। द्वितीय, मौलिक संवेग उत्तेजना के साथ नवीन सम्बन्धों से भी परिवर्तित हो जाते हैं। भय का मौलिक संवेग प्रारम्भ में एक खतरनाक परिस्थित, यथा, मुक्त शेर के दर्शन से उत्पन्न होता है। लेकिन कालान्तर में यह किसी गम्भीर परिस्थिति, यथा, नौकरी के चले जाने, परिवार के किसी कमाने वाले सदस्य की शीघ्र आने वाली मौत, किसी सरकार के पतन इत्यादि के विचार या कल्पना से उत्पन्न होता है। तृतीय, एक संवेग के दूसरे से संयुक्त होने से मौलिक संवेगों में परिवर्तन होता है। आदरयुक्त भय (Awe) आश्चर्य, भय और विनीतता का सम्मिश्रण है।

(२) व्युत्पन्न संवेग (Derived emotions) किसी विशेष मूलप्रवृत्यात्मक क्रिया या क्रियाओं से सम्बन्धित नहीं होते। उनका सम्बन्ध किसी भी चेष्टात्मक प्रवृत्ति के व्यापार से हो सकता है। इच्छा की उत्पत्ति किसी चेष्टात्मक प्रवृत्ति के जाग्रत होने से होता है, जब उसकी वस्तु प्राप्त नहीं होती। व्युत्पन्न संवेग इच्छाओं से सम्बन्धित होते हैं। आशा, चिन्ता प्रभृति इच्छा के भविष्य की ओर संकेत करने वाले संवेग (Prospective emotions) हैं। पश्चात्ताप, संताप इत्यादि इच्छा के भूतकाल की ओर संकेत करने वाले संवेग (Retrospective emotions) हैं। ये व्युत्पन्न संवेग हैं।

अन्य मनोवैज्ञानिकों ने संवेगों को उन वस्तुओं के अनुसार जिनके प्रति संवेग संचालित होते हैं, चार प्रकारों में अर्थात् स्वार्थी (Egoistic), स्वार्थ-परार्थी (Ego-altruistic), परार्थी (Altruistic) और निर्वैयक्तिक (Impersonal) संवेगों में विभाजित किया है।

स्वार्थी संवेग आत्मा पर केन्द्रित होते हैं। उनकी उत्पत्ति किसी ऐसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण या विचार से होती है जो अपने लिए लाभदायक या हानिकारक होती है। भय, क्रोध, हर्ष, विषाद, इत्यादि स्वार्थी संवेग हैं। ये आत्मरक्षणात्मक संवेग हैं।

स्वार्थ-परार्थी संवेग आत्म-तृप्ति की ओर संचालित होते हैं और दूसरों के मतों से जाग्रत होते हैं। शक्ति-प्रेम, प्रशंसा से प्रेम, इत्यादि स्वार्थ-परार्थी संवेग हैं। ये स्वार्थी इसलिए हैं कि ये आत्म-तृप्ति की ओर संचालित होते हैं, और परार्थी इसलिए कि दूसरों के मतों और अनुभूतियों से ये जाग्रत होते हैं।

परार्थी संवेग उसके प्रत्यक्षीकरण या विचार से जाग्रत होते हैं जो अन्य व्यक्तियों या पशुओं के लिए लाभदायक या हानिकारक है। सहानुभूति एक परार्थी संवेग है।

निर्वैयक्तिक संवेग कुछ अमूर्त (Abstract) आदर्शों या पूर्णता के मान दण्डों (Standards) के विचार से उत्पन्न होते हैं। बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक संवेग निर्वैयक्तिक हैं। ये सत्य, शुभ, सौन्दर्य, और ईश्वर के आदर्शों के विचार से उत्पन्न होते हैं। इन आदर्श-विषयक संवेगों को भावनायें (Sentiment) कहा जाता था।

२०. सहानुभूति (Sympathy)

सहानुभूति सभी परार्थमूलक संवेगों का सामान्य आधार है।

प्रथम, यह मूलप्रवृत्यात्मक सहानुभूति या संवेग के संसर्ग (Contagion) के रूप में दिखाई देती है। समूह में रहने वाले प्राणी एक-दूसरे की आवाज़ों को सुनकर सहानुभूति से प्रभावित हो जाते हैं। मवेशियों का झुण्ड या भेड़ों का झुण्ड उसमें से एक के भयाक्रान्त होने पर सारा का सारा भागने लगता है। बालक अपनी माता के पास सन्तोष का अनुभव करता है, और दूर होने पर असन्तोष का। बालक उस व्यक्ति पर मुस्कराने लगता है जो उस पर मुस्कराता है। वह दूसरे बालक के रोने पर रोने लगता है। "अविवेकशील भीड़ में भय या क्रोध दावानल के समान फैल जाता है।" यह मूलप्रवृत्यात्मक सहानुभूति है।

द्वितीय, यह बन्धुभाव (Fellow feeling) के रूप में सहानुभूति के एक उत्कृष्ट रूप में दिखाई देती है। सहानुभूति का सच्चा संवेग या बन्धुभाव की उत्पत्ति दूसरे की परिस्थिति के विचार से और अपने अन्दर उसी संवेग का अनुभव करने से होती है। यह अन्यों के संवेगों में हिस्सा लेना है। इसमें ये तत्व होते हैं : चिल्लाहट, हंसना इत्यादि दूसरे के संवेगों की आंगिक अभिव्यक्तियों का प्रत्यक्षीकरण; इन अभिव्यक्तियों को कुछ संवेगों के लक्षण समझना; अपने अतीत अनुभव में अनुभूत तुल्य संवेगों की स्मृति; उस परिस्थिति की ठीक-ठीक कल्पना जिसमें सहानुभूति का विषय पड़ा हुआ है; सदृश संवेग से प्रभावित होना अर्थात् उसी संवेग का अनुभव करना जिसका अनुभव सहानुभूति का विषय करता है; इस संवेग की दैहिक प्रतिध्वनि (Somatic resonance), यथा, हंसना, चिल्लाना इत्यादि। "जब कोई संवेग एक विचारात्मक प्रक्रिया के कारण पुनर्जीवित होता है तो उसका आंगिक तत्व (Organic factor) भी अपने मूल सांवेदनिक रूप में लौट आना चाहता है, और इस प्रकार पुनर्जीवित संवेग को ऐन्द्रिय आधार (Sensuous basis) प्रदान करता है" (सली)। इसमें सहानुभूति के विषय की मन-तृप्ति और दुःख-निवृत्ति करने के लिये कार्य करने का आवेग भी विद्यमान होता है। बेन सहानुभूति के इस तत्व को महत्व देता है। सहानुभूति करना "दूसरे प्राणी की अनुभूतियों में प्रवेश करना तथा इस प्रकार उस प्राणी के हित के लिये उनका अभिनय करना है कि जैसे मानों वे अपनी ही अनुभूतियां हों" (बेन)। इस प्रकार की सहानुभूति उच्च कोटि के बौद्धिक विकास और उत्कर्ष के स्तर पर स्थित मानवों में पाई जाती है।

२१. संवेगों की अभिव्यक्तियों के नियम (Laws of Expressions of Emotions)

विशेष संवेगों की विशेष अभिव्यक्तियां क्यों होती हैं? हम उनके सम्बन्ध का स्पष्टीकरण कैसे कर सकते हैं? संवेगों की अभिव्यक्तियों के नियम क्या हैं? डार्विन् (Darwin) ने संवेगात्मक अभिव्यक्तियों के स्पष्टीकरण के लिये तीन नियम निर्धारित किये हैं।

(१) उपयोगी सहचारी आदतों का नियम (The principle of serviceable associated habits)

कई संवेगात्मक अभिव्यक्तियां उन कार्यों के आंशिक अवशेष हैं जो स्वयं व्यक्ति के लिये उपयोगी सिद्ध हुये हैं अथवा तुल्य संवेगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में उसके पूर्वजों के लिये उपयोगी सिद्ध हुये थे। उदाहरणार्थ, क्रोध में मुट्ठी बांधना, दांत दिखाना और दांत पीसना; भौंह चढ़ाना, गुर्राना इत्यादि उन कार्यों के अवशेष हैं जो हमारे पूर्वजों के लिये उपयोगी थे। वे क्रोध में शत्रुओं से युद्ध करने में वस्तुतः अपने दाँतों का उपयोग करते थे; हमारा दाँत दिखाना और दाँत पीसना उस उपयोगी कार्य के अवशेष मात्र हैं। भय में दुबकना और छिपना हमारे पूर्वजों के ख़तरे से दूर झाड़ियों और गुफ़ाओं में छिपने के अवशेष हैं।

(२) तुल्य अनुभूति की उत्तेजनाओं के प्रति तुल्य प्रतिक्रिया का नियम (The principle of reacting similarly to analogous feeling stimuli)

दूसरा नियम जिसके साथ डार्विन ने शायद ही पर्याप्त न्याय किया है, तुल्य अनुभूति की उत्तेजनाओं के प्रति तुल्य प्रतिक्रिया का नियम कहा जा सकता है। जब बालक किसी मीठी चीज़ को चखता है तो वह अपने सिर को स्वीकृति में हिलाता है। बाद में जब वह किसी चीज़ पर अपनी स्वीकृति प्रकट करता है तो उस समय भी सिर हिलाता है। दोनों अनुभूतियाँ रुचिकर हैं और समान रूप में अभिव्यक्त होती हैं। जब बालक कड़वी चीज़ चखता है तो सिर की अस्वीकारसूचक गति करता है। बाद में भी जब वह किसी चीज़ की अस्वीकृति प्रकट करता है तो इसी प्रकार सिर हिलाता है। दोनों अनुभूतियाँ अरुचिकर हैं और समान रूप में अभिव्यक्त होती हैं। इस प्रकार समान अनुभूतियाँ और संवेग समान रूप में अभिव्यक्त होते हैं।

(३) विरोध का नियम (The principle of antithesis)

डार्विन कई संवेगात्मक अभिव्यक्तियों का स्पष्टीकरण विरोध के नियम से करता है। विपरीत संवेग विपरीत विधियों से प्रकट किये जाते हैं। यदि एक

विशेष संवेग को जाग्रत करने वाली परिस्थिति कुछ प्रतिक्रियाओं को जन्म देती है तो विपरीत संवेग को जाग्रत करने वाली विपरीत परिस्थिति विपरीत प्रतिक्रियाओं को जन्म देगी, यद्यपि सम्भव है कि उनकी न कोई अन्य उपयोगिता हो और न सार्थकता। क्रोध मुट्ठी बाँधने, आघात का प्रयत्न करने, पेशियों के तनाव इत्यादि में प्रकट होता है, जबकि भय हथेलियों को खोलने, ढीली ढाली भुजाओं, ढीले अंगों, पेशियों के शैथिल्य इत्यादि में प्रकट होता है। विपरीत संवेगों की अभिव्यक्तियाँ भी परस्पर विपरीत होती हैं। कई संवेगात्मक अभिव्यक्तियों की व्याख्या इस नियम से हो सकती है।

२२. बौद्धिक संवेग (Intellectual Emotions)

ये उन संवेगों के समूह हैं जो शुद्ध बौद्धिक प्रक्रियाओं के साथ होते हैं। वे हैं आश्चर्य, कौतूहल, सत्य, ज्ञान या विवेक का प्रेम। बौद्धिक संवेग अंशतः सुखकर होते हैं और अंशतः दुःखकर। ये दुःखकर वहीं तक होते हैं जहाँ तक उनमें विचारों के द्वन्द्व (Conflict) के कारण आयास (Strain) की अनुभूति होती है। वे सुखकर वहाँ तक होते हैं जहाँ तक उनमें विरोधी विचारों का सामंजस्यपूर्ण समायोजन होता है। अतः ये हर्ष और विषाद के मिश्रित संवेग हैं।

हम कौतूहल को बौद्धिक संवेग की सरलतम अभिव्यक्ति पाते हैं। यह एक अरुचिकर संवेग है जिसका कारण "किसी ऐसी वस्तु का आकस्मिक प्रत्यक्षीकरण है जिसके लिये ध्यान तय्यार नहीं होता। यदि उस दशा में अप्रत्याशित मात्र होने के स्थान पर वस्तु विचित्र और अपरिचित होती है, तो कौतूहल की अनुभूति आश्चर्य की अधिक विलम्बित अवस्था में पहुँच जाती है।"[1]

हमारे विचारों में विसंवाद (Contradiction) या संघर्ष का तार्किक संवेग पीड़ाप्रद होता है। हमारे विचारों में जो संवाद (Consistency) या सामंजस्य होता है उसका तार्किक संवेग सुखद होता है। यहाँ प्रारम्भ-बिन्दु

[1] सली : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ३६२

है तथ्यों में तार्किक विरोध का पीड़ाप्रद संवेग और उनका ज्ञान, और जब यह वैषम्य हट जाता है तब तार्किक संवाद और एकता का सुखद संवेग होता है। "संवाद की यह तार्किक भावना बौद्धिक अनुभूति का उत्कृष्टतम रूप है, और विशिष्ट बौद्धिक विकास तथा तार्किक आत्मानुशासन (Self-discipline) के फलस्वरूप इसका उद्भव होता है।"[1]

२३. सौन्दर्यात्मक संवेग (Aesthetic Emotions)

सौन्दर्यात्मक भावनायें सुन्दर, उदात्त (Sublime), और उपहास्य (Ludicrous) में आनन्द लेने की स्थाई प्रवृत्तियां हैं। जब वे सुन्दर, उदात्त और उपहास्य वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण या विचार से जाग्रत होकर संवेगों के रूप में अपना सक्रिय प्रकाशन करती हैं तो ये सौन्दर्यात्मक संवेग कहलाती हैं।

सौन्दर्यात्मक संवेगों की विशेषतायें

सौन्दर्यात्मक संवेग स्थायी और परिष्कृत आनन्द के स्रोत हैं। खाने और पीने इत्यादि के विषयोपभोग शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं और दुःख में बदल जाते हैं। लेकिन सौन्दर्यात्मक उपभोगों की न कभी तृप्ति होती है और न थान्ति। "सुन्दर वस्तु चिर सुख का स्रोत है।"

सौन्दर्यात्मक संवेग अस्वार्थपरक और तात्कालिक आनन्द के उद्गम हैं। सौन्दर्य का कोई उपयोग नहीं होता; यह किसी दूरस्थ साध्य का साधन नहीं है। इसका कोई लाभ नहीं होता : यह स्वयं साध्य है, अपने ही कारण इसका मूल्य है, इसको स्वयं शुभ और वांछनीय माना जाता है।

सौन्दर्यात्मक संवेगों की सहोपभोग्यता (Shareability) ऊँची मात्रा की होती है। सौन्दर्य पर किसी एक व्यक्ति का एकाधिकार नहीं हो सकता। ताजमहल के सौन्दर्य का उपभोग सभी समान रूप से कर सकते हैं। वास्तव में, सौन्दर्यात्मक आनन्द में दूसरों के द्वारा उपभुक्त होने से वृद्धि ही होती है।

सौन्दर्यात्मक संवेगों में चिन्तनात्मक अभिवृत्ति (Contemplative-

[1] सल्ली : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० १६४

attitude) सन्निहित होती है। हम पूर्ण चन्द्रमा के सौन्दर्य का आनन्द चुपचाप लेते हैं। यदि कोई सौन्दर्यात्मक संवेगत्र चपद्द और तूफानी प्रतीत होता है तो यह केवल उसके विषयासक्ति के तत्वों (Sensual elements) से मिश्रित होने के कारण होता है।

२४. सुन्दर का संवेग (The Emotion of the Beautiful)

सुन्दर के घटक (*Constituents of the beautiful*)

सुन्दर में एक ऐन्द्रिय अथवा पार्थिव तत्व (Material element) होता है। यथा, रोचक वर्ण और ध्वनि। मोर का रंग सुन्दर होता है। ऐन्द्रिय या पार्थिव तत्व सभी सौन्दर्योपभोगों का आधार है। मेघाच्छन्न आकाश में सूर्यास्त की वर्ण-सम्पत् शाश्वत आनन्द का स्रोत है।

सुन्दर में एक आकारात्मक तत्व (Formal element) होता है। पार्थिव तत्वों में जो सामंजस्य (Harmory), अनुपात (Proportion), विन्यास (Order), अथवा एकता पाई जाती है वही यह तत्व है। अनेकता में एकता यह तत्व है। गुलाब के विभिन्न भाग इस प्रकार सम्बन्धित होते हैं कि वह एक सामंजस्यपूर्ण समष्टि बन जाता है, उसे विन्यास, अनुपात और संमिति (Symmetry) मिल जाती है। भवन-निर्माण और मूर्ति-निर्माण में जो सौन्दर्य होता है उसका मुख्य कारण विन्यास या सामंजस्य का आकारात्मक तत्व है। संगीत का सौन्दर्य भी प्रधानतया उसके आकारात्मक तत्व में अर्थात् स्वरों के सामंजस्य और तालबद्धता (Rhythm) में निहित होता है।

सुन्दर में एक निर्देशात्मक तत्व (Suggestive element) भी होता है। सुन्दर वस्तु के प्रत्यक्षीकरण या विचार के द्वारा सुझाये जाने वाले विचारों और संवेगों में यह पाया जाता है। कविता हमें आनन्द देती है जिसका कारण साहचर्य के कारण जाग्रत विचार और संवेग है। कविता का सौन्दर्य अंशतः उसके आकारात्मक तत्व अर्थात् ताल में होता है, लेकिन अधिकांश में उसके निर्देशात्मक तत्व अर्थात् सहचारी विचारों और संवेगों में होता है।

२५. उदात्त का संवेग (The Emotion of the Sublime)

हमारे अन्दर इसकी जागृति उत्तुंग पर्वत और महासागर के समान विशाल और महान् वस्तु के प्रत्यक्षीकरण और चिन्तन से होती है। उदात्त के दो भेद होते हैं, गणितशास्त्रीय (Mathematical) और प्रवैगिक (Dynamical)। देश और काल की विशालता हमारे अन्दर गणितशास्त्रीय उदात्त का संवेग उत्पन्न करती है। महान् शक्ति हमारे अन्दर प्रवैगिक उदात्त का संवेग उत्पन्न करती है। उदात्त का संवेग स्वभाव में जटिल होता है। यह सुख-दुःख की मिश्रित अनुभूति है। किसी वस्तु की विशालता मन आश्चर्य के संवेग को भरती है जो हमें उसे समझने के लिए उत्तेजित करती है। जहां तक हम उसे समझते हैं वहाँ तक वह हमें सुख से आपूरित करती है। किन्तु, साथ ही वस्तु की विशालता हमारी समझने की शक्ति को विफल करती है तथा हमारे अन्दर भयमिश्रित आश्चर्य को उत्पन्न करती है। यह हमें अपनी लघुता और तुच्छता की चेतना के कारण दुःखाभिभूत करती है। इस प्रकार उदात्त का संवेग गौरव और भय के संवेगों का मिश्रण है।

उदात्त और सुन्दर के संवेगों में भेद किया जा सकता है। पूर्ववर्ती सुखद और दुःखद दोनों होता है, जबकि परवर्ती केवल सुखद होता है। उदात्त हमें आकर्षित भी करता है और विकर्षित भी, जबकि सुन्दर केवल हमें आकर्षित ही करता है। उदात्त के संवेग में पीड़ा की अनुभूति अनिवार्यतः सन्निहित नहीं होती। अपनी उच्चतर अवस्थाओं (Phases) में भय और भयमिश्रित आश्चर्य का पीड़ाप्रद तत्व अदृश्य हो जाता है और संवेग को जाग्रत करने वाली वस्तु का सहानुभूतिपूर्वक आलिंगन किया जाता है। इसके प्रारम्भिक रूपों में पीड़ा का तत्व वर्तमान होता है। उदात्त का संवेग एक सापेक्ष अनुभूति है जिसका कारण वस्तु की विशालता और स्वयं अपनी तुच्छता के मध्य विरोध है।

२६. उपहास्य का संवेग (The Emotion of the Ludicrous)

प्रारम्भ में हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि उपहास्य और हास्यजनक में तादात्म्य नहीं है। हास्य कई स्रोतों से उत्पन्न हो सकता है। यह विशुद्ध

भौतिक उत्तेजनाओं से यथा गुदगुदाने से उत्पन्न हो सकता है। यह स्वभाव में प्रतिक्षेप किया है। हास्य स्वतः अनुकरण से उत्पन्न हो सकता है। आप बच्चे के सामने हँसते हैं और वह भी अनुकरण करके हँसता है। झुण्ड में लोग यांत्रिक अनुकरण के कारण हँसते हैं। वे कभी-कभी यह भी नहीं जानते कि हँसी का कारण क्या है। हास्य की उत्पत्ति दूसरों की अनुभूतियों की सहानुभूतिमूलक पुनरावृत्ति से हो सकती है। संवेगों का संस्पर्शी (Contagious) प्रभाव होता है। वे एक व्यक्ति से दूसरे में फैलते हैं। जब दूसरे हर्षातिरेक से हँसते हैं तो हमें उसकी छूत लग जाती है और हम भी हँसते हैं। हास्य की उत्पत्ति दूसरों से अपनी उत्कृष्टता की चेतना से भी हो सकती है। जब हम अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करते हैं तो आनन्दातिरेक के कारण हम हँसते हैं। हास्य उपहास के चिन्तन से भी जाग्रत हो सकता है। इस प्रकार उपहास्य और हास्यजनक (Laughabe) में तादात्म्य नहीं है। जो कुछ भी उपहास्य है वह हास्यजनक भी है, लेकिन जो कुछ हास्यजनक है वह उपहास्य नहीं है। हास्य के उपहास्य वस्तुओं के अतिरिक्त कई अन्य कारण भी हैं।

हॉब्स (Hobbes) उपहास्य के संवेग की निम्नलिखित व्याख्या देता है। उसके मतानुसार इसकी जागृति उत्कृष्टता और गौरव से समन्वित किसी व्यक्ति या वस्तु के आकस्मिक और अप्रत्याशित पतन से होती है। उपहास्य कोई व्यक्ति या वस्तु होती है जो साधारणतया उत्कृष्टता और गौरव से युक्त होती है और, इसलिये वह दूसरों में भयमिश्रित आश्चर्य (Awe) और संयम (Restraint) पैदा करती है। इसमें इस गौरवयुक्त व्यक्ति या वस्तु का आकस्मिक और अप्रत्याशित पतन भी सन्निहित रहता है जिससे उसमें किसी मामूली, तुच्छ या घृणित वस्तु के मिलने से हमारे अन्दर उत्पन्न भयमिश्रित आश्चर्य और संयम से हमें अकस्मात् और अप्रत्याशित रूप से मुक्ति मिलती है। तनाव की स्थिति से जो आकस्मिक मुक्ति होती है वह आनन्द की अनुभूति उत्पन्न करती है। जिससे हास्य में अभिव्यक्त होने वाली पैशिक क्रिया अत्यधिक मात्रा में होती है। विदूषक की तरह हाव-भाव

करने वाले गम्भीर और आदरणीय कोई सज्जन दर्शकों में हास्य पैदा करता है।

बेन का भी यही मत है। "गौरवान्वित व्यक्ति या रुचि के पतन में, उस स्थिति में जबकि कोई अन्य प्रबल संवेग उत्पन्न नहीं होता, उपहास का अवसर होता है। जब कोई अकस्मात् मिट्टी में गिर जाता है तो दर्शक को हँसी आती है, यदि उसके स्थान पर परिस्थिति का संकट दया को जन्म नहीं देता" (बेन)।

अन्यों का मत है कि उपहास्य का संवेग अनुचित, असंगत, विचित्र रूप, पोशाक, चाल इत्यादि से उत्पन्न होता है। असंगत वस्तु हास्य को जन्म देती है। यदि एक छोटा लड़का अपने पिता का लम्बा कोट और जूते पहिनता है तो उसे देखने मे हँसी आती है।

२७. उपहास के संवेग की विशेषतायें (The Charcteristics of the Comic Emotion)

उपहास के संवेग की निम्नलिखित विशेषतायें होती है। यह विशुद्ध हर्ष या आनन्द का संवेग है। पीड़ा से इसका मिश्रण नहीं होता। उपहास के संवेग की सामाजिक सार्थकता होती है। इसकी उत्पत्ति किसी परिस्थिति की असंगति (Incongtuity) से होती है; असगति का तत्व औचित्य या अनौचित्य के किसी सामाजिक मानदण्ड की ओर संकेत करता है। उपहास अस्वार्थमूलक संवेग (Disinterested emotion) है। इसका कोई ज्ञात उपयोगी प्रेरक (Utilitarian motive) नहीं होता।

२८. नैतिक संवेग (The Moral Emotion)

नैतिक संवेग शुभ (Good) के आदर्श से उत्पन्न होते हैं। उनकी उत्पत्ति अच्छे और बुरे की पहिचान से होती है। ये नैतिक स्वीकृति (Approval) और अस्वीकृति (Disapproval) के संवेग हैं। उनके साथ कर्तव्य अथवा नैतिक बाध्यता (Moral-obligation) की अनुभूति होती है। अस्वार्थपरक होने में उनका सौन्दर्यात्मक भावनाओं से साम्य होता

है। "सत् की स्वीकृति और असत् की अस्वीकृति के अपने सामान्य रूप में इस भावना की सौन्दर्यानुभूति से कुछ समता है। उसके सदृश इसकी भी उत्पत्ति निर्दिष्ट वस्तुओं के कुछ गुणों या सम्बन्धों के विशुद्ध यस्वार्थपरक (अर्थात् आत्मा और उसके हितों के सम्बन्ध से मुक्त) चिन्तन से होती है। जैसे किसी सुन्दर वस्तु का निरीक्षण या कल्पना करते समय, वैसे ही किसी नैतिक दृष्टि से अच्छे कर्म का निरीक्षण या कल्पना करते समय भी हम तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं।"[1]

नैतिक संवेगों की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :—

नैतिक संवेग मुख्यतया व्यावहारिक होते हैं। वे हमें कर्म के लिये प्रोत्साहित करते हैं। बौद्धिक संवेग ज्ञान-प्राप्ति से सम्बन्धित हैं। सौन्दर्यात्मक संवेग सुन्दर या उदात्त वस्तु के निष्क्रिय रसास्वादन में होते हैं। किन्तु नैतिक संवेग मानवीय कर्मों से सम्बन्धित हैं। वे हमें जो अच्छा है उसे करने और जो बुरा है उसे न करने के लिये प्रेरित करते हैं।

नैतिक संवेग नियामक (Regulative) होते हैं। वे स्वभाव में बाध्यता-मूलक (Obligatory) होते हैं। जब नैतिक स्वीकृति का संवेग होता है तब हमें जो सत् (Right) है उसे करने के लिये नैतिक बाध्यता का अनुभव होता है। जब नैतिक अस्वीकृति का संवेग होता है तब हमें जो असत् (Wrong) है उसे न करने की नैतिक बाध्यता का अनुभव होता है। नैतिक स्वीकृति सुखकर होती है। नैतिक अस्वीकृति दुःखकर होती है। "एक नियामक न्यायिक (Judicial) अनुभूति के रूप में नैतिक भावना सुखदता की दृष्टि से सौन्दर्य-भावना की अपेक्षा निकृष्ट कोटि की होती है, तथा पीड़ाप्रद पहलू में (नैतिक अस्वीकृति) अत्यधिक तीव्र।"[2]

नैतिक संवेग प्रधानतया सामाजिक होते हैं। नैतिक कर्म सामाजिक होते हैं; वे उन व्यक्तियों के कर्म हैं जो समाज में परस्पर सम्बन्धित होकर

---

[1] सली : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ३८८

[2] सली : मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ३६८

एक साथ निवास करते हैं। "सामाजिक चेतना, आत्मा और समाज के हितों की एकता की अनुभूति सौन्दर्य-प्रशंसा या बौद्धिक तृप्ति की अपेक्षा नैतिक स्वीकृति में अधिक स्पष्ट तथा प्रमुख होती है। कर्तव्य की आवाज़ की अनुभूति करना समाज के साथ अपने सम्बन्धों को एक विशेष रूप से स्पष्टता के साथ समझना है।"[1]

२६. धार्मिक संवेग (Religious Emotions)

धार्मिक संवेगों की उत्पत्ति ईश्वर के चिन्तन (Contemplation) से होती है। ईश्वर सत्यं, शिवं, सुन्दरं के आदर्शों की शाश्वत मूर्ति (Eternal embodiment) है। अतः धार्मिक संवेगों में बौद्धिक, नैतिक तथा सौन्दर्यात्मक संवेगों का समावेश होता है। धार्मिक संवेग कई होते हैं: प्रकृत्यातीत (Supernatural) शक्ति का भय; ईश्वर की अज्ञेयता पर आश्चर्य; ईश्वर की पवित्रता और पूर्णता के लिये प्रशंसा और श्रद्धा, ईश्वर की इच्छा के सम्मुख विनीतता और समर्पण की अनुभूतियाँ, अपने साथी मनुष्यों के लिये सहानुभूति तथा सदिच्छा; ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति; ईश्वरीय सौन्दर्य के चिन्तन से आनन्द का सौन्दर्यात्मक संवेग। धार्मिक संवेग कई देवताओं और देवियों या प्रकृत्यातीत शक्तियों के विचार से भी उत्पन्न हो सकते हैं। बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक, धार्मिक संवेग सामान्यतया भावनायें (Sentiment) कहलाते हैं।

३०. मूर्त और अमूर्त भावनायें (Concrete and Abstract Sentiments)

भावनायें स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। वे कई संवेगात्मक अनुभवों के परिणाम हैं। वे अधोचेतन स्तर में जीवित रहने वाली मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। उपयुक्त अवसरों पर सक्रिय संवेगों के रूप में उनका प्रकाशन होता है।

---

[1] सक्सेना: मनोविज्ञान की रूपरेखा, पृ० ३६६

भावनायें कुछ वस्तुओं, व्यक्तियों, या आदर्शों पर केन्द्रित होती हैं। वे मूर्त होती हैं या अमूर्त। मूर्त भावनायें वस्तुओं, व्यक्तियों या उनके समूहों से उत्पन्न होती हैं। प्रेम, घृणा, मैत्री, सहानुभूति, देशभक्ति, मानवप्रेम, प्रभृति, मूर्त भावनायें हैं। अमूर्त भावनायें सत्य, शुभ, सौन्दर्य तथा पवित्रता के आदर्शों के चिन्तन से उत्पन्न होती हैं। ये शान्त और निस्पंद होती हैं। उनकी शारीरिक 'प्रतिध्वनि' (Somatic resonance) स्पष्ट नहीं भी हो सकती। उनमें चिन्तनात्मक मुद्रा (Attitude) होती है। ये अमूर्त आदर्शों के चिन्तन से उत्पन्न होती हैं। वे न स्वार्थपरक होती हैं न परार्थ-परक, बल्कि पूर्णरूपेण उदासीन और निर्वैयक्तिक होती हैं।

अमूर्त भावनायें चार प्रकार की होती हैं : बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक भावनायें। ये क्रमशः सत्य, शुभ, सौन्दर्य और पवित्रता के आदर्शों के चिन्तन से उत्पन्न होती हैं। जब बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक भावनायें अपनी उपयुक्त वस्तुओं से सक्रिय संवेगों के रूप में जाग्रत होती हैं तो हम बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक संवेगों का अनुभव करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक 'भावना' शब्द को इन आदर्श मूलक संवेगों के अर्थ में व्यवहृत करते हैं। किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसका प्रयोग स्थायी संवेगात्मक प्रवृत्तियों के अर्थ में करते हैं जो मूर्त भी हो सकती हैं और अमूर्त भी।

३१. भावनाओं का विकास (Development of Sentiments)

प्रथम, मूर्त भावनायें विकसित होती हैं। वे मूर्त वस्तुओं, व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों के प्रति संचालित होती हैं। वे उत्तरोत्तर अधिक विस्तृत वस्तुओं या व्यक्ति-समूहों के प्रति संचालित होती हैं। तत्पश्चात्, धीरे-धीरे अमूर्त भावनाओं का विकास होता है। ये सामान्य सिद्धान्तों और अमूर्त आदर्शों के प्रति संचालित होती हैं।

पहिले मूर्त भावनायें व्यक्तियों के प्रति संचालित होती हैं। यथा बच्चे व्यक्तियों यथा, अपनी धाय या माता से प्रेम करता है। लेकिन अपने अनु-

भव की वृद्धि के साथ वह अपने परिवार से प्रेम करने लगता है। इसे परिवार-भावना (Home sentiment) कहते हैं। फिर उसके अन्दर पाठशाला-भावना (School sentiment) का विकास होता है जो आजीवन स्थिर रह सकती है। वह देशभक्ति या देशप्रेम की उपलब्धि करता है। बाद में उसे मानव मात्र के प्रेम की भावना उपलब्ध हो सकती है। क्रमशः अमूर्त भावनाओं का उदय होता है जो सामान्य सिद्धान्तों पर केन्द्रित होती हैं, यथा, अन्याय या अत्याचार से घृणा, स्वतंत्रता से प्रेम, व्यवस्था और उन्नति से प्रेम, अराजकता और विद्रोह से घृणा, इत्यादि। तत्पश्चात् अमूर्त भावनायें अमूर्त आदर्शों के प्रति संचालित होती हैं, यथा, सत्यभक्ति, सौन्दर्य से प्रेम, ईश्वर के प्रति श्रद्धा, इत्यादि।

अध्याय १७

अनैच्छिक कर्म (NON-VOLUNTARY ACTIONS)

१. अनैच्छिक कर्मों के भेद (Kinds of Non-voluntary Actions)

हम ज्ञान तथा वेदना के विभिन्न भेदों के स्वरूप का वर्णन कर चुके हैं। संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, सीखना, स्मृति, कल्पना और विचार ज्ञान के विभिन्न भेद हैं। अनुभूति, संवेग और भावना वेदना के विभिन्न भेद हैं। अब हम कर्म के विभिन्न भेदों का वर्णन करेंगे जिनके नाम हैं, ऐच्छिक और अनैच्छिक कर्म। अनैच्छिक कर्म ऐच्छिक कर्मों के पूर्ववर्ती हैं। अनैच्छिक कर्मों के कई भेद हैं जिनके नाम हैं, (१) स्वतःचालित कर्म, (२) अनियमित कर्म, (३) प्रतिक्षेप कर्म, (४) नियंत्रित प्रतिक्षेप कर्म, (५) विचारप्रेरित कर्म, और (६) मूलप्रवृत्यात्मक कर्म।

२. स्वतः चालित कर्म (Automatic Actions)

नवजात शिशु दुनिया में नितान्त असहाय दशा में पदार्पण नहीं करता। छोटा नवागन्तुक कुछ कर्म तुरन्त कर सकता है। जन्म के तुरन्त पश्चात् उसके

शरीर के अन्दर कुछ शारीरिक व्यापार स्वयमेव चलने लगते हैं। वे हैं श्वसन, रक्त-संचार और पाचन। इन सब में पैशिक गतियां होती हैं। इन्हें स्वतः चालित कर्म कहते हैं। ऐसे स्वतः चालित कर्मों के लिये स्नायविक उत्तेजना पूर्णतः या अंशतः स्वयं शरीर के अन्दर वर्तमान होती है। इस प्रकार, रक्त की रासायनिक अवस्था रक्त-संचार और श्वसन में परिवर्तन ला सकती है; आमाशय में भोजन की उपस्थिति पाचन-क्रिया को उत्तेजित करती है। साधारण दशाओं में हमें इन कर्मों की बिल्कुल चेतना नहीं होती। जब कभी उनमें उपद्रव होता है तब वे पीड़ा पहुँचाते हैं और हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। हमें स्वतः चालित कर्मों की चेतना तब होती है जब उनमें कोई गड़बड़ी होती है और उनसे पीड़ाप्रद संवेदनायें होती हैं। इस प्रकार, हमें अपच की श्वास-प्रश्वास में कठिनाई की चेतना होती है। कुछ लोग स्वतः चालित कर्मों को शरीर व्यापारिक प्रतिक्षेप (Physiological reflex) कहते हैं।

३. अनियमित कर्म (Random Actions)

अनियमित कर्म शरीर के अन्दर संग्रहीत शक्ति के अनायास प्रकाशन हैं। उन्हें केन्द्रीय द्रव्य (Central substance) के स्वतः उद्दीपन का फल माना जाता है। अंडे में मुर्गी के बच्चे की गतियां, और शिशु की कुछ प्रारम्भिक गतियां, यथा, भुजाओं और पावों को फैलाना, इत्यादि अनियमित कर्म हैं, इन कर्मों की बाह्य उत्तेजनायें नहीं होतीं। ये लक्ष्य के पूर्वदर्शन (Prevision) से सक्रिय नहीं होते। प्रारम्भिक अनियमित कर्म यथा अंडे में मुर्गी के बच्चे की गतियाँ मानसिक कारणों के कार्य नहीं होते। वे बेचैनी की अनुभूति से भी प्रेरित नहीं होते। किन्तु यथा हाथ-पाँव के फैलाने के लिये कर्म-केन्द्रों (Motor centres) में शक्ति-संचय के कारण उत्पन्न होने वाली बेचैनी की अनुभूति से प्रेरित हो सकता है, क्योंकि यदि उसकी गतियाँ रोकी जायं तो वह रोता है।

बाह्य उत्तेजनाओं की प्रतिक्रियास्वरूप बच्चे की उद्देश्य हीन और प्रयत्न-हीन गतियों को भी कभी-कभी अनियमित कर्म कहा जाता है। ये स्नायविक

उद्दीपन के प्रकाशन होते हैं। वे बाह्य-उत्तेजनाओं के प्रति असंगठित प्रतिक्रियायें हैं। जब एक बच्चा रंगीन खिलौना देखता है तो वह कई निरुद्देश्य, क्रमहीन गतियां करता है। इन व्यापक गतियों से संयत और संगठित गतियों का उदय होता है।

कुछ आरम्भिक अनियमित कर्म, यथा गर्भ में भ्रूण की गतियां मानसिक कारणों के फल नहीं होते। वे कर्म-केन्द्रों में संचित शक्ति के अनायास प्रकाशन होते हैं। अन्य अनियमित कर्मों के, यथा बच्चे के हाथ-पांवों की गतियों के, मानसिक कारण होते हैं। कर्म-केन्द्रों में संचित शक्ति के कारण होने वाली बेचैनी की अनुभूति इन्हें प्रेरित करती है। कुछ अनियमित कर्म बाह्य उत्तेजनाओं से उत्पन्न नहीं होते। ऊपर वर्णित अनियमित कर्म ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं से उत्पन्न नहीं होते। लेकिन ये कुछ बाह्य उत्तेजनाओं से उत्पन्न होते हैं। रंगीन खिलौने को देखकर होने वाली बच्चे की निरुद्देश्य, क्रमहीन और व्यापक गतियां ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं के द्वारा पैदा होती हैं। अनियमित कर्म शरीर के लाभ के लिये उपयुक्त परिणाम उत्पन्न करते हैं। बच्चे के हाथ-पैरों की निरुद्देश्य गतियां शारीरिक व्यायाम के लिये ठीक होती हैं। ये पेशियों को बलवती बनाती हैं और संयत तथा संगठित गतियों के लिये आधार प्रस्तुत करती हैं। लेकिन उनका यह उपयोग जानबूझ कर नहीं होता। किसी लक्ष्य के विचार या प्रयोजन से उनका पथ-प्रदर्शन नहीं होता। किसी लक्ष्य का पूर्वज्ञान उनमें सन्निहित नहीं होता। ये अनैच्छिक कर्म हैं। लेकिन ये ऐच्छिक कर्मों के आधार हैं।

४. प्रतिक्षेप-कर्म (Reflex Action)

प्रतिक्षेप-कर्म किसी ऐन्द्रिय उत्तेजना की तात्कालिक पैशिक या ग्रंथिक प्रतिक्रिया है (A reflex action is a prompt muscular or glandular response to a sensory stimulus)। यह उत्तेजना की अव्यवहित (Immediate) प्रतिक्रिया है। जब आप थोड़ी सी सिंकनी सूंघते हैं तो आप छींकते हैं। जब सूंघना बन्द हो जाता है तो छींकना भी बन्द हो जाता है।

प्रतिक्षेप-कर्म सदैव ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं की प्रतिक्रियायें होते हैं। उत्तेजनायें या तो बाह्य वस्तुयें हो सकती हैं या आंगिक उपद्रव (Organic disturbances)। चौंधियाने वाली वस्तु को देखकर हम अपनी आंखें बन्द कर देते हैं। यहां प्रतिक्षेप कर्म बाह्य उत्तेजना से उत्पन्न होता है। जब कोई चीज़ नासा-कक्षा (Nasal membrane) में अटक जाती है तो हम छींकते हैं। जब शीत गले का अवरोध करता है तो हम खांसते हैं। यहां प्रतिक्षेप कर्म आंगिक उपद्रवों से उत्पन्न होते हैं। ये सब प्रतिक्षेप ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं के प्रति शरीर के बाहर या अन्दर की पेशियों की प्रतिक्रियायें हैं। कुछ प्रतिक्षेप ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं के प्रति ग्रन्थियों की प्रतिक्रियायें होते हैं। यदि धूल आंखों में पड़ जाती है तो आंसू निकलने लगते हैं। खट्टी चीज़ को चखने से लार आने लगती है। ये प्रतिक्षेप ऐन्द्रिय उत्तेजनाओं के प्रति ग्रन्थियों की प्रतिक्रियायें हैं।

प्रतिक्षेप कर्म दो प्रकार के होते है : शरीर व्यापारिक (Physiolgical) प्रतिक्षेप और संवेदना-प्रतिक्षेप (Sensation reflex)। प्रतिक्षेप कर्म चेतना के साथ या चेतना के बिना किए जा सकते हैं। जिन प्रतिक्षेपों की हमें कोई चेतना नहीं होती वे शरीरव्यापारिक प्रतिक्षेप कहलाते हैं। पुतली (Pupil) का प्रतिक्षेप एक शरीर-व्यापारिक प्रतिक्षेप है। जब प्रकाश उज्ज्वल होता है तब पुतली संकुचित हो जाती है; जब प्रकाश मंद होता है तब पुतली फैल जाती है। हमें पुतली के आकार-परिवर्तन की चेतना नहीं होती। जिन प्रतिक्षेपों की हमें चेतना होती है उन्हें संवेदना-प्रतिक्षेप कहते हैं। हमें पलक गिराने, छींकने, खाँसने इत्यादि की चेतना होती है। अतः ये संवेदना-प्रतिक्षेप हैं। कभी-कभी चेतना को प्रतिक्षेप-कर्मों का ज्ञान हो सकता है, किन्तु वह उन्हें उत्पन्न नहीं करती। हमें यह ज्ञान हो सकता है कि हमने पलक गिराई है, किन्तु पलक का गिरना एक प्रतिक्षेप-कर्म है जो चेतना से उत्पन्न नहीं होता। शरीर-व्यापारिक प्रतिक्षेप चेतनारहित होते हैं; वे चेतना के नियंत्रण से स्वतंत्र होते हैं। संवेदना-प्रतिक्षेप चेतन होते हैं; चेतना उनसे पहिले भी होती है और बाद में भी। लेकिन सामान्यतया चेतना का उनपर नियंत्रण नहीं हो

सकता। छड़ी के नेत्रों के पास पहुँचने पर आपको छड़ी का ज्ञान होता है, और जब आप अपनी पलकें गिरा चुके होते हैं तब भी आपको इसका ज्ञान होता है। लेकिन इस प्रतिक्षेप कर्म पर शायद ही आप नियंत्रण कर सकें। कभी-कभी संवेदना प्रतिक्षेपों का कुछ समय तक चेतना के द्वारा निरोध किया जा सकता है। लेकिन कुछ समय पश्चात् वे प्रचंड रूप में क्रियान्वित होते हैं। सिपाही के अकस्मात् समीप आ जाने पर चोर अपने को छिपाता हुआ कुछ काल के लिए खाँसी का निरोध कर सकता है, लेकिन तत्पश्चात् उसे प्रचण्ड रूप के खाँसने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कभी-कभी हम एक संवेदना-प्रतिक्षेप (यथा, छींक) का प्रबल प्रयत्न से सफलतापूर्वक निरोध कर सकते हैं।

शरीरव्यापारिक और संवेदना प्रतिक्षेपों के मध्य दो प्रमुख अन्तर हैं। रक्त संचार, पाचन, श्वसन इत्यादि को जो शरीर के अन्दर की उत्तेजनाओं की प्रतिक्रियायें हैं; कुछ लोग शरीरव्यापारिक प्रतिक्षेप कहते हैं। ये समान और नियमित रूप से होने वाले शरीरान्तर्वर्ती उत्तेजनाओं के प्रतिक्रियास्वरूप समान और नियमित रूप से होते हैं। खाँसना एक संवेदना-प्रतिक्षेप है। खाँसना, जब कोई अवांछित पदार्थ गले में अटक जाता है तब कभी-कभी ही होता है। जब मन किसी रोचक विषय में ध्यानमग्न होता है, तब, खाँसना अचेतन रूप से हो सकता है और इस प्रकार एक शरीरव्यापारिक प्रतिक्षेप हो सकता है, यद्यपि जाग्रत अवस्था में यह सामान्यतया एक संवेदना-प्रतिक्षेप होता है।

प्रतिक्षेप-चाप (Reflex arc) प्रतिक्षेप कर्म का शरीर व्यापारिक आधार है। कोई ज्ञानेन्द्रिय किसी उत्तेजना से उत्तेजित होती है। एक ज्ञान स्नायु-कोशा स्नायु-आवेग को ज्ञानेन्द्रिय से सुषुम्ना या मस्तिष्क के तने में स्थित किसी स्नायु-केन्द्र को ले जाती है। यहाँ पर ज्ञानकोशा और कर्म-कोशा के मध्य एक सन्धि (Connection) होती है। कर्म-कोशा स्नायु-प्रवाह को केन्द्रीय स्विचिंग स्टेशन से किसी पेशी या ग्रन्थि को ले जाती है। पेशी या ग्रन्थि कर्मकोशा से प्राप्त आवेग के अनुसार कार्य करती है। एक निम्न केन्द्र के भूरे पदार्थ में स्थित सन्धि के द्वारा ज्ञान-कोशा का कर्म-कोशा से स्थापित यह सम्बन्ध "प्रतिक्षेप-चाप" कहलाता है।

प्रथम, प्रतिक्षेप विकास के सामान्य नियमों का पालन करते हैं। सभी प्रतिक्षेप एक ही समय पर उत्पन्न नहीं होते। ज्यों-ज्यों स्नायु-केन्द्र परिपक्व होते जाते हैं, त्यों-त्यों विभिन्न प्रतिक्षेपों का विभिन्न समयों पर उदय होता जाता है। छींकने, खाँसने का उदय जन्म के पश्चात् कुछ ही दिवसों में हो जाता है। पलक झपकने का प्रतिक्षेप बाद में सातवें और ग्यारहवें सप्ताहों के बीच दिखाई देता है। अन्य प्रतिक्षेपों के दर्शन बाद में होते हैं। द्वितीय, प्रतिक्षेप सदैव बाह्य उत्तेजनाओं से जाग्रत नहीं होते। वे शरीर की सामान्य अवस्था पर भी निर्भर होते हैं। शिशु जब भूखा होता है तब माता का स्तन पान करता है। लेकिन भूख के शान्त हो जाने पर वह स्तन-पान छोड़ देता है, यद्यपि उसके अधर माँ के स्तन को दबाये रहते हैं। जब कोई व्यक्ति घबराया होता है तब एक मंद अप्रत्याशित कोलाहल भी उसे अत्यधिक चौंका देता है। किन्तु यदि वह किसी कार्य में तल्लीन होता है तो वही कोलाहल उसमें कोई गति उत्पन्न नहीं करता।

प्रतिक्षेप शरीर के लिए उपयोगी होते हैं। जब कोई वस्तु नेत्रों के पास आती है तब पलक झपकने का प्रतिक्षेप नेत्रों को सम्भावित क्षति से बचाता है। खांसना अटके हुये कफ़ को गले से निकाल देता है। छींकना हानिकारक पदार्थों को नास-गुहा (Nasal cavity) से निकाल देता है।

प्रतिक्षेप चेतना के शासन से मुक्त होते हैं। शरीरव्यापारिक प्रतिक्षेप अचेतन होते हैं। वे चेतना के नियंत्रण से स्वतंत्र होते हैं। संवेदना-प्रतिक्षेपों के पहिले और पश्चात् चेतना होती है। किन्तु ये गत्यात्मक प्रतिक्रियायें चेतन प्रेरकों की प्रतिक्रियायें नहीं होतीं। मुश्किल से ही ये चेतना के द्वारा निरुद्ध हो सकती हैं। संवेदना-प्रतिक्षेपों के पूर्व संवेदनायें होती हैं; लेकिन प्रत्यय या विचार नहीं होते। प्रात्यक्षिक-प्रतिक्षेपों (Perceptual reflexes) और विचार प्रेरित कर्मों (Ideo-motor action) से पृथक् ये संवेदना-प्रतिक्षेप हैं। कभी-कभी ये संवेदना प्रेरित (Sensori-motor) कर्म कहलाते हैं।

प्रतिक्षेप शरीरान्तरिक या शरीर-बाह्य इन्द्रिय उत्तेजनाओं की अव्यवहित प्रतिक्रियायें हैं। वे तात्कालिक प्रतिक्रियायें हैं। वे समरूप (Uniform) होते हैं। एक उत्तेजना का एक ही प्रतिक्षेप होता है। तीव्र प्रकाश के कारण पुतली संकुचित होती है, मन्द प्रकाश के कारण वह फैलती है।

प्रतिक्षेप सीखे नहीं जाते। वे पूर्वयोजनाबद्ध स्नायविक पथों (Preorganized nervous pathways) पर निर्भर होते हैं। किसी को भी प्रतिक्षेप-कर्म करने के लिए अभ्यास नहीं करना पड़ता। जब स्नायुतंत्र विकसित होता है, तो ज्ञान-स्नायु और कर्म-स्नायुओं में आवश्यक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं जिससे प्रतिक्षेप तात्कालिक होते हैं। प्रतिक्षेप ऐच्छिक कर्म नहीं होते। उनमें किसी लक्ष्य का पूर्वज्ञान सन्निहित नहीं होता। वे साभिप्राय या सहेतुक (purposive) नहीं होते।

प्रतिक्षेप सरल और सीमित स्थानों में होने वाली (Simple and local) प्रतिक्रियायें हैं। उनमें क्रियाओं की जटिल परम्परा (Series) नहीं होती। वे सरल प्रतिक्रियायें हैं। वे उत्तेजनाओं की एकाकी प्रतिक्रियायें हैं। वे सीमित स्थान में होती हैं। उत्तेजना की प्रतिक्रिया शरीर के एक विशेष भाग में होती है। शरीर के अनेक भाग या अंग किसी परिस्थिति की प्रतिक्रिया नहीं करते।

५. नियंत्रित प्रतिक्रियायें (Conditioned Responses)

एक रूसी शरीरवैज्ञानिक पैवलोव (Pavlov) ने सन् १९०० के आसपास नियंत्रित प्रतिक्षेप (Conditioned reflex) का अनुसन्धान किया था। उसने एक भूखे कुत्ते पर प्रयोग किये और नियंत्रित उत्तेजनाओं से उसके लार-प्रतिक्षेप को उत्पन्न किया। प्रतिक्षेप किसी उत्तेजना की अव्यवहित दैहिक या प्रान्यिक प्रतिक्रिया है। उसमें एक स्वाभाविक उत्तेजना की स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। यदि एक भूखे कुत्ते के मुँह में गोश्त का टुकड़ा डाला जाय तो लार निकलने लगती है। यह एक अनियंत्रित प्रतिक्षेप है। लेकिन यह पाया जाता है कि मूल उत्तेजना से सम्बन्धित अन्य उत्तेजनायें

भी, यथा, भोजन का दर्शन या गन्ध, जिस बर्तन में सामान्यतया भोजन दिया जाता है उसका दर्शन, जो व्यक्ति सामान्यतया भोजन देता है उसका दर्शन या अगले कमरे में उसकी पगध्वनि का श्रवण भी भूखे कुत्ते में शीघ्रता के साथ लार के बहने को जन्म देता है। मुख में भोजन की उत्तेजना की वास्तविक उपस्थिति के साथ होने वाली लार-प्रतिक्रिया एक स्वाभाविक प्रतिक्षेप है, किन्तु तश्तरी का दर्शन और आमतौर पर भोजन देने वाले व्यक्ति की पगध्वनि इत्यादि उत्तेजनाओं से जाग्रत वही प्रतिक्रिया उन स्थितियों पर निर्भर होती है जिनमें कुत्ते को पहले भोजन दिया जा चुका है। पैवलोव ने इसे नियंत्रित प्रतिक्षेप नाम दिया। यह यथार्थ में प्रतिक्षेप नहीं है। अतः इसे नियंत्रित प्रतिक्रिया कहना अधिक उचित है। यहाँ स्वाभाविक उत्तेजना से साधारणतया सम्बन्धित स्थितियों के प्रति वही प्रतिक्रिया की जाती है।

नियंत्रित प्रतिक्षेप की स्थापना स्वाभाविक उत्तेजना को किसी कृत्रिम उत्तेजना के साथ निरन्तर तीस, चालीस, या पचास बार जोड़ने से होती है। तत्पश्चात् स्वाभाविक उत्तेजना को हटा दिया जाता है, और केवल कृत्रिम उत्तेजना को प्रस्तुत किया जाता है, जो उसी प्रतिक्रिया को जाग्रत करती है। कृत्रिम उत्तेजना स्थानापन्न (Substitute) उत्तेजना या नियंत्रित (Conditioned) उत्तेजना कहलाती है।

पैवलोव को मालूम हुआ कि कोई भी स्थानापन्न उत्तेजना, यथा, घंटी का बजना, त्वचा को गर्मी या सर्दी पहुँचाना, बिजली की चमक, जब स्वाभाविक उत्तेजना, यथा, भूखे कुत्ते को भोजन देना, के साथ तीस, चालीस या अधिक बार जोड़ी जाती है तो उसमें वही प्रतिक्रिया, यथा; लार का बहना, उत्पन्न होती है। यह बहुत ही विचित्र प्रतीत होता है कि नियंत्रित उत्तेजना में, जो कि पहिले ही स्थापित हो चुकी है, बहुत मामूली परिवर्तन कर देने से भी प्रतिक्रिया बिल्कुल नहीं होगी। जब नियंत्रित उत्तेजना के रूप में किसी स्वर की ध्वनि प्रतिक्रिया को उत्पन्न करती है तो उसे किसी ऐसी ध्वनि से उत्पन्न नहीं किया जा सकता जो इसमें एक स्वर के चौथाई का भी अन्तर रखती है।

मेरा भोजन उचित रूप से समाप्त हो चुका है, और बातचीत के जोश में मुझे मुश्किल से ही यह ज्ञान होता है कि मैं क्या कर रहा हूँ; लेकिन मेवों को देखना और यह उड़ता ख़याल कि मुझे उन्हें खाना है, खाने के कर्म को सम्पन्न करते जान पड़ते हैं" (जेम्स)। पढ़ते वक्त एक मक्खी मेरे गाल पर बैठती है और मैं अपने-आपको अपना हाथ हिलाते और उसे हटाते पाता हूँ। कभी-कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़ने वाला व्यक्ति नीचे खड्ड में गिरने के विचार से इतना भयभीत हो जाता है कि वह तुरन्त कूद पड़ता है। ये सब विचारप्रेरित कर्म हैं।

इरादे के बिना अनायास होने वाला अनुकरण भी विचारप्रेरित कर्म है। आप बच्चे पर हँसते हैं और वह आप पर हँसता है। बच्चा दूसरे बच्चे को रोते हुये देखकर स्वयं भी रोने लगता है। भीड़ का कार्य बहुत प्रायः विचारप्रेरित कार्य होता है। भीड़ में लोग दूसरों का अनुकरण करते हुये ताली बजाते और हँसते हैं। वे यह नहीं जानते कि वे ऐसा क्यों कर रहे हैं। दूसरों के कार्य उनके मन में इस स्पष्टता के साथ विचार पैदा करते हैं कि वे उन कार्यों को करने के अलावा और कुछ कर नहीं सकते।

असाधारण हालतों में भी हम विचारप्रेरित कर्म पाते हैं। चौर्योन्माद (Kleptomania) में उससे ग्रस्त व्यक्ति के मन में किसी चीज को चुराने का विचार सूझता है और उसके तुरन्त बाद चुराने का कार्य संपन्न हो जाता है। वह व्यक्ति कार्य के विचार को नहीं रोक सकता।

७. मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म (Instinctive Action)

मूलप्रवृत्ति की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है: मूलप्रवृत्ति किसी समग्र परिस्थिति की प्रतिक्रिया में किसी ऐसे जटिल कर्म को करने की जन्मजात प्रवृत्ति है जो आत्म-रक्षण या जाति-रक्षण के जैविक लक्ष्य (Biological end) से समायोजित होता है, जो शायद संवेगात्मक आवेग के एक अंश से प्रोत्साहन पाता है लेकिन जिसमें अन्तिम लक्ष्य का स्पष्ट विचार नहीं होता। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म एक विशुद्ध जैविक कर्म नहीं होता। यह मानसिक कर्म होता है।

वह केवल स्नायु-सम्बन्धों की वंशक्रमप्राप्त व्यवस्था नहीं होता, बल्कि अपने तीनों पहलुओं से युक्त एक मानसिक प्रक्रिया है। मैकडूगल इसकी परिभाषा देते हुए कहता है कि यह "एक वंशक्रमानुगत या जन्मजात मनोभौतिक प्रवृत्ति है जो यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति किसी एक जाति की वस्तुओं का प्रत्यक्ष करेगा, और उन पर ध्यान देगा, किसी ऐसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के अनन्तर एक विशेष प्रकार के संवेगात्मक आवेश का अनुभव करेगा, तथा उसके सम्बन्ध में एक विशेष विधि से कर्म करेगा, अथवा कम से कम ऐसा कर्म करने के आवेग (Impulse) का अनुभव करेगा।" उसके अनुसार मूलप्रवृत्ति एक पूर्ण मानसिक प्रक्रिया है—ज्ञानात्मक भी, वेदनात्मक भी और चेष्टात्मक भी। मकड़ियाँ अपना जाल, चिड़ियाँ अपना घोंसला, और मधुमक्खियाँ अपना छत्ता मूलप्रवृत्ति से प्रेरित होकर बनाती हैं। मुर्गी का बच्चा अंडे से निकलता है। जैसे ही वह बाहर आता है वह इधर-उधर घूमना शुरू कर देता है, घास के कणों को चुगने लगता है, और शीघ्र ही मुर्गी की सहायता या प्रशिक्षण (Training) के बिना अपनी हिफ़ाज़त करने में समर्थ हो जाता है। एक विशेष जाति की मादा बर्र एक विशेष प्रकार का घोंसला बनाती है और उसमें अंडे छोड़ती है। इसके बच्चों के अंडों से बाहर निकलने के पूर्व ही वह मर जाती है। फिर भी यह विशेष प्रकार का घोंसला पुश्त-दर-पुश्त चला आता है। ये सभी जटिल कार्य न तो व्यक्तियों के द्वारा सीखे जाते हैं, न पूर्वजों से नकल किए हुये होते हैं। ये जन्मजात या मूलप्रवृत्त्यात्मक होते हैं।

मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म व्यवहार के जन्मजात ढंग हैं। व्यक्ति उनका अर्जन नहीं करता। ये सीखे हुये कर्म नहीं हैं। ये न ऐच्छिक कर्म हैं, न दूसरों के व्यवहार के अनायास अनुकरण, और न आदत से उत्पन्न कर्म। ये व्यक्ति के अनुभव पर आश्रित नहीं हैं, बल्कि केवल उसके सहज गठन (Innate constitution) या स्नायु-तंत्र के पूर्वनिर्धारित पथों पर आश्रित हैं।

मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्मों में एक विशेष जाति की वस्तुओं पर ध्यान देने और उनका प्रत्यक्ष करने की वंशानुक्रमप्राप्त प्रवृत्ति सन्निहित रहती है। चिड़िया डे

अपना घोंसला बनाने के लिए सूखी पत्तियां, घास, पंख, तिनके इत्यादि को देखने की वंशानुक्रमप्राप्त प्रवृत्ति रहती है। बिल्ली की अपनी भोजन ढूंढने की मूलप्रवृत्ति की तृप्ति के लिए चूहों का पीछा करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है।

मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों में संवेगात्मक आवेश का अंश होता है। खतरनाक वस्तु को देखकर भागने की मूलप्रवृत्ति का वेदनात्मक पहलू भय का संवेग होता है। युद्ध की मूलप्रवृत्ति में क्रोध के संवेग का अंश होता है। मैकडूगल मूल-प्रवृत्ति के इस पहलू को महत्त्व देता है।

मूलप्रवृत्यात्मक कर्म जटिल क्रम-शृंखलायें हैं। उनमें साधनों और साध्यों के रूप में परस्पर समायोजित कार्यों की जटिल शृंखलायें होती हैं। प्रतिक्षेप एक सरल प्रतिक्रिया होता है। किन्तु मूलप्रवृत्ति एक जटिल प्रतिक्रिया होती है। प्रतिक्षेप एक सरल उत्तेजना के प्रति शरीर के एक भाग की स्थानीय प्रति-क्रिया (Local response) होता है। लेकिन मूलप्रवृत्ति जटिल उत्ते-जनाओं या समग्र परिस्थिति के प्रति सम्पूर्ण शरीर या उसके एक बड़े भाग की प्रतिक्रिया होती है। देश-देशान्तर में घूमने वाले पक्षी मूलप्रवृत्ति से प्रेरित होकर ठंडे देश से गर्म देश को जाते हैं। उनका मूलप्रवृत्यात्मक कर्म एक समग्र परिस्थिति के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया है। पक्षी का मैथुन करना, घोंसला बनाना, अंडे देना, उनको सेना, भोजन ढूंढना, बच्चों की रक्षा करना, इत्यादि समग्र परिस्थिति के प्रति समग्र शरीर की प्रतिक्रियायें हैं।

मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों में दीर्घ काल तक चलने वाली क्रियायें होती हैं। प्रतिक्षेप कर्म (यथा, पुतली का प्रतिक्षेप) एक तात्कालिक प्रतिक्रिया है। यह एक अकेली, क्षणिक प्रतिक्रिया है। लेकिन मूलप्रवृत्यात्मक कर्म दीर्घ काल तक चल सकता है। पक्षी सामग्री का संग्रह करता है, चुने हुए स्थान तक उसे ले जाता है, एकत्रित करता है, और कई दिनों तक अपना घोंसला बनाता है। मूलप्रवृत्ति का एक विशिष्ट लक्षण यह है कि इसमें एक जन्मजात क्रिया दीर्घ काल तक जारी रहती है।

/ वुडवर्थ इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि प्रत्येक मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में एक स्थिर प्रवृत्ति (Persistent tendency) होती है जो एक दी हुई

परिस्थिति के द्वारा पैदा की हुई होती है और एक ऐसे परिणाम को प्राप्त करने की दिशा में संचालित होती है जो तत्क्षण प्राप्त नहीं हो सकता। मादा पक्षी में घोंसला बनाने की तन्मयता होती है जो तब तक जीवित रहती है जब तक घोंसला बनकर तय्यार नहीं हो जाता। उसमें अंडों से भरे हुये घोंसले को देखकर अंडे सेने की तन्मयता होती है और जब तक बच्चे अंडों से नहीं निकल जाते तब तक वह समय-समय पर उन्हें सेती रहती है। यह स्थिर रहने वाली प्रवृत्ति मूलप्रवृत्यात्मक कर्म की विभिन्न क्रियाओं को एकता प्रदान करती है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म प्रतिक्षेपों की शृंखला मात्र नहीं हैं।

मूलप्रवृत्यात्मक कर्म एक जैविक लक्ष्य से समायोजित होते हैं। कुछ मूल-प्रवृत्तियां आत्मरक्षण (Self preservation) से समायोजित होती हैं। इस प्रकार की मूलप्रवृत्तियों में से कुछ हैं पलायन, युद्ध और भोजन ढूंढने की प्रवृत्तियां। अन्य मूलप्रवृत्तियां जातिरक्षण (Race preservation) से समायोजित होती हैं। काम, सन्तति-पालन इत्यादि मूलप्रवृत्तियां इस प्रकार की हैं। लेकिन मूलप्रवृत्यात्मक कर्म ज्ञानपूर्वक इन लक्ष्यों से समायोजित नहीं होते। मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों में इन अन्तिम लक्ष्यों का अस्पष्ट या स्पष्ट किसी प्रकार का भी ज्ञान नहीं होता। लेकिन स्टाउट का यह कहना ठीक है कि मूल प्रवृत्यात्मक कर्मों में अन्तिम-लक्ष्यों का ज्ञान तो नहीं होता, फिर भी निकट लक्ष्यों (Proximate ends) का ज्ञान होता है। पक्षी के सामने घोंसला बनाने में अंडे देने का लक्ष्य नहीं होता। तथापि निकटस्थ लक्ष्य की उसे चेतना रहती है। उसे नीड़-निर्माण की सामग्रियों और उनकी व्यवस्था का ज्ञान होता है। वुडवर्थ का भी यही मत है। पक्षी को एक विशेष कर्म को करने या एक विशेष परिणाम को प्राप्त करने का ज्ञान होता है।

स्टाउट कहता है कि प्रतिक्षेप कर्मों के विपरीत मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों का लक्षण है "प्रयत्न के *परिवर्तनों के साथ स्थिरता (Persistency with* varied efforts)।" एक एकाकी बर्रं (Solitary wasp) बहुधा अपने शिकार, मकड़ी या कनखजूरे को अपने छिद्र में ले जाने में असमर्थ होता है, किन्तु यह दबाने मोड़ने इत्यादि विविध तरीकों का प्रयोग करके अन्त में

शिकार को अन्दर ले आने में सफल हो जाता है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म अनुभव से प्रभावित होता है।

८. मूलप्रवृत्यात्मक कर्म और प्रतिक्षेप कर्म (Instinct & Reflex)

दोनों ही अनैच्छिक होते हैं—उनमें संकल्प संलग्न नहीं होता। दोनों ही जन्मजात या वंशक्रमागत होते हैं। ये सीखी हुई प्रतिक्रियायें नहीं होते। ये उनके मध्य समानतायें हैं। तथापि उनमें महत्वपूर्ण पारस्परिक विषमतायें हैं। प्रतिक्षेप सरल, क्षणिक प्रतिक्रिया होता है, जबकि मूलप्रवृत्ति लम्बे समय तक चलने वाली प्रतिक्रियाओं की शृंखला होती है। प्रतिक्षेप अकेली स्थानीय प्रतिक्रिया होता है, जबकि मूलप्रवृत्ति सम्पूर्ण शरीर या उसके एक बड़े भाग की कई प्रतिक्रियाओं की एक जटिल शृंखला होती है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म समग्र शरीर की एक समग्र परिस्थिति में प्रतिक्रियायें होते हैं। प्रतिक्षेप एक अकेली उत्तेजना की प्रतिक्रिया है, जबकि मूलप्रवृत्यात्मक कर्म एक जटिल परिस्थिति के प्रति प्रेरित प्रतिक्रिया है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म आत्मरक्षण या जाति रक्षण के दूरस्थ लक्ष्य से समायोजित होता है। "मूलप्रवृत्ति का प्रतिक्षेप से अन्तर इस बात में है कि वह अधिक जटिल होती है तथा उसमें शरीर के एक सीमित भाग के स्थान पर समग्र शरीर का समायोजन होता है" (मन)। संवेदना-प्रतिक्षेप के पहिले ऐन्द्रिय उत्तेजन से संवेदना उत्पन्न होती है और उसके बाद कर्म का ज्ञान होता है। लेकिन ज्ञानपूर्वक वह लक्ष्य से समायोजित नहीं होता। लक्ष्य का पूर्वज्ञान उसका पथप्रदर्शन नहीं करता। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में अन्तिम लक्ष्य का ज्ञान नहीं होता, लेकिन निकटस्थ लक्ष्यों और किए हुये विशेष कर्मों का ज्ञान होता है। शरीरव्यापारिक प्रतिक्षेप अनिवार्यतः अचेतन होते हैं। कुछ प्रतिक्षेप अचेतन प्रतिक्रियायें होते हैं, लेकिन मूलप्रवृत्यात्मक कर्म चेतन प्रतिक्रियायें हैं। "प्रस्तुत: प्रतिक्षेप तात्कालिक प्रतिक्रिया है। वह उत्तेजना के होने पर तुरन्त हो जाता है और फिर उसका कोई काम नहीं रहता। दूसरी ओर, मूलप्रवृत्यात्मक कर्म की विशेषता यह है कि उसमें एक स्थिर प्रवृत्ति होती है और वह ऐसे फल की प्राप्ति की ओर संचालित होता है जिसकी प्राप्ति तत्काल नहीं हो सकती" (मुडवर्थ)। प्रतिक्षेपों के विपरीत

मूलप्रवृत्तियों का लक्षण परिवर्तनशील प्रयत्न के बीच स्थिरता है (स्टाउट)। "मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्षेपों की तुलना में अधिक परिवर्तनशील-प्रतिक्रियायें परिवर्तनशील अवस्थाओं से अधिक समायोजित-होती हैं।" जैसे कि पहले माना जाता था, उनकी विशेषता दृढ़ समरूपता (Rigid uniformity) नहीं है। भौंरा गोबर की गोली बनाकर ले जाता है और उसके सामने गड्ढा पड़ता है। गड्ढे के पार उसे ले जाने के लिए वह एक ढाल बनाता है। प्रतिक्षेपों के विपरीत, मूलप्रवृत्यात्मक कर्म अनुभव से परिवर्तित होते हैं। यदि उनसे सुखकर परिणाम प्राप्त होते हैं, तो उनको दोहराया जाता है और वे आदत के रूप में पक्के हो जाते हैं। यदि उनसे दुःखकर परिणाम प्राप्त होते हैं, तो उनका निरोध हो जाता है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में "बुद्धिमत्तापूर्ण ज्ञान का सहयोग होता है जिसमें रुचि, ध्यान, परिणामों की सन्तोषप्रदता या असन्तोषप्रदता के अनुसार व्यवहार में परिवर्तन, तथा अनुभव से सीखने की शक्ति का समावेश होता है।" लेकिन प्रतिक्षेप कर्मों में इन मानसिक तत्वों का समावेश नहीं होता।

६. मूलप्रवृत्तियां अनुभव से प्रभावित होती हैं (Instincts are Modified by Experience)

मूलप्रवृत्तियां पूर्णतया अपरिवर्तनीय नहीं होतीं, बल्कि लचीली होती हैं। अनुभव से उनमें परिवर्तन होता है।

अनुभव मूलप्रवृत्तियों पर दो विपरीत दिशाओं में प्रभाव डालता है।

यदि मूलप्रवृत्ति का प्रथम प्रकाशन पीड़ाजनक और हानिकारक होता है, तो वह अल्पकाल के लिए या सदा के लिए निरुद्ध हो सकती है। इस प्रकार, मुर्गी के बच्चे, जिनकी मूलप्रवृत्ति घास के दानों को चुगने की होती है, जब अरुचिकारक घास चखते हैं तो इस प्रवृत्ति का निरोध कर देते हैं।

दूसरी ओर, यदि मूलप्रवृत्ति सफल होती है और सुख देती है तो उसको दोहराया जाता है और वह आदत के रूप में पक्की हो जाती है। स्मृति मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों को परिवर्तित करती है। वे सुखकर या दुःखकर परिणामों

मन: मनोविज्ञान पृ० २१२

के अतीत अनुभवों की स्मृति से परिवर्तित होते हैं। इस तरह मूलप्रवृत्यात्मक कर्म अनुभव से प्रभावित होते हैं (वुँजिल)।

मूलप्रवृत्तियों का क्षेत्र आदत के द्वारा सीमित किया जाता है। जब एक विशेष जाति की वस्तुयें एक विशेष प्रकार की मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रिया को जन्म देती हैं तब प्राणी के अन्दर प्रायः उस जाति के उन पहिले नमूनों के लिए पक्षपात हो जाता है जिन पर वह प्रतिक्रिया कर चुका होता है तथा वह बाद में अन्य नमूनों पर प्रतिक्रिया नहीं करेगा। खरगोश अपने मल को उसी कोने पर रखेगा; पक्षी अपना घोंसला उसी पेड़ पर बनायेगा। जो आदत किसी मूलप्रवृत्ति पर एक बार जम जाती है वह स्वयं मूलप्रवृत्ति के दायरे को सीमित कर देती है तथा प्राणी को अभ्यस्त वस्तु के अतिरिक्त अन्य पर प्रतिक्रिया करने से रोकती है।

मूलप्रवृत्यात्मक कर्म नये परिवेश से भी प्रभावित होते हैं। मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों में परिवेश की नई स्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते हैं। मधुमक्खियाँ इस तरह से अपने छत्ते की बनावट में परिवर्तन कर देती हैं कि नई रुकावटों पर विजय पाई जा सके। यदि घोंसला बनाने के मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में रुकावटें पैदा होती हैं तो पक्षी बुद्धिमानी से काम करके उन्हें दूर कर सकता है और घोंसले को पूरा कर सकता है।

१०. क्या मूलप्रवृत्तियां अन्धी होती हैं (Are Instincts Blind)

पहिले मूलप्रवृत्तियों को अन्धी, नियत और अपरिवर्तनीय माना जाता था। किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्तियों को परिवर्तनीय मानते हैं। मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों की जो विशेषतायें ऊपर बताई गई हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मूलप्रवृत्तियां अन्धी नहीं हैं। हम फिर निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देते हैं :—

मैकडूगल मूलप्रवृत्यात्मक कर्म की परिभाषा देते हुये उसे ज्ञान, संवेग और चेष्टा से युक्त एक मूर्त (Concrete) मानसिक प्रकिया बतलाता है। इसमें एक विशेष वर्ग की वस्तुओं पर ध्यान देने और उनका प्रत्यक्ष करने

स्टाउट : मनोविज्ञान, १९३२, पृ० ३३६

की प्रवृत्ति, एक संवेगात्मक आवेश, तथा एक विशेष रूप में काम करने की प्रवृत्ति का समावेश होता है। यह एक मानसिक क्रिया है, एक दैविक क्रिया मात्र नहीं।

मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म चेतन होता है। इसमें निकटस्थ लक्ष्य का धुंधला ज्ञान और साधनों का पूरा ज्ञान होता है। दूरस्थ लक्ष्य या अन्तिम परिणाम का ज्ञान इसमें नहीं होता। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म में कुछ मात्रा में अग्रदृष्टि होती है।

मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म में एक स्थिर प्रवृत्ति होती है। यह रुचि की अविच्छिन्नता (Continuity of interest) पर निर्भर होती है।

मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्मों में विविध प्रयत्नों के साथ स्थिरता पाई जाती है। इससे मालूम पड़ता है कि मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म में सफलता और असफलता की कुछ चेतना होती है। इसमें आने वाली बातों पर ध्यान, आपेक्षिक सफलता और विफलता का अन्दाज़, तथा सन्तोष असन्तोष होते हैं। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म अंशतः स्थिर या अपरिवर्तनीय तथा अंशतः लचीले या परिवर्तनीय होते हैं। उनमें अनुभव, आदत और नये परिवेश से परिवर्तन होते रहते हैं। अतः मूलप्रवृत्तियां अन्धी और अपरिवर्तनीय नहीं हैं।

११. मूलप्रवृत्तियों के भेद (Instinct and Intelligence)

बुद्धि के दो महत्त्वपूर्ण लक्षण होते हैं। प्रथम, हम अतीत अनुभव से लाभ उठाते हैं। द्वितीय, नई परिस्थिति के प्रति हमारी प्रतिक्रिया नये ढंग की होती है। मूलप्रवृत्तियां अतीत अनुभव से परिवर्तित होती हैं। परिवेश की नवीनतायें उनमें परिवर्तन लाती हैं। इस प्रकार मनुष्यों में मूलप्रवृत्तियां बुद्धि के कारण बहुत कुछ बदल जाती हैं। मनुष्यों में मूलप्रवृत्तियां नहीं पाई जातीं। मनुष्यों की परिवर्तित मूलप्रवृत्तियों की संख्या बहुत बड़ी है। मैकडूगल का मत है कि मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म अंशतः अपरिवर्तनीय और अंशतः लचीले होते हैं। इसका अपेक्षा अंश अनुभव, आदत और बुद्धि के द्वारा परिवर्तित होता है। प्रत्येक मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म बुद्धि से परिवर्तित होता

है। प्रत्येक में समायोजन की आंशिक नवीनता होती है। बुद्धि इसमें आंशिक परिवर्तन लाती है।

१२. मूलप्रवृत्तियों के भेद (Kinds of Instincts)

कुछ मूलप्रवृत्तियाँ पोषण (Nutrition) से सम्बन्धित हैं इनमें शिकार खेलना, संग्रहशीलता, भोजन ढूंढ़ना, खाना इत्यादि व्यक्ति को जीवित बनाये रखने के लिये उपयोगी सभी बगैर सीखी हुई चेष्टाओं का समावेश होता है। कुछ मूलप्रवृत्तियाँ सन्तत्युत्पादन से सम्बन्धित हैं। इनमें प्रेम, मैथुन, सन्तति-पालन इत्यादि जाति के संरक्षण के लिये आवश्यक सभी बगैर सीखे हुये व्यापारों का समावेश होता है। कुछ मूलप्रवृत्तियाँ शत्रु के आक्रमण से बचने से सम्बन्धित हैं। इनमें पलायन, छिपना, लज्जालुता या विनीतता, रचनाप्रियता, रक्षा के लिये घर बनाना इत्यादि का समावेश होता है। कुछ मूलप्रवृत्तियाँ आक्रमण से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें सभी युद्ध और स्वस्थापन की मूलप्रवृत्तियाँ आ जाती हैं। कुछ मूलप्रवृत्तियाँ सामाजिक होती हैं। इनमें समूह में रहने की मूलप्रवृत्ति, सामाजिकता, सहानुभूति, ईर्ष्या, द्वेष, लज्जा, स्पर्धा इत्यादि शामिल हैं। ये केवल अन्य स्वजातीय व्यक्तियों की उपस्थिति में सक्रिय होती हैं।

मैकडुगल की मूलप्रवृत्तियों की सूची का वर्णन उसके संवेगविषयक सिद्धान्त के साथ हो चुका है। वुडवर्थ मूलप्रवृत्यात्मक व्यापारों को 'बगैर सीखे हुये प्रेरक (Unlearned motives), कहता है। ये हैं आंगिक आवश्यकतायें (Organic needs), (यथा, भूख, प्यास, थकान), काम-प्रेरक (Sex motive), पलायन का प्रेरक, क्रुद्धता, अनुसंधान, प्रहसन, सामाजिक प्रेरक, स्वस्थापन और विनीतता। इनका वर्गीकरण सुरक्षा, सुख, घनिष्ठता, स्वामित्व और एककार्यता के बगैर सीखे हुये प्रेरकों में किया जा सकता है।

१३. मूलप्रवृत्तियों का उद्भव (Origin of Instincts)

मनोवैज्ञानिकों के मूलप्रवृत्तियों के उद्भव के विषय में कई मत हैं।

(१) भ्रष्ट बुद्धि का सिद्धान्त (The theory of lapsed intelligence)—वुंडट का मत है कि मूलप्रवृत्यात्मक कर्म जातीय आदतें (Racial habits) हैं। प्रारम्भ में ये बुद्धिमत्तापूर्ण समायोजक कर्म थे। पुनरावृत्ति के कारण कई पुश्तों के बाद वे स्वतःचालित हो गये, बुद्धि का तत्त्व आवश्यक होने के कारण भ्रष्ट या पृथक् हो गया। मूलप्रवृत्तियां मूलतः पूर्वजों की स्थिर आदतें थीं। उत्तरकालीन पीढ़ियों को वे मूलप्रवृत्तियों के रूप में हस्तान्तरित हुई हैं।

प्रथम, यह सिद्धान्त यह मान लेता है कि पशुओं की वर्तमान पीढ़ी के पूर्वज अधिक बुद्धिमान थे। अनुभव इसका समर्थन नहीं करता। द्वितीय, यह मान लेता है कि वंशानुक्रम से अर्जित गुणों का हस्तान्तरण (Transmission) हो सकता है। आधुनिक जीववैज्ञानिक इस मत को नहीं मानते।

(२) मिश्र प्रतिक्षेप का सिद्धान्त (The compound reflex theory)—हर्बर्ट स्पेन्सर का मत है कि मूलप्रवृत्यात्मक कर्म एक मिश्र प्रतिक्षेप या प्रतिक्षेपों की शृंखला है। यह प्रतिक्षेपों का एक वंशक्रमागत संगठन है। कई प्रतिक्षेप अकस्मात् परस्पर संयुक्त हो गये; उनमें से कुछ जटिल-कर्मों में संयुक्त हो गये जो व्यक्ति या जाति के लिये उपयोगी लक्ष्यों से समायोजित थे, उपयोगी कर्म जीवित रहे और आने वाली पीढ़ियों में हस्तान्तरित हो गये। यही मूलप्रवृत्तियां कहलाती हैं। प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) के नियम ने व्यर्थ जटिल कार्यों को हटा दिया।

प्रथम, यह सिद्धान्त आकस्मिकता (Chance) के ऊपर बहुत कुछ छोड़ देता है। जब प्रतिक्षेप-शृंखला का केवल अन्तिम कार्य ही उसे वस्तुतः उपयोगी बनाता है तो कैसे धीरे-धीरे प्रतिक्षेप-शृंखलाओं का निर्माण हुआ, इसका स्पष्टीकरण यह सिद्धान्त नहीं कर सकता। द्वितीय, यह सिद्धान्त मूलप्रवृत्यात्मक कर्म की एकता की व्याख्या नहीं कर सकता। रुचि की अविच्छिन्नता के कारण मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में एक स्थिर रहने वाली प्रवृत्ति होती

है। मूलप्रवृत्ति को कई पृथक् प्रतिक्षेपों का आकस्मिक संयोग नहीं माना जा सकता।

(३) जैविक चुनाव का सिद्धान्त (*The theory of organic selection*)—बाल्डविन का मत है कि जीव ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक कुछ समायोजनकारी कर्मों को चुनकर जीवित रहने में और सन्तानोत्पादन करने में सफल हो सकता है। तथा ये कर्म जीवों में स्थायी रूप से स्थापित हो जाते हैं। "जैविक चुनाव उन विशेष व्यवस्थापक (Accomodatory) कर्मों में लागू होता है जिन्हें एक जीव अपने परिवेश के कारण उत्पन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करता है।"[१]

यह सिद्धान्त पहिले दो सिद्धान्तों के दोषों से मुक्त है। लेकिन फिर भी यह समझना मुश्किल है कि कैसे जीव जीवित रहने और सन्तति उत्पन्न करने के लिये एक प्रकार के कर्म को चुन लेता है और दूसरे को नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर चुनाव व्यक्तिसापेक्ष (Subjective) है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म में भविष्योन्मुख ध्यान (Prospective attention) साधनों का चुनाव, निकटस्थ लक्ष्यों की चेतना, सफलता और विफलता को समझने का समावेश तो होता ही है। अतः जैविक चुनाव का जीवशास्त्रीय सिद्धान्त मूलप्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकता जो मूर्त मानसिक कर्म हैं।

१४. खेल (Play)

शुरू में लीलापूर्ण (Playful) व्यापार मूलप्रवृत्यात्मक होता है। लीला या खेल एक का नहीं बल्कि कई मूलप्रवृत्तियों का प्रकाशन है। खेलने की सामान्य प्रवृत्ति पेशियों में संचित शक्ति को उन्मुक्त करने की सामान्य प्रवृत्ति का परिणाम है। छोटे बच्चों में यह व्यवहारतः ऐच्छिक पेशियों को परिश्रम करने के आवेग से अभिन्न है। यह ऐच्छिक पेशियों की स्वतंत्र; सुखद और अनायास क्रिया है। बड़ा खेल में गम्भीरता के साथ रुचि होता है। खेल में कल्पना, अनुकरण और "नाटक" निहित होते हैं। यथा, गीली रेत, मिट्टी,

१ मेकिन्ज : मनोविज्ञान, पृ० ३५३-५४

या लकड़ी के टुकड़ों से मकान बनाता है। यहां वह खेल में अपनी निर्माण-प्रवृत्ति को प्रकाशित करता है। पेंजिल इस बात की ओर संकेत करता है कि खेल, अनुकरण और निर्माणप्रियता प्रायः अविच्छेद्य रूपों में परस्पर गुंथे हुये होते हैं। खेल में जान-बूझकर "नाटक रचना" छोटे बच्चों के प्रारम्भिक खेलों में मुश्किल से ही पाया जाता है। यह बाद की आयु के खेलों में पाया जाता है। अनुकरण और निर्माणप्रियता कई खेलों में एक साथ पाये जाते हैं। लड़का पढ़ाने, लड़ने, शिकार खेलने इत्यादि के खेल करता है। लड़की खाना बनाने, खाना खिलाने, गुड़िया को सिलाने इत्यादि के खेल करती है। इनमें अनुकरण, निर्माण और "नाटक" का समावेश होता है। स्वस्थापन, विनम्रता, युद्ध, पलायन, अनुसन्धान, अहस्तन, हास्य, सामाजिकता इत्यादि की मूलप्रवृत्तियों को कई प्रकार के खेलों में तृप्ति मिलती है। "गुड़िया से खेलना अंशतः माता का अनुकरण है, अंशतः मातृक प्रवृत्ति का जल्दी प्रस्फुटित होना है; शिकार और युद्ध के खेल, निर्माण के खेल, प्रतिद्वन्द्विता और प्रतिस्पर्धा के सभी रूप नाटकीय अवस्थाओं में विभिन्न मूलप्रवृत्तियों के प्रकाशन मात्र हैं।"[1]

१५. खेल के सिद्धान्त (Theories of Play)

खेल के दो सिद्धान्त हैं।

(१) अतिरिक्त शारीरिक शक्ति का सिद्धान्त (Theory of surplus organic energy)—हर्बर्ट स्पेन्सर का विचार है कि खेल अतिरिक्त शक्ति का उन्मोचन (Discharge) है। कुल शारीरिक शक्ति तो जीवन के आवश्यक कार्यों में व्यय हो जाती है। अतिरिक्त शक्ति खेल में व्यय होती है।

(२) उपयोगी कार्यों को करने की तय्यारी का सिद्धान्त (Theory of rehearsal of useful acts)—ग्रूस (Groos) का मत है कि खेल उन कार्यों का पहिले से अभ्यास करके तय्यारी करना है जो प्रौढ़ जीवन में उपयोगी होंगे, लेकिन इसमें इस उद्देश्य का ज्ञान नहीं होता। खेल बच्चों को करने

[1] विलसवरी: मनोविज्ञान के आधार, पृ० १२७

भावी व्यवसायों के लिये तय्यार होने के लिये अनुशासन का मौक़ा देता है। यह उसकी जैविक सार्थकता है।

ये दो सिद्धान्त परस्पर विरोधी नहीं हैं। खेल अतिरिक्त शारीरिक शक्ति का प्रकाशन भी हो सकता है तथा प्रौढ़ जीवन के उपयोगी कार्यों की तय्यारी भी। लड़का घुड़सवारी करता है, शिकार खेलता है, सिपाही का स्वांग रचता है, इत्यादि। लड़की अपनी गुड़िया को अपने शिशु की तरह प्यार करती है, उसे खिलाती है, जब वह रोगी होती है तो उसकी सुश्रूषा करती है, खाना पकाती है तथा घर की सँभाल का खेल खेलती है।

१६. आवेग और गति (Impulse and Movement)

आवेग कार्य करने की चेतन प्रवृत्ति है। यह काम करने के लिए तत्पर रहने की दशा का अनुभव है। जब हम भूखे होते हैं तब हमें भोजन ढूंढने और खाने के आवेग की अनुभूति होती है। जब हम थके होते हैं तब हमें आराम करने के आवेग की अनुभूति होती है। जब हमें छींक आने वाली होती है तब हमें छींकने के आवेग की, और जब हम शोकग्रस्त होते हैं तब रोने के आवेग की अनुभूति होती है। आवेग गति करने की प्रवृत्ति का ज्ञान है। आवेग में केवल हमें गति करने की प्रवृत्ति की ही चेतना नहीं होती, बल्कि कभी-कभी हमारी प्रतिक्रिया का क्या परिणाम होगा, इसका भी पूर्वज्ञान होता है। यदि विपरीत आवेग का विचार बाधा न दे तो आवेग आवेगात्मक गति को जन्म देता है। आवेग में कर्म एक अचेतन चेष्टात्मक प्रवृत्ति का अनुगमन करता है। क्षुधा (Appetite) मूलप्रवृत्तियां और संवेग कर्म के आवेग पैदा करते हैं।

१७. प्रेरणा (Motivation)

कर्मों के प्रेरकों को तीन शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है:

(१) शारीरिक आवश्यकतायें, मूलप्रवृत्तियां और प्रतिक्षेप; (२) सामाजिक प्रेरक (Social motives) और (३) वैयक्तिक प्रेरक (Personal motives)।

भूख, प्यास, काम (Sex) इत्यादि जो जीव को विशेष प्रतिक्रियायें करने के लिए प्रेरित करते हैं शारीरिक आवश्यकतायें कहलाते हैं। उनके कारण शरीर के अन्दर होने वाले कुछ परिवर्तन हैं। भूख अन्न के राहित्य से जाग्रत होती है। यह भोजन ढूंढने और खाने के कर्म को प्रेरित करती है। भोजन के विशेष प्रकारों के लिए रुचियों का विशुद्ध शारीरिक आधार होता है, भूख नियतकालिक (Periodical) होती है। प्यास पानी के राहित्य से जाग्रत होती है। जब शरीर की ऊतियों (Tissues) में पानी की हीनता हो जाती है तो मुख और गला शुष्क हो जाते हैं। प्यास पानी ढूंढने और पीने के लिए प्रेरित करती है। काम-प्रेरक की उत्पत्ति जननांगों और अण्डाशय (Ovary) में ऊतियों में कुछ परिवर्तन होने से होती है। यह मैथुन-क्रिया को प्रेरित करता है। काम-व्यापार प्रजन-ग्रन्थियों से निकलने वाले न्यासर्गों से अत्यधिक प्रभावित होता है। इस पर पोष ग्रन्थि और उपवृक्क ग्रन्थि के न्यासर्गों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रजन-ग्रन्थियों, अग्र-पोष या उपवृक्क ग्रन्थि को निकाल देने से काम-व्यवहार में क्षीणता आ जाती है, गल ग्रन्थि को निकाल देने से भी इस व्यवहार में कमी आ जाती है। मनुष्यों के काम-व्यवहार में रुचियां और आदतें महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। पुरुषों और स्त्रियों में दमन (Repression) काम का शक्तिशाली नियामक (Regulator) है। काम विकृतियां पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों में अधिक पाई जाती हैं; प्रतिषेप तथा मूलप्रवृत्तियां भी शारीरिक प्रेरक हैं। बहुत से लोग मूलप्रवृत्तियों को प्रतिषेपों की बगैर सीखी हुई जटिल शृंखलायें मानते हैं। "मनुष्य मूलतः आदतों का प्राणी है" (मन)। निम्न श्रेणी के पशु अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कुछ बंधे हुए तरीकों से करते हैं। लेकिन मनुष्यों के उनकी पूर्ति के तरीके विविध होते हैं। वे अपने सारे बाल्यकाल में बहुत बड़ी संख्या में आदतें बनाते हैं।

सामाजिकता, संग्रहशीलता, स्वरक्षण, युयुत्सा, इत्यादि सामाजिक प्रेरक हैं। सभी समूह में रहने वाले प्राणी अपने समूहों से अलग कर दिए जाने पर वापस समूह में मिलने के तीव्र प्रेरक का अनुभव करते हैं। मनुष्य

एक सामाजिक प्राणी है। बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति उसकी असहायावस्था में दूसरों के द्वारा होती है। मन (Munn) मनुष्य की सामाजिकता को सीखी हुई मानता है। संग्रहशीलता उस वस्तु का अर्जन करने की प्रवृत्ति है जो हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की परम्परा का मूल है। मन (Munn) इसे भी सीखी हुई मानता है। स्वस्थापन का प्रकाशन शासन, नेतृत्व, आत्मप्रदर्शन और पराक्रमी होने की इच्छा में होता है। मैकडूगल स्वस्थापन और विनीतता दोनों को जन्मजात प्रवृत्तियां मानता है। एडलर का विचार है कि सब मनुष्यों में "शक्तिमान बनने की इच्छा" होती है, जो काम-प्रेरक से भी अधिक बलवती होती है। विफल स्वस्थापन-प्रवृत्ति से हीनता की भावना-ग्रन्थि (Inferiority complex) उत्पन्न होती है। स्वस्थापन-प्रवृत्ति के सफल होने पर उच्चता की भावना-ग्रन्थि (Superiority complex) पैदा होती है। मन (Munn) स्वस्थापन को भी सीखा हुआ मानता है। सामाजिकता, संग्रहशीलता, और स्वस्थापन सार्वभौम (Universal) हैं। अतः इन्हें आम तौर पर जन्मजात प्रवृत्तियां माना जाता है। लेकिन मन का विचार है कि इनके सार्वभौम होने का कारण इनको सीखने के सार्वभौम अवसर हैं। लड़ने की प्रवृत्ति क्रोध से उत्पन्न होती है जिसका कारण भूख, प्यास, काम, इत्यादि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा या विफलता है। इस प्रकार युयुत्सा भी सीखी हुई है। मनुष्य स्वभाव से न तो शान्तिप्रिय है, न युद्धप्रिय। यदि उसकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में अन्य लोग बाधा नहीं डालते तो उसका व्यवहार शान्तिपूर्ण होता है। लेकिन यदि उनकी पूर्ति में दूसरों के द्वारा विघ्न उपस्थित किया जाता है तो उसका व्यवहार आक्रमणात्मक हो जाता है। युयुत्सा उस शिक्षा का फल है जो लड़ना सिखाती है। "संग्रहशीलता, स्वस्थापन और युयुत्सा विशेष रूप से शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा और (२) प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्धित हैं"।[1]

जीवन के लक्ष्य (Life goals), आदर्श, रुचियां, और अभिवृत्तियां

---

[1] मन : मनोविज्ञान, पृ० २२८-२९

(Attitudes) वैयक्तिक प्रेरक हैं। उनका मूल समाज है। वकील, डाक्टर, व्यापारी इत्यादि बनने की इच्छा एक वैयक्तिक प्रेरक है। जो आदतें एक लम्बे अर्से में अर्जित होती हैं वे स्थिर रहती हैं। परिवर्तन का वे प्रतिरोध करती हैं। प्रलोभन (Incentives) प्रेरित व्यवहार के लक्ष्य होते हैं। मनुष्य के लिए धन एक बड़ा प्रलोभन है। रुचियां व्यक्ति को परिवेश की कुछ वस्तुओं के प्रति चुनाव-पूर्वक प्रतिक्रिया करने के लिए प्रेरित करती हैं। कलाकार चित्रों का निरीक्षण करता और उन पर ध्यान देता है। संगीतज्ञ संगीत पर ध्यान देता है। "रुचियां सदैव वस्तुओं के प्रति उन्मुख होती हैं। हम किसी व्यक्ति, पेशे, शौक या पुस्तक में रुचि रखते हैं। इसके अलावा रुचियां प्रायः निष्क्रिय होने के बजाय सक्रिय होती हैं। हम जिन चीज़ों में रुचि रखते हैं उन्हें करने का प्रयत्न करते हैं।"[1] रुचियां सदैव भावात्मक होती हैं। लेकिन अभिवृत्तियां भावात्मक और अभावात्मक दोनों होती हैं। किसी जाति के प्रति हमारी अभिवृत्ति अनुकूल हो सकती है और प्रतिकूल भी। रुचियां विशेष वस्तुओं की ओर उन्मुख होती हैं। लेकिन अभिवृत्तियां दलों, जातियों, राष्ट्रों इत्यादि की ओर उन्मुख होती हैं। अभिवृत्तियां रुचियों की अपेक्षा अधिक निष्क्रिय होती हैं। रुचियां व्यक्ति को काम करने के लिये बाध्य करती हैं। लेकिन अभिवृत्तियां उसे काम करने के लिए बाध्य नहीं भी कर सकतीं। अभिवृत्तियां जो दलों, जातियों, या राष्ट्रों के प्रतिकूल होती हैं पूर्वाग्रह (Prejudices) कहलाती हैं। रुचियां और अभिवृत्तियां व्यक्तियों को परिवेश के प्रति विविध प्रतिक्रियायें करने के लिए प्रेरित करती हैं।[2]

अध्याय १८

ऐच्छिक कर्म (VOLUNTARY ACTIONS)

१. चेष्टा के विकास के स्तर (Levels of Conative Development)

चेष्टा का विकास ज्ञान के विकास के साथ घनिष्ठतया सम्बन्धित है।

[1] मन : मनोविज्ञान, पृ० २१८-२१९
[2] मन : मनोविज्ञान, अध्याय ११, १२, १३ ।

संवेदना के स्तर पर संवेदना-प्रतिक्षेप होते हैं। प्रत्यक्षीकरण के स्तर पर प्रात्यषिक आवेग होते हैं जिनमें मूलप्रवृत्यात्मक कर्म भी शामिल हैं। उनका तुरन्त शारीरिक गतियों में प्रकाशन होता है। इन गतियों का पथ-प्रदर्शन बाह्य वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करता है। प्रात्यक्षिक आवेगों में परिणाम के पूर्वज्ञान की भी कुछ मात्रा हो सकती है। विचार के स्तर पर इच्छायें होती हैं; उनकी उत्पत्ति लक्ष्यों के विचार से होती है। विचार के विकास के साथ इच्छा और ऐच्छिक कर्म के उत्कृष्ट रूपों की उत्पत्ति होती है। ऐच्छिक कर्मों की उत्पत्ति अधिकाधिक सामान्य और अमूर्त लक्ष्यों या आदर्शों के विचार से होती है। इस प्रकार संवेदना-प्रतिक्षेप, प्रात्यक्षिक आवेग, इच्छायें, और ऐच्छिक कर्म चेतनात्मक विकास के विभिन्न स्तर हैं।

२. आवेग और इच्छा (Impulse and Desire)

आवेग गति की चेतन प्रवृत्ति है। हमें इसका ज्ञान रहता है। लेकिन वस्तु के स्पष्ट विचार से इसमें विवेकपूर्णता नहीं आती। हॉफडिंग कहता है कि, "आवेग और इच्छा के मध्य सबसे स्वाभाविक अन्तर यह है कि इच्छा स्पष्ट विचारों से शासित आवेग है।" इस प्रकार, आवेग में अपने लक्ष्य के स्पष्ट विचार से कोई विवेकशीलता नहीं आती, जबकि इच्छा सदैव अपने लक्ष्य के स्पष्ट विचार से शासित होती है।

३. क्षुधा और आवेग (Appetite and Impulse)

क्षुधायें शरीर की नियत समयों पर उठने वाली तृष्णायें (Cravings) हैं जो सामान्यतया सक्रिय होने के लिए बाध्य करती हैं। भूख, प्यास, नींद इत्यादि क्षुधायें हैं। इनके साथ सामान्यतया अशान्ति या बेचैनी पैदा होती है जो इनके तृप्त होने पर दूर हो जाती है। क्षुधायें शारीरिक आवश्यकतायें हैं।

क्षुधाओं से आवेग पैदा होते हैं। ये दोनों चेतन होने पर भी विवेकहीन (Blind) होते हैं। किसी भी लक्ष्य का स्पष्ट विचार उन्हें विवेकपूर्ण नहीं बनाता। जब लक्ष्यों के स्पष्ट विचारों से इनमें सविवेकता आ जाती है तो वे

इच्छाओं में बदल जाते हैं। दोनों में बेचैनी की अनुभूति पाई जाती है जिसका अन्त उनकी तृप्ति होने पर हो जाता है। लेकिन क्षुधायें नियतकालिक होती हैं, जबकि आवेग नहीं। इसके अतिरिक्त क्षुधायें शारीरिक आवश्यकतायें होती हैं, जबकि आवेग क्षुधाओं, मूलप्रवृत्तियों, अनुभूतियों और संवेगों से उत्पन्न होते हैं।

४. आवेग और संकल्प (Impulse and Volition).

आवेग में कर्ता एक अकेली प्रवृत्ति का अनुसरण करता है। लेकिन संकल्पात्मक या ऐच्छिक कर्म में आत्मा कई आवेगों का परस्पर सम्मिलित रूप में विचार करता है, एक का अनुसरण करता है तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्यों का निरोध करता है।

"*ऐच्छिक कर्म को आवेगात्मक कर्म से अलग स्पष्टतया पहिचान लेना चाहिए। दोनों में अन्तर यह है कि आवेगात्मक कर्म अकेली चेष्टात्मक प्रवृत्ति का अनुसरण करता है, जबकि ऐच्छिक निर्णय में विशेष चेष्टाओं और उनके लक्ष्यों का पहिले आत्मा के प्रत्यय (Conception of the self) में समाविष्ट प्रवृत्तियों की समग्र समष्टि के साथ मिलाकर विचार कर लिया जाता है*" (स्टाउट)।

संकल्प या कृतिशक्ति का कार्य कर्म की इन आवेगात्मक प्रवृत्तियों का नियमन और संगठन करना है। संकल्प का कार्य आवेगों का दमन नहीं बल्कि उनका संचालन और शासन है। संकल्प का विकास आवेगों के नियमन की अथवा उनमें व्यवस्था लाने की प्रक्रिया है। संकल्प आवेगों का बिल्कुल उन्मूलन नहीं कर सकता।

५. क्षुधा और इच्छा (Appetite and Desire)

क्षुधायें समय-समय पर पैदा होने वाली शारीरिक आवश्यकतायें हैं जो भूख, प्यास, काम, नींद इत्यादि की तृष्णाओं में प्रकट होती हैं। पशुओं को चेतना होती है लेकिन आत्म-चेतना (Self-consciousness) नहीं। अतः उनकी क्षुधायें अन्धी लेकिन चेतन प्रवृत्तियां होती हैं। वे सुख और दुःख का अनुभव कर सकते हैं। अतः उनकी क्षुधायें विशेष लक्ष्यों की ओर

उन्मुख अन्धी लेकिन चेतन प्रवृत्तियाँ हैं जिनमें दुःख की अनुभूति की प्रधानता होती है। किन्तु उच्च श्रेणी के प्राणियों में वस्तु की धुंधली चेतना होती है। उदाहरण के लिये, शेर को वांछित वस्तु के स्वरूप का कम या अधिक स्पष्ट ज्ञान होता है। लेकिन निम्न श्रेणी के प्राणियों में वस्तु का ज्ञान कुछ अस्पष्ट होता है, जबकि सुख या दुःख की अनुभूति उनकी चेतना में प्रबल होती है। बच्चों में भी क्षुधायें पहिले चेतन लेकिन अन्धी प्रवृत्तियां होती हैं। उनमें वस्तुओं के स्पष्ट विचार नहीं होते। लेकिन धीरे-धीरे अनुभव के दौरान में विशेष वस्तुओं के द्वारा उनकी क्षुधाओं की तृप्ति होने से (यथा, दूध, रोटी इत्यादि से) वे उन वस्तुओं से सम्बद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार उनकी क्षुधायें इच्छाओं में परिवर्तित हो जाती हैं।

क्षुधायें इच्छाओं से भिन्न हैं। क्षुधायें नियत समयों पर होने वाली चेतन शारीरिक तृष्णायें हैं और वस्तुओं या उद्देश्यों के स्पष्ट विचार न होने से वे अन्धी होती हैं। लेकिन इच्छायें चेतन तृष्णायें हैं जो वस्तुओं या उद्देश्यों के स्पष्ट विचारों के कारण विवेकपूर्ण होती हैं। इसके अतिरिक्त, क्षुधायें शारीरिक होती हैं जबकि इच्छायें बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक तृष्णाओं से उत्पन्न होती हैं।

"इच्छा में वस्तु का सुख और दुःख की अनुभूति से मिश्रित ज्ञान मात्र नहीं होता, बल्कि यह पहिचान भी होती है कि वस्तु शुभ (Good) है" (मैकेंज़ी)। आत्म-चेतना, वस्तुओं या लक्ष्यों के स्पष्ट विचारों, तथा इनके आत्मा के लिए शुभ होने की पहिचान के द्वारा क्षुधायें इच्छाओं में बदल जाती हैं। पशुओं और शिशुओं में अन्न की क्षुधा होती है। लेकिन वयस्क मनुष्यों में यह क्षुधा अन्न की इच्छा में बदल जाती है। इसमें अन्न का स्पष्ट विचार तथा उसकी एक लक्ष्य या शुभ के रूप में निश्चित पहिचान होती है। इस प्रकार इच्छायें वयस्क, आत्म-चेतना युक्त मनुष्यों को हो सकती हैं।

६. इच्छा का विश्लेषण (Analysis of Desire)

इच्छा किसी कर्ता या आत्मा की किसी अभाव को दूर करने के लिये किसी वस्तु या लक्ष्य को प्राप्त करने की अभिलाषा है। "इच्छा एक अभाव

की अवस्था है जो आत्मा की वर्तमान दशा और अभी तक अप्राप्त भावी दशा के विचार के मध्य विरोध के कारण उत्पन्न होती है" (स्टाउट)। यह ज्ञान, वेदना, तथा चेष्टा के तत्वों से युक्त एक जटिल मानसिक अवस्था है।

इसके ज्ञानात्मक तत्व निम्नलिखित हैं :—लक्ष्य का विचार अथवा प्रेरक जो अभाव की अनुभूति को दूर करेगा, साधनों का विचार, सुखद, दुःखद या अंशतः सुखद और अंशतः दुःखद, जिनसे लक्ष्य प्राप्ति होगी; यथार्थ और आदर्श के मध्य अन्तर का ज्ञान, अथवा अभाव की वर्तमान दशा की प्राप्ति या तृप्ति की आदर्श दशा से तुलना। अतृप्ति की वर्तमान अवस्था और तृप्ति की आदर्श अवस्था के मध्य विषमता की चेतना जितनी ही अधिक होगी इच्छा उतनी ही अधिक तीव्र होगी। ये इच्छा में ज्ञान के तत्व हैं।

वेदनात्मक तत्व निम्नलिखित हैं : अभाव की पीड़ाजनक अनुभूति जो कर्म का स्रोत है; तृप्ति की पूर्व कल्पना से उत्पन्न होने वाली सुखद अनुभूति। ये इच्छा में वेदना के तत्व हैं। पीड़ा की अनुभूति इच्छा में सुख की अनुभूति से बलवती होती है।

चेष्टात्मक तत्व निम्नलिखित हैं : लक्ष्य की प्राप्ति की लालसा अथवा अभाव की अनुभूति को दूर करने का प्रेरक, लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कर्म का सक्रिय आवेग या प्रवृत्ति। ये इच्छा में चेष्टा के तत्व हैं।

७. ऐच्छिक कर्म का विश्लेषण (Analysis of Voluntary Action)

ऐच्छिक कर्म वे कर्म हैं जो कर्ता के द्वारा कुछ पूर्वज्ञात लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये जान-बूझकर अभिप्रायपूर्वक किये जाते हैं। वे संकल्प या कृतिशक्ति से युक्त आत्मा के द्वारा किये जाने वाले कर्म हैं। ऐच्छिक कर्म की तीन भूमिकायें होती हैं : मानसिक भूमिका, शारीरिक भूमिका, तथा शरीर बाह्य या परिणामों की बाह्य भूमिका।

(१) मानसिक भूमिका (The Mental Stage)

कर्म का स्रोत (The spring of action)—प्रत्येक ऐच्छिक कर्म कर्म के किसी स्रोत से निःसृत होता है। यह वास्तविक या काल्पनिक, अभाव या अपूर्णता की अनुभूति है। यह मूलप्रवृत्ति या आवेग या एक बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक, या धार्मिक अभिलाषा होती है। अभाव की अनुभूति सदैव दुःखद या अप्रिय होती है। लेकिन यह बहुधा एक सुखद अनुभूति के साथ मिश्रित होती है जिसकी उत्पत्ति भविष्य में अभाव की पूर्ति के पूर्व ज्ञान से होती है। इस प्रकार अभाव की दुःखद अनुभूति, काल्पनिक तृप्ति की सुखद अनुभूति से मिली हुई होती है। लेकिन दुःखद अनुभूति सुखद अनुभूति की अपेक्षा बलवती होती है।

इच्छा (Desire)—कर्म का स्रोत या अभाव की अनुभूति, यथा एक क्षुधा, इच्छा में परिवर्तित हो जाती है। आत्म चेतना क्षुधा को इच्छा में बदल देती है। इच्छा क्षुधा की तरह अन्धी नहीं होती। आत्मचेतना के कारण यह विवेक युक्त हो जाती है। इच्छा क्षुधा या अभाव की अनुभूति को उसकी उचित वस्तु की उपलब्धि के द्वारा तृप्त करने की लालसा है। इच्छा में वस्तु या लक्ष्य का विचार या प्रेरक होता है, जो अभाव की अनुभूति को दूर करेगा। इच्छा में अभाव की अनुभूति को दूर करने वाली वस्तु को शुभ के रूप में पहिचाना जाता है। उसमें लक्ष्य-प्राप्ति के वाञ्छनीय या अवाञ्छनीय साधन का भी विचार होता है। तथा साथ ही वस्तु को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा भी होती है।

सरल कर्म में जिसमें प्रेरकों का संघर्ष नहीं होता, चुनाव तुरन्त हो जाता है और उसके पश्चात् कर्म होता है। लेकिन जटिल कर्म में इच्छा के पश्चात् चुनाव तुरन्त नहीं होता।

प्रेरकों या इच्छाओं का संघर्ष (Conflict of motives or desires)—जटिल कर्म में कभी-कभी आत्मा का साम्मुख्य परस्पर स्पर्धा करने वाले प्रेरकों से होता है। कई आवश्यकतायें पूर्ति चाहती हैं। वे एक साथ मन को कई लक्ष्यों, प्रेरकों, या इच्छा की वस्तुओं का सुझाव देती हैं। इस प्रकार कई इच्छायें आत्मा को विरोधी दिशाओं में खींचती हैं। सभी लक्ष्यों या इच्छा की वस्तुओं की प्राप्ति एक ही समय होना असम्भव होता है, अतः

इच्छाओं की पूर्ति एक साथ नहीं हो सकती। कभी-कभी उनका एक दूसरी से असामंजस्य होता है। यदि एक ही पूर्ति करनी है तो दूसरी को बिल्कुल छोड़ देना पड़ता है। आपको आज आठ बजे शाम दो भिन्न स्थानों पर एक भाषण में और एक भोज में आने का निमंत्रण है। आप दोनों ही उत्सवों में जाने के लिये लालायित हैं। लेकिन दोनों इच्छाओं की पूर्ति आप नहीं कर सकते। आपके मन में इच्छाओं का द्वन्द्व पैदा होता है। इस प्रकार, आपके मन में प्रेरकों या इच्छाओं में प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वन्द्विता, या संघर्ष उत्पन्न होता है।

लेकिन यह उक्ति कुछ भ्रामक है। "प्रेरक आवेग मात्र नहीं हैं। चेतना के सामने वे विभिन्न विधियों से कार्य करने के कारणों के रूप में आते हैं। वे ऐसी स्वतंत्र शक्तियां नहीं हैं जो आपस में युद्ध कर रही हों और आत्मा एक तटस्थ द्रष्टा बन कर उनका युद्ध देख रहा हो। इसके विपरीत, प्रेरक केवल तभी प्रेरक बनते हैं जब उनका उद्भव आत्मा के स्वभाव से होता है" (स्टाउट)। "यह एक ऐसा संग्राम है जो स्वयं मनुष्य के अन्दर चलता है; यह व्यक्ति का स्वयं से संघर्ष है। वही प्रतिद्वन्द्वियों के रूप में होता है और वही युद्धस्थल के रूप में भी" (ड्यूई)। इस अवस्था में आत्मा कर्म को स्थगित कर देता है और विभिन्न प्रेरकों के द्वारा, जो इसकी अपनी ही अवस्थायें हैं और जिनका अस्तित्व उसी पर निर्भर है, विभिन्न दिशाओं में खींचा जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि प्रेरक एक चुनी हुई इच्छा है। अतः हम प्रेरकों का संघर्ष नहीं कह सकते, बल्कि केवल 'इच्छाओं का संघर्ष' कह सकते हैं।

जब प्रेरकों में संघर्ष होता है, तब आत्मा अनिश्चय की अवस्था में होता है। संघर्ष का पहिला परिणाम यही होता है। अनिश्चय (Indecision) अथवा द्विविधा (Hesitancy) की अवस्था हो सकती है। मैं सुबह तड़के चारपाई से उठकर घूमने जाऊं या पड़ा रहूं और घूमने न जाऊं? कर्म के लिए विधानात्मक प्रेरक को निषेधात्मक प्रेरक से अधिक बलवान् होना चाहिये। द्विविधा अकर्म और कर्म के मध्य अनिश्चय की अवस्था है।

दोला (*Vacillation*)—अनिश्चय की एक अधिक जटिल अवस्था है। आत्मा के सामने दो वांछनीय लक्ष्य होते हैं, लेकिन आत्मा यह निश्चय नहीं कर पाता कि उनमें से किसको चुना जाय और किसको छोड़ा जाय। दोला एक अप्रिय अवस्था है। यह मन में तनाव पैदा करती है। इस तनाव से किसी तरह मुक्ति मिलनी चाहिए। जब निश्चय हो जाता है तो तनाव का शमन हो जाता है।

विचारणा (*Deliberation*)—जब इच्छाओं के संघर्ष के कारण अनिश्चय की अवस्था पैदा हो जाती है तो आत्मा कर्म को स्थगित कर देता है तथा विभिन्न प्रेरकों के द्वारा सुझायी हुई विभिन्न कार्यपद्धतियों के गुणावगुणों पर विचार करता है। आत्मा उनको तराजू में तौलता सा है और पक्ष तथा विपक्ष का विचार करता है। मन की यह प्रक्रिया विचारणा कहलाती है।

विचारणा का अर्थ आत्मा से स्वतंत्र प्रेरकों या इच्छाओं के बलाबल की परीक्षा नहीं है। ये आत्मा की अवस्थायें हैं। आत्मा से पृथक् उनका अस्तित्व नहीं हो सकता। "विचारणा किसी भी हालत में रस्सी से कभी इस दिशा में कभी इसकी विपरीत दिशा में खींचे जाने की अवस्था से सादृश्य नहीं रखती और इसके फलस्वरूप जो निश्चय होता है वह एक पृथक् आवेग की दूसरे पर बलाधिक्य से प्राप्त विजय मात्र नहीं है। ऐच्छिक कर्म केवल संघर्षशील प्रवृत्तियों में से एक का अनुसरण नहीं करता, यह हमारी एक की अपेक्षा दूसरी को प्राथमिकता देने का फल होता है। कर्ता के रूप में आत्मा का अवतर अन्तर पैदा करता है। विकल्प 'यह' या 'वह' नहीं है, बल्कि 'इसे करूँ' या 'उसे करूँ' यह है। प्रत्येक कार्यपद्धति और उसके परिणामों का पृथक् रूप में विचार नहीं किया जाता, बल्कि 'मैं' शब्द जिस आदर्श के रूप में निर्मित समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है उसके अंश के रूप में उसका विचार किया जाता है" (स्टाउट)। इस प्रक्रिया को विचारणा कहते हैं। सुरापान का विचार मनुष्य को आकर्षित करता है, लेकिन नशे में होने का विचार उसमें अरुचि पैदा करता है। इसलिए वह सूझी हुई कार्य-पद्धति को त्याग देता है। इस प्रकार, विचारणा आत्मा की विभिन्न इच्छाओं के द्वारा सुझाई

गई विभिन्न कार्यप्रणालियों के गुणावगुणों का उनमें से एक को चुनने और अन्यों को अस्वीकृत करने के उद्देश्य से विचार करने की प्रक्रिया है।

विचारणा में एक विकल्प (Alternative) का मन में चित्र खींचा जाता है और दूसरे के साथ उसे तौला जाता है। लेकिन यह प्राय: अव्यवहार्य होता है। आत्मा प्रत्येक कार्य प्रणाली के परिणामों का स्पष्ट चित्र नहीं खींच सकता। बहुधा विचारणा आंशिक होती है। दोनों विकल्प बारी-बारी से आत्मा को रुचते हैं। अन्त में उनमें से एक इतना अधिक रुचता है कि उसका चुनाव हो जाता है और अन्यों का त्याग।

जब दो विकल्पों में गत्यावरोध (Deadlock) हो जाता है और आत्मा किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाता, तो उसे विचार को कुछ काल के लिये स्थगित कर देना चाहिये और उसे भूल जाना चाहिये। जब यह मामले को फिर हाथ में लेता है तो उसे मालूम पड़ता है कि एक विकल्प अपनी क्षणिक रोचकता को खो बैठा है और दूसरा अधिक बलवान् हो चुका है। थोड़ी देर के लिए मामला छोड़ देना निश्चय को सेने (Incubation) की अवस्था है।

कभी-कभी निश्चय याहच्छिक (Arbitrary) होता है। कभी-कभी गत्यवरोध इतना अप्रिय और थकाने वाला होता है कि आत्मा उसका अन्त किसी याहच्छिक कर्म से यथा, सिक्का उछाल कर करता है।

निश्चय या चुनाव (Decision or choice)—विचारणा के बाद आत्मा एक विशेष प्रेरक को चुन लेता है और उसके साथ अपना तादात्म्य कर लेता है। वह एक विशेष कार्य-प्रणाली को चुनकर अन्यों को अस्वीकृत कर देता है। अन्यों को छोड़कर एक के वरण का कार्य चुनाव या निश्चय कहलाता है। इस अवस्था में आत्मा चुने हुये साधनों से एक निश्चित लक्ष्य या प्रेरक की सिद्धि के लिए एक निश्चित कर्म को क्रियान्वित करने का निश्चय करता है। जब विचारणा की प्रक्रिया होती रहती है उस समय प्रेरक निश्चय करने के प्रेरक होते हैं; जब निश्चय हो चुकता है तब विचारणा के पश्चात् आत्मा के द्वारा चुना हुआ प्रेरक कर्म का प्रेरक बन जाता है। विचारणा की प्रक्रिया के दौरान

में संघर्षशील प्रेरक कर्म के सम्भावित प्रेरक समझे जाते हैं; अब निश्चय बन जाता है एवं चुना हुआ प्रेरक कर्म का वास्तविक प्रेरक बन जाता है।

निश्चय का अर्थ आत्मा से पृथक् प्रबलतम प्रेरक की निर्बल प्रेरकों पर विजय नहीं है। आत्मा के द्वारा चुना हुआ प्रेरक कर्म का वास्तविक प्रेरक बन जाता है। चुना हुआ प्रेरक सबसे अधिक शक्तिशाली बन जाता है। अस्वीकृत प्रेरक चेतना के क्षेत्र से बाहर फेंक दिये जाते हैं और वे अधोचेतन स्तर में चले जाते हैं। वे किसी अन्य समय किसी रूप में पुनः चेतना में उदित हो सकते हैं।

"अनिश्चय और निश्चय की अवस्थाओं में सबसे स्पष्ट अन्तर यह है कि पहिले में हम यह नहीं जानते कि हम क्या करने जा रहे हैं और दूसरे में हम यह जानते हैं। विचारणा करते हुये हम इरादा बनाते होते हैं लेकिन हम नहीं जानते कि इरादा क्या होने वाला है। जब हम निश्चय कर चुके होते हैं, तब हम अपने इरादे को जान लेते हैं" (स्टाउट)। इस प्रकार निश्चय की अवस्था में एक विशेष लक्ष्य या प्रेरक चुन लिया जाता है और साथ ही एक विशेष साधन या कार्य-विधि भी।

निश्चय सदैव प्रबल प्रेरक का अनुसरण नहीं करता। यहाँ तक कि एक निर्बल प्रेरक भी अपने समर्थकों (Allies) को लाकर निश्चय को अपने पक्ष में कर सकता है। शहीद एक उच्च ध्येय के लिए, उदाहरणार्थ, अपने देश की आज़ादी के लिए प्रसन्नतापूर्वक मृत्यु का आलिंगन करता हुआ प्राण रक्षा की प्रबल सहज प्रवृत्ति को अस्वीकृत कर देता है तथा अपने देश को आज़ाद करने के निर्बल आदर्श के प्रेरक को चुन लेता है। देश की स्वतंत्रता के प्रेरक को आत्मसम्मान, देशप्रेम की भावना, समूह के प्रति वफ़ादारी, और अपने देशवासियों के सुख से शक्ति मिलती है। इस प्रकार आदर्श प्रेरक को समर्थकों के एक दल से बल प्राप्त होता है।

अस्वीकृत प्रेरक नितान्त प्रभावहीन नहीं हो जाते। कुछ शिथिल और धीरे-धीरे विस्मृत हो सकते हैं। कुछ यह आश्वासन प्राप्त करके शान्त हो सकते हैं कि उन्हें भविष्य में तृप्त कर दिया जायगा। कुछ चेतनास्तर से सर्वथा:

तृप्त किये जा सकते हैं। एक व्यक्ति उस शत्रु से बाहरी नम्रता का व्यवहार कर सकता है जिसे वह जीत नहीं पाया था। उसका नम्रतापूर्ण व्यवहार वेषान्तर में घृणा की तृप्ति है। कुछ अस्वीकृत प्रेरक दूसरे रूप में तृप्ति पा सकते हैं। एक लड़का जो अपनी विद्वत्ता पर अभिमान करता था, फिर भी परीक्षा में असफल रहा, अपनी विद्वत्ता का अभिमान छोड़ देता है लेकिन अपनी खेल की योग्यताओं पर अभिमान करता ही रहता है। कुछ अस्वीकृत प्रेरक 'अंगूर खट्टे हैं' की विधि से शान्त किये जा सकते हैं। चुनाव में हारा हुआ व्यक्ति स्वयं को यह आश्वासन दे सकता है कि चुनाव बुरा है और उसने गम्भीरतापूर्वक उसे नहीं लिया था। कुछ अस्वीकृत प्रेरकों का दमन किया जा सकता है और वे स्वप्नों और जाग्रत जीवन की गड़बड़ियों में प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार अस्वीकृत प्रेरक मन से पूर्णतया तिरोहित होकर बिल्कुल निष्क्रिय नहीं हो जाते। कभी-कभी अस्वीकृत प्रेरकों को स्वीकार्य प्रेरकों के साथ सम्बद्ध करके पर्याप्त रूप से तृप्त किया जा सकता है। एक युवती जो अपने प्रेमी से ब्याह नहीं कर सकती और दूसरे पुरुष से ब्याह कर लेती है, अपने प्रेमी को मित्र और हित-चिन्तक के रूप में समझना जारी रख सकती है।"[1]

संकल्प (Resolution)—कभी-कभी निश्चय तुरन्त कार्यान्वित हो जाता है। ऐसी हालत में संकल्प के लिए कोई अवसर नहीं मिलता। लेकिन कभी-कभी कर्म स्थगित कर दिया जाता है और फलतः संकल्प का अवसर मिलता है। संकल्प का अर्थ है पहले किये हुए निश्चय पर डटे रहने की शक्ति। दोलायमान मन वाला व्यक्ति विचारणा के बाद किये हुये निश्चय को त्याग सकता है, यदि निश्चय और कर्म के मध्य पर्याप्त समय है। अतः संकल्प कुछ मामलों में निश्चय को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक है।

(२) शारीरिक भूमिका (The Bodily Stage)

जब चुनाव या निश्चय हो जाता है और संकल्प के द्वारा कायम रहता है तो वह शारीरिक क्रिया में बदल जाता है। संकल्प और शारीरिक क्रिया में क्या सम्बन्ध है? संकल्प में उस शारीरिक गति का स्पष्ट विचार रहता है

---

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, १९४४, पृ० ३९२-९४

जो संकल्प को क्रियान्वित करेगी। शारीरिक गति का यह स्पष्ट विचार जो चेतना के क्षेत्र पर हावी रहता है स्वयमेव पैशिक गति को पैदा करता है। गति का विचार स्वयं आवेगात्मक होता है और जब आत्मा उसका वरण कर चुकता है और उस पर ध्यान देता है तो वह चेतना में प्राधान्य प्राप्त करता है तथा अधिक शक्ति और आवेगात्मकता प्राप्त करता है जिससे वह आसानी से कर्म में बदल जाता है। पैशिक क्रिया का कारण गति के चुने हुये विचार की आवेगात्मक प्रकृति है। यह व्याख्या विलियम जेम्स की है।

(३) परिणामों की बाह्य भूमिका (The External Stage of Consequences)

शारीरिक क्रिया बाह्य जगत् में परिवर्तन पैदा करती है। ये परिणाम कहलाते हैं। परिणामों में चुने हुये लक्ष्य या प्रेरक की सिद्धि, वांछित, अवांछित या अंशतः दोनों, चुने हुये साधनों की सिद्धि, कुछ अप्रत्याशित या आकस्मिक परिणाम शामिल हैं।

८. ऐच्छिक या सहेतुक कर्म की विशेषतायें (Characteristics of Voluntary or Purposive Action)

मुडवर्थ के अनुसार सहेतुक व्यापार की निम्नलिखित विशेषतायें हैं :—

(१) *समायोजन की यथार्थता (Precision of adjustment)*—चैतन्य प्रयोजन बहुत यथार्थ होता है। समायोजन कर्म पहिले से स्पष्टया ज्ञात यथार्थ साधनों की ओर संचालित होता है। समायोजन कर्म में पूर्वज्ञात लक्ष्य सिद्ध किये जाते हैं।

(२) *समायोजन की नवीनता (Novelty of adjustment)*—स्वयंचालित कर्म यांत्रिक होता है। लेकिन सहेतुक या ऐच्छिक कर्म में समायोजन की नवीनता होती है। बार-बार दोहराया हुआ कर्म स्थिर हो जाता है। लेकिन सहेतुक कर्म नवीन व्यवहार होता है, पहिले से संगठित व्यवहार नहीं होता।

(३) *समायोजन की तीव्रता (Intensity of adjustment)*—यदि सहेतुक कर्म सुचारु रूप से चलता है तो तीव्र समायोजन की आवश्यकता

नहीं होती। लेकिन यदि वह पथ भ्रष्ट हो जाता है और अवांछित परिणाम देता है तो व्यक्ति अपनी शक्तियों को जाग्रत करता है और उस चीज़ को करने का संकल्प करता है। इस प्रकार वह पूर्व दृष्ट लक्ष्य से अपने समायोजन को तीव्र करता है।

(४) *समायोजन का विस्तार (Breadth of adjustment)*—सहेतुक कर्म एक पूर्वदृष्ट यथार्थ लक्ष्य के प्रति संचालित होता है। लेकिन लक्ष्य की सिद्धि विविध साधनों से होती है। एक जटिल कर्म समग्रतया सहेतुक होता है; लेकिन उसके भाग एकान्ततया अहेतुक होते हैं। जब आप अपने हस्ताक्षर करते हैं तो आपका सम्पूर्ण कर्म सहेतुक होता है, लेकिन आप प्रत्येक अक्षर को चेतनापूर्वक नहीं लिखते; आप अपने नाम को लिखने का पूरा इरादा रखते हैं; लेकिन आप एक के बाद दूसरा अक्षर यंत्रवत् लिखते हैं (वुडवर्थ)।

६. संकल्प और शारीरिक क्रिया (Volition and Bodily Action)

साधारणतया संकल्प के पश्चात् तत्सम्बन्धी शारीरिक क्रिया होती है। यह कैसे होता है? विलियम जेम्स ने इसकी सन्तोषजनक व्याख्या दी है। स्टाउट इस व्याख्या को इन शब्दों में रखता है: "उसके मतानुसार संकल्प का गति में परिणत होना विचारों की स्वयं को क्रियान्वित करने की सामान्य प्रवृत्ति का एक विशेष दृष्टान्त है। कर्म का विचार मात्र स्वयं कर्म को जन्म देने की प्रवृत्ति रखता है, और बाधक हेतुओं के अभाव में ऐसा कर ही देता है। संकल्प के पश्चात् साधारणतया गति होती है, क्योंकि एच्छिक निश्चय निश्चित कर्म के विचार को, *वैकल्पिक कर्मों के विचारों के विपरीत,* चेतना में प्राधान्य देता है।" जेम्स की धारणा है कि एक विशेष गति के विचार पर ध्यान देने से गति सम्पन्न हो जाती है। ध्यान कर्म के विचार को इतना प्रबल और आवेगात्मक बना देता है कि कर्म स्वयमेव शुरू हो जाता है। एंजिल कहता है: "ध्यान वह व्यापार है जिसमें मानसिक सम्भावना (Mental possibility गतियों की वास्तविकता((Motor actuality) हो जाती है।"

स्टाउट और अधिक गहरा विश्लेषण करते हुए कहता है कि आत्मा का यह विश्वास कि अन्यों को छोड़कर एक कार्य-विधि को सम्पन्न करना है, कर्म के विचार को इतना प्रबल बना देता है कि कर्म सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार ध्यान और आत्मा का विश्वास अपने चुने हुये कर्म के विचार को चेतना में इतना प्रबल बना देते हैं कि विचार कर्म में परिणत हो जाता है। स्टाउट कहता है, "विचारणा की प्रक्रिया में कर्ता को यह निश्चय नहीं होता कि वह क्या करने जा रहा है। विरोधी कार्य-विधियाँ उसके विचार में सम्भावित विकल्पों के रूप में आती हैं। ऐच्छिक निश्चय के साथ यह विश्वास आता है कि दूसरों को छोड़कर एक को करना है। यही विश्वास कर्म के विचार को वह शक्ति देता है जो उसे संपन्न करती है।"

१०. ध्यान और संकल्प (Attention and Volition)

विलियम जेम्स की धारणा है कि संकल्प को शारीरिक गति में बदलने के लिए ध्यान जिम्मेदार है। जब प्रेरकों में विरोध होता है तब भी विभिन्न कार्य-प्रणालियों के गुण-दोषों के विचार में ध्यान संलग्न रहता है। अन्यों को छोड़कर एक प्रेरक के साथ आत्मा के तादात्म्य अर्थात् निश्चय में भी ध्यान संलग्न रहता है। पहिले किए हुए निश्चय पर डटे रहने में भी ध्यान होता है। अतः ध्यान संकल्प में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

ऐंजिल कहता है : "कोई भी ऐसा विचार हमारी गतियों पर शासन नहीं कर सकता जो हमारे ध्यान को नहीं खींचता और उसमें स्थिर नहीं रहता। वास्तव में संकल्प एक यथार्थ मानसिक व्यापार के रूप में ध्यान का ही एक रूप है। जब प्रतियोगी व्यवहारों को छोड़कर ध्यान एक ही व्यवहार-विधि पर दृढ़तया केन्द्रित रहता है तो हमारा निश्चय पहिले ही बन जाता है। केवल अपने विचारों की सहायता से ही हम अपने व्यवहार की भावी दिशाओं का पूर्वज्ञान करते हैं, और केवल ध्यान की सहायता से ही हम वास्तव में अग्र-विचारों (Anticipatory ideas) में से कुछ को कर्म के रूप में बदलने में सफल होते हैं। ध्यान वह व्यापार है जिसमें मानसिक सम्भावना तादात्मक

वास्तविकता हो जाती है।"[1] ध्यान गति के चुने हुए विचार को वास्तविक गति में बदलता है।

११. इच्छा, उत्कण्ठा, और संकल्प या कृतिशक्ति (Desire, Wish and Will or Volition)

हम पहले ही जान चुके हैं कि इच्छा संकल्प की क्रिया में एक तत्व है। प्रथम, आवश्यकता की अनुभूति होती है; आत्मा उसे इच्छा में बदल देता है; जब विचारणा के पश्चात् आत्मा किसी इच्छा को चुन लेता है, तो चुनाव या संकल्प होता है। इच्छा के बिना संकल्प असम्भव है।

जब "इच्छाओं का संघर्ष" होता है तो आत्मा कर्म को स्थगित कर देता है और प्रतियोगी इच्छाओं के गुण-दोषों पर विचारणा करता है, अन्यों को छोड़कर एक को चुनता है जो इस प्रकार प्रबल और प्रभावशाली हो जाती है। ऐसी प्रबल इच्छा को उत्कण्ठा कहते हैं। प्रभावहीन इच्छा इच्छा है। चुनी हुई और प्रबल इच्छा उत्कंठा है। जब आत्मा इच्छा को सभी विस्तार की बातों के साथ, लक्ष्य के विचार, वांछित, अवांछित, या दोनों तरह के साधन के विचार, और अभिप्रेत या पूर्वदृष्ट परिणामों के विचार के साथ, स्वीकृत कर लेता है तो यह उसका संकल्प बन जाता है। अतः चुनी हुई इच्छा और संकल्प में अन्तर है।

१२. प्रेरक (Motive)

'प्रेरक' का शब्दार्थ है वह जो किसी कर्म के लिए प्रेरित करे। प्रेरक का अर्थ वह हो सकता है जो एक विशेष रूप से कर्म करने के लिए हमें बाध्य करे, या वह जो ऐसा करने के लिये हमें प्रोत्साहित करे" (मैकेंज़ी)।

पहिले अर्थ में प्रेरक कर्म का स्रोत है। "अनुभूति हमें कर्म के लिये बाध्य करती है।" बेंथम (Bentham), मिल और उनके अनुयायी मानते हैं कि अनुभूतियां कर्म के प्रेरक हैं।

---

[1] मनोविज्ञान, पृ० ४०२-४०३

लेकिन यह मत गलत है। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। अन्धी (अविवेकशील) अनुभूतियाँ उसे कर्म के लिए प्रेरित नहीं कर सकतीं। आत्मा के द्वारा, जो उन पर विचार करता है, उन्हें पहिले इच्छाओं में परिणत हो जाना चाहिए। अनुभूतियों को कर्म का निमित्त कारण (Efficient cause) कहा जा सकता है। लक्ष्य के विचार को कर्म का अन्तिम कारण (Final cause) कहा जा सकता है।

दूसरे अर्थ में प्रेरक उस लक्ष्य का विचार है जिसकी सिद्धि अभिप्रेत है। मैकेंज़ी (Mackenzie) का कहना ठीक है कि : "जब मनुष्य कर्म के लिये प्रेरित होता है तो अनुभूति मात्र के अतिरिक्त उसमें प्राप्य लक्ष्य का भी विचार होना चाहिए। प्रेरक, अर्थात् जो हमें कर्म के लिए प्रोत्साहित करता है, वांछित लक्ष्य का विचार है " (मैकेंज़ी)। जिस लक्ष्य को प्राप्त करना है उसके विचार को ही प्रेरक कहना उचित है।

म्यूरहेड (Muirhead) 'प्रेरक' शब्द के अर्थ को अनुचित रूप से संकीर्ण करता है। वह इसे उस लक्ष्य के अर्थ में लेता है जो आत्मा के द्वारा चुन लिया गया है तथा जो उसके चरित्र से सामंजस्य रखता है। यदि "प्रेरक" इस अर्थ में लिया जाता है तो हम "प्रेरकों के विरोध" के बारे में नहीं कह सकते, बल्कि हमें केवल "इच्छाओं का विरोध" कहना चाहिये।

१३. प्रेरक और अभिप्राय (इरादा) (Motive and Intention)

प्रेरक उस लक्ष्य का विचार है जिसे प्राप्त करना है। यह आत्मा को कर्म के लिए प्रेरित करता है। लेकिन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। लक्ष्य सुखकर हो सकता है। लेकिन हो सकता है कि उसकी प्राप्ति दुःखकर उपाय से करनी पड़े। अथवा, यह भी सम्भव है कि उसकी प्राप्ति कराने वाला उपाय अंशतः सुखकर और अंशतः दुःखकर हो। प्रेरक उस लक्ष्य का विचार है जो आत्मा के द्वारा चुन लिया गया है। अभिप्राय आत्मा के द्वारा चुने हुये लक्ष्य और सुखकर या दुःखकर उपाय का विचार है। इस प्रकार अभिप्राय प्रेरक की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है। इसमें

प्रेरक का समावेश हो जाता है। इसमें चुने हुए लक्ष्य का विचार, चुने हुए प्रिय या अप्रिय उपाय का विचार तथा कर्म के पूर्वदृष्ट परिणामों का विचार भी सम्मिलित रहता है। प्रेरक वह है जिसके निमित्त कर्म किया जाता है; अभिप्राय वह है जिसके लिए और जिसके विरुद्ध कर्म किया जाता है (बेन्थम)। अभिप्राय में प्रवर्तक (Persuasive) और निवर्तक (Dissuasive) दोनों शामिल हैं। जो पिता अपने बच्चे को दण्डित करता है उसे बच्चे का हित अभिप्रेत होता है। बच्चे का हित उसका प्रेरक है। लेकिन उसका अभिप्राय बच्चे को पीड़ा पहुंचाना भी होता है। पीड़ा उसके कर्म का प्रेरक नहीं है, यद्यपि यह उसके अभिप्राय का अंश है। जब एक अराजकतावादी (Anarchist) ने ज़ार को मारने के लिए गाड़ी पर बम फेंका था तो निश्चय ही उसका अभिप्राय कुछ अन्य मुसाफिरों को मारने का भी था, लेकिन उनकी मौत उसके प्रेरक का कोई अंश नहीं थी।

१४. अभिप्राय और प्रयोजन (Intention and Purpose)

"अभिप्राय शब्द प्रयोजन शब्द से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। वस्तुतः उन्हें कभी-कभी पर्यायवाची (Synonyms) मान लिया जाता है। लेकिन प्रयोजन मानसिक क्रिया की ओर संकेत करता है, और अभिप्राय उस लक्ष्य (और उपाय) की ओर जिसके प्रति मानसिक क्रिया उन्मुख होती है" (मैकेंज़ी)। अभिप्राय आत्मा के द्वारा चुने हुए लक्ष्य और साधन का विचार है। प्रयोजन उनकी ओर संचालित मानसिक क्रिया है। यह बाहर से किसी क्रिया को संचालित नहीं करता। "प्रयोजन स्वयं क्रिया है, जो प्रारम्भ हो चुकी है लेकिन समाप्त नहीं। यह एक पूर्वदृष्ट लक्ष्य की ओर प्रगतिशील क्रिया है" (वुडवर्थ)।

१५. आत्म-संयम (Self-control)

आत्म-संयम समग्र आत्मा के द्वारा किसी एकाकी मानसिक प्रक्रिया का नियंत्रण है। "आत्म-संयम समग्र आत्मा से निःसृत होने वाला और समग्र आत्मा का नियमन करने वाला नियंत्रण है" (स्टाउट)। जनसाधारण की

भाषा में यह उत्कृष्ट आत्मा (Higher self) का निकृष्ट आत्मा (Lower self) पर, बुद्धि का वासनाओं पर शासन है। लेकिन मनोविज्ञान की दृष्टि से यह अशुद्ध है : आत्मा का एक भाग उसके दूसरे भाग पर शासन नहीं करता। आत्मा एक है। सम्पूर्ण आत्मा अपनी पृथक् प्रवृत्तियों, विचारों, अनुभूतियों, आवेगों इत्यादि पर शासन करता है।

आत्म-संयम के दो पहलू हैं—विधानात्मक और निषेधात्मक। विचारों, संवेगों, आवेगों और इच्छाओं का निरोध इसका निषेधात्मक पहलू है। विचारों, संवेगों, और इच्छाओं की प्रगति या प्रोत्साहन इसका विधानात्मक पहलू है। आत्म-संयम मन के तीनों विभागों, विचार, संवेग और संकल्प में हो सकता है।

(१) विचार-संयम (Control of Thought)—विचार का संयम मुख्यतया ध्यान का उचित नियमन है। ध्यान के संयम से हम सतर्क होकर किसी चीज़ का निरीक्षण कर सकते हैं या उसे सीख सकते हैं, उसे मन में धारण कर सकते हैं और सही-सही उसका प्रत्याह्वान कर सकते हैं, अतीत अनुभव की अन्तर्वस्तुओं को नये नमूनों में सजा सकते हैं, तथा अतीत अनुभव के प्रकाश में किसी समस्या का हल सोच सकते हैं। ध्यान प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना और विचार सभी का नियमन करता है। यह विचार-संयम का विधानात्मक पहलू है।

विचार-संयम का निषेधात्मक पहलू अप्रासंगिक विचारों (Irrelevant ideas) का निरोध है। हम उन्हें सीधे मन से नहीं निकाल सकते, हम ऐसा केवल परोक्ष रूप से ध्यान को प्रासंगिक विचारों पर केन्द्रित करके कर सकते हैं। अभ्यास से धीरे-धीरे हम अप्रासंगिक विचारों के प्रति अनवधान (Inattention) की आदत डाल सकते हैं। हम पहिले ही बता चुके हैं कि हम कैसे ध्यान के विघ्नों पर विजय पा सकते हैं। विचार-संयम ध्यान के संयम पर निर्भर है। ध्यान का संयम अंशतः पेशियों के संयम पर निर्भर है। हम ध्यान पर अंशतः बाधक गतियों का निरोध करके और ध्यान की लाक्षणिक (विशेष) मुद्रा धारण करके नियंत्रण कर सकते हैं। कभी-कभी

हमारी मनोदशा बिल्कुल तटस्थता की होती है और हम मानसिक शून्यता (Mental torpor) पर विजय नहीं पा सकते।

(२) संवेग का संयम (Control of Emotion)—संवेगों की उत्पत्ति उस परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण, स्मृति या कल्पना से होती है जो हमारे हित को प्रभावित करती है। उनमें आन्तरिक अंगों और पेशियों में आंगिक परिवर्तन होते हैं। इसलिये हम अपने ध्यान को विपरीत संवेग पैदा करने वाले विचारों पर डाल कर, तथा विघ्नकारी संवेगों की आंगिक अभिव्यक्तियों को दबा कर अपने संवगों का निरोध कर सकते हैं। "प्रायः अपने दोषों से छुटकारा पाने के लिये उनके बारे में सोचना नहीं, बल्कि उनके विपरीत गुणों पर ध्यान देना अधिक अच्छा होता है" (मैकेंज़ी)। हम प्रेम से घृणा पर विजय पा सकते हैं। यह संवेगों के संयम का निषेधात्मक पहलू है।

हम प्रासंगिक विचारों, प्रतिमाओं पर ध्यान देकर और विशिष्ट शारीरिक मुद्रा अपना कर तथा सम्बन्धित शारीरिक लक्षणों को उत्पन्न करने का प्रयत्न करके संवेगों को उत्तेजित कर सकते हैं। हम शत्रु के द्वारा की हुई अपनी क्षतियों का चिन्तन करके और क्रोध के आंगिक प्रकाशनों को उत्पन्न करके क्रोध के संवेग को पैदा कर सकते हैं। हम विचारों की एक शृंखला का ख़याल किये बिना सीधे संवेगों को पैदा नहीं कर सकते। कभी-कभी हमारे संवेग इतने प्रचंड होते हैं कि उनका संयम नहीं हो सकता।

(३) कर्म का संयम (Control of Action)—हम कर्म का निरोध उसके लक्ष्य या प्रेरक के विचार से हटाकर ध्यान को अन्य विचारों पर डालकर कर सकते हैं। ध्यान कर्म का आत्मा है। ध्यान का नियंत्रण करके कर्म का नियंत्रण किया जा सकता है। कर्म का नियंत्रण हम उस इच्छा का निरोध करके कर सकते हैं जो कर्म का स्रोत है। और इच्छा का निरोध विपरीत इच्छा को जाग्रत करके किया जा सकता है। विपरीत इच्छा को तत्सम्बन्धी विचारों को सोचकर जाग्रत किया जा सकता है। बुरी इच्छाओं को सीधे नष्ट करने की कोशिश करने की अपेक्षा सदिच्छाओं को विकसित

करके हम उन्हें दूर कर सकते हैं। यह कर्म के संयम का निषेधात्मक पहलू है।

किसी कर्म को करने के लिये हम उचित लक्ष्य के विचार, उपाय के विचार, पूर्वदृष्ट परिणामों के विचार और कर्म के लिये उपयुक्त गति के विचार पर ध्यान दे सकते हैं। यदि इच्छाओं में विरोध होता है तो हमें विभिन्न इच्छाओं के गुण-दोषों को तौलना चाहिये, और विशेष चुने हुये प्रेरक या लक्ष्य पर तथा कर्म के लिये उपयुक्त विशेष गति के विचार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। हम कर्म के विचार पर ध्यान दिये बिना सीधे शारीरिक गति को उत्पन्न नहीं कर सकते। गति पर ध्यान देने से संकल्प गति में परिवर्तित हो जाता है।

इस बात की ओर इशारा करना अनावश्यक है कि शरीर-व्यापारिक प्रतिक्षेप संकल्प के शासन से बाहर हैं। संकल्प के अत्यधिक प्रयत्न से संवेदना-प्रतिक्षेपों का अल्पकाल के लिये नियंत्रण किया जा सकता है। अनियमित कर्म कुछ कठिनाई के साथ नियंत्रित किये जा सकते हैं। गहरी जमी हुई आदतों का नियंत्रण अत्यधिक कठिनाई से विपरीत आदतें डालकर किया जा सकता है।

विचार, संवेग और कर्म परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इसलिये विचार-संयम, संवेग-संयम और कर्म-संयम अन्योन्याश्रित हैं।

आत्म-संयम में असफलता इन कारणों से हो सकती है: अपेक्षाकृत पृथक् आवेग को पराभूत करने वाली तीव्रता, आत्मा के प्रत्यय का अपूर्ण विकास, आत्मा की विरोधी प्रवृत्तियों का अपूर्ण समन्वय (Integration), शरीर की रुग्ण अवस्थायें जो आत्मा को अस्तव्यस्त कर डालती हैं।

१६. संकल्प की स्वतन्त्रता (Freedom of the Will)

आत्मा का संकल्प स्वतंत्र होता है। वह जो संकल्प करता है उसके लिये स्वतंत्र है। उसे लक्ष्य और उसकी सिद्धि करने वाले साधन के चुनाव की स्वतंत्रता होती है। वह अन्यों को छोड़कर एक प्रेरक का वरण

करता है। चुने हुए प्रेरक को चुनाव करने वाले आत्मा से शक्ति प्राप्त होती है।

नियतिवादियों (Determinists) का यह मत गलत है कि प्रेरक आत्मा से अलग शक्तियां हैं जो बल में परस्पर प्रतियोगिता करती हैं, और प्रबलतम प्रेरक निर्बल प्रेरकों पर विजय प्राप्त करके अपने को कार्यान्वित करता है। ऐसा कहना गलत है कि प्रेरक का बल संकल्प को निर्धारित करता है और वह चरित्र तथा परिस्थितियों से निर्धारित होता है, तथा स्वयं चरित्र वंशानुक्रम (Heredity) और परिस्थितियों से निर्धारित होता है। प्रेरक आत्मा की एक अवस्था है। वह आत्मा के द्वारा चुने हुये लक्ष्य का विचार है। आत्मा प्रेरक के बल को निर्धारित करता है। चरित्र का निर्माण आत्मा स्वतंत्रतापूर्वक पूर्वजों से वंशानुक्रम में प्राप्त तथा परिवेश से ग्रहीत सहज प्रकृति से करता है। परिस्थितियां चरित्र को पूरी तरह से निर्धारित नहीं कर सकतीं। यद्यपि वे चरित्र पर कुछ प्रभाव अवश्य डालती हैं, फिर भी वे चरित्र से निर्धारित होती हैं। "परिस्थितियाँ मनुष्य के बाहर की चीज़ें नहीं हैं, बल्कि केवल उसके जीवन में प्रवेश करने वाली बाहरी स्थितियां हैं" (मैकेंज़ी)। व्यक्ति उन्हीं परिस्थितियों पर प्रतिक्रिया करता है जो उसके चरित्र से अनुकूलता रखती हैं। इस प्रकार चरित्र और परिस्थितियाँ मानव-जीवन में बराबरी का दर्जा नहीं रखते।

आत्मा स्वतंत्रतापूर्वक अन्यों को छोड़कर एक प्रेरक को चुनता है, क्योंकि उसका उसके चरित्र के साथ सामञ्जस्य होता है जो व्यक्ति के तत्कालीन इच्छा-क्षेत्र (Universe of desire) को बनाता है। इस प्रकार संकल्प आत्मा के द्वारा—उसके शुभ के प्रत्यय (Conception of its good) के द्वारा निर्धारित होता है। संकल्प का निर्धारण आत्मा से अलग प्रेरक नहीं करते। वह आत्मा के अतिरिक्त किसी वस्तु से निर्धारित नहीं होता। संकल्प का निर्धारण अन्दर से आत्मा के द्वारा होता है, किसी बाहरी आवेग से नहीं।

विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान कार्य-कारण के नियम में विश्वास करता है।

कई मनोवैज्ञानिक पूर्ण मानसिक नियतिवाद (Determinism) में विश्वास रखते हैं। वे संकल्प की स्वतंत्रता को नहीं मानते। लेकिन यह ठीक नहीं है। आत्मा के बिना मनोविज्ञान नहीं हो सकता, तथा मनोविज्ञान युक्तिपूर्वक आत्म-नियतिवाद (Self-determinism) के अर्थ में संकल्प-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त को अपना सकता है। यह अनियतिवाद (Indeterminism) या स्वच्छन्दता के सिद्धान्त को नहीं मान सकता, जिसके अनुसार आत्मा किसी युक्ति के बिना वैकल्पिक सम्भावनाओं में से किसी एक को यदृच्छया चुन सकता है। अनियतिवाद कारणहीन या अनिर्धारित चुनाव में विश्वास रखता है। यह ठीक नहीं है। संकल्प कारणहीन या आत्मा के द्वारा अनिर्धारित नहीं है। वह आत्मा के द्वारा निर्धारित होता है। संकल्प की स्वतंत्रता आत्म-नियतिवाद है।

१७—मूलप्रवृत्ति का संकल्प से सम्बन्ध : ऐच्छिक कर्म का मूल (The Relation of Instinct to Volition: Origin of Voluntary Action)।

ऐच्छिक कर्म के मूल और मूलप्रवृत्ति के साथ उसके सम्बन्ध के बारे में कई मत हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि ऐच्छिक गति एक बिल्कुल नये प्रकार की गति होती है और फलस्वरूप उसका प्रतिक्षेप-कर्म, अनियमित कर्म, मूलप्रवृत्यात्मक कर्म, इत्यादि अनैच्छिक गतियों से विकास नहीं हो सकता। वे मानते हैं कि केवल मनुष्य का मन ही ऐच्छिक कर्म की योग्यता रखता है और यह अनैच्छिक गतियों की योग्यता रखने वाले पशु के मन से केवल मात्रा में ही नहीं बल्कि प्रकार में भी भिन्न है। ऐच्छिक कर्म का उद्भव अनैच्छिक कर्म से नहीं हो सकता।

लेकिन कई आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि ऐच्छिक कर्म अनैच्छिक कर्मों से उत्पन्न होते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ऐच्छिक कर्मों का मूल प्रतिक्षेप-कर्मों में देखता है। बेंजिन उनका मूल अनियमित कर्मों में खोजता है। मक्डो के अनुसार उनका मूल मूलप्रवृत्यात्मक कर्मों में है। वार्ड के अनुसार उनकी उत्पत्ति अभिव्यंजक गतियों (Expressive movements) अनुभूतियों

और संवेगों की, विशेषतया पीड़ा की अभिव्यक्तियों से होती है। यहां इन सब सिद्धान्तों का विवेचन कर सकना असंभव है।

हम पहिले ही देख चुके हैं कि यदि कोई मूलप्रवृत्यात्मक कर्म सुखकर या लाभप्रद परिणाम देता है वो उसकी पुनरावृत्ति होती है और वह आदत के रूप में पक्का हो जाता है। ऐच्छिक कर्म में लक्ष्य या हितकारक परिणाम का विचार, लक्ष्य को सिद्ध करने वाली गति का विचार और उनके सम्बन्ध का विचार रहता है। मान लीजिये कि एक बच्चा अपने मूलप्रवृत्यात्मक कर्म से शक्कर चखता है और उसे वह अच्छी लगती है। यह प्रिय परिणाम उसके ध्यान को पकड़ लेगा। बच्चा परिणाम और गति के विचारों पर ध्यान देगा और उनको अपने मन में धारण कर लेगा। यदि वही कर्म बार-बार लाभप्रद परिणाम देता है तो वह उनके सम्बन्ध पर ध्यान देगा। इस प्रकार उसके मन में लक्ष्य के विचार और कर्म के विचार के मध्य साहचर्य स्थापित हो जायगा। इसलिये जब भविष्य मे लक्ष्य का विचार उसके मन में आयगा तो इससे गति का विचार पुनर्जीवित हो जायगा और गति वस्तुतः हो जायगी। इस प्रकार ऐच्छिक कर्म मूल-प्रवृत्यात्मक कर्म से उत्पन्न होता है।

एँजिल का मत है कि अनियमित कर्म (Random action) बहु-संख्यक पेशियों की निरुद्देश्य, असम्बद्ध गतियों का पुंज है। कभी-कभी दैवयोग से उससे सफल कर्म सम्पन्न हो जाता है जो सुखकर होता है। उसकी आवृत्ति स्वतः होती है। इस गति की आकस्मिक पुनरावृत्ति स्नायु-तंत्र में पथ बना देती है। धीरे-धीरे व्यर्थ और अप्रासंगिक गतियां निरुद्ध और लुप्त हो जाती हैं, तथा शरीर में आदतों के रूप में केवल उपयोगी और प्रासंगिक गतियां बद्धमूल हो जाती हैं। इस प्रकार नियंत्रित और ऐच्छिक गतियां अनियमित और निरुद्देश्य गतियों से उत्पन्न होती हैं।

अनैच्छिक और ऐच्छिक कर्मों के मध्य कुछ सम्बन्ध है। लेकिन ऐच्छिक कर्म आत्म-चेतना और विचार की अपेक्षा रखते हैं जो अनैच्छिक कर्म में नहीं होते। वे आत्मा के प्रत्यय की अपेक्षा रखते हैं। वे किसी ऐसे लक्ष्य की प्राप्ति

के लिये आत्मा के द्वारा जानबूझ कर किये जाते हैं जिसे वह शुभ मानता है। अतः अनैच्छिक कर्म से ऐच्छिक कर्म में संक्रमण (Transition) आसान नहीं मालूम पड़ता। वे मात्रा में नहीं, बल्कि प्रकार में भिन्न हैं।

१८. संकल्प-शक्ति का ह्रास (Abulia)

संकल्प-शक्ति का ह्रास हो जाने पर कर्म करने का उत्साह असाधारण रूप से लुप्त हो जाता है। इसमें अत्यधिक द्विविधा और दोला (Vacillation) की स्थिति रहती है, कर्म करने के संकल्प का अत्यधिक अभाव हो जाता है, और उपक्रम (Initiative) का ह्रास हो जाता है। इसकी उत्पत्ति हीनता की अनुभूति, आत्म-विश्वास के अभाव और दिवा-स्वप्नों में खोये रहने की प्रवृत्ति से होती है। संकल्प-शक्ति के ह्रास के लिये आलस्य या "कम मानसिक तनाव" (Low mental tension), भय और सजगता (Caution) की अत्यधिक मात्रा, अथवा दबी हुई अचेतन इच्छाओं के स्तम्भकारी प्रभाव (Paralysing effect) को उत्तरदायी माना जाता है।

इसके कारणों को हटाकर इसे हटाया जा सकता है। निश्चित लक्ष्य, निकटस्थ लक्ष्य और दूरस्थ लक्ष्य की प्राप्ति कराने वाले साधन के स्पष्ट विचार, शक्ति को जाग्रत करने तथा प्रयत्नों की दृढ़ता से कर्म करने के संकल्प के अभाव को दूर किया जा सकता है।

अध्याय १९

आदत (HABIT)

१. आदत का स्वरूप (Nature of Habit)

आदत बार-बार किये जाने वाले ऐच्छिक कर्मों का फल है। जब कोई ऐच्छिक कर्म बार-बार दोहराया जाता है तो वह आदत में बदल जाता है। ऐच्छिक कर्मों में संकल्प का प्रयोग होता है। लेकिन जब वे आदत बन जाते हैं, तो उन्हें ध्यान और संकल्प के पथप्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती और

वे स्वयंचालित हो जाते हैं। आदतें अर्जित की जाती हैं। कभी-कभी उन्हें गौणतः स्वयंचालित कर्म (Secondarily automatic actions) कहते हैं, क्योंकि वे समरूप (Uniform) और यांत्रिक (Mechanical) होते हैं तथा सरलता और सुविधा के साथ किये जाते हैं। दौड़ना, पढ़ना, लिखना, टाइप करना, तैरना इत्यादि अभ्यास-जनित कर्म हैं। ये बार-बार दोहराये हुये ऐच्छिक कर्मों के फल हैं। ये बगैर सीखे हुये नहीं, बल्कि सीखे हुये कर्म हैं। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म भी दोहराये जाकर आदतों के रूप में बद्धमूल हो सकते हैं।

२. आदतों की विशेषतायें (Characteristics of Habits)

(१) समरूपता (Uniformtiy)—आदत-जनित कर्म समरूप होते हैं। ऐच्छिक कर्म स्वभावतः परिवर्तनशील होते हैं क्योंकि वे प्राणी को नवीन परिस्थितियों से समायोजित करते हैं। लेकिन अभ्यासजनित कर्म एक ही तरीक़े से किये जाते हैं। किसी व्यक्ति का बातचीत करने या लिखने का तरीक़ा एक ही होता है। (२) शीघ्रता (Promptness)—अभ्यासजनित कर्म शीघ्रता से किये जाते हैं। आदत जितनी प्रबल होती है, परिस्थिति की गत्यात्मक प्रतिक्रिया भी उतनी ही क्षिप्र होती है। (३) यथार्थता (Accuracy)—अभ्यासजनित कर्म केवल शीघ्रता से ही नहीं होते, बल्कि सही भी होते हैं। गत्यात्मक प्रतिक्रिया आदत के बल के अनुपात में सही होती है। (४) ध्यान का अभाव (Absence of attention)—अभ्यासजनित कर्म स्वयंचालित होते हैं, ध्यान और चेतना के द्वारा उनका पथप्रदर्शन नहीं होता। यदि उन पर ध्यान दिया जाता है तो उनमें बाधा पड़ती है। जब हम कोट के बटन लगाने या जूते के तस्मे बांधने पर ध्यान देते हैं, तो ये साधारणतया अभ्यासजनित कर्म बाधित हो जाते हैं और अपना स्वयंचालित स्वभाव खो बैठते हैं। लेकिन अभ्यासजनित कर्म ध्यान से शुरू किये जाते हैं, और ध्यान के बिना स्वयं होते रहते हैं। (५) सरलता और सुविधा (Ease and facility)—अभ्यासजनित कर्म सरलता और सुविधा के साथ किये जाते हैं। क्योंकि आदतें दृढ़ता के साथ स्थापित हो चुकी होती हैं, अतः उनमे थकान

बहुत कम होती है। खानों में काम करने वाले थकान का अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे अपने काम के अभ्यस्त हो जाते हैं। कुशल और अकुशल कार्यकर्ता में मुख्य अन्तर यह है कि पहिला अपने मस्तिष्क को प्रशिक्षित करता है और दूसरा अपनी पेशियों को। (६) परिवर्तन का प्रतिरोध (Resistance to modifications —आदत जितनी ही पक्की होती है, उसे तोड़ने में उतनी ही कठिनाई होती है। एक पक्के पियक्कड़ को अपनी पीने की आदत छोड़ने में अत्यधिक कठिनाई होती है। आदतें मानसिक और शारीरिक प्रवृत्तियां छोड़ जाती हैं जो व्यक्ति को उन्हें करने के लिये बाध्य करती हैं। अभ्यस्त अफ़ीमची निश्चित समयों पर अफ़ीम की मात्रा लेने के लिये विवशता का अनुभव करता है।

३. आदत और मूलप्रवृत्ति (Habit and Instinct)

आदतों और मूलप्रवृत्तियों दोनों का ही लक्षण समरूपता और सुविधा है। दोनों ही यांत्रिक और यथार्थ होती हैं। दोनों नियतकाल पर उत्पन्न होने वाली तृष्णाओं को जन्म देती हैं, जैसा कि धूम्रपान और सुरापान इत्यादि में होता है। दोनों में संकल्प के पथप्रदर्शन का अभाव होता है। ये स्वभावतः अनैच्छिक होती हैं। लेकिन उनके मध्य एक महत्वपूर्ण अन्तर है। मूलप्रवृत्तियां जन्मजात होती हैं, जबकि आदतें अर्जित होती हैं। मूलप्रवृत्तियां सीखी नहीं जातीं, जबकि आदतें दोहराये हुये ऐच्छिक कर्मों के फल होती हैं। कभी-कभी मूलप्रवृत्तियों को जातिगत आदतें (Racial habits) कहा जाता है, जबकि आदतों को व्यक्तिगत आदतें (Personal habits) कहा जाता है।

४. आदत और प्रतिक्षेप-कर्म (Habit and Reflex Action)

आदत और प्रतिक्षेप दोनों स्वभावतः समान रूप से क्षिप्र और समरूप होते हैं। दोनों स्वयंचालित और यांत्रिक होते हैं। दोनों में चेतना, ध्यान और संकल्प के पथप्रदर्शन का अभाव पाया जाता है। लेकिन प्रतिक्षेप जन्मजात होता है, जबकि अभ्यासजनित कर्म अर्जित होता है। पहिला सरल होता है, जबकि दूसरा जटिल होता है। उदाहरणार्थ, तैरना एक अत्यधिक जटिल कर्म है, जबकि छींकना सरल कर्म है।

५. आदत और ऐच्छिक कर्म (Habit and Voluntary Action)

आदत बारम्बार किए जाने वाले ऐच्छिक कर्मों का फल है। यह स्वभावतः यांत्रिक और समरूप होती है। लेकिन ऐच्छिक कर्म एक नवीन परिस्थिति के प्रति एक नवीन प्रतिक्रिया होता है। नवीन प्रतिक्रिया अनुसंधानात्मक (Exploratory) तथा प्रयोगात्मक (Tentative) होती है, जबकि आदत स्थिर और निश्चित होती है। नवीन प्रतिक्रिया धीमी और अनिश्चित होती है, जबकि आदत काफ़ी क्षिप्र और सही होती है। नवीन प्रतिक्रिया परिवर्तनशील होती है, जबकि आदत नियमित होती है। नवीन प्रतिक्रिया में प्रयत्न और सायास ध्यान (Strained attention) होता है, जबकि आदत आसान और प्रायः अर्ध-चेतन मात्र होती है। नयी प्रतिक्रिया व्यक्ति के लिए असन्तोषजनक हो सकती है, लेकिन आदत आराम और सन्तोष देती है। आदत को तोड़ने में सबसे बड़ी परेशानी होती है। किसी आदत को तोड़ने के लिए एक विपरीत आदत बनानी पड़ती है।

६. आदत का निर्माण : आदत के नियम (Formation of Habit : Laws of Habit)

विलियम जेम्स आदत के निर्माण के चार नियम बताता है। वे निम्न-लिखित हैं :—

(१) किसी नई आदत को दृढ़ संकल्प के साथ शुरू करो। यदि आप पक्के निश्चय के साथ प्रारम्भ करते हैं तो आप प्रायः सफलतापूर्वक आगे बढ़ते हैं और आदत पक्की हो जाती है। यदि आप प्रातःकाल उठना चाहते हैं तो आपका पहिला कार्य यह है कि आप इस बात का पक्का निश्चय कर लें।

(२) नये संकल्प को कार्यान्वित करने के लिए पहिले अवसर को हाथ से न निकलने दो। जब आप प्रातःकाल उठने का संकल्प कर चुके हैं तो अगले ही दिन उसे शुरू कर दीजिये। काम शुरू करने के लिए अगले माह के पहिले दिन या नये साल के दिन की प्रतीक्षा मत कीजिये। यदि आप ऐसा करते हैं तो आपका संकल्प निर्बल पड़ जायगा और उत्साह विलीन हो जायगा।

(३) जब तक नई आदत पक्की नहीं हो जाती, तब तक किसी अपवाद को न होने दो। जब एक बार आप प्रातःकाल उठना शुरू कर चुके हैं तो प्रतिदिन ऐसा करते रहिए और किसी बहाने अपवाद न होने दीजिये। यदि आप अपवाद होने देते हैं तो स्नायु-तंत्र में जिस पथ का निर्माण हो चुका है वह निर्बल हो जायगा, आपका संकल्प ढीला पड़ जायगा और आपकी पुरानी आदत फिर लौट आयगी। लेकिन यदि आप अपवाद को नहीं होने देते तो नई आदत बन जायगी।

(४) प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा नया अभ्यास करके स्वयं को युवक बनाये रखो (Keep yourself young by a little free practice every-day)। मनोबल प्राप्त करने के लिए आपको, जो कठिन कार्य संकल्प के दृढ़ प्रयत्न की अपेक्षा रखता है उसे प्रतिदिन करना चाहिए। आदतें हमको परम्पराप्रिय (Conservative) बना देती हैं। हम विचार और कर्म के बंधे हुये मार्गों पर चलते हैं। लेकिन हमें नये विचारों, नई प्रणालियों को ग्रहण करने के लिये तय्यार रहना चाहिये। जेम्स के मतानुसार हम ऐसा अच्छी तरह तभी कर सकते हैं जब हम प्रतिदिन किसी नवीन और कठिन चीज़ का थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहें।

७. बुरी आदतों को तोड़ने के नियम (Rules of Breaking Bad Habits)

आदतें अच्छी भी हो सकती हैं और बुरी भी। अच्छी आदतों को बनाना चाहिए। बुरी आदतों को तोड़ना चाहिये। बुरी आदतों को तोड़ने के लिये निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिये :—

(१) " नई प्रणाली को तुरन्त शुरू कीजिये, सुविधाजनक अवसर की प्रतीक्षा मत कीजिये। यदि परिणाम के शरीर के लिये ख़तरनाक होने की सम्भावना नहीं है, तो आदत को बिल्कुल छोड़ दीजिये, धीरे-धीरे करके नहीं" (पेंजिल)।

(२) भावात्मक विपरीत आदत डालिये। "केवल बुरी आदत को तोड़ने

का प्रयत्न मत कीजिये । यदि सम्भव हो तो किसी दूसरी अच्छी आदत को उसका स्थानापन्न कर दीजिये" (ऐंजिल)। यदि आपकी आदत प्रत्येक संध्या को सिनेमा जाने की है, तो उस समय रेडियो-संगीत सुनने की आदत बनाने की कोशिश कीजिए। पियक्कड़ नियत समयों पर मदिरा के स्थान पर गर्म दूध पीने की आदत डाल सकता है। उसे इस आदत को तब तक जारी रखना चाहिये जब तक उसे यह विश्वास न हो जाय कि पुरानी आदत की पकड़ ढ़ीली हो गई है।

(३) "उन चीज़ों की संगति में रहिये जो आपको कम से कम प्रलोभन दें।" यदि आप सिनेमा जाने की बुरी आदत छोड़ना चाहते हैं तो सिनेमा जाने के अभ्यासियों का साथ छोड़ दीजिये। पियक्कड़ को पियक्कड़ों का साथ छोड़ देना चाहिये और संयमशील व्यक्तियों के साथ रहना चाहिये।

(४) अपने शरीर को अपना मित्र बनाइये, न कि शत्रु। स्नायु-तंत्र आदतों का शारीरिक आधार है। अभ्यासजनित कर्म स्नायु तंत्र में स्नायविक पथ बना देते हैं। भावात्मक विपरीत आदतों के स्थिर और निरन्तर निर्माण के द्वारा इनको मिटा देना चाहिये। केवल पश्चात्ताप की मनोदशा पुरानी आदतों को तोड़ने के लिये पर्याप्त नहीं है।

८. आदतों के कार्य (Functions of Habits)

कई शारीरिक आदतें; यथा व्यक्तिगत स्वच्छता की आदत, बचपन में बन जाती हैं। कपड़े पहिनने की आदतें, दूसरों के साथ व्यवहार करने की आदतें, नैतिक और धार्मिक आदतें किशोरावस्था में बनती हैं। पेशों से सम्बन्ध रखने वाली आदतें स्वभावतया बाद में बनती हैं। अलग अलग पेशों के लोगों के विशिष्ट हाव भाव, अभिवृत्तियां तथा विचार और कर्म की विशिष्ट आदतें होती हैं। ये आदतें मानसिक विकास में सहायक होती हैं।

मानसिक विकास में आदतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे मन को नई वस्तुओं का ज्ञानार्जन करने तथा नई परिस्थितियों में नये कर्म करने के लिये मुक्त कर देती हैं। मन आदतों के कारण, जो शरीर को हस्तान्तरित कर दी

जाती हैं, एक के पश्चात् दूसरी विजय प्राप्त करता रहता है। आदतों के बिना हम कोई प्रगति नहीं कर सकते।

लेकिन आदतें मानसिक प्रगति में बाधक भी हैं। वे मन को विचार और कर्म के निश्चित मार्गों तक सीमित रखती हैं। ये मन को परम्पराप्रिय बना देती हैं। इसलिये मन को नई परिस्थितियों में नये विचारों को ग्रहण करना और जीवन के नये तरीकों को अपनाने के लिये सतर्क रहना चाहिये। मन को जीवन के अधिक विशाल और सच्चे आदर्शों के प्रति सजग रहना चाहिए तथा अधिकाधिक व्यापक रुचियों को अपनाना चाहिए। उसे आदतों का दास नहीं होना चाहिये। जब हार्वे (Harvey) ने शरीर में रक्त-संचार की खोज निकाली तो चालीस से अधिक आयु के लोगों ने शिर हिलाकर अस्वीकृति का प्रदर्शन किया, लेकिन कम आयु वालों ने तुरन्त उसकी नई खोज को स्वीकार कर लिया।

६. आदत, चरित्र और आचरण (Habit, Character & Conduct)

आदतें ऐच्छिक कर्मों के अभ्यास से उत्पन्न होती हैं। आदतें चरित्र के आधार हैं। अच्छी आदतों से अच्छा चरित्र बनता है। बुरी आदतों से बुरे चरित्र का निर्माण होता है। चरित्र मन की स्थायी प्रवृत्ति है जो 'संकल्प की स्थायी आदतों' से बनती है। यह इच्छानुसार अर्जित विचार, संवेग और कर्म की स्थायी प्रवृत्तियों की समष्टि है। चरित्र विचार, संवेग और कर्म की आदतों का परिणाम है। नीति-शास्त्र के लेखक चरित्र के निर्माण में संकल्प की आदतों को महत्त्व देते हैं। लेकिन विचार और संवेग की आदतों का स्थान भी चरित्र-निर्माण में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। मैकडूगल चरित्र के आधार के रूप में भावनाओं के, विशेषतया आत्म-सम्मान की भावना (Sentiment of Self-regard) के महत्त्व पर ज़ोर देता है। आत्म-सम्मान की भावना सर्वोच्च भावना है जो सभी अन्य भावनाओं का संगठन करती है।

चरित्र स्वभाव से पृथक् है। स्वभाव जन्मजात होता है, लेकिन चरित्र अर्जित। चरित्र का अर्जन व्यक्ति अपने ऐच्छिक कर्मों से करता है। व्यक्ति

अपने चरित्र का निर्माण बुद्धि के द्वारा अपने स्वभाविक आवेगों का नियन्त्रण करके करता है।

स्वाभाविक आवेग आत्म-चेतना के द्वारा इच्छाओं में परिणत होते हैं। आत्मा इच्छाओं को संकल्पों में बदल देता है। अभ्यास से ये संकल्प आदतों में बदल जाते हैं। आदतें एक स्थायी प्रवृत्ति को जन्म देती हैं जिसे हम चरित्र कहते हैं। स्वाभाविक आवेग वे "दिये हुये" तत्त्व हैं जो आत्मा को चरित्र के निर्माण के लिये कच्ची सामग्री (Raw material) प्रदान करते हैं। "दूसरी ओर, चरित्र इन प्रवृत्तियों को किसी प्रकार चेतना में उपस्थित लक्ष्यों के सम्बन्ध में नियमित करने की अर्जित आदत है। दूसरे शब्दों में, चरित्र कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो संकल्प से पृथक हो और बाहर से उस पर काम करता हो, बल्कि संकल्प का आवेगों और इच्छाओं की समष्टि के नियमन करने का अभ्यस्त तरीका है और यही समष्टि संकल्प का कर्म-क्षेत्र है" (म्यूरहेड)।

चरित्र का प्रकाशन आचरण में होता है। आचरण चरित्र का बाह्य प्रकाशन है। आचरण में ऐच्छिक और अभ्यासजनित कर्म शामिल हैं। ये स्थूल कर्म हैं। उनका निर्धारण आत्मा के चरित्र के द्वारा होता है। चरित्र पूर्णतया निश्चित और स्थायी नहीं होता। वह विकसित होता रहता है। संकल्प के स्वतंत्र कर्म पहिले से बने हुये चरित्र को बदलते हैं। संकल्प अंशतः अतीत चरित्र से निर्धारित होते हैं। लेकिन वे आत्मा के स्वतंत्र संकल्प हैं, यद्यपि वे अतीत चरित्र से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार न चरित्र और न आचरण ही निश्चित और अपरिवर्तनीय होता है। वे लचीले और परिवर्तनीय होते हैं। वे एक दूसरे को परिवर्तित करते हैं।

अध्याय २०

बुद्धि-परीक्षायें (INTELLIGENCE TESTS)

१. बुद्धि का स्वरूप (Nature of Intelligence)

बुद्धि प्रज्ञा (Intellect) के समान है, लेकिन उससे अभिन्न नहीं। प्रज्ञा अनुभूति और संकल्प से पृथक, निरीक्षण, स्मरण और विचार की शक्ति

है। बुद्धि काम करने का एक ढंग है। यह व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता देती है। यह एक अर्जित योग्यता नहीं है। यह एक जन्मजात योग्यता है। यह बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवहार करने के मध्य की संक्षिप्त संज्ञा है। "बुद्धि जीवन की नई समस्याओं और स्थितियों से समायोजन करने की सामान्य मानसिक योग्यता है" (स्टर्न)। "बुद्धि का ठीक-ठीक अर्थ वह शक्ति है जो हमारे व्यवहार के अंशों को इस तरह पुनः संगठित करती है कि नई परिस्थितियों में हम अधिक अच्छी तरह काम कर सकें" (केल्प)। वुडवर्थ के अनुसार बुद्धि के निम्नलिखित लक्षण हैं :—

(१) *अतीत अनुभव का उपयोग (Use of past experience)*—मनुष्य कुत्ते से अधिक बुद्धिमान है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य अपने अतीत अनुभव का अधिक इस्तेमाल करता है। बुद्धिमान पुरुष किसी लक्ष्य की प्राप्ति में अपने अतीत अनुभव का अधिक उपयोग करता है। अतीत अनुभव का उपयोग बुद्धि का एक लक्षण है।

(२) *नई परिस्थिति से समायोजन (Adaptation to a novel situation)*—मनुष्य कुत्ते की अपेक्षा अधिक आसानी से स्वयं को नई परिस्थिति से समायोजित कर सकता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति एक नवीन परिस्थिति पर आसानी से अधिकार कर सकता है। लेकिन एक कम बुद्धिमान व्यक्ति नई परिस्थिति में कुछ नहीं कर पाता। नई परिस्थिति पर अधिकार करने की सामर्थ्य बुद्धि का एक लक्षण है।

(३) *परिस्थिति को समझना (Seeing the point)*—बुद्धिमत्ता इसमें है कि हम किसी समस्या को समझें, उसकी आवश्यक बातों को ग्रहण करें, या उसकी कुंजी को पा लें। परिस्थिति की कुंजी को मालूम करना बुद्धि का एक लक्षण है।

(४) *कार्यों को विशाल दृष्टिकोण से देखना (Viewing actions from a broader point of view)*—मनुष्य कुत्ते की अपेक्षा अपने काम में एक अधिक विशाल परिस्थिति को ध्यान में रखता है। एक बुद्धिहीन

व्यक्ति परिस्थिति को विशाल दृष्टिकोण से नहीं देखता। उसका दृष्टिकोण संकीर्ण होता है। वह अपने कार्यों में एक निश्चित मार्ग का अनुसरण करता है। लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति परिस्थिति को विशाल दृष्टिकोण से देखता है और अपने कार्यों को उससे समायोजित करता है। अग्रदृष्टि (Foresight) दृष्टिकोण की विशालता का लक्षण है, जो समग्र परिस्थिति को परस्पर संबंधित भागों के नमूने के रूप में देखना है।

बुद्धि किसी परिस्थिति में अतीत अनुभव के उपयोग के साथ, उसमें जो कुछ नया है उसे तथा परिस्थिति के किसी आकर्षक भाग की अपेक्षा समग्र परिस्थिति को समझते हुये कार्य करने का नाम है। इसमें समग्र परिस्थिति की कुंजी समझ ली जाती है।

२. बुद्धि-दौर्बल्य (Feeble-mindedness)

कुछ लोग पागल होते हैं; वे अस्थायी या स्थायी मानसिक रोग से ग्रस्त होते हैं। उन्माद (पागलपन) का कारण व्यक्तित्व का विच्छेद (Dissociation) है जिसके लिये निम्न मानसिक तनाव (Low mental tension), काम का दमन, हीनता की भावना-ग्रन्थि इत्यादि उत्तरदायी समझे जाते हैं।

साधारण व्यक्तियों में से कुछ बुद्धि की कमी से ग्रस्त होते हैं। ऐसे लोग स्वयं अपने जीवन का प्रबन्ध नहीं कर पाते। जड़बुद्धि (Idiots) व्यक्तियों में बुद्धि की सबसे अधिक कमी रहती है। मन्दबुद्धि (Imbeciles) व्यक्तियों में बुद्धि की कुछ कमी होती है, और अल्पबुद्धि (Morons) व्यक्तियों में बुद्धिदौर्बल्य इन सबकी अपेक्षा कम होता है। अल्पबुद्धि व्यक्तियों की संख्या जड़बुद्धियों और मन्दबुद्धियों की अपेक्षा अधिक होती है।

(१) जड़बुद्धि (*Idiots*)—इनकी बुद्धि सबसे अधिक दोषग्रस्त होती है। सबसे निम्नश्रेणी के मूढ़ (जड़बुद्धि) अपनी शारीरिक आवश्यकताओं का ख्याल नहीं करते। वे खाना-पीना नहीं सीख पाते। न वे नहाना या कपड़ा पहिनना ही सीख पाते हैं। कुछ छोटे शब्दों के अलावा उन्हें बात करना नहीं आता। मूढ़ जीवन के सामान्य खतरों को दूर नहीं कर सकते। वे सड़क पर

जाती हुई मोटर से भी नहीं बच सकते, और न आग या गहरे पानी से ही बच सकते हैं। ये इतने मूर्ख होते हैं कि इन मामूली खतरों से भी अपनी रक्षा नहीं कर पाते। उनकी बुद्धि-लब्धि (I.Q.) २० या उससे भी कम होती है।

(२) *मन्द बुद्धि (Imbeciles)*—मन्दबुद्धि जड़बुद्धियों की अपेक्षा कम दोषग्रस्त होते हैं। उनमें और जड़बुद्धियों में अन्तर यह है कि ये जीवन के सामान्य खतरों से बचना सीख लेते हैं। लेकिन ये उपयोगी काम करना अधिक नहीं सीख सकते। कुछ उच्च श्रेणी के मन्दबुद्धि कपड़ा पहिनना, नहाना धोना, खाना सीख सकते हैं। ये दूसरों के निरन्तर निरीक्षण में रहकर केवल छोटे से छोटे और सरल से सरल कार्य ही सीख सकते हैं। जटिल कार्यों को ये नहीं सीख सकते। उनकी बुद्धि-लब्धि का विस्तार २० या २५ से ५० तक होता है।

(३) *अल्प बुद्धि (Morons)*—ये बुद्धि में मन्दबुद्धियों की अपेक्षा कम दोषग्रस्त होते हैं। उनकी बुद्धियों में भी परस्पर अन्तर होता है। सबसे निम्न श्रेणी के अल्पबुद्धियों और सबसे उच्च श्रेणी के मन्दबुद्धियों में शायद ही कोई अन्तर होता है। किन्तु अल्पबुद्धि दूसरों के निरन्तर निरीक्षण में रहे बिना छोटे-मोटे दैनिक कार्य सीख सकते हैं। ये बिस्तर बिछा सकते हैं, संदेश ले जा सकते हैं, इत्यादि। कुछ उच्च श्रेणी के अल्पबुद्धि जानवरों की देख-रेख कर सकते हैं, बच्चों की देख-रेख कर सकते हैं, सीने की मशीन चला सकते हैं, इत्यादि। उनमें से कुछों को कुछ ऐसे कामों का प्रशिक्षण भी दिया गया है जिनसे उन्हें धन-प्राप्ति हो सके। अल्पबुद्धि नई परिस्थिति का सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सकते अथवा जटिल समस्या को हल नहीं कर सकते। उनकी बुद्धि-लब्धि ५० और ७० के बीच होती है।

जड़-बुद्धि और मन्द-बुद्धि असाधारण (Abnormal) नहीं होते। यदि पैदा होते समय या अन्य तरीकों से शुरू में उनके मस्तिष्क को आघात न पहुँचता तो ये साधारण बुद्धि वाले होते। अल्पबुद्धि प्रायः रोगी नहीं होते। ये साधारण बुद्धि वाले व्यक्तियों में सब से कम बुद्धिमान होते हैं।

३. मानसिक आयु (Mental Age)

बच्चा ज्यों-ज्यों आयु में बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसकी बुद्धि भी धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। साधारण स्थितियों में बचपन में इस वृद्धि की गति काफ़ी समान होती है। चौदह या पंद्रह साल तक वह आयु की वृद्धि के साथ बढ़ती रहती है। उसके बाद उसकी वृद्धि नहीं होती।

विभिन्न आयु के बालकों की बुद्धि मापने के लिये बुद्धि-परीक्षाओं (Intelligence tests) की योजना बनाई गई है। प्रत्येक आयु के स्तर के लिये अलग परीक्षा उपयुक्त होती है। जब एक दस साल का बालक आठ साल के बालक के लिये उपयुक्त परीक्षा से उच्च परीक्षा को उत्तीर्ण नहीं कर पाता तो उसकी मानसिक आयु आठ साल मानी जाती है, यद्यपि उसकी वास्तविक आयु दस साल है। इसी प्रकार, एक आठ साल का बालक दस साल के बालक के लिये उपयुक्त परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है। उस दशा में उसकी मानसिक आयु दस साल की कही जायगी, यद्यपि उसकी वास्तविक आयु आठ साल है। पहिला बालक अपेक्षाकृत मन्द है। दूसरा अपेक्षाकृत कुशाग्र है। एक औसत बालक की मानसिक आयु वही होती है जो उसकी वास्तविक आयु है। उदाहरणार्थ, आठ साल की वास्तविक आयु के साधारण बालक की मानसिक आयु भी आठ साल होती है।

४. बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient)

किसी बालक की बुद्धि उसकी बुद्धि-लब्धि से जानी जाती है। बुद्धि-लब्धि को उसकी मानसिक आयु को उसकी वास्तविक आयु से विभाजित करके जाना जाता है। जब बालक की मानसिक आयु उसकी वास्तविक आयु के तुल्य होती है तो उसकी बुद्धि-लब्धि या संक्षेप में बु० ल० १·०० होती है। यदि उसकी मानसिक आयु आठ है और वास्तविक आयु दस तो उसकी बु० ल० $\frac{८}{१०}$ = ·८० है। यदि उसकी मानसिक आयु दस है और वास्तविक आयु आठ तो उसकी बु० ल० $\frac{१०}{८}$ = १·२५ है। आम तौर पर बु० ल० को व्यक्त करने में दशमलव बिन्दु को हटा दिया जाता है, तथा १·०० को १००, ·८० को ८०

और १·२५ को १२५ लिखा जाता है। इस प्रकार बु० ल० का निर्धारण मानसिक आयु को वास्तविक आयु से विभाजित करके और भागफल को १०० से गुणा करके किया जाता है। इस प्रकार—

$$बु० ल० = \frac{मा० आ०}{वा० आ०} \times १००$$

केवल मानसिक आयु से बुद्धि का निर्धारण नहीं होता। मानसिक आयु को वास्तविक आयु से सम्बन्धित करना होता है। बुद्धि की माप बु० ल० में होती है जो मानसिक आयु और वास्तविक आयु का अनुपात है। यह अनुपात जीवनपर्यन्त प्राय: समान रहता है। औसत व्यक्ति की बु० ल० १०० होती है। यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि बीस साल के बाद बुद्धि का विकास नहीं होता। बीस से साठ साल तक बुद्धि का स्तर एकही रहता है।

५. बिने साइमन बुद्धि-परीक्षायें (The Binet-Simon Intelligence Tests)

इस शताब्दी के प्रथम दश वर्षों में अल्फ्रेड बिने ने थियोडोर साइमन की सहायता से, स्कूल जाने वाले बच्चों की बुद्धि मापने के लिये, इस उद्देश्य से कि वे किस कक्षा के लिये ठीक हैं यह जाना जा सके, कुछ मानसिक परीक्षाओं की योजना बनाई। इन परीक्षाओं का संशोधन टर्मन (Terman) और कुलमन (Kuhlmann) इत्यादि ने किया। निम्नलिखित परीक्षायें विभिन्न आयु के बच्चों के लिये उपयुक्त हैं:—

"तीन मास का स्तर: अनियमित गति मात्र से नहीं बल्कि एक निश्चित गति से हाथ को मुंह तक ले जाना।

छः मास का स्तर: पहुँच के अन्दर सामने लटकती हुई एक छोटी चमकीली वस्तु को पकड़ना।

बारह मास का स्तर: खिलौने को हिलाने या एक छोटी घंटी को बजाने जैसे कार्यों का अनुकरण।

दो साल का स्तर : चॉकलेट को मुंह में डालने से पहिले उस पर लिपटे हुये कागज़को हटाना।

तीन साल का स्तर : परिचित वस्तुओं के नाम बताना—इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये बच्चे को दिखाई जाने वाली पांच परिचित वस्तुओं में से कम से कम तीन का नाम बताना पड़ता है।

छः साल का स्तर : चेहरे की अपूर्ण तस्वीरों में यह बताना कि कौन सी चीज़ छूट गई है। ऐसी चार तस्वीरें दिखाई जाती हैं और उत्तीर्ण होने के लिये तीन सही उत्तर आवश्यक हैं।'

आठ साल का स्तर : यह बताना कि लकड़ी और कोयले में क्या समानता है। इसी प्रकार परिचित वस्तुओं के तीन अन्य जोड़ों में भी समानता बतानी पड़ती है ; उत्तीर्ण होने के लिये दो सही उत्तर आवश्यक हैं।

बारह साल का स्तर : शब्द-ज्ञान परीक्षा—मामूली परिभाषायें जिनसे यह पता चले कि बालक १०० शब्दों की एक प्रामाणिक सूची में से ४० को समझता है।

चौदह साल का स्तर : राष्ट्रपति और राजा में तीन प्रमुख अन्तर बताना (वुडवर्थ)।"

इन परीक्षाओं का उद्देश्य सामान्य बुद्धि को मापना है। ये विशेष योग्यताओं को नहीं माप सकतीं। इनके लिये भाषा-ज्ञान आवश्यक है। इसलिये निरक्षरों की बुद्धि-माप इनसे नहीं हो सकती। अतः अन्य बुद्धि-परीक्षाओं की योजना बनाई गई है।

६. निष्पादन परीक्षायें (Performance Tests)

निष्पादन परीक्षायें वस्तुओं का प्रत्यक्ष और प्रहस्तन करने की सामर्थ्य को मापती हैं। ये कुछ करने की सामर्थ्य को मापती हैं। इनमें भाषा का इस्तेमाल नहीं होता।

(१) आकृति-फलक परीक्षा (Form Board Test)— कई ऐसी निष्पादन-

बालकों को अधिक पिछड़ना पड़ता है। ये औसत से ऊपर होते हैं। इसलिये अध्यापक उनका ध्यान नहीं रखते। अध्यापक उत्कृष्ट विद्यार्थियों से बराबर उनके मानसिक स्तर से कम स्तर का काम लेते हैं और उन्हें आलसी बना देते हैं। उनका पाठ्यक्रम अधिक ऊँचे दर्जे का होना चाहिये।

बुद्धि-परीक्षायें समूहों को समस्तरीय (Homogeneous) बनाने में हमारी सहायता करती हैं। लगभग एक ही मानसिक आयु के विद्यार्थी एक ही श्रेणी में रखे जाते हैं। लेकिन यह प्रणाली दोषपूर्ण है। यह एक ही मानसिक आयु के छोटे, कुशाग्र विद्यार्थियों को और मन्द, बड़े विद्यार्थियों को एक ही श्रेणी में रखती है, यद्यपि उनकी प्रगति की रफ्तारों और सामाजिक प्रौढ़ता (Social maturity) में अन्तर होता है। विद्यार्थियों को उनकी बुद्धिलब्धियों के अनुसार श्रेणी में रखना चाहिये। एक ही मानसिक और वास्तविक आयु के विद्यार्थियों को एक ही श्रेणी में रखना चाहिये।

छात्रवृत्ति देने के लिये विश्वसनीय परीक्षा-पद्धति के रूप में बुद्धि-परीक्षाओं का उपयोग किया जा सकता है। कक्षा में प्रवेश को निर्धारित करने के प्रयोजन के लिये भी उनका आश्रय लिया जा सकता है।

मानसिक दुर्बलता, उत्कृष्ट बुद्धि, बच्चों की विशेष योग्यताओं और अयोग्यताओं, तथा जहाँ भी शैक्षिक और सामाजिक प्रकृति के विषमायोजन मिलते हों उनके निदान (Diagnosis) में बुद्धि-परीक्षायें हमारी सहायता करती हैं। निदान के लिये व्यक्तिगत परीक्षायें की जानी चाहिये, क्योंकि ऐसी हालतों में व्यक्तियों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क का होना आवश्यक है।

बुद्धि-परीक्षायें हमें युवकों के बौद्धिक और व्यावसायिक भविष्य के पूर्वज्ञान में मदद देती हैं। केवल बुद्धि ही अकेली सफलता की शर्त नहीं है। यह उन कारणों में से एक है जो सफलता को निर्धारित करते हैं। नैतिक गुण, परिश्रम, लगन, आत्म-विश्वास, दूसरों से आगे बढ़ने की इच्छा सफलता के प्रमुख हेतु हैं। व्यावसायिक पथप्रदर्शन के लिये व्यक्तित्व-परीक्षायें (Personality tests) जरूरी होती हैं। व्यवसाय निर्धारित करने

के लिये ली जाने वाली परीक्षायें जो कि बुद्धि-परीक्षाओं के विशेष रूप हैं, अभी शैशवावस्था में हैं।[1]

बुद्धि-परीक्षायें, चाहे व्यक्तिगत हों चाहे सामूहिक, बालक की जन्मजात मानसिक योग्यता को मापती हैं और इस प्रकार यह निर्धारित करतीं हैं कि उसमें शिक्षा प्राप्ति की कितनी सामर्थ्य है। मामूली मौखिक और लिखित परीक्षायें शक्तियों की अपेक्षा ज्ञान पर अनुचित बल देती हैं। इसके अतिरिक्त वे आत्मगत (Subjective) होती हैं। परीक्षक का हिस्सा जांचने में जितना उचित है उससे अधिक होता है। बुद्धि-परीक्षायें वस्तुगत (Objective) होती हैं। परीक्षक का स्थान उनमें अधिक महत्त्व नहीं रखता। बुद्धि-परीक्षायें जन्मजात-योग्यता (Native ability) को मापने को कोशिश करती हैं, अर्जित ज्ञान को नहीं।

६. बुद्धि और पाठशाला (Intelligence and Schooling)

छः साल और उसके आस-पास के छोटे बालक जो पाठशालाओं में जाते हैं, न्यूनतम के अलावा सभी स्तरों की बुद्धि रखते हैं। उनमें से कुछ पाठशाला के कार्य को बहुत आसान पाते हैं तथा शीघ्र प्रगति करते हुये कक्षाओं को लांघ जाते हैं। अन्य मन्द प्रगति करते हैं और उन्हें एक ही कक्षा में कई बार रहना पड़ता है। अधिकांश बालक पाठशालीय प्रगति की इन दो सीमाओं के मध्य पड़ते हैं।

बालक की बुद्धि-लब्धि और पाठशाला में सफल होने की उसकी योग्यता के बीच एक निश्चित अनुबन्ध (Correlation) होता है। यदि प्रत्येक बालक को अपनी चाल पर प्रगति करने का अवसर दिया जाय तो विशेष रूप से उस दशा में बुद्धि तथा पाठशालीय उपलब्धि (Achievement) का संवाद (Correspondence) अधिक निकट होता है।

लेकिन बुद्धि और विद्या सम्बन्धी उपलब्धि (Academic Achievement) का संवाद प्रारम्भिक पाठशाला में अधिक घनिष्ठ होता है, माध्यमिक

[1] सैन्डीफ़ोर्ड : शिक्षा मनोविज्ञान, पृ० १६२-१६४

विद्यालय (Secondary School) में कम, और कालेज में और भी कम। बुद्धि-लब्धि और पाठशालीय कार्य का अनुबन्ध पहिली कक्षा में ७५, माध्यमिक विद्यालय में ६० और कालेज में ५० ही रह जाता है। इसका कारण अंशतः यह है कि कालेज में पढ़ने वाला समूह इतना अधिक चुना हुआ होता है कि कालेज के कार्य में मध्यम दर्जे की सफलता लगभग इन सभी कालेजीय छात्रों की शक्ति के अन्दर होती है जो काम करना चाहते हैं, तथा अंशतः यह कि कुछ छात्र काम करना नहीं चाहते। सम्भव है कि उनकी शक्तियाँ उनके जीवन की इस अवधि में उन्मुक्त न हों, या यदि उन्मुक्त हों भी तो किसी दूसरी दिशा में उन्मुख हों। योग्यताओं या मानसिक प्रवणताओं (Aptitudes) के अतिरिक्त प्रेरक (Motives) भी विद्या-संबन्धी उपलब्धि के लिये आवश्यक हैं। बुद्धि के अतिरिक्त ऐसे नैतिक गुण भी जैसे प्रयत्न करते रहना, अपनी शक्तियों में विश्वास, चरित्र-बल, महत्त्वाकांक्षा, या दूसरों से आगे निकलने की इच्छा सफलता के लिये आवश्यक हैं।

१०. उपलब्धि-परीक्षायें (Achievement Tests)

विद्यालयों में विभिन्न विषयों की जो परीक्षायें ली जाती हैं वे उपलब्धि-परीक्षायें हैं। वे यह प्रदर्शित करती हैं कि व्यक्ति ने इन विषयों में कितना ज्ञानार्जन किया है। व्यावहारिक (Practical) परीक्षायें यह प्रदर्शित करती हैं कि उसने प्रयोग करने में या कलाओं के अभ्यास में कितनी कुशलता प्राप्त की है। उपलब्धि-परीक्षायें व्यक्ति के द्वारा विभिन्न विद्याओं में प्राप्त ज्ञान और कौशल को मापती हैं। उनमें जो प्रश्न होते हैं वे विद्यालय में पढ़े हुये विषयों से लिये जाते हैं। वे पुस्तकों से प्राप्त किये हुये विशेष ज्ञान की जाँच करती हैं।

कई कारणों से उपलब्धि-परीक्षायें बुद्धि-परीक्षाओं का उद्देश्य-साधन नहीं कर सकतीं। प्रथम, वे केवल विद्यालय के कार्य तक ही सीमित होती हैं, वे विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान की परीक्षा करती हैं। वे व्यक्ति के द्वारा विद्यालय के बाहर के परिवेश से अर्जित सामान्य ज्ञान की

परीक्षा नहीं लेती। द्वितीय, वे किताबों से चिपके रहने वाले बालक को अनुचित लाभ देती हैं। तृतीय, वे उस कुशाग्रबुद्धि बालक की योग्यता को कम आंकती हैं जिसे विद्यालय में उसकी उत्कृष्ट बुद्धि के अनुकूल उत्कृष्ट पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया गया है। बुद्धि-परीक्षाओं का प्रयोजन बालक के द्वारा परिवेश से प्राप्त सामान्य ज्ञान की माप करना है। वे व्यक्ति की सहज बुद्धि की—विशाल दृष्टिकोण से अपने अतीत अनुभव के प्रकाश में नई परिस्थिति को समझने और उस पर अधिकार करने की उसकी सहज योग्यता को मापती हैं।

११. बुद्धि के सिद्धांत (Theories of Intelligence)

स्पियरमैन बुद्धि के सिद्धान्तों को चार वर्गों में बांटता है। एकतत्त्वीय सिद्धान्त (Unifactor theory) के अनुसार बुद्धि एक सर्वव्यापक मानसिक शक्ति—"एक सहज सर्वतोमुखी, मानसिक क्षमता" (बर्ट) अथवा "जीवन की नई समस्याओं और स्थितियों के साथ एक सामान्य समायोजनशीलता" (स्टर्न) है। बुद्धि एक केन्द्रीय वस्तु है जो सब मानसिक व्यापारों पर शासन करती है। स्पियरमैन इस सिद्धान्त को "एकतंत्रीय" सिद्धान्त कहता है।

यदि यह सिद्धान्त सही है तो हम यह अनुमान कर सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति एक बौद्धिक कार्य को अच्छी तरह कर सकता है तो अन्य कार्यों को भी उतनी ही अच्छी तरह करेगा। लेकिन यह तथ्यों के प्रतिकूल है। पुनः, व्यवहार में बुद्धि को मापने के लिये हम उसको विभाजित कर देते हैं। यह सिद्धांत स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि बुद्धि है क्या, और यह मानसिक परीक्षा के लिये बहुत ही अनिश्चित बौद्धिक आधार प्रस्तुत करता है।

"बहुतंत्रीय" सिद्धान्त (Oligarchic Doctrine) के अनुसार बुद्धि एक शक्ति नहीं बल्कि कुछ बड़ी शक्तियों से बनती है, जिनमें से प्रत्येक को अलग मापना पड़ता है जिससे किसी व्यक्ति का मानसिक पार्श्व-चित्र (Mental profile) प्राप्त होता है। बुद्धि एक अकेली शक्ति नहीं है। इसमें कुछ प्रमुख शक्तियां होती हैं जो परस्पर स्वतंत्र होकर कार्य करती हैं और अलग-अलग

मानों (Value) से मापी जा सकती हैं। बिने का मत है कि बुद्धि विभिन्न शक्तियों का योग है, यथा, किसी समस्या को समझना, उसके समाधान के प्रति मन को लगाना, उस पर ध्यान को केन्द्रित करना, मन को किसी नई परिस्थिति से समायोजित करने की योग्यता, और स्व-समालोचन की सामर्थ्य। यह बहुतत्त्वीय सिद्धान्त (Multifactor theory) है। यह बुद्धि को प्रमुख योग्यताओं का समूह मानता है।

यह सिद्धान्त शक्ति-मनोविज्ञान (Faculty psychology) में विश्वास रखता है जो गलत है। यह मन की एकता का विरोधी है। शक्तियों का एक दूसरी से स्वतंत्र होकर कार्य करना आवश्यक नहीं है। प्रत्येक शक्ति का एक अलग मान से मापा जा सकना भी आवश्यक नहीं है।

"अराजकता-सिद्धान्त" (Anarchic Doctrine) के अनुसार बुद्धि अनेक योग्यताओं का योग है जो एक दूसरी से स्वतंत्र हैं। बुद्धि केवल थोड़ी सी प्रमुख शक्तियों का योग नहीं है, बल्कि एक दूसरी से पृथक् कार्य करती हुई सब योग्यताओं का योग है। किसी व्यक्ति की सामान्य बुद्धि उसकी अनेक योग्यताओं का औसत है और उसकी माप प्रत्येक का नमूना लेकर की जाती है। थॉर्नडाइक बुद्धि को जन्मजात मानसिक योग्यताओं के सारे समूह की प्रतिनिधि मानता है। यद्यपि ये लक्षण (Traits) परस्पर भिन्न हैं, तथापि विभिन्न मात्राओं में वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि किसी व्यक्ति में एक सद्गुण अधिक मात्रा में है तो सम्भावना इस बात की है कि उसमें कोई दूसरा सद्गुण भी औसत मात्रा से अधिक होगा। टॉमसन (Thompson) मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति का मन गुणों के समूह की एक बानगी (Sample) है। थॉर्नडाइक और टॉमसन के सिद्धान्त बुद्धि के बहुतत्त्वीय (Multifactor) सिद्धान्त हैं।

टॉमसन के योग्यता की बानगी के सिद्धान्त को मानसिक जाँच की प्रचलित प्रथाओं से समर्थन प्राप्त हुआ है। इस बात में सामान्यतया एक मत है कि बुद्धि को मापने के लिए विविध लक्षणों की परीक्षायें आवश्यक हैं।

लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह सिद्धान्त सही है। यह कैसे निश्चय किया जा सकता है कि बानगी में कौन सी योग्यतायें आनी चाहिये ? क्या स्मृति को बानगी में शामिल करना चाहिये ? या गति की योग्यता को शामिल करना चाहिये ? पुनः, क्या बानगी के सभी घटक (Constituents) समान महत्त्व रखते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो औसत निकालना बुद्धि-परीक्षा का प्रामाणिक तरीका नहीं है। हमें इस चीज़ का निश्चय नहीं हो सकता कि हमारी बानगी में कोई एक दूसरी को दोहराने वाली योग्यतायें नहीं हैं। यदि ऐसी योग्यतायें हैं तो औसत में उनका अंश उचित से अधिक हो जायगा। इसके अतिरिक्त, यदि योग्यतायें वास्तव में परस्पर स्वतंत्र हैं तो औसत निरर्थक हो जायगा। जिन संख्याओं का औसत लिया जाता है उन्हें एक ही वस्तु के विविध रूप होना चाहिये। हम किसी व्यक्ति की लम्बाई और भार का औसत नहीं ले सकते, क्योंकि ये एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। बानगी लेने का कोई भी ज्ञात सिद्धान्त नहीं है।

स्पियरमैन के अनुसार बुद्धि में दो तत्त्व हैं : एक सामान्य योग्यता (General ability) या स और एक विशेष योग्यता (Specific ability) या वि। सामान्य योग्यता बहुत से कार्यों में भाग लेती है। विशेष योग्यता विशेष कार्य में भाग लेती है। विशेष योग्यतायें बहुत सी होती हैं; उन्हें सांकेतिक रूप में वि^{1}, वि^{2}, वि^{3} इत्यादि कह सकते हैं। ये हैं : शाब्दिक योग्यता (Verbal ability); संख्याओं का व्यवहार करने की योग्यता (Ability to deal with numbers); देशीय सम्बन्धों से व्यवहार करने की योग्यता (Ability to deal with spatial relations); यांत्रिक सम्बन्धों (Mechanical relations) से व्यवहार करने की योग्यता; संगीत में योग्यता; शीघ्र कार्य करने की योग्यता, इत्यादि। ये सब विशेष योग्यतायें एक सामान्य योग्यता की अपेक्षा रखती हैं जिसके बिना वे काम नहीं कर सकतीं। सामान्य तत्व किसी व्यक्ति की सभी सम्बन्धित योग्यताओं में एकही रहता है। लेकिन विशेष तत्त्व उसी व्यक्ति की भिन्न योग्यताओं में भिन्न होता है। सामान्य तत्व, स, व्यक्ति-व्यक्ति में अलग होता है, लेकिन एकही व्यक्ति के सब प्राप्तांकों

मानों (Value) से मापी जा सकती हैं। बिने का मत है कि बुद्धि विभिन्न शक्तियों का योग है, यथा, किसी समस्या को समझना, उसके समाधान के प्रति मन को लगाना, उस पर ध्यान को केन्द्रित करना, मन को किसी नई परिस्थिति में समायोजित करने की योग्यता, और स्व-समालोचन की सामर्थ्य। यह बहुतत्वीय सिद्धान्त (Multifactor theory) है। यह बुद्धि को प्रमुख योग्यताओं का समूह मानता है।

यह सिद्धान्त शक्ति-मनोविज्ञान (Faculty psychology) में विश्वास रखता है जो गलत है। यह मन की एकता का विरोधी है। शक्तियों का एक दूसरी से स्वतंत्र होकर कार्य करना आवश्यक नहीं है। प्रत्येक शक्ति का एक अलग मान से मापा जा सकना भी आवश्यक नहीं है।

"अराजकता-सिद्धान्त" (Anarchic Doctrine) के अनुसार बुद्धि अनेक योग्यताओं का योग है जो एक दूसरी से स्वतंत्र हैं। बुद्धि केवल थोड़ी सी प्रमुख शक्तियों का योग नहीं है, बल्कि एक दूसरी से पृथक् कार्य करती हुई सब योग्यताओं का योग है। किसी व्यक्ति की सामान्य बुद्धि उसकी अनेक योग्यताओं का औसत है और उसकी माप प्रत्येक का नमूना लेकर की जाती है। थॉर्नडाइक बुद्धि को जन्मजात मानसिक योग्यताओं के सारे समूह की प्रतिनिधि मानता है। यद्यपि ये लक्षण (Traits) परस्पर भिन्न हैं, तथापि विभिन्न मात्राओं में वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यदि किसी व्यक्ति में एक सद्गुण अधिक मात्रा में है तो सम्भावना इस बात की है कि उसमें कोई दूसरा सद्गुण भी औसत मात्रा से अधिक होगा। टॉमसन (Thompson) मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति का मन गुणों के समूह की एक बानगी (Sample) है। थॉर्नडाइक और टॉमसन के सिद्धान्त बुद्धि के बहुतत्वीय (Multifactor) सिद्धान्त हैं।

टॉमसन के योग्यता की बानगी के सिद्धान्त को मानसिक जाँच की प्रचलित प्रणाली से समर्थन प्राप्त हुआ है। इस बात में सामान्यतया एक मत है कि बुद्धि को मापने के लिए विविध स्वरूपों की परीक्षायें आवश्यक हैं।

लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह सिद्धान्त सही है। यह कैसे निश्चय किया जा सकता है कि बानगी में कौन सी योग्यतायें आनी चाहिये ? क्या स्मृति को बानगी में शामिल करना चाहिये ? या गति की योग्यता को शामिल करना चाहिये ? पुनः, क्या बानगी के सभी घटक (Constituents) समान महत्त्व रखते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो औसत निकालना बुद्धि-परीक्षा का प्रामाणिक तरीका नहीं है। हमें इस चीज़ का निश्चय नहीं हो सकता कि हमारी बानगी में कोई एक दूसरी को दोहराने वाली योग्यतायें नहीं हैं। यदि ऐसी योग्यतायें हैं तो औसत में उनका अंश उचित से अधिक हो जायगा। इसके अतिरिक्त, यदि योग्यतायें वास्तव में परस्पर स्वतंत्र हैं तो औसत निरर्थक हो जायगा। जिन संख्याओं का औसत लिया जाता है उन्हें एक ही वस्तु के विविध रूप होना चाहिये। हम किसी व्यक्ति की लम्बाई और भार का औसत नहीं ले सकते, क्योंकि ये एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। बानगी लेने का कोई भी ज्ञात सिद्धान्त नहीं है।

स्पियरमैन के अनुसार बुद्धि में दो तत्त्व हैं : एक सामान्य योग्यता (General ability) या स और एक विशेष योग्यता (Specific ability) या वि। सामान्य योग्यता बहुत से कार्यों में भाग लेती है। विशेष योग्यता विशेष कार्य में भाग लेती है। विशेष योग्यतायें बहुत सी होती हैं; उन्हें सांकेतिक रूप में वि[1], वि[2], वि[3] इत्यादि कह सकते हैं। वे हैं : शाब्दिक योग्यता (Verbal ability); संख्याओं का व्यवहार करने की योग्यता (Ability to deal with numbers); देशीय सम्बन्धों से व्यवहार करने की योग्यता (Ability to deal with spatial relations); यांत्रिक सम्बन्धों (Mechanical relations) से व्यवहार करने की योग्यता; संगीत में योग्यता; शीघ्र कार्य करने की योग्यता, इत्यादि। ये सब विशेष योग्यतायें एक सामान्य योग्यता की अपेक्षा रखती हैं जिसके बिना वे काम नहीं कर सकतीं। सामान्य तत्त्व किसी व्यक्ति की सभी सम्बन्धित योग्यताओं में एकही रहता है। लेकिन विशेष तत्त्व उसी व्यक्ति की भिन्न योग्यताओं में भिन्न होता है। सामान्य तत्त्व, स, व्यक्ति-व्यक्ति में अलग होता है, लेकिन एकही व्यक्ति के सब प्राप्तांकों

(Scores) में वही रहता है, जबकि विशेष तत्व, वि, व्यक्ति-व्यक्ति में तो अलग होता ही है, लेकिन एक ही व्यक्ति में भी एक परीक्षा से दूसरी में बदल जाता है। अतएव किसी व्यक्ति के प्राप्तांक में दो भाग होते हैं, एक 'सामान्य तत्व' से अनुपात रखता है और दूसरा उसी योग्यता के 'विशेष तत्व' से। अतएव कोई भी मानसिक परीक्षा स को और एक वि को मापती है, कुछ स को अधिक मापती हैं और कुछ एक वि को अधिक। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हम किसी हद तक किसी दिशा में किसी व्यक्ति की योग्यता से एक दूसरी दिशा में उसकी योग्यता का अनुमान कर सकते हैं और इस अनुमान की मात्रा दोनों योग्यताओं में निहित स की मात्रा पर निर्भर है।

स्पियरमैन के सिद्धान्त में अन्य सिद्धान्तों के सत्यांशों का समावेश होता हुआ मालूम पड़ता है। "एकतंत्रीय" सिद्धान्त सत्य है यदि 'केन्द्रीय बौद्धिक तत्व' को स मान लिया जाय। "अराजकता" सिद्धान्त विशेष तत्वों के बारे में ठीक है जो परस्पर स्वतंत्र हैं। "बहुतंत्रीय" सिद्धान्त वहीं तक ठीक है जहां तक सामान्य तत्व से कुछ भिन्न और विशेष तत्वों से काफ़ी भिन्न 'शक्तियां' (Faculties) व्यापक सामूहिक तत्वों (Broad group factors) में प्रकट होती हैं। स्पियरमैन स को और 'मानसिक शक्ति' (Mental energy) को एक मानता है। वह स को और 'बुद्धि' को, जैसा कि मामूली व्यक्ति उसे समझता है, अभिन्न नहीं मानता। इसका सभी प्रकार के ज्ञानात्मक कार्यों में बहुत बड़ा हाथ होता है। यह मत निर्दोष प्रतीत होता है।[1]

१२. विशेष योग्यताओं का सामान्य योग्यता से अनुबन्ध (Correlation of Special Abilities with General Ability)

बिने-साइमन परीक्षाओं और अन्य निष्पादन-परीक्षाओं की योजना सामान्य बुद्धि को मापने के लिये बनाई गई है। अन्य परीक्षायें विशेष योग्यताओं को मापने के लिये हैं।

[1] रौस : शिक्षा-मनोविज्ञान, पृ० २१२-२७

व्यक्तियों के एक ही समूह की परीक्षा दो विशेष योग्यताओं में हो सकती है। यदि हमारा उद्देश्य यह निश्चित करना है कि व्यक्तियों में दो गुण कितनी मात्रा में सम्भवतः साथ रह सकते हैं तो हम उनके सम्बन्ध को माप सकते हैं और उसे अनुबन्ध गुणक (Coefficient of correlation) के रूप में लिख सकते हैं। उदाहरणार्थ, बुद्धि और ऊँचाई के सम्बन्ध को निर्धारित करने के लिये हम व्यक्तियों के एक समूह की परीक्षा ले सकते हैं और उन्हें उनके क्रम में रख सकते हैं। यदि बुद्धि और ऊँचाई में कोई भावात्मक अनुबन्ध (Postive correlation) होगा तो हम पायेंगे *कि सबसे ऊंचा व्यक्ति सबसे अधिक बुद्धिमान है और सबसे ठिंगना व्यक्ति* सबसे कम बुद्धिमान। यदि यह सम्बन्ध वस्तुतः होगा तो अनुबन्ध गुणक +१'० होगा। इसके विपरीत, यदि ऊंचाई और बुद्धि में विरोध होगा तो हम पायंगे कि सबसे ठिंगना व्यक्ति सबसे अधिक बुद्धिमान है और सबसे लम्बा व्यक्ति सबसे कम बुद्धिमान। ऐसी हालत में अनुबन्ध-गुणक -१'० होगा। यदि उनके सम्बन्ध जितनी बार अनुलोम हैं उतनी ही बार विलोम भी हैं तो अनुबन्ध कुछ नहीं होगा, अर्थात् उनका अनुबन्ध-गुणक-० होगा। यदि केवल कुछ अपवादों को छोड़कर उनमें अनुलोम सम्बन्ध पाया जाता है तो एक उच्च भावात्मक अनुबन्ध होगा जिसे +'६ इत्यादि संख्याओं से प्रकट किया जायगा। लेकिन यदि अपवाद बहुत हैं तो न्यून भावात्मक अनुबन्ध होगा जिसे +'२ इत्यादि से प्रकट किया जायगा।

स्पियरमैन का मत है कि प्रत्येक मानवीय योग्यता में दो तत्व होते हैं, एक सामान्य योग्यता या स और एक विशेष योग्यता या वि। विभिन्न *विशेष योग्यताओं में कुछ अनुबन्ध की उपस्थिति एक सामान्य योग्यता या* स के अस्तित्व का परोक्ष प्रमाण है। एक सामान्य योग्यता और एक विशेष योग्यता का सम्बन्ध अनुबन्ध-गुणक से निर्धारित किया जा सकता है।

अध्याय २१

व्यक्तित्व (PERSONALITY)

१. व्यक्तित्व (Personality)

व्यक्तित्व व्यक्ति के सभी गुणों और प्रतिक्रिया-प्रवृत्तियों की संगठित एकता है। (Personality is the synthetic unity of all the characteristics and reaction tendencies of a person in their intimate interplay) । व्यक्तित्व में इन सब का कार्य घनिष्ट रूप से मिला-जुला होता है। व्यक्तित्व के तत्वों को विश्लेषण करके पहिचाना जा सकता है। वे अन्योन्याश्रित भागों की एक अंगांगित्वपूर्ण समष्टि (Organic whole) बनाते हैं। व्यक्तित्व अलग-अलग भागों का योग मात्र नहीं है। व्यक्तित्व का संकेत लक्षणों (Traits) की एक सूची या समूह मात्र की ओर नहीं है बल्कि लक्षणों की एक समष्टि की ओर है। व्यक्तित्व के लक्षण हमें यह बताते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार व्यवहार करता है। वे उसके कार्य करने की विशिष्ट शैली (Style) को प्रदर्शित करते हैं। "व्यक्तित्व में सम्पूर्ण व्यक्ति का समावेश होता है। व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुये हम कह सकते हैं कि वह व्यक्ति के गठन (Constitution), रुचि के प्रकारों, अभिवृत्तियों, व्यवहार, क्षमताओं, योग्यताओं और प्रवणताओं (Aptitudes) का सबसे निराला संगठन (Integration) है" (म्यूरहेड)। कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के कारण दूसरों से अलग पहिचाना जाता है। व्यक्तित्व में व्यवहार के स्थायी पहलू (Permanent aspects) शामिल हैं। "व्यक्तित्व की परिभाषा यह हो सकती है कि वह व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण (Total quality) है। व्यक्तित्व का लक्षण व्यवहार का कोई विशेष गुण होता है, जैसे, प्रफुल्लता या आत्म-विश्वास। समग्र व्यक्तित्व इन लक्षणों का योग होता है, लेकिन यह पृथक गुणों का योग मात्र नहीं है बल्कि कुछ और भी है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति हंसमुख और आत्म-विश्वासी मात्र नहीं है; बल्कि वह हंसमुख होते हुए

आत्म-विश्वासी है" (वुडवर्थ)। व्यक्तित्व में कुछ एकता होती है। प्रत्येक व्यक्ति की सामाजिक परिवेश में प्रतिक्रिया करने की अपनी निराली शैली होती है। इससे उसका व्यक्तित्व बनता है। किसी व्यक्ति को आंकने में हमें रूप और अन्य शारीरिक लक्षणों; व्यवसाय और मनोरंजन की रुचियों, प्रवणताओं और योग्यताओं; बुद्धि, स्मृति, कल्पना, तर्क और अन्य मानसिक आदतों; चरित्र और नैतिक लक्षणों; सामाजिकता; स्वभाव या संवेगात्मक लक्षणों तथा संकल्प के लक्षणों का विचार करना चाहिये।

व्यक्तित्व के तत्त्व—व्यक्तित्व के लक्षण (Factors of Personality—Personality Traits)

(१) *शारीरिक लक्षण (Physical traits)*—व्यक्तिगत रूप, जैसा कि ऊँचाई, भार, गठन, चेहरे की अभिव्यक्तियाँ, रंग, आवाज़, पोशाक और अन्य व्यक्तिगत लक्षणों से प्रदर्शित होता है, व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। शारीरिक लक्षण समग्र व्यक्तित्व के प्रमुख पहलू हैं। वे अन्य व्यक्तियों पर प्रबल प्रभाव डालते हैं।

(२) *बुद्धि (Intelligence)*—मानसिक लक्षण, जैसे, बुद्धि, निरीक्षण, स्मृति, कल्पना, ध्यान, निर्णय, तर्क, व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं। बुद्धि का अर्थ है 'जीवन की समस्याओं का मुक़ाबला करने, उन्हें सुलझाने की योग्यता। यह सोचने की योग्यता से सम्बन्धित है। मानसिक सतर्कता को भी बुद्धि के साथ रहना चाहिये। अर्जित योग्यतायें और विशेष प्रवणतायें, यथा, व्यावसायिक रुचियाँ भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।

(३) *स्वभाव (Temperament)*—संवेगात्मक लक्षण और प्रवृत्तियाँ व्यक्तित्व के प्रमुख लक्षण हैं। हम पूछते हैं : क्या व्यक्ति शान्त है या उद्दीप्त होने वाला है, हंसमुख है या उदास रहने वाला, साहसी है या कायर ? कहा जाता है कि अन्तरासर्गी ग्रन्थियों से निकलने वाले न्यासर्गों के कारण स्वभाव में अन्तर होते हैं। संवेगशीलता (Emotionality) का व्यक्तित्व से बहुत-कुछ सम्बन्ध है।

(४) संकल्प और चरित्र (*Volition and character*)—संकल्पात्मक लक्षण अथवा कृतिशक्ति तथा नैतिक चरित्र व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण लक्षण हैं। संकल्प ऐच्छिक कर्मों का नियंत्रण है। हम पूछते हैं : क्या व्यक्ति फुर्तीला है या सुस्त, दृढ़संकल्प है या अस्थिरसंकल्प? चरित्र से हमारा मतलब व्यक्ति के नैतिक लक्षणों से है। इसमें उन प्रतिक्रियाओं का समावेश होता है जिनका सम्बन्ध हमारी नैतिक और धार्मिक नियमावलियों से तथा हमारे व्यक्तिगत रूप से अंगीकृत आचरण के आदर्शों से है।

(५) सामाजिकता (*Sociability*)—सामाजिक लक्षण व्यक्तित्व के सबसे महत्वपूर्ण पहलू को बनाते हैं। किसी व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों के प्रति कौन-सी विशिष्ट अभिवृत्तियां हैं? वह उनके आचरण और अभिवृत्तियों के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करता है? क्या वह सामाजिक दृष्टि से आक्रामक है या भागने वाला, अभिमानी है या विनम्र, सहानुभूतिशील है या तटस्थ? विभिन्न व्यक्तियों में सामाजिकता की विभिन्न मात्रायें होती हैं।

(६) सशक्तता या दृढ़ता (Forcefulness or persistence)—यह व्यक्तित्व का सबसे प्रधान तत्व है। व्यक्तित्व का यह लक्षण सफलता के लिये अनिवार्य है। अत्यधिक उत्कृष्ट व्यक्ति सशक्तता या दृढ़ता के अभाव के कारण जीवन में प्रायः असफल होते हुये पाये जाते हैं। इनकी असफलता का कारण प्रयोजन और प्रयत्न की दृढ़ता का अभाव होता है। कई व्यक्ति जो मामूली योग्यता रखते हैं, अपनी दृढ़ता के कारण ऐसे व्यक्तियों से आगे बढ़ जाते हैं। व्यक्तिगत सफलता के लिये योग्यता और दृढ़ता आवश्यक हैं। ये सभी लक्षण व्यक्ति के अन्दर संगठित होते हैं। पूर्ण संगठन (Complete integration) या एकता व्यक्तित्व का आदर्श है।

जिन अनेक दृष्टिकोणों से हम किसी व्यक्ति को देखते हैं, वे व्यक्तित्व की विमायें (Dimensions) या लक्षण कहलाते हैं। इन व्यक्तित्व के लक्षणों की माप व्यक्तित्व की परीक्षाओं से होती है।

३. व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम तथा परिवेश (Heredity and environment) दो प्रधान तत्त्व हैं। वंशानुक्रम व्यक्ति को जन्मजात शक्तियाँ या संभावितायें (Potentialities) प्रदान करता है। परिवेश उसे इन संभाविताओं की सिद्धि के लिये सुविधायें प्रदान करता है।

भौतिक परिवेश (Physical environment) व्यक्ति के मन पर प्रबल प्रभाव डालता है। जलवायु, भूमि, पेड़-पौदे और जानवर, भोजन इत्यादि व्यक्ति को कठिनाइयां सहन करने वाला या आरामतलब, बलवान या दुर्बल, परिश्रमी या आलसी बनाते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व पर सामाजिक परिवेश (*Social environment*) और भी अधिक प्रबल प्रभाव डालता है।

परिवार में बालक का कार्य (The role of the child in the home)—यदि माता-पिता बालक को अपनी रक्षा करने और कठिन परिस्थितियों पर अधिकार करने के पर्याप्त प्रोत्साहन और अवसर प्रदान करते हैं, तो वह एक आत्मनिर्भर, दबंग और आत्मविश्वासी व्यक्ति बन जायगा। यदि मां-बाप आवश्यकता से अधिक सतर्कता अपनाते हैं और बालक का रक्षण ज़रूरत से ज़्यादा करते तथा उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, तो वह एक पर-निर्भर, निर्बल और आत्मविश्वास-रहित व्यक्ति बन जायगा।

अल्फ्रेड एडलर परिवार में बालक के जन्म-क्रम (Birth order) को अत्यधिक प्रधानता देता है। एकलौते बच्चे की, जो मां-बाप का लाड़ला होता है, अत्यधिक पर-निर्भर और कठोर-हृदय बन जाने की आशंका होती है। सबसे बड़े बच्चे की, जो किसी हद तक अपने नवागन्तुक भाई या बहिन के कारण मां-बाप के लाड़-प्यार से वंचित हो जाता है, ईर्षालु तथा स्वामित्व और विशेषाधिकार (Authority and privilege) में विश्वास करने वाला हो जाने की सम्भावना रहती है। दूसरा बच्चा, जो

पहिले बच्चे को उसके विशेषाधिकार से वंचित करने का इच्छुक होता है, पूर्वस्थापित व्यवस्था (Established order) के विरुद्ध विद्रोह करने वाला हो सकता है। सबसे छोटा बच्चा, जो परिवार में सदैव 'मुन्ना' बना रहता है, अत्यधिक पर-निर्भर, सेवा और सहायता के लिये सदैव दूसरों का मुँह ताकने वाला हो सकता है। अवांछित बच्चे की, जो परिवार की घृणा का भाजन होता है, अपराधी, सामाजिक परिवेश से अपना समायोजन न कर सकने वाला बन जाने की सम्भावना होती है।

बालक का अपने गिरोह में कार्य (The role of the child in the gang)—परिवार में बालक के कार्यों में बाधा होती है। वह अपने साथियों के संग अपनी योग्यताओं के लिये मुक्त अवसर प्राप्त करता है। गिरोह में उसका साहसपूर्ण कार्यों का प्रेम प्रकाशन पाता है। एक साहसी लड़का अपने गिरोह का नेता बन जाता है। उसके अन्दर नेतृत्व की जन्मजात योग्यता होती है। वह स्वभावतया अपने साथियों के दल का नेतृत्व करता है जो उसके आदेशों को क्रियान्वित करते हैं। एक लड़का ऐसा होता है जो साहसपूर्ण कार्यों की योजना बनाता है। वह गिरोह का 'मस्तिष्क' होता है। एक तीसरा लड़का साहसी शैतान ('dare-devil') होता है। वह योजना को कार्यान्वित करता है। एक लड़का ऐसा होता है जिसके माथे सबका दोष मढ़ा जाता है ('scape-goat') और जिसे दूसरे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये साधन बनाते हैं। विभिन्न जन्मजात योग्यतायें रखने वाले विभिन्न बालक गिरोह में अपने लिये उचित स्थान ढूँढ़ लेते हैं और अपनी योग्यताओं के अनुसार कार्य चुन लेते हैं। वे गिरोह में अपने स्थान और कार्य के अनुसार ही अपना विकास करते हैं।

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले समुदाय की "शैली" (The "style" of the group influencing personality)—बालक विकसित होकर प्रौढ़ बन जाता है। वह अपने को किसी समुदाय का सदस्य पाता है और बगैर जाने बूझे समुदाय की शैली को आत्मसात् करता है। समुदाय के नैतिक नियम, शिष्टाचार इत्यादि समुदाय के सदस्यों के व्यक्तियों पर गहरी छाप छोड़ते हैं।

लोकाचार (*The 'mores' or folk-ways*)—समुदाय की नियमावली के अतिरिक्त लोगों का सामान्य नैतिक वातावरण भी व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रबल प्रभाव डालता है। लोगों के व्यवहार के तरीकों के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं बच सकता। यहाँ तक कि एक प्रतिभासम्पन्न या लोकापकारक व्यक्ति भी उनके प्रभाव से नहीं बच सकता। एक हिन्दुस्तानी अज्ञात रूप में अपने सामाजिक परिवेश से भाग्यवाद (Fatalism) को ग्रहण कर लेता है। एक अंग्रेज़ अज्ञात रूप से आत्म-विश्वास और स्वयं प्रयत्न करने के गुणों को अपना लेता है। इस प्रकार सामाजिक परिवेश व्यक्ति के व्यक्तित्व को शक्तिपूर्वक ढालता है।[1]

न्यासर्गों (Hormones) का व्यक्तित्व से क्या सम्बन्ध है—इसका वर्णन पहिले ही संवेगों और प्रणालीविहीन ग्रन्थियों के प्रसंग में किया जा चुका है।

३. व्यक्तित्व के प्ररूप (Types of Personality)

संवेगात्मक स्वभाव (Temperament) के अनुसार व्यक्तित्व के चार प्ररूप हैं; (१) प्रफुल्ल, (२) उदास, (३) चिड़चिड़ा, और (४) अस्थिर।

(१) *प्रफुल्ल (Elated)*—कुछ व्यक्ति सदैव प्रफुल्ल और प्रसन्न रहते हैं। वे हमेशा आशावादी (Optimistic) और खुशमिज़ाज रहते हैं। वे किसी चीज़ को गम्भीरतापूर्वक नहीं ले सकते। अतएव वे प्रायः विपत्ति में पड़ जाया करते हैं।

(२) उदास (*Depressed*)—कुछ व्यक्ति सदैव उदास और खिन्नमना होते हैं। वे निराशावादी (Pessimistic) होते हैं। वे निरन्तर संवेगात्मक उदासी से पीड़ित रहते हैं।

(३) *चिड़चिड़ा (Irritable)*—कुछ लोग सदैव चिड़चिड़े रहते हैं। उनका दिमाग़ हमेशा गर्म रहता है। वे कुछ न कुछ तमाशा हर वक्त बनाये

---

[1] वुडवर्थ: मनोविज्ञान, पृ० १७१-८४

रहते हैं। न उनमें प्रसन्न होने की प्रवृत्ति होती है और न खिन्न होने की। ये हमेशा लड़ाई का अवसर खोजते रहते हैं और प्रायः उन्हें पा भी जाते हैं।

(४) *अस्थिर* (*Unistable*)—कुछ लोग एक क्षण में प्रफुल्ल रहते हैं और दूसरे ही क्षण उदास, यद्यपि इस परिवर्तन का कोई कारण नहीं दिखाई देता। उनको संवेगों के दौरे (*Fits*) से आते रहते हैं। उनका मिज़ाज सन्तुलित नहीं रहता।

सामाजिकता की दृष्टि से युंग (Jung) ने लोगों को बहिर्मुखी (Extroverts) और अन्तर्मुखी (Introverts) व्यक्तियों में विभाजित किया है।

(१) *बहिर्मुखी*—बहिर्मुखी व्यक्तियों में मानसिक शक्ति (Energy) बाहर की ओर, सामाजिक परिवेश की ओर उन्मुख होती है। वे प्रत्येक सामाजिक परिस्थिति का मुकाबला वस्तुगत रूप से करते हैं। उनकी रुचि प्रायः अपने ही विचारों और संवेगों की अपेक्षा अन्य लोगों में होती है। वे प्रायः सामाजिक परिवेश में रुचि रखते हैं। वे अनायास ही उन घटनाओं में भाग लेते रहते हैं जो परिवेश में होती हैं। उनमें अनुभूति का प्राधान्य रहता है। वे मुक्त होकर सामाजिक आदान-प्रदान में भाग लेते हैं। वे निर्णय जल्दी कर सकते हैं और जल्दी अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करते हैं। वे व्यावहारिक और काम करने वाले होते हैं। वे वर्तमान में रहते हैं। सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ता, खिलाड़ी, अभिनेता इत्यादि इस वस्तुगत प्ररूप के अन्तर्गत आते हैं।

(२) *अन्तर्मुखी*—अन्तर्मुखी व्यक्तियों में मानसिक शक्ति उन्हीं के विचारों और अनुभूतियों की ओर उन्मुख होती है। वे सामाजिक परिवेश से खिंचे रहते हैं। वे विशेषतया अपने ही से सम्पर्क रखते हैं। वे निकटस्थ सामाजिक परिवेश की अपेक्षा अपने ही विचारों और अनुभूतियों में अधिक रुचि रखते हैं। उनमें विचार का प्राधान्य रहता है। वे मनन और चिन्तन में संलग्न रहते हैं। वे दूसरों को अपने विचारों से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। वे विचारों में खोये रहते हैं। वे भविष्य के बारे में सोचते हैं। वे आदर्शों के बारे में

सोचते हैं। जब कभी सामाजिक परिवेश में उनके सम्मुख कोई कठिनाई आ पड़ती है, तब वे उससे पीछे हट जाते हैं। वे प्रायः सामाजिक कार्यों में भाग नहीं लेते। वे भौतिक परिवेश में रुचि ले सकते हैं; यथा, पौदों, पशुओं, मशीनों इत्यादि में। वे शीघ्र-निर्णय नहीं कर पाते। उनका मन अस्थिर और दोलायमान होता है। वे कर्म की अपेक्षा विचार और योजनाओं को पसन्द करते हैं। वे अव्यावहारिक होते हैं। वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि, इत्यादि इस आत्मगत प्ररूप (Subjective type) के अन्तर्गत हैं।

युंग का सुझाव है कि जो व्यक्ति अपने जाग्रत जीवन में बहिर्मुखी होते हैं वे अपने अचेतन में अन्तर्मुखी होते हैं, और इसी प्रकार जो जाग्रत जीवन में अन्तर्मुखी होते हैं वे अचेतन में बहिर्मुखी। उनका अचेतन व्यक्तित्व उनके चेतन व्यक्तित्व का पूरक होता है। युंग एक मध्यवर्ती प्ररूप को भी मानता है जिसे उभयमुखी (Ambivert) व्यक्तित्व कहते हैं। उभयमुखी व्यक्ति बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी व्यक्तियों के बीच की कोटि के होते हैं। उनकी रुचियां प्रधानतः न अपने में होती है, न सामाजिक परिवेश में। सबसे अधिक संख्या उभयमुखी व्यक्तियों की होती है। बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी चरम प्ररूप (Extreme types) हैं। इसके अतिरिक्त, अपने ही विचारों और निरीक्षण में रुचि का अन्य लोगों में रुचि से आवश्यक द्वेष भी नहीं है। युंग व्यक्तियों को संवेदनाशील (Sensing), विचारशील (Thinking), अनुभूतिशील (Feeling) और सहज ज्ञान शील (Intuitive) प्ररूपों में भी विभाजित करता है। अतएव बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी का वर्गीकरण केवल एक अस्थायी परिकल्पना (Tentative hypothesis) है।

क्रेट्शमर (Kretschmer) उन्माद के दो प्ररूप बताता है, मैनिक-डिप्रेसिव इनसेनिटी (Manic-depressive insanity) (मनोविकृति विशेष जिसमें व्यक्ति के मनोजगत् में उत्थान-पतन होते रहते हैं)। और डिमेन्शिया प्रिकोक्स (Dementia Precox) या शिजोफ्रेनिया (Schizophrenia)। मैनिक-डिप्रेसिव व्यक्ति नियत काल के अन्तर पर उल्लासित

अवस्था से विपरीत अवस्था में पहुँच जाता है। उल्लास की अवस्था में वह फुर्तीला, उल्लसित, बातूनी, तथा अत्यधिक चंचल ध्यान के कारण काम करने के लिये अयोग्य होता है। विषाद की अवस्था में वही व्यक्ति रंजीदा, चिन्तामग्न और खिन्न होता है। डिमेन्शिया-प्रिकौक्स का रोगी परिवेश से पूरी तरह दूर रहता है और अपने चारों ओर होने वाली किसी भी घटना में रुचि नहीं लेता। मैनिक डिप्रेसिव व्यक्ति को चरम कोटि का बहिर्मुखी व्यक्ति माना जा सकता है; और डिमेन्शिया-प्रिकौक्स के रोगी को चरम कोटि का अन्तर्मुखी व्यक्ति।

५. व्यक्तित्व की माप (Measurement of Personality)

(१) *प्रश्नावली की विधि* (*The questionnaire method*)—इसका इस्तेमाल व्यक्तित्व के लक्षणों को मापने में होता है। निम्नलिखित प्रश्न बहिर्मुखी या अन्तर्मुखी व्यक्तियों को जानने के लिये हैं :—

"क्या आप लोगों के समूह के सामने बातचीत करना पसंद करते हैं?
क्या आप सदैव दूसरों को सहमत करने की कोशिश करते हैं?
क्या आप आसानी से दोस्त बना लेते हैं?
क्या आप अजनबियों के साथ सुविधा से रह सकते हैं?
क्या आप सामाजिक समूहों का नेतृत्व करना पसंद करते हैं?
क्या आप इसकी चिन्ता करते हैं कि लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं?
क्या आप अन्य लोगों के प्रेरकों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं?
क्या आप हीनता की अनुभूति से पीड़ित रहते हैं?
क्या आप जल्दी घबरा जाते हैं?
क्या आपकी भावनाओं पर आसानी से आघात होता है?

इनमें से पहिले पांच प्रश्नों के स्वीकारात्मक उत्तर बहिर्मुखी व्यक्तियों के लक्षण माने जाते हैं; अन्तिम पांच के स्वीकारात्मक उत्तर अन्तर्मुखी व्यक्तियों के (वुडवर्थ)।" प्रश्नावली की विधि से व्यक्तित्व के अन्य लक्षण भी मापे जा सकते हैं।

(२) *मूल्यकरण (Rating)*—व्यक्तित्व के लक्षणों को निश्चित या निकटतम संख्याओं में मापा जाता है और एक पार्श्व चित्र (Profile) तैयार किया जाता है। यह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रकृति का कुछ अनुमान कराता है। बच्चों का मूल्यकरण इस प्रकार होता है : कम क्रियाशील, साधारण क्रियाशील, या अत्यधिक क्रियाशील ; असहयोगशील, साधारण सहयोगशील, असामाजिक, साधारण सामाजिक, या अत्यधिक सामाजिक ; विनीत, उद्धत, या अत्यधिक उद्धत व्यक्तित्व के लक्षणों के मूल्यकरण-पैमाने (Rating scales) व्यक्ति के व्यक्तित्व के स्वरूप का कुछ अनुमान कराते हैं।

(३) *व्यवहार-परीक्षायें या निष्पादन-परीक्षायें (Behavior or Performance Tests)*—व्यवहार-परीक्षायें यह प्रदर्शित करती हैं कि जब किसी व्यक्ति का एक विशेष परिस्थिति से सामना होता है तो वह कैसे व्यवहार करता है। उदाहरणार्थ, बच्चों की बहिर्मुखता-अन्तर्मुखता की परीक्षा करने के लिये उन्हें कुछ परिस्थितियों में रखा जाता है और उनकी प्रतिक्रियाओं को अभिलिखित किया जाता है। बच्चों को किसी संग्रहालय (Museum) में ले जाया जाता है। कुछ बच्चे धीरे-धीरे एक वस्तु से दूसरी की ओर जाते हैं और उन पर कम ध्यान देते हैं। इससे अन्तर्मुखता प्रदर्शित होती है। अन्य जल्दी-जल्दी एक वस्तु से दूसरी की ओर जाते हैं और उन पर खूब ध्यान देते तथा उनमें अनायास (Spontaneous) रुचि प्रदर्शित करते हैं। यह बहिर्मुखता प्रदर्शित करता है। ऐसी व्यवहार-परीक्षायें बच्चों के साथ सफल हो सकती हैं। प्रौढ़ उनका उद्देश्य जान जाते हैं और कुछ विशिष्ट लक्षणों को प्रदर्शित करने के लिये जान-बूझ कर विशेष व्यवहार करते हैं।

(४) *प्रक्षेपण-विधि (Projective method)*—व्यक्ति परीक्षात्मक-परिस्थिति (Test situation) में अपना प्रक्षेप करता है और अपने व्यक्तित्व के कुछ "गहरे" तत्वों ("Depth" factors) को प्रकट करता है। रोर्शेश-परीक्षा में स्याही के धब्बों (ink-blots) का उपयोग होता है। परीक्षार्थी को एक-एक करके दस प्रामाणिक (Standardised) धब्बे दिखाये जाते हैं। उसे उन्हें विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने दिया जाता है।

विभिन्न व्यक्ति विभिन्न चीज़ें "देखते हैं।" कुछ सम्पूर्ण धब्बे पर ध्यान केन्द्रित करते हैं; अन्य उसके भागों पर। कुछ जानवरों को देखते हैं, कुछ पौधों को। ये प्रतिक्रियायें व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं को प्रकट करती हैं। उनका अर्थ ज्ञात करना होता है।

(५) *व्यक्ति के इतिहास का पुनर्गठन* (*Case history*)—इस विधि का उपयोग विशेष रूप से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को मापने में होता है जिसका व्यवहार समाज-विरुद्ध (Anti-social) होता है। उसके वंश, परिवार, शत्रु और मित्र, काम-सम्बन्धी (Sexual) अनुभवों, स्कूल और कालेज के जीवन में उसकी सफलताओं और विफलताओं के बारे में प्रासंगिक सामग्री को एकत्र किया जाता है। यह उसकी मानसिक विकृतियों पर प्रकाश डालती है।

मुक्त साहचर्य तथा स्वप्न-विश्लेषण (*Free association and dream analysis*)—मनोविश्लेषक व्यक्तित्व के "गहरे" तत्वों की माप मुक्त विचार-साहचर्य और व्यक्ति के स्वप्नों के विश्लेषण से करता है। पहिले वह उसका विश्वास प्राप्त कर लेता है। फिर वह रोगी को आराम से एक सोफ़े पर लेटने को कहता है, तथा अपनी कठिनाइयों के बारे में स्वच्छन्द होकर वार्तालाप करने का आदेश देता है। स्वच्छन्द वार्तालाप के दौरान में वह एक ऐसे स्थल पर पहुँच जायगा जहाँ पर उसे कुछ रुकावट का अनुभव होता है। वह अपने विचारों को स्पष्टतया प्रकट करने से हिचकता है, क्योंकि वह समझता है कि वे बहुत गन्दे हैं। विश्लेषक उसे उन्हें किसी रोक-टोक के बगैर प्रकट करने के लिये प्रोत्साहित करता है। कई बार इसी तरह बैठने पर उसके व्यक्तित्व के सार्थक तत्व प्रकट हो जा सकते हैं। तत्पश्चात् वह अपने बार-बार आने वाले स्वप्नों का वर्णन कर सकता है। मनोविश्लेषक उनका विश्लेषण करता है और उनके पीछे जो प्रेरक छिपे हुये हैं उनको मालूम करता है। इस प्रकार वह उसके व्यक्तित्व के अचेतन (Unconscious) प्रेरकों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता है। (मनोविश्लेषण देखिये।)[1]

[1] मन: मनोविज्ञान, अध्याय २४

अध्याय २२

व्यक्तित्व का सङ्गठन और विघटन

(INTEGRATION AND DISINTEGRATION OF PERSONALITY)

१. व्यक्तित्व का संगठन (Integration of Personality)

व्यक्तित्व सभी वैयक्तिक लक्षणों की संश्लिष्ट एकता है, सभी मानसिक लक्षणों—बुद्धि संवेगों और भावनाओं, आवेगों और संकल्पों, जन्मजात और अर्जित प्रतिक्रियाओं—को व्यवस्थित और संगठित करके एकसूत्रबद्ध करना चाहिये। सब मानसिक लक्षणों का व्यक्तित्व के रूप में एकताबद्ध होना संगठन कहलाता है। संगठन की पूर्णता व्यक्तित्व का आदर्श है। स्वस्थ व्यक्तित्व में प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्तियां होती हैं जो ढीले-ढाले तरीके से व्यवस्थित नहीं होतीं, बल्कि दृढ़ता के साथ सम्बन्धित या संगठित होती हैं। धीरे-धीरे उनकी पुनर्व्यवस्था या पुनर्गठन अधिक प्रभाव पूर्ण रुचियों और आदर्शों के अनुसार होता है। यद्यपि व्यक्तित्व दीर्घ कालावधियों में धीरे-धीरे बदलता रहता है, तथापि उसमें प्रायः नमूने की अविच्छिन्नता होती है जिसे स्वयं व्यक्ति और अन्य लोग पहिचानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक मौलिक या प्रधान आत्मा होता है। "प्रत्येक पहिचानता है कि उसमें कोई केन्द्रीय चीज़ है जो उसका बिल्कुल अन्तर में निवास करने वाला निराला आत्मा है। इसकी एक निराली एकता होती है। यह एकता यथाशक्ति बनी रहती है; इसका परिणाम होता है कुछ परिचित प्रतिक्रिया-प्रवृत्तियां तथा व्यवहार में कुछ संगति (Consistency)।"[1] व्यक्तित्व का संगठन प्रज्ञा (Intellect) का और चरित्र का संगठन है (मैकडूगल)। सभी विरोधी प्रतिक्रिया-प्रवृत्तियों में धीरे-धीरे सामंजस्य और व्यवस्था लाई जानी चाहिये और प्रधान प्रवृत्तियों के साथ उन्हें संगठित करना चाहिये। व्यक्तित्व को भली प्रकार संगठित और लचीला होना चाहिये। एक संगठित और अपरिवर्तनीय व्यक्तित्व अपने को

[1] गेट्स; प्रारम्भिक मनोविज्ञान : पृ० २२२

वे एक साथ काम नहीं करते। वे एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते। वे एक दूसरे से पृथक् भाग होते हैं। उनका एक समष्टि में संगठन नहीं होता। व्यक्ति एक संगठित समष्टि के रूप में काम नहीं करता, बल्कि अंशतः काम करता है।

ब्यूचैम्प (Beauchamp) एक युवती थी। उसका दोहरा व्यक्तित्व (Double personality) था। प्रारम्भिक जीवन में उस पर बड़ी बाधायें पड़ीं थीं। इनसे बाध्य होकर उसने एक अत्यधिक धार्मिक, नैतिक और त्यागपरक रुख अपना लिया था। लेकिन समय-समय पर उसका आचरण शरारत भरा हो जाता था। बाद में, मनश्चिकित्सा (Psychiatric treatment) के दौरान में उसमें एक तीसरे व्यक्तित्व का उदय हो गया जिसकी प्रवृत्तियां आक्रामक और स्वार्थपरक थीं। पहिली मुख्य अवस्था में उसे दूसरी और तीसरी अवस्थाओं के अनुभवों की स्मृति नहीं रहती थी। इस प्रकार, ब्यूचैम्प में दो व्यक्तित्वों से तीन का उदय हो गया। चिकित्सक ने सम्मोहन (Hypnosis), निर्देश (Suggestion), और उसकी स्मृतियों और उसके लक्ष्यों को संगठित करने की विधि से इन तीन टुकड़ों को मिलाकर एक पूर्ण व्यक्ति को बनाने का प्रयत्न किया।[1]

४. हिस्टीरिया (Hysteria)

हिस्टीरिया बहुविध (Multiple) व्यक्तित्व से सम्बन्धित है। हिस्टीरिया के रोगियों में विचारों की एकता का पृथक् टुकड़ों में विभक्त होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। और ऐसा मुख्यतया उस अवस्था में पाया जाता है जब वे निर्देश की शक्ति के प्रभाव से विचारों को अविवेकपूर्वक स्वीकार करते हैं। वे मोह-निद्रा में हो जाते हैं और शरीर के ऊपर उनका शासन नहीं रहता। वे उन सभी गतियों को करते हैं जिनकी आवश्यकता साधारण चेतना को होती है, लेकिन उन्हें उनका ज्ञान नहीं होता। कभी-कभी उनके किसी अंग में निश्चेष्टता (Paralysis) आ जाती है। लेकिन इसका कारण कोई शारीरिक आघात नहीं होता। इसका एकमात्र कारण निर्देश होता है। वे अत्यधिक

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान, पृ० १०५

निर्देशग्राही (Suggestible) होते हैं। जब वे साधारण चेतना की दशा में आते हैं तो मोहनिद्रा में जो कुछ हुआ है उसकी स्मृति उन्हें बिल्कुल नहीं रहती, और वे अपनी साधारण दिनचर्या में संलग्न हो जाते हैं।

५. सम्मोहन की दशा में निर्देश और सम्मोहनोत्तर निर्देश (Hypnotic Suggestion and Post-hypnotic Suggestion)

सम्मोहन की दशा मोहनिद्रा की दशा है जिसकी उत्पत्ति किसी व्यक्ति में निर्देश के कारण होती है। व्यक्ति को "विषय" या "माध्यम" (Subject or medium) कहते हैं। जो व्यक्ति उसे मोहनिद्रा में डालता है उसे "निर्देशक" (Operator) कहते हैं। "विषय" अंगों को फैलाकर और पेशियों को ढीला करके लेटता है। धीरे-धीरे निर्देश की शक्ति से अभिभूत होकर वह मोहनिद्रा की अवस्था में पहुँच जाता है। उसकी सब बाह्य वस्तुओं की चेतना लुप्त हो जाती है। केवल "निर्देशक" के निर्देशों का उसे ज्ञान रहता है। सारे शरीर पर से उसकी नियंत्रण शक्ति लुप्त हो जाती है। उसका मन अत्यधिक निर्देशग्राही हो जाता है। वह निर्देशक के निर्देशों की प्रतिक्रिया करता है। निर्देशक उसे जिन विचारों का भी सुझाव देता है उन्हें वह बगैर समझे-बूझे मान लेता है। उसके आदेशों का वह यंत्रवत पालन करता है। निर्देश के शासन में वह विभिन्न व्यक्तियों के रूप में कार्य करता है। यह चेतना के विच्छेद की स्पष्ट अवस्था है। जब माध्यम मोहनिद्रा से उठता है तो उसमें उसने जो कुछ किया है उसे वह भूल जाता है। अतएव मोहनिद्रा में माध्यम अपने साधारण व्यक्तित्व को खो देता है।

कभी-कभी "निर्देशक" "माध्यम" को मोहनिद्रा की अवस्था में जाग्रत अवस्था में किसी काम को करने का निर्देश देता है और "माध्यम" मोहनिद्रा से उठकर नियुक्त समय पर अधोचेतन बाध्यता के वशीभूत होकर यंत्रवत उसे कार्यान्वित करता है। इसे सम्मोहनोत्तर निर्देश कहते हैं।

६. उन्माद या पागलपन (Insanity)

उन्माद चेतना के विच्छेद के कारण उत्पन्न होने वाली एक मानसिक विकृति है। इसके कई रूप होते हैं, यथा, मैनिया (Mania), मेलंकोलिया

(Melancholia), डिमेन्शिया (Dementia) इत्यादि। मैनिया में अत्यधिक मानसिक उद्दीप्ति होती है और उसके पश्चात तीव्र सन्निपात (Delirium)। मेलंकोलिया में अत्यधिक मानसिक अवसाद (Depression) होता है। डिमेन्शिया में व्यक्तित्व की हानि हो जाती है। पहिले उन्माद का कारण स्नायविक अव्यवस्था को माना जाता था। लेकिन फ्रॉयड और उसके अनुयायियों ने इसका मुख्य कारण दबी हुई अचेतन इच्छाओं को बताया है।

७. मनोविश्लेषण : (१) चिकित्सा-प्रणाली (Psychoanalysis : (1) Method of Treatment)

चारकोट (Charcot) का विश्वास था कि हिस्टीरिया शरीर की एक रुग्णावस्था है। वह सम्मोहन की प्रणाली से हिस्टीरिया की चिकित्सा करता था। उसका शिष्य, मौर्टन प्रिंस (Morton Prince) बहुविध या विच्छिन्न व्यक्तित्व की चिकित्सा में सम्मोहन का उपयोग करता था। जैने (Janet) मानसिक स्वयंगतियों (Automatisms) की चिकित्सा सम्मोहन से करता था। उसे मालूम हुआ कि बहुत अर्से से विस्मृत संवेगिक आघात (Emotional shocks) मोहनिद्रा की अवस्था में आसानी से याद किये जा सकते हैं और आसानी से उनका वर्णन किया जा सकता है, यद्यपि जाग्रत अवस्था में ऐसा नहीं हो सकता। इन संवेगिक आघातों की चिकित्सा निर्देश से की जाती थी। जैने की धारणा थी कि स्नायविक विकृतियों (Neuroses) का कारण निम्न मानसिक तनाव (Low mental tension) या जीवन की कठिनाइयों पर विजय पाने की संगठनकारी शक्ति (Synthetic power) और संकल्प का अभाव है। सिगमंड फ्रॉयड ने हिस्टीरिया के इलाज में सम्मोहन का इस्तेमाल करने में पेरिस में चारकोट के साथ काम किया। वह चारकोट के इस कथन को सुनकर स्तब्ध रह गया कि स्नायविक विकृति की हर एक हालत में सदैव व्यक्ति के काम-सम्बन्धी जीवन में कोई कठिनाई होती है। यह एक महत्त्वपूर्ण सुझाव था। फ्रॉयड ने इसे स्वीकार किया और इस पर काम किया। वह वियाना वापस आया और हिस्टीरिया के इलाज में सम्मोहन-विधि का इस्तेमाल करता रहा। इस विधि में उसे

कुछ कठिनाइयां मिलीं। कई स्नायु-विकृति के रोगी ऐसे थे जिन्हें सम्मोहित नहीं किया जा सकता था। सम्मोहन से स्वास्थ्य-लाभ भी सदैव नहीं होता था। सम्मोहन की अवस्था में मुफ़्त इलाज कराने वाले रोगियों को स्वास्थ्य-कारी निर्देशों (Curative suggestions) से लाभ हो सकता था। लेकिन व्यक्तिगत (Private) रोगी इतने अधिक बुद्धिमान थे कि उनसे वे पूरा लाभ नहीं उठा सकते थे। तत्पश्चात् फ्रॉयड ने ब्रूयर (Breur) के साथ काम किया, जो वियाना का एक चिकित्सक था, और उसने वही सम्मोहन-प्रणाली जारी रखी। ब्रूयर को मालूम हुआ कि एक जवान रोगिणी को काफ़ी लाभ हुआ, जब उसे सम्मोहित अवस्था में अपनी सांवेगिक कठिनाइयों के बारे में बातचीत करने दी गई। ब्रूयर और फ्रॉयड ने कुछ सफलता के साथ मोहनिद्रा में वार्तालाप की विधि को जारी रखा। लेकिन जब ब्रूयर ने एक रोगिणी को यह कहते सुना कि वह उससे अलग नहीं हो सकती, क्योंकि उसका उससे भयानक प्रेम हो गया है, तो उसने इस चिकित्सा-पद्धति को छोड़ दिया। लेकिन फ्रॉयड इससे हतोत्साहित नहीं हुआ। वह भी स्वयं शीघ्र ही इस कठिनाई में पड़ा। उसने यह मत प्रकट किया कि इसका कारण एकमात्र यह है कि रोगी मनोविश्लेषक को अपने प्रेम की प्रारम्भिक वस्तु का स्थानापन्न बना देता है। इसे स्थानान्तरण (Transference) कहते हैं। उसने निर्वैयक्तिक रुख (Impersonal attitude) अपना कर इस कठिनाई से पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् फ्रॉयड ने सम्मोहन को त्याग दिया और केवल वार्तालाप की विधि को ही जारी रखा। वह "विषय" को आधी लेटी हुई मुद्रा में रखता था तथा उसे शिथिल होने और अपनी कठिनाइयों और उनके कारणों पर ध्यान केन्द्रित करने को कहता था। स्नायु-विकृति की चिकित्सा में शिथिलता की अवस्था में मुक्त-साहचर्य (Free association) की विधि को फ्रॉयड ने सम्मोहन का स्थानापन्न बनाया। किन्तु इस पद्धति को खोज निकालने का श्रेय अंशतः ब्रूयर को है।

२. मनोविश्लेषण का सिद्धान्त (Theory of Psycho-analysis)

फ्रॉयड ने धीरे-धीरे अपने सिद्धान्त का विस्तार किया। उसे ज्ञात हुआ

कि स्नायु-विकृति के लक्षण, स्वप्न, कहने और लिखने की भूलें, इत्यादि प्रधान रूप से काम-सम्बन्धी दबी हुई इच्छाओं और भावनाग्रन्थियों (Complexes) के सीधे या परोक्ष प्रकाशन हैं। अतएव फ्रॉयड ने वार्तालाप या मुक्त-साहचर्य की विधि से और स्वप्नों का अर्थ निकालने (Dream Interpretation) की विधि से अचेतन काम-वासनाओं को ऊपर निकालने का प्रयत्न किया। मुक्त-साहचर्य और स्वप्न विश्लेषण की अपनी नवीन विधियों की सहायता से फ्रॉयड कई स्नायु-विकृति के रोगियों को स्वस्थ करने में सफल हुआ। वह दबे हुए अनुभवों को पुनर्जीवित करने में समर्थ हुआ और हिस्टीरिया-सम्बन्धी स्तम्भ (Paralysis), संवेदनाशून्यता (Anaesthesias), तथा स्नायु-विकृति-सम्बन्धी भयों और निरोधों (Inhibitions) का इलाज कर सका। लेकिन उसे ज्ञात हुआ कि उसके रोगी, यद्यपि एक बार चंगे होकर लौट गये थे, कुछ समय पश्चात् फिर अन्य शिकायतों को लेकर वापस आते हैं। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वह केवल हाल की दबी हुई ग्रन्थियों को मालूम करने में ही समर्थ हो सका है। अब उसकी इच्छा उस प्रारम्भिक ग्रन्थि को ढूँढ निकालने की हुई जो किसी विशेष सांवेगिक आघात के कारण हुई थी। कई हिस्टीरिया की रोगिणियों को वह स्वप्न-विश्लेषणों के द्वारा बचपन से सांवेगिक आघातों को स्मरण करने में मदद कर सका। उन्हें याद आया कि उनके पिता, चाचा या बड़े भाइयों ने कामवासना से अभिभूत होकर उन पर हमला किया था। फ्रॉयड इस परिणाम पर पहुँचा कि जो कुछ रोगियों को याद आया वह बचपन का कोई दिवा-स्वप्न या कल्पना-सृष्टि थी जिसमें "विषय" की कोई आलोचित इच्छा गर्भित थी। बाद के बचपन का दिवा-स्वप्न प्रारम्भिक बचपन की किसी अतृप्त इच्छा का प्रकाशन था। फ्रॉयड ने और गहरा विश्लेषण किया और प्रारम्भिक बचपन की सांवेगिक अभिवृत्ति (Emotional attitude) को पुनर्जीवित करने की कोशिश की। इसके लिये उसने मुक्त-साहचर्य की विधि को अपनाया। इस प्रकार फ्रॉयड ने स्नायु-विकृतियों के इलाज के लिये मनोविश्लेषण-पद्धति को मालूम किया।

फ्रॉयड के मतानुसार दबी हुई बचपन की कामुकता स्नायु-विकृति का कारण है। "फ्रॉयड दमन (Repression), कामेच्छा (Libido), और शैशवावस्था के महत्त्वों पर प्रधानतया बल देता है। उसका सिद्धान्त स्वप्नों और भूलों का, लेकिन विशेष रूप से स्नायु-विकृतियों का सिद्धान्त है। उसका मुख्य वचन है कि स्नायु-विकृति की उत्पत्ति बचपन की दबी हुई कामुकता (Repressed infantile sexuality) से होती है।"[1] दबा हुआ काम स्नायु-विकृतियों का कारण है, विशेष रूप से प्रारम्भिक बाल्यावस्था में। फ्रॉयड 'काम' शब्द को अत्यन्त विस्तृत अर्थ में लेता है। वह अंगूठा चूसना, वस्तुओं को काटना, और मुँह में रखना, मसलना और मसला जाना, हाथ-पैर की तालबद्ध गतियां, मल-मूत्र-त्याग इत्यादि को काम-तृप्ति के रूप मानता है। वह प्रेम के व्यवहार और मैत्री, तथा कला और संगीत के प्रेम का काम-तृप्ति में समावेश करता है। वह पिता, माता, भाई, बहन, सजीव और निर्जीव पदार्थों के प्रेम को काम में शामिल करता है। अन्य शब्दों में, वह काम को प्रेम से, उसके अति विस्तृत अर्थ में, अभिन्न मानता है। तथापि यदि उसके लिबिडो (काम) को कामहीन (Desexualize) करने का प्रयत्न किया जाय तो उसे आपत्ति होती है।

एडलर काम-वासना के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करता, लेकिन उसका मत है कि बच्चे के जीवन में उसका इतना व्यापक महत्त्व नहीं है जितना फ्रॉयड उसे देता है। स्वस्थापन (Self-assertion) का आवेग जीवन का प्रधान प्रेरक है। काम-वासना की अपेक्षा इसका प्रतिरोध सामाजिक परिवेश में अधिक होता है। हीन-भावना ग्रन्थि या हीनता की अनुभूति स्नायु-विकृतियों का कारण है। व्यक्ति की कल्पना सृष्टि काम की गुप्त रीति से तृप्ति नहीं है बल्कि हीनता की अनुभूति को दूर करने का एक काल्पनिक तरीका है। स्वप्न पुरानी कामेच्छाओं की सीधी या सांकेतिक तृप्ति नहीं है। उनका सम्बन्ध भविष्य से है, भूत से नहीं। वे किसी वास्तविक जगत् में आगे किये जाने वाले महत्त्वपूर्ण कार्य के एक प्रकार के

[1] वुडवर्थ : मनोविज्ञान के समसामयिक सम्प्रदाय, पृ० १२०

'रिहर्सल' (Rehearsal) हैं। वे इस बात को प्रकट करते हैं कि व्यक्ति की जीवन-शैली (Style of life) क्या है जिससे वह आने वाले संकट का सामना करेगा।

हीन-भावना-ग्रन्थि से स्नायु-विकृतियां भी होती हैं। हीनता की अनुभूति को दूर करके उनकी चिकित्सा हो सकती है। विषमायोजित स्नायु-विकृति के रोगी का इलाज करने के लिये धीरे-धीरे उसे उसकी हीन-भावना-ग्रन्थि और उच्चता प्राप्त करने के उसके अभ्यस्त तरीके का ज्ञान कराना चाहिये और इस प्रकार उसे यह मालूम कराना चाहिये कि उसमें सहयोग करने की शक्ति का अभाव है। उसे विश्वास दिलाना चाहिये कि वह भूल कर रहा है तथा उसे अपनी जीवन की योजना को बदलकर समाज से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।

युंग स्नायु-विकृतियों के इलाज में मुक्त-साहचर्य और स्वप्न-विश्लेषण की फ्रॉयड की पद्धतियों का उपयोग करता है। उसका मत है कि स्वप्न रोगी की वर्तमान समस्याओं के प्रति उसकी अचेतन अभिवृत्तियों को प्रदर्शित करते हैं। विश्लेषण से वह अपनी वर्तमान अवस्था तथा अतीत बचपन को समझ जाता है, और अपने अतीत अनुभव को अपने वर्तमान अनुभवों से संयुक्त करता है। युंग लिबिडो (काम) में काम-वासना (फ्रॉयड), शक्ति-प्राप्ति की इच्छा (एडलर) और जीवित रहने की इच्छा (Will to live) (शोपेनहावर) का समावेश कर देता है। यह समग्र जीवन-शक्ति (Vital energy) है जो वृद्धि, शक्ति और प्रजनन के लक्ष्यों की ओर उन्मुख होती है। भोजन खाने में बच्चे का सुख लिबिडो से उत्पन्न होता है, लेकिन उसे काम-सुख नहीं कह सकते, क्योंकि इस समय तक कामेच्छा, जीवित रहने की मौलिक इच्छा से पृथक नहीं हुई है। युंग का मत है कि फ्रॉयड का दृष्टिकोण काम को महत्व देने में एकांगी था। उसका स्नायु-विकृति-सम्बन्धी सिद्धान्त भिन्न है। "स्नायु-विकृति जीवन से समायोजन करने का एक वर्तमान प्रयत्न है। यद्यपि यह एक असफल प्रयत्न है, तथापि कम से कम परिवर्तन और एक नये समन्वय (Synthe-

sis) को प्राप्त करने का प्रयत्न तो है ही। अतः स्नायु-विकृति की चिकित्सा करने के लिये मनोविश्लेषणकर्ता को इस नये समन्वय में सहायता पहुँचानी चाहिये, न कि केवल उसके भूतकालीन कारणों को ढूँढ़ना चाहिये, यद्यपि यह दूसरी पद्धति चिकित्सा की प्रारम्भिक भूमिका के रूप में उपयोगी है।" फ्रॉयड ने स्वप्नों और स्नायु-विकृतियों को दबी हुई कामेच्छाओं से प्रेरित बताया था। एडलर ने उन्हें शक्ति-प्राप्ति की इच्छा (Will to power) से प्रेरित बताया। युंग ने इस गुत्थी को मनोवैज्ञानिक प्ररूपों के अपने सिद्धान्त से सुलझाया। जो व्यक्ति शक्ति-प्राप्ति की इच्छा (एडलर) से प्रेरित होता है वह अन्तर्मुखी है और उसे अपनी रुचियों को अपने में केन्द्रित करना चाहिये। लेकिन वह व्यक्ति जो कामेच्छाओं से प्रेरित होता है बहिर्मुखी है, और उसे अपनी रुचियों को प्रेम की वस्तु पर केन्द्रित करना चाहिये।

८. अचेतन इच्छायें या प्रेरक (Unconscious Wishes or Motives)

फ्रॉयड का मत है कि कामेच्छायें, जिन पर समाज का प्रतिबन्ध होता है और जाग्रत जीवन में जिनकी तृप्ति नहीं हो पाती, दबा दी जाती हैं और वे अचेतन इच्छायें बन जाती हैं। वे सीधे या टेढ़े रूप में स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों और स्नायु-विकृतियों इत्यादि में तृप्ति पाने की चेष्टा करती हैं। फ्रॉयड की धारणा है कि चेतन और अचेतन के मध्य पूर्वचेतन (Preconscious) रहता है। "पूर्वचेतन का चेतन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह वह है जो चेतन बनने के लिये तय्यार रहता है, यद्यपि एक निर्दिष्ट क्षण में वस्तुतः चेतन नहीं होता। अचेतन वह है जिसका दमन कर दिया गया है; पूर्वचेतन, उसके समान जो कि क्षण भर के लिये चेतन है, वह है जिसका दमन नहीं किया गया है (वुडवर्थ)।" चेतन और अचेतन में विरोध होता है। स्वभावतः मनुष्य सुख के नियम (Pleasure principle) का अनुसरण करता है; वह अपनी इच्छाओं की तुरन्त तृप्ति चाहता है। लेकिन उसका सामना उसके सामाजिक परिवेश की वास्त-

विक्षताओं में होता है, जो उसे अपनी इच्छाओं का किसी हद तक दमन करने के लिये बाध्य करता है। अतएव, वह अपने स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों और अचेतन में सुख के नियम का अनुसरण करता है; लेकिन जाग्रत जीवन में वह वास्तविकता के नियम (Reality principle) का अनुसरण करता है।

एडलर का मत है कि दबाये हुये स्वस्थापन के आवेग से अचेतन का निर्माण होता है। "अचेतन हीन-भावना-ग्रन्थि और शक्ति-प्राप्ति के लिये चेतन प्रयत्न मिलकर एक सक्रिय एकता (Dynamic unity) को बनाते हैं।" एडलर चेतन का अचेतन से विरोध नहीं मानता। वे व्यक्ति के अन्दर दो पृथक्, परस्पर शत्रु भाव रखने वाली सत्तायें नहीं हैं, बल्कि एक ही इच्छाओं और प्रवृत्तियों को रखने के कारण एकसूत्र-बद्ध होते हैं।

युंग वैयक्तिक अचेतन (Personal unconscious) और सामूहिक या जातीय अचेतन (Collective or racial unconscious) में भेद बताता है। वैयक्तिक अचेतन में व्यक्ति की दबी हुई इच्छाओं (कॉम्प्लेक्स), तथा अन्य अनुभवों, जो चेतना से विच्छिन्न होने के कारण विस्मृत हो गये हैं, तथा अचेतन रूप में अर्जित अन्य सामग्री का निवास होता है। व्यक्ति का चेतन और अचेतन जीवन सामूहिक या जातीय अचेतन से विकसित होते हैं, जो शरीर के गठन में वंशक्रम प्राप्त होता है। इसमें मूलप्रवृत्तियाँ या कार्य करने के जन्मजात और आदिकालीन तरीके (Primitive ways), तथा 'आदिकालीन विचार' (Primordial ideas), 'आदि-रूप' (Archetypes), या सोचने के आदिकालीन तरीके निवास करते हैं। आदिकालीन विचार प्रतीकात्मक विचार (Symbolical thinking) था। हम विचार में जड़ पदार्थों में प्राणित्व का आरोप भी करते हैं। हमारे अन्दर जादू-टोने, भूत-प्रेतों, परियों, जादूगरनियों, राक्षसों इत्यादि के अस्पष्ट आदिकालीन विचार भी हैं। हमने सोच-विचार के इस आदिमजातीयता के तरीके को अभी तक नहीं छोड़ा है। यह निरन्तर हमारे विचार में प्रतीकों के रूप में प्रकट होता है।

६. मानसिक संघर्ष, दमन, भावनाग्रन्थियां और संघर्ष की शान्ति के लिये मानसिक क्रिया-विधि (Mental Conflict, Repression, Complexes and Mental Mechanism for Resolution of Conflict)

प्रेरक प्रायः परस्पर संघर्ष करते हैं। "संघर्ष के मुख्य स्रोत हैं: (१) प्रेरकों की पूर्ति में परिवेशगत बाधायें (Environmental obstructions) (२) व्यक्तिगत कमियां (Personal difficiencies) जो प्रेरकों और संघर्षशील प्रेरकों की पूर्ति में विघ्न उपस्थित करती हैं।"[१]

हमारी शारीरिक आवश्यकतायें तूफान, अकाल, बाढ़ और अन्य भौतिक घटनाओं के कारण अपूर्ण रह सकती हैं। अथवा अन्य व्यक्ति उनकी पूर्ति में बाधक हो सकते हैं। ये परिवेशगत बाधायें हैं। निम्न श्रेणी की बुद्धि-हीन स्मरण-शक्ति, नेतृत्व का अभाव, तथा अन्य वैयक्तिक दोष हमारी आवश्यकताओं या प्रेरकों की पूर्ति में बाधक हो सकते हैं। विरोधी प्रेरक, जो एक साथ सिद्ध नहीं हो सकते, हमें विभिन्न दिशाओं में खींचते हैं। इस प्रकार संघर्ष हमारे जीवन में अनिवार्य है।

(१) जब विरोधी प्रेरक हमें उलझन में डाल देते हैं, तो हम प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया (Trial and error process) से उसे दूर करने की कोशिश करते हैं। जब तक हम द्वन्द्व को समाप्त करने में सफल नहीं हो पाते तब तक हम विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करते रहते हैं। यदि कोई विद्यार्थी यह निर्णय नहीं कर पाता कि उसे मेरठ कॉलिज में जाना चाहिये या आगरा कॉलिज में तो उसे दोनों के बारे में यथाशक्ति पूरी सूचना एकत्रित करनी चाहिये और तब एक में जाने का निर्णय करना चाहिये।

(२) द्वन्द्व का अन्त क्षति-पूर्ति (Compensation) से किया जा सकता है। एक युवक का काम-प्रेरक जब विफल हो जाता है तो वह खेलों में अधिक ध्यान देता है। जब किसी कुरूप लड़की का काम-प्रेरक विफल हो जाता है तो वह विद्वत्ता पर अधिक ज़ोर देती है।

[१] मन : मनोविज्ञान, पृ० २४३

(३) द्वन्द्व का अन्त एकीकरण (Identification) से हो सकता है। एक युवक साहसी कार्य करने की अपनी इच्छा को किसी उपन्यास या चलचित्र के नायक के साथ अपना एकीकरण करके पूरा कर सकता है।

(४) दिवा-स्वप्न (Day-dream) संघर्ष के अन्त करने का एक अन्य उपाय है। जिस युवक की स्वस्थापन-प्रवृत्ति विफल हो गई है वह दिवा-स्वप्न देखा करता है। वह 'हवाई महल' बनाता है। वह अपने दिवा-स्वप्न का नायक बन जाता है। वह अपने कल्पना-जगत् में परिस्थिति पर शासन करता है। अत्यधिक दिवा-स्वप्न देखना खतरनाक है। इससे व्यक्ति वास्तविक जगत् से सम्पर्क तोड़ देता है और उसमें मानसिक विकृतियाँ हो जाती हैं।

(५) जिस व्यक्ति का अधिकार करने का प्रेरक विफल हो जाता है वह अन्यों को छोटा दिखाने (Belittling others) की कोशिश करता है। वह उन लोगों के दोष देखने को तत्पर रहता है जो वहां सफल हुये हैं जहां वह विफल हुआ है। वह अन्यों में दोष-दर्शन करके अपने अहंकार को तृप्त करता है।

(६) जिस व्यक्ति का अहंकार विफल हो चुका है वह अन्यों को दोषी ठहराता (Blaming) है। जो विद्यार्थी परीक्षा में असफल होता है वह 'खराब' अध्यापक, 'कठिन' पुस्तक, या 'असुविधाजनक' पढ़ाई के घंटों पर दोष डालता है। वह अपनी कमियों को मानने से इन्कार करके अपने आत्म-सम्मान को बनाये रखता है।

(७) कोई व्यक्ति संघर्ष से पलायन करने के लिये अपना प्रक्षेप (Projection) कर सकता है अर्थात् अपने विचारों या इच्छाओं का अन्यों में आरोप कर सकता है। वह स्वयं अपनी पत्नी की पति-भक्ति पर संदेह करता है। लेकिन वह संदेह करता है कि अन्य लोग सबके सामने उसकी पत्नी को गाली देते हैं। वह अपने संदेह का दूसरों में आरोप करता है।

(८) द्वन्द्व से परेशान व्यक्ति यौक्तिकीकरण (Rationalization) को अपना सकता है। वह अपने आचरण को अपने या दूसरों के सामने उचित

सिद्ध करने के लिये अच्छी युक्तियां ढूँढ़ सकता है। किसी देश का मंत्री अपने लाभ के लिये कोई काम कर सकता है। लेकिन वह कह सकता है कि उसने देश-भक्ति से प्रेरित होकर ऐसा किया है। आलसी छात्र यह कह कर अपनी अनध्ययनशीलता के लिए बहाना बना सकता है कि यदि वह अधिक अध्ययन करेगा तो उसका खराब स्वास्थ्य और भी खराब हो जायगा।

(९) कठिनाइयों का सामना होने पर कोई व्यक्ति रूठना, रोना, पांव मारना, चीज़ों को ठोकर मारना इत्यादि बालोचित प्रतिक्रियायें (Childish reactions) कर सकता है, जो कठिन परिस्थिति को सम्भालने के लिये अपर्याप्त हैं। कभी-कभी पति पत्नी पर और पत्नी पति पर रूठने, रोने, और धमकी देने से शासन करते हैं। ये प्रतिक्रियायें अवसर्पण (Regression) कहलाती हैं। यह प्रतिक्रिया के बालोचित या अपर्याप्त रूपों की ओर लौटना है।

(१०) कभी-कभी लोग विरोधी प्रेरकों के प्रति दुःखद प्रेरक को मन से हटाकर प्रतिक्रिया करते हैं। एक व्यक्ति अपनी लड़की की शादी करने की तीव्र इच्छा रखता है। लेकिन उसके पास ऐसा करने के साधन नहीं है। अतः वह इस कठिनाई की सत्ता ही नहीं मानता। कन्या का विवाह करने की इच्छा का दमन कर दिया जाता है और वह आराम के साथ निश्चिन्त घूमता है। प्रेरकों और परिस्थितियों को भूलने का प्रयत्न करना, उन्हें न मानना, या उनकी उपेक्षा करना दमन (Repression) कहलाता है। दबी हुई इच्छा एक ग्रन्थि बन जाती है। ग्रन्थि वेदना-संयुक्त विचार या विचार-समष्टि है। यह संवेग-युक्त विचार है। इसका अस्तित्व अचेतन या अधोचेतन मन में होता है। इसका उदय चेतन मन में स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों इत्यादि के रूप में होता है।

दमन और निरोध (Inhibition) में भेद है। निरोध जान-बूझ कर दबाना है। दमन अचेतन होता है। जब विद्यार्थी जानबूझ कर सिनेमा जाने की अपनी इच्छा को दबाता है और सतत अध्ययन करने का संकल्प करता है तो वह पहिली इच्छा का निरोध करता है। दमन में व्यक्ति वास्तविकता से आंखें मोद देता है। वह द्वन्द्व का सामना करने के स्थान पर उससे पलायन करत

है। दमन मानसिक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। हमें द्वन्द्व का सामना करना चाहिए और उस पर विजय पाने की कोशिश करनी चाहिए। दमन द्वन्द्व का उचित रूप से अन्त नहीं कर सकता।

संघर्ष का अन्त करने के लिए प्रयत्न और भूल की प्रतिक्रियायें, क्षतिपूर्तिकारक प्रतिक्रियायें तथा एकीकरण, दिवा-स्वप्न, दूसरों को छोटा दिखाना, और दूसरों पर दोष डालना, प्रक्षेप, अवसर्पण और दमन मानसिक क्रिया-विधियाँ हैं। लेकिन इनसे संघर्ष का अन्त नहीं हो सकता। ये केवल उनसे पलायन करने के तरीके हैं। संघर्ष उलझा ही रहता है।[1]

अध्याय २३

आत्मा या अहं (THE SELF)

१. द्रष्टा या शुद्ध अहं (The Subject or Pure Self)

चेतना सर्दैव व्यक्तिगत होती है, उसका किसी व्यक्ति या आत्मा से संबंध होता है। आत्मा द्रष्टा है जो चेतन है। द्रष्टा आत्मा विशुद्ध आत्मा या अहं है। यह चेतना की पूर्वसत्ता है। चेतना द्रष्टा की दृश्य के प्रति प्रतिक्रिया है। द्रष्टा या विशुद्ध अहं के बिना चेतना असम्भव है। व्यक्तित्व द्रष्टा या विशुद्ध अहं के अनुभवों का संगठन है। आत्मा की एकता के बिना अनुभवों का संगठन सम्भव नहीं है। विचार, अनुभूति, और संकल्प करने वाला आत्मा ही अपने अनुभवों और प्रतिक्रियाओं का अपनी प्रधान रुचियों और प्रवृत्तियों के अनुसार संगठन और व्यवस्था करता है।

द्रष्टा या विशुद्ध अहं अनुभव में अन्तर्निविष्ट होता है। लेकिन उसे अनुभव का विषय नहीं बनाया जा सकता। द्रष्टा के रूप में, दृश्य के रूप में नहीं, इसका अपरोक्ष ज्ञान हो सकता है। विशुद्ध अहं का अनुभवमूलक अहं (Empirical Self) से तादात्म्य नहीं हो सकता।

[1] मन : मनोविज्ञान, अध्याय १५

ह्यूम का विशुद्ध अहं का अनुभूतियों और विचारों के द्रुत अनुक्रम (Quick succession) से तादात्म्य स्थापित करना ग़लत था। जे० एस० मिल ने इसका चेतन दशाओं की अपने को जानने वाली श्रेणी (Self-conscious series) के साथ तादात्म्य किया था। यह भी ग़लत है। विलियम जेम्स ने इसका ग़लती से चेतना-प्रवाह (Stream of consciousness) के साथ एकीकरण किया था। उसके मतानुसार गुज़रने वाले विचार स्वयं विचारक हैं। विचार-धारा में प्रत्येक विचार अपने से पहिले विचारों को आत्मसात् करता है और उनके सम्बन्ध में विचारक का कार्य करता है। लेकिन वार्ड का कहना ठीक है कि द्रष्टा का अनुभवमूलक अहं से तादात्म्य नहीं हो सकता। वर्तमान, निर्णय और स्मरण करने वाला और अपने पूर्ववर्ती विचारों को आत्मसात् करने वाला विचार विशुद्ध अहं का काम नहीं कर सकता, जैसा कि जेम्स ग़लती से मान लेता है।

२. अनुभवमूलक अहं (The Empirical Self)

चेतना की सब अन्तर्वस्तुयें (Contents) जिनको मेरा कहा जाता है, अनुभवमूलक अहं को बनाती हैं। "अपने विस्तृततम अर्थ में मनुष्य का अनुभवमूलक अहं उन सब चीज़ों का जिन्हें वह अपना कह सकता है महायोग है, जिसमें न केवल उसके शरीर और मानसिक शक्तियों का, बल्कि उसके कपड़ों और मकान का, उसके स्त्री-बच्चों का, उसके पूर्वजों और मित्रों का, उसके यश और कार्यों का, उसकी भूमि और घोड़ों का, सबका समावेश होता है। ये सभी वस्तुयें उसमें एक ही संवेग जाग्रत करती हैं। जब ये प्रवृद्ध और सम्पन्न होती हैं तब उसे विजय की अनुभूति होती है, जब उनका पतन और मृत्यु होती है तब वह विपण्ण हो जाता है।"[1] इस प्रकार अनुभवमूलक अहं में भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक अहं का समावेश होता है।

३. भौतिक अहं (The Material Self)

शरीर भौतिक अहं का सबसे आन्तरिक अंग है; शरीर के कुछ भाग शारीरिक अहं के आवश्यक अंग होते हैं। उसके बाद वस्त्र आते हैं। वे हमारे

[1] जेम्स : मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक, पृ० १७७

भौतिक अहं के प्रमुख भाग हैं। मैं अपने वस्त्रों को अपना समझता हूँ। अच्छे और स्वच्छ कपड़े हमारे आत्म-सम्मान की वृद्धि करते हैं; गन्दे और फटे हुए कपड़े हमारे आत्म-सम्मान को घटाते हैं। "इसके बाद हमारे घर का स्थान है। उसके दृश्य हमारे जीवन के अंग हैं; इसके विभिन्न पहलू हमारे अन्दर प्रेम की कोमलतम अनुभूतियाँ जाग्रत करते हैं।"[१] फिर सम्पत्ति आती है। अपनी सम्पत्ति में मुझे ममत्व की अनुभूति होती है। इसके जिन भागों पर मेरे परिश्रम की छाप है उनमें मेरा सबसे अधिक ममत्व होता है। मेरी सभी वस्तुएँ मेरे लिये मूल्यवान हैं, क्योंकि ये स्वस्थापन के लिए मुझे अवसर देती हैं।

४. सामाजिक अहं (The Social Self)

हमारे माँ-बाप, हमारे स्त्री बच्चे हमसे अविच्छेद्य रूप से एक हैं। जब वे मरते हैं तो हमारे अहं का एक भाग चला जाता है। जब उनकी उन्नति होती है तब हम प्रसन्न होते हैं। जब वे कोई अनुचित काम करते हैं तब हमें शर्म आती है। जब वे अपमानित होते हैं तब हमें क्रोध आता है। इसके बाद हमारे मित्रों और प्रशंसकों का स्थान है। ये हमारे सामाजिक अहं के आवश्यक अंग हैं। हमारे अन्दर अपनी जाति से प्रशंसा और आदर पाने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। हमारे दोस्त हमारा आदर करते हैं और अपने मन में हमारी याद रखते हैं। अतएव हम उन्हें नाराज़ नहीं कर सकते। "किसी व्यक्ति का सबसे निराला सामाजिक अहं उसके प्रेमी के मन में होता है। इस अहं के भले और बुरे भाग्य सबसे तीव्र हर्ष और विषाद को जन्म देते हैं।"[२] किसी मनुष्य का आदर या अनादर, यश या अपयश उसके सामाजिक अहं का अंग है। "इस प्रकार एक मामूली आदमी हैज़े के फैलने पर शहर को छोड़ सकता है, लेकिन एक पुरोहित या डाक्टर सोचेगा कि ऐसा करना उसके सम्मान के विरुद्ध है। चोर को दूसरे चोरों की चोरी नहीं करनी चाहिये; जुआरी को जुएँ के कर्ज़ को अदा करना चाहिए, यद्यपि दूसरे कर्ज़ों को वह अदा नहीं करेगा।"[३]

---

[१] जेम्स : मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक, पृ० १७८

[२] जेम्स : मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक, पृ० १८०

[३] जेम्स : मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक, पृ० १८०-८१

५. आध्यात्मिक अहं (The Spiritual Self)

जेम्स कहता है : "जहाँ तक आध्यात्मिक अहं अनुभवमूलक अहं का भाग है, वहां तक 'आध्यात्मिक अहं कहने से मेरा तात्पर्य अपनी चेतना की किसी क्षणिक दशा से नहीं है। मेरा तात्पर्य चेतना की दशाओं, अपनी मानसिक शक्तियों और प्रवृत्तियों के सम्पूर्ण समुदाय से है। आध्यात्मिक अहं के अन्दर भी कुछ अंग अन्यों की अपेक्षा अधिक बाहरी मालूम पड़ते हैं। सवेदनाओं की हमारी क्षमतायें हमारे संवेगों और इच्छाओं को अपेक्षा कम निकटस्थ हैं; हमारी बौद्धिक प्रक्रियायें हमारे संकल्पात्मक निश्चयों की अपेक्षा कम निकटस्थ हैं। अधिक सक्रिय अनुभूति की अवस्थायें आध्यात्मिक अहं के अधिक केन्द्रीय भाग हैं। हमारे अहं का केन्द्र, हमारे जीवन का पवित्र स्थल, सक्रिय होने की अनुभूति है जो कुछ आन्तरिक अवस्थाओं का धर्म है।"[१]

६. विशुद्ध अहं का विकास (Development of the Pure Self)

वार्ड विशुद्ध अहं के विकास का क्रम इस प्रकार बताता है। पहिले-पहल यह संवेदनाओं को ग्रहण करने वाला और तृष्णाओं का अनुभव करने वाला अहं होता है। यह निम्नतम स्तर है। तत्पश्चात् यह कल्पना और इच्छा करने वाला अहं बनता है। दूसरी भूमिका में यह कल्पना करता है, वस्तुओं का विचार पहिले से करता है और उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है। फिर यह विचार और संकल्प करने वाला अहं बनता है। तीसरी भूमिका में यह अपनी भावी अवस्था के बारे में सोचता है और उसकी सिद्धि के हेतु अपनी कृति-शक्ति (Will power) का प्रयत्न करता है। लेकिन आदर्श अहं (Ideal-self) सदैव आदर्श बना रहता है जिसकी सिद्धि वास्तविक अहं क्रमशः करता है। "आदर्श को अहं का महत्वपूर्ण भाग समझना चाहिए, क्योंकि दृढ़ चरित्र वाले व्यक्ति में यह आन्तरिक प्रेरक-शक्तियों में सबसे बलवान् होता है, और इसलिए आचरण को निर्धारित करता है" (मेलोन)।

---

[१] जेम्स : मनोविज्ञान की पाठ्य-पुस्तक, पृ० १८१

७. मानसिक विकास (Mental Development)

मानसिक विकास आंगिक वृद्धि (Organic growth) के तुल्य है। इसमें जन्मजात गुप्त शक्तियां प्रकट होती हैं। इसमें योग अथवा यांत्रिक समूहीकरण नहीं होता। यह स्वयं को भौतिक और सामाजिक परिवेश से समायोजित करने में समावयव (Homogeneous) मन का अन्दर से विषमावयव (Heterogeneous) अवस्था में रूपान्तरित होना है।

मानसिक विकास में कुछ शक्तियों का विकास होता है। ये शक्तियां हैं: विवेक, विचारों में एकता लाना, विचार-साहचर्य, धारणा, प्रत्याह्वान, प्रत्यभिज्ञा, इत्यादि। ज्ञान के विकास में ये सब प्रक्रियायें होती हैं। संवेगों के विकास में भी विभिन्नीकरण (Differentiation) और समग्रीकरण (Integration) होते हैं। संकल्प के विकास के पूर्व ज्ञान, वेदना और संवेग का विकास हो चुका होता है।

ज्ञान के विकास में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, निर्णय, प्रत्ययन, तर्क, और विश्वास, ये विभिन्न भूमिकायें होती हैं। वेदना के विकास में अनुभूति, संवेग और भावना, ये विभिन्न भूमिकायें होती हैं। कर्म के विकास में ध्यान, संवेदना-प्रतिक्षेप, नियंत्रित प्रतिक्षेप, मूलप्रवृत्यात्मक कर्म, अनियमित कर्म, ऐच्छिक कर्म और आदतें, ये विभिन्न भूमिकायें होती हैं।

मानसिक विकास के हेतु प्रमुख रूप से वंशानुक्रम और परिवेश होते हैं। भौतिक शरीर और मानसिक क्षमतायें माता-पिता और पूर्वजों से प्राप्त होते हैं, भौतिक और सामाजिक परिवेश के प्रभाव से उनका विकास होता है। जलवायु, भोजन, भूमि की स्थिति और नैसर्गिक दृश्य इत्यादि भौतिक हेतुओं का मानसिक विकास पर सीधा प्रभाव पड़ता है। खेती, उद्योग और व्यापार की सुविधाओं का भी मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। सामाजिक अवस्थायें, रीतिरिवाज, कानूनी और नैतिक संस्थायें (Legal and moral institutions), नैतिक और धार्मिक नियम, राज्य के नियम, सरकार का रूप, इत्यादि मानसिक विकास पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। माता-पिता, रिश्ते-

दार, अध्यापक, खेल के साथी और मित्र मन में महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा करते हैं। विचार की शक्ति पर भाषा का प्रबल प्रभाव होता है। आत्म-चेतना सामाजिक सम्पर्क से विकसित होती है। भौतिक और सामाजिक परिवेश मानसिक विकास के बाह्य हेतु हैं। ध्यान, अनुकरण, स्वभाव और प्रवृत्ति, तथा कुछ मानसिक शक्तियां, यथा, विवेक, विचारों का एकीकरण, विचार साहचर्य, धारणा, प्रत्याह्वान, प्रत्यभिज्ञा, प्रत्याहार (Abstraction) इत्यादि मानसिक विकास के आन्तरिक हेतु हैं।

अध्याय २४

मनोविज्ञान के सम्प्रदाय

(SCHOOLS OF PSYCHOLOGY)

१. शक्ति-मनोविज्ञान (Faculty Psychology)

'शक्ति-मनोविज्ञान' मानसिक प्रक्रियाओं को उनकी शक्तियों (Faculties) से सम्बन्धित करता है। कहा जाता है कि संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, स्मृति, कल्पना, विचार, अनुभूति, संवेग, मूलप्रवृत्ति और संकल्प मन की शक्तियां (Faculties) हैं।

'शक्ति मनोविज्ञान' अब पुराना हो चुका है। "यह कहना कि एक व्यक्तिगत मन कोई शक्ति रखता है यह कहना मात्र है कि उसमें कुछ मानसिक अवस्थाओं या प्रक्रियाओं की क्षमता है, (Capacity) है। शक्ति को प्रक्रिया का वास्तविक कारण मानना स्पष्टतया चक्र में व्याख्या करना (Explaining in circle, है, अथवा दूसरे शब्दों में व्याख्या करने की असफलता है।"[1] इस प्रकार यह कहना व्यर्थ है कि एक विशेष ऐच्छिक निर्णय कृति-शक्ति का फल है, या किसी ऐच्छिक निर्णय पर असामान्य स्थिरता के साथ जमे रहना असामान्य संकल्प-शक्ति (Uncommon will power) का परिणाम है। यह कह कर कि कुछ मानसिक प्रक्रियायें मन की कुछ शक्तियों के व्यापार (Functions) हैं, हम कोई स्पष्टीकरण नहीं

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान; १९१०; पृ० ११४

करते। शक्ति-मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं के कार्यकारणात्मक स्पष्टीकरण (Causal explanation) में हमारी कोई सहायता नहीं करता। आधुनिक मनोविज्ञान मन को परस्पराश्रित प्रक्रियाओं की आंगिक एकता (Organic unity) के रूप में मानता है। उसमें स्वतंत्र शक्तियां अलग-अलग निवास नहीं करतीं। शक्ति-मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं में कार्य-कारणात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया (Causal interaction) को नहीं मानता। इसमें स्पष्टीकरण का दिखावा मात्र है, और इसलिये वह ज्ञान-वृद्धि को रोकता है। "शक्ति-मनोविज्ञान यदि कुछ मूल्य रखता है तो वह केवल वर्गीकरण की एक योजना के रूप में। लेकिन विज्ञान का चरम लक्ष्य वर्गीकरण-मात्र नहीं, बल्कि स्पष्टीकरण है। अतः जब एक बार स्पष्टीकरण के सिद्धान्त साफ़ समझ में आ गये तो शक्ति-मनोविज्ञान का लोप हो गया।"[1]

२. साहचर्यवाद (Associationism)

शक्ति मनोविज्ञान को साहचर्यवाद के समर्थकों के रूप में शत्रु मिले। ह्यूम, हार्टले, बेन और जेम्स मिल इंगलैण्ड के साहचर्यवादी थे। उन्होंने मानसिक जीवन को संवेदनाओं, विचारों, प्रतिक्षेप कर्मों तथा साहचर्य के नियमों के अनुसार उनके संयोगों में संक्षिप्त कर डाला। संवेदनायें ज्ञान की प्रारम्भिक इकाइयां हैं। विचार-संवेदनाओं की धूमिल प्रतिलिपियां (Faint copies) हैं। इनका साहचर्य के नियमों के अनुसार अनेक तरीकों से संयोग और पुनः पुनः संयोग होता है जिससे ज्ञान में जटिलता उत्पन्न होती है। प्रतिक्षेप कर्म कर्म की प्रारम्भिक इकाइयां हैं। उनका साहचर्य के नियमों के अनुसार जटिल ऐच्छिक कर्मों में संयोग होता है। साहचर्यवादी मानसिक जीवन के तत्वों अर्थात् संवेदनाओं और प्रतिक्षेपों तथा साहचर्य के नियमों को आवश्यकता से अधिक महत्व देते हैं। वे मन की एकता और चेष्टा को नहीं मानते। वे इसे मानसिक अवस्थाओं की एक श्रेणी मानते हैं। वे विविक्त और असम्बन्धित सांवेदनिक तत्वों को लेकर चलते हैं, और साहचर्य के नियमों की सहायता से उनमें एकता लाने का प्रयत्न करते हैं।

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान, पृ० ११६-१७।

"साहचर्यवाद की दो विशेषतायें थीं : इसका उद्देश्य विश्लेषण करना और इसका सम्बन्ध अधिकांश में जीवन के बौद्धिक पक्ष (Intellectual aspect) से था। यह अपने को एक प्रकार का मानसिक रसायन (Mental chemistry) समझने लगा था; प्रारम्भिक प्रक्रियाओं या अनुभवों को तथा उनके संयोग के नियमों को ढूंढ़ना इसका लक्ष्य बन गया था। अधिकांशतः जीवन के बौद्धिक पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुये इसने ज्ञान की सरलतम प्रक्रियाओं को ढूंढ़ना चाहा, तथा सरल संवेदनाओं को प्रारम्भिक प्रक्रियाओं के रूप में स्वीकार किया जिनसे जटिल अनुभवों और विचारों का निर्माण होता है।"[1]

साहचर्यवादियों ने सभी मानसिक प्रक्रियाओं को साहचर्य की अकेली प्रक्रिया में घटा देने की कोशिश की। स्मृति का स्पष्टीकरण करने की कोशिश करते हुये उन्होंने उसका कारण एक 'विचार' का दूसरे से सम्बद्ध होना बताया। उन्होंने कहा कि जब किसी व्यक्ति के अनुभव में दो मानसिक प्रक्रियायें साहचर्य के कारण जुड़ जाती हैं, और उनमें से एक किसी भांति होती है, तो वह साहचर्य के कारण दूसरी को जाग्रत करती है। दिवा-स्वप्न में जो विचारों का अनुक्रम चलता है वह अतीत अनुभव में उनके मध्य बने हुये साहचर्यों से उत्पन्न किया जा सकता है। किसी वस्तु का दर्शन, जो अतीत अनुभव में उसके स्पर्श का सहचारी बन चुका है, उस वस्तु की उपस्थिति का संकेत बन जाता है। इसी विधि से वस्तुओं के दार्ष्टिक चिह्न (Visual signs) उनके आकार, दूरी और दिशा का सुझाव देने लगते हैं। तुल्य रूप में साहचर्यवादियों ने तर्क, विश्वास और कर्म को भी साहचर्य की अकेली प्रक्रिया में घटा दिया। उन्होंने कई संवेगों, यथा भय और द्वेष की व्याख्या करते हुये कहा कि इनमें बिल्कुल निर्दोष वस्तुओं या व्यक्तियों का उन वस्तुओं से साहचर्य हो जाता है जो स्वभावतया भय या घृणा को जाग्रत करती हैं। ऐच्छिक कर्मों का स्पष्टीकरण उन्होंने प्रतिक्षेप कर्मों का सुख या दुःख उत्पन्न करने वाली वस्तुओं से साहचर्य के द्वारा किया। सुखद वस्तुओं को खोजा

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १००

जाता है और दुःखद वस्तुओं से दूर रहा जाता है। इस प्रकार साहचर्यवादियों ने अपने कर्म के मनोविज्ञान (Psychology of action) में साहचर्यवाद को मनोवैज्ञानिक सुखवाद (Psychological hedonism) के साथ मिला दिया। उन्होंने सब मानसिक प्रक्रियाओं की साहचर्य की प्रक्रिया से व्याख्या की। उन्होंने साहचर्य के नियमों का अध्ययन किया और उन्हें एक ही नियम में घटाने की कोशिश की। उन्होंने अपने सिद्धान्त को नीति, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों में लागू किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान पर उनका सबसे बड़ा प्रभाव रहा।

साहचर्यवाद यह मान लेता है कि जटिल मानसिक व्यापार सरल संवेदनाओं के समूह हैं जिनका उनके घटकों (Constituents) के रूप में पुनः उदय होता है। ये प्रारम्भिक संवेदनाओं की पुनरावृत्ति और साहचर्य को व्याख्या के एकमात्र तर्कसंगत रूप मानते हैं। "इस दृष्टिकोण से, चेतना की किसी अवस्था के मूल की व्याख्या करना उसके संघटक अवयवों को बताना और यह दिखाना है कि वे कैसे साहचर्य के द्वारा परस्पर संयुक्त हो गये हैं। इस प्रकार, जब एक नारंगी का प्रत्यक्ष होता है तो तुरन्त जो संवेदना होती है। वह केवल पीले रंग की हो सकती है। नारंगी के प्रत्यक्ष में वर्तमान संवेदना के द्वारा अतीत संवेदनाओं की न्यूनाधिक रूप सम्पूर्ण पुनरावृत्ति के अलावा कुछ नहीं है। वर्तमान संवेदना पुनर्जीवित संवेदनाओं के समूह का केन्द्र होती है। तुरन्त होने वाला नेत्रीय अनुभव अन्य दृष्टिकोणों से दीखने वाले नारंगी के दृष्टिगत रूप की पुनरावृत्ति करता है। यह गन्ध, स्वाद और अन्दर की मुलायम वस्तु के गुण को भी, जैसी कि यह छूने और देखने में लगती है, पुनर्जीवित करता है।"[1]

साहचर्यवाद संयोजन, संघटन या साहचर्य को मानसिक जगत् में कारण मानता है। "मानसिक विकास के सभी रूपों में साहचर्य और पुनरावृत्ति का कोई रूप निहित रहता है। अतएव साहचर्यवाद में काफी सत्यांश है। इसका दोष यह है कि यह सारी प्रक्रिया को पुनरावृत्यात्मक (Reproductive)

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान, पृ० ११७-१८

मानता है तथा मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के अन्य तरीकों को छोड़ देता है, जो न केवल पुनर्जीवित फलों को बल्कि नये फलों (Products) को भी जन्म देते हैं। प्रकृति के सामान्य व्यापार में कारण से कार्य का उत्पन्न होना और अवयवों का संयुक्त होना (Composition) सदैव एक साथ नहीं होते। हेतु (Conditions) सदैव फल के संघटक अवयवों के रूप में उपस्थित नहीं होते। आग जले हुये मकान के भाग के रूप में नहीं रहती। अतएव वह सिद्धान्त जो सब मानसिक कार्यों को पुनरावृत्ति मानता है, बिल्कुल भी स्वयंसिद्ध सत्य नहीं है।"[1]

साहचर्यवाद का मन की एकता और चेष्टा से इन्कार करना ग़लत है। मन वस्तु का ज्ञाता है, वस्तु-ज्ञान से उसे सुख या दुःख होता है, तथा वह उस पर प्रतिक्रिया करके उसे बदलता है। मन ध्यान के द्वारा संवेदना-प्रवाह (Presentation continuum) को पृथक-पृथक संवेदनाओं में बदल देता है और उन्हें नई मानसिक प्रक्रियाओं में संयुक्त करता है। अतः संवेदनायें अनुभव की प्रारम्भिक इकाइयां नहीं हैं। वे द्रष्टा या आत्मा की भिन्नीकरण (Differentiation) की प्रक्रिया के फल हैं। संवेदनायें द्रष्टा के अन्दर परस्पर असम्बन्धित, पृथक चीजों के रूप में नहीं रहती। ज्ञान की समष्टि में परस्पर सम्बन्धित रूप में वे सुरक्षित रखी जाती हैं। वे समष्टियों के आवश्यक सदस्यों की तरह एक दूसरी से चिपकी रहती हैं। द्रष्टा की समन्वयकारी क्रिया (Synthetic activity) के कारण वे एक सूत्रबद्ध और संगठित रहती हैं। साहचर्य समन्वय का एक रूप है। साहचर्यवाद को मनोवैज्ञानिक परमाणुवाद (Psychological atonism) कहना ठीक ही है।

साहचर्यवाद का प्रत्यक्ष को संवेदनाओं और स्मृति-प्रतिमाओं का समूह मानना ग़लत है। गेस्टाल्ट (Gestalt) मनोविज्ञान प्रत्यक्ष को किसी समष्टि, गेस्टाल्ट का अनुभव मानता है, जिसे प्रारम्भिक इकाइयों में नहीं तोड़ा जा सकता। यह ठीक है।

---

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान पृ० ११८

साहचर्यवाद का ऐच्छिक कर्मों को प्रतिक्षेप-कर्मों का यांत्रिक समूह मानना ग़लत है। ऐच्छिक कर्म ऐकिक कर्म (Unitary acts) हैं जिनमें द्रष्टा का विचार और चुनाव होता है। उनमें द्रष्टा किसी परिस्थिति का मूल्यांकन (Evaluation) करता है और उस पर प्रतिक्रिया करता है। अतएव साहचर्यवाद को मनोविज्ञान के आधुनिक सम्प्रदायों ने अस्वीकृत कर दिया है।

३. साहचर्यवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया (Reaction Against Associationism)

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटिश अध्यात्मवाद (British idealism) का उत्थान साहचर्यवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया था, क्योंकि उसने मन की एकता और चेष्टा पर बल दिया। जेम्स वार्ड साहचर्यवाद के विरोधियों का अग्रणी था। उसने मानवीय अनुभव और व्यवहार की एकता पर ज़ोर दिया। उसने द्रष्टा (Subject) की चेष्टा और समायोजन पर भी ज़ोर दिया और उत्क्रान्तिवादी विचारों (Evolutionary ideas) को अपनाया। वार्ड आत्म-मनोविज्ञान (Self-psychology) का जन्मदाता था।

प्रयोजनवादी मनोविज्ञान (Hormic psychology) का जन्मदाता मैक डूगल साहचर्यवाद-विरोधी मनोविज्ञान को और आगे ले गया है। साहचर्यवाद यंत्रवादी (Mechanistic) या अप्रयोजनवादी (Non-purposive) मनोविज्ञान है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान भी साहचर्यवादी मनोविज्ञान के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। यह 'समष्टि' के प्रत्यय पर ज़ोर देता है। समष्टियाँ समूहों या योगों से भिन्न होती हैं। मानसिक प्रक्रियाओं को यह समष्टियाँ मानता है। यह विश्लेषण के विरुद्ध है। यह परमाणुवादी मनोविज्ञान के विमुख है।

४. मानसिक रसायन (Mental Chemistry)

जे० एस० मिल ने 'मानसिक रसायन' को साहचर्यवाद में उतारा। "मानसिक रसायन" संवेदनिक तत्त्वों का एक नये यौगिक (Compound)

में मिश्रण है जो संघटक अवयवों के योग मात्र से कुछ बढ़कर होता है। "जब मन में कई संस्कार या विचार एक साथ काम करते होते हैं तो कभी-कभी रासायनिक संयोग की तरह की एक क्रिया होती है। जब संस्कारों का अनुभव एक साथ इतनी अधिक बार होता है कि उनमें से प्रत्येक तुरन्त सारे समूह के विचारों को जाग्रत करता है, तो वे विचार कभी-कभी पिघल कर परस्पर चिपक से जाते हैं और अलग-अलग नहीं बल्कि एक प्रतीत होते हैं...। कई सरल विचारों के मिश्रण से निर्मित जटिल विचार, जब वह वास्तव में सरल प्रतीत होता है (अर्थात् जब उसके पृथक्-पृथक् तत्व अलग नहीं पहिचाने जा सकते हैं) तो यह कहना चाहिये कि वह सरल विचारों का फल है, उनसे बना हुआ नहीं होता। सरल विचार जटिल विचारों को उत्पन्न करते हैं, वे उनके समूह नहीं है" (मिल)।

जे० एस० मिल मानसिक रसायन के अपने सिद्धान्त के बावजूद साहचर्य-वाद को मानता है। लेकिन सिद्धान्ततः मानसिक रसायन साहचर्यवाद का विरोधी है। "साहचर्य के फलों में उन्हें उत्पन्न करने वाले तत्त्व फल के संघटकों के रूप में कायम रहते हैं। उत्पादन की प्रक्रिया में जिसे मिल मानता है, उत्पादक तत्त्व अपने फल को जन्म देने में अपने को लुप्त कर देते हैं। फल का जीवन उनकी मृत्यु है।"[1] लेकिन मिल को इस बात का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता कि मानसिक रसायन को मानने से वह साहचर्यवाद को त्याग देता है। वह सोचता है कि वह साहचर्यवाद को परिष्कृत कर रहा है। यह उसके 'मानसिक रसायन' शब्द के व्यवहार से प्रदर्शित होता है। "एक रासायनिक यौगिक वास्तव में एक यौगिक है। वह वास्तव में अपने संघटकों से बना होता है और उनसे उत्पन्न मात्र नहीं होता। उसका भार उनकेभारके तुल्य होता है।"[2] लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि एक नई मानसिक प्रक्रिया सरल मानसिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न भी होती है और उनसे युक्त भी होती है, जो "पिघलकर

---

[1] स्टाउट : मनोविज्ञान पृ० १२२

[2] स्टाउट : मनोविज्ञान पृ० १२३

परस्पर एक हो जाती है।" मिल ने यह मान लिया कि पूर्ववर्ती मानसिक प्रक्रियाओं के द्वारा चेतना के एक नये रूप के उत्पादन के पहिले उत्पादक तत्त्वों का साहचर्यमूलक समूहीकरण होना चाहिये। प्रथम, सरल सांवेदनिक तत्त्वों को साहचर्य के नियमों के अनुसार संयुक्त होना चाहिये; फिर इस साहचर्यमूलक समूहीकरण को एक नई मानसिक प्रक्रिया को उत्पन्न करना चाहिए, जो उत्पादक मानसिक प्रक्रियाओं से बिल्कुल भिन्न है। लेकिन न साहचर्यमूलक समूहीकरण स्वयंसिद्ध है और न उत्पादन।

मानसिक रसायन का जो वर्णन मिल करता है वह काल्पनिक है। उसकी धारणा है कि सहयोग और संयोग करने वाले मानसिक हेतु किसी नई चीज़ को जन्म देने में स्वयं बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं। कुछ अवस्थाओं में यह हो सकता है। लेकिन सभी अवस्थाओं में यह सही नहीं हो सकता। विशेष रूप से देश (Space) के प्रत्यक्ष में तो यह हो ही नहीं सकता; जिसमें वह मानसिक रसायन के अपने सिद्धान्त को लागू करता है। देश का दृष्टिज और स्पर्शज प्रत्यक्ष दृष्टि-संवेदनाओं, स्थानीय चिन्हों की स्पर्श-संवेदनाओं और गतियों की पैशिक संवेदनाओं के संयोग का फल है जो फल में नहीं दिखाई देती। "लेकिन यह कहना असत्य है कि फल में अंशदान करने वाले इन तत्त्वों में से कोई भी नहीं पहिचाना जा सकता" (स्टाउट)। आँख के द्वारा देखा जाने वाला आकार विस्तार वाला या फैला हुआ रंग है। इस प्रकार के प्रत्यक्ष में सदैव कम से कम दृष्टि-संवेदना तथा सामान्यतया आँखों की गतियों के साथ होने वाली गति-संवेदनायें होती हैं। दृष्टि और गति-संवेदनाओं का देशीय गुण (Spactial quality), निश्चय ही, व्युत्पन्न होता है और स्वयं संघटक संवेदनाओं का अंग नहीं होता। लेकिन वह अपनी उत्पत्ति में अंशदान करने वाले सभी तत्त्वों से पृथक् तैरता हुआ सा नहीं होता। दृष्टिज, स्पर्शज और गति की संवेदनायें परस्पर क्रिया करके एक निराली तबदीली को प्राप्त करती हैं जिसे देशीय गुण कहते हैं। मानसिक फल में उनका सम्पूर्णतया लोप नहीं हो जाता। मानसिक रसायन का सिद्धान्त इससे इन्कार करता है कि साहचर्य के द्वारा पुनरुत्पादन (Reproduction) मानसिक विकास पर

शासन करने वाला एकमात्र नियम है।

५. रचनावाद (Structuralism)

रचनावाद चेतना की रचना को, पृथक्-पृथक् तत्त्वों या इकाइयों में उसका विश्लेषण करके तथा उन तत्त्वों के संयोग से बनने वाले जटिल चेतना-प्रवाह में उनके पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करके समझाने का प्रयत्न करता है। यह विशेषज्ञों के द्वारा प्रयोगात्मक स्थितियों में अन्तर्दर्शन को एक मात्र वैध रीति मानता है। इसके अनुसार मनोविज्ञान का कार्य है, चेतना-प्रवाह या उसकी अन्तिम इकाइयों या चेतना के परमाणुओं में विश्लेषण तथा इन इकाइयों के संयोग के कुछ नियमों की खोज। रचनावाद चेतना की रचना का अध्ययन करता है और उसका उसके तत्त्वों तथा तत्त्वों के सम्बन्धों में विश्लेषण करता है। साहचर्यवाद और मानसिक रसायन रचनावाद के विभिन्न रूप हैं।

६. सत्तावाद (Existentialism)

सत्तावाद उन्नीसवीं शताब्दी में उन्ट मैक (Mach) और अवेनेरियस (Avenarius) से शुरू होता है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ई० बी० टिचनर की प्रभावशाली शिक्षाओं के साथ एक स्पष्ट सिद्धान्त के रूप में इसका उदय हुआ। सत्तावाद के अनुसार मनोविज्ञान का कार्य 'सत्ताओं' के रूप में अथवा वर्णन, विश्लेषण और वर्गीकरण के योग्य तथ्यों के रूप में व्यक्ति के अनुभवों का अध्ययन करना है। मनोविज्ञान अनुभवों का विश्लेषण, उनकी तुलना और वर्गीकरण और एक समष्टि (System) में उनकी व्यवस्था (Arrangement) करने का प्रयत्न करता है। सत्तावादी मनोविज्ञान अनुभवकर्त्ता और कार्यकर्त्ता के रूप में व्यक्ति का अध्ययन करता है। व्यक्ति के अनुभवों का अध्ययन उन्हीं की ख़ातिर किया जाता है, उसके कार्यों की ख़ातिर नहीं।

मनोविज्ञान और पदार्थ विज्ञान (Physics) दोनों मानवीय निरीक्षकों के द्वारा प्राप्त इन्द्रियज सामग्री पर आधारित हैं। पदार्थ-विज्ञान सांवेदनिक अनुभव के बाह्य पदार्थों का विचार करता है, जबकि मनोविज्ञान अनुभव का अनुभवकर्ता व्यक्ति से सम्बन्धित रूप में विचार करता है। पदार्थ विज्ञान

सांवेदनिक अनुभवों को उन तथ्यों के ज्ञापकों (Indicators) के रूप में देखता है जो उनके बाहर बाह्य जगत में अस्तित्व रखते हैं, जबकि मनोविज्ञान उनका उन्हीं की खातिर विचार करता है। पदार्थविज्ञान अनुभूत तथ्यों को परस्पर सम्बन्धित करता है, जबकि मनोविज्ञान उनको अनुभवकर्ता व्यक्ति से सम्बन्धित करता है। मनोविज्ञान व्यक्ति के अनुभवों का उन्हीं की खातिर वर्णन, विश्लेषण, तुलना, और वर्गीकरण करने का प्रयत्न करता है।

मनोविज्ञान की मौलिक रीति संस्कार-रीति (Method of impression) है। यह अन्य विज्ञानों की निरीक्षण-रीति के तुल्य है। द्रष्टा का ध्यान पहिले से ही *निरीक्षण की यथार्थ वस्तु की ओर खींचा जाता है।* वह अपने अनुभव का निरीक्षण प्रयोगात्मक स्थितियों में करता है और प्रयोगकर्त्ता को उसकी सूचना देता है। संस्कार की रीति आनुषंगिक निरीक्षण (Incidental observation) नहीं है। यह वैज्ञानिक निरीक्षण है जिसमें द्रष्टा का मन उस विशेष अनुभव के लिये तय्यार रहता है जिसका उसे निरीक्षण करना है। *संस्कार की रीति मनोवैज्ञानिक छानबीन की मौलिक रीति है।* यह व्यक्ति के मौलिक अनुभवों को प्रकट करती है। लेकिन इसका अन्तर्दर्शन की रीति से योग होना चाहिये जो अधिक जटिल अनुभवों को प्रकाशित करती है।

सत्तावादी मनोविज्ञान कार्यों के अध्ययन के महत्त्व से इन्कार नहीं करता। लेकिन वह इस अध्ययन को दूसरों पर छोड़ देता है। वह अपने ध्यान को अनुभवों के वर्णन तक सीमित रखता है। वह अर्थों या मूल्यों (Meanings or values) तथा व्यक्ति के अनुभवों के बाहर की वस्तु को भूलने का प्रयत्न करता है। वह संस्कार की रीति को अपनाता है, जटिल समग्र (Total) अनुभवों का सांवेदनिक तत्त्वों में विश्लेषण करता है, उनकी तुलना और वर्गीकरण करता है। सत्तावादी मनोविज्ञान रचनावादी मनोविज्ञान है।[1]

---

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० ३८-४३।

७. कार्यवाद (Functionalism)

विलियम जेम्स अमेरिका में 'कार्यवादी' मनोविज्ञान का जन्मदाता था। 'रचनावादी' मनोविज्ञान का लक्ष्य चेतना की रचना का वर्णन और विश्लेषण है। 'कार्यवादी' मनोविज्ञान यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि व्यक्ति के जीवन में विभिन्न प्रकार की चेतनायें क्या कार्य करती हैं। वह प्राणी के जीवन में संवेदना, प्रत्यक्ष, स्मृति, कल्पना, तर्क, संवेग और संकल्प के कार्यों को ढूंढने का प्रयत्न करता है। वह यह मालूम करने की कोशिश करता है कि प्राणी का परिवेश से जो बढ़ता हुआ समायोजन है उसमें इन मानसिक प्रतिक्रियाओं से प्राणी की किन आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। वह विकासवादी दृष्टिकोण को अपनाता है और यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि प्राणी की महान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिकाधिक जटिल मानसिक प्रक्रियाओं का उदय हुआ, और इन आवश्यकताओं का जन्म प्राणी को उसके जटिल परिवेश से अधिकाधिक सफलता के साथ समायोजित करने के लिये हुआ। उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का उदय परिवेश पर अधिक व्यापक और अधिक लचीले नियंत्रण के लिये प्राणी की तीव्र आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये हुआ। इस प्रकार कार्यवादी मनोविज्ञान ने मनोविज्ञान को जीवन-विज्ञान (Biology) की एक शाखा माना। इसने जीवनविज्ञानों के सामान्य क्षेत्र में मनोविज्ञान को एक स्थान देने का प्रयत्न किया। जेम्स, ड्युई और ऐन्जिल, ये अमेरिकन मनोवैज्ञानिक कार्यवादी मनोविज्ञान के समर्थक हैं।

८. व्यवहारवाद (Behaviorism)

वाटसन कार्यवादी मनोविज्ञान को रचनावादी मनोविज्ञान और एक सच्चे जीवन-विज्ञान के मध्य एक अनुचित समझौते (Inconsistent compromise) का फल मानता है। वह मनोविज्ञान को एक विशुद्ध जीवन-विज्ञान बनाना चाहता है। वह मनोविज्ञान की परिभाषा देते हुये कहता है कि वह व्यवहार का विज्ञान है। वह अनुभव का विज्ञान नहीं है। मानसिक प्रक्रियायें ऐसी हैं कि न उन्हें छुआ जा सकता है, न पकड़ा जा सकता है। उनसे किसी उपयोगी

उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती। प्रायोगिक मनोविज्ञान ने व्यक्तियों के 'व्यवहारों' का अध्ययन करके प्रगति की है। अन्तर्दर्शन एक धोखा देने वाली रीति है। यह मनोवैज्ञानिक छानबीन के लिये अनिवार्य नहीं है। मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। यह अनुभव या चेतना का विज्ञान नहीं है। इसकी विधियां निरीक्षण और प्रयोग हैं जो पदार्थविज्ञान, रसायन तथा अन्य यथार्थ विज्ञानों की विधियां भी हैं। इसका सम्बन्ध व्यवहार से है। व्यवहार परिवेशस्थ उत्तेजनाओं के प्रति समग्र शरीर की प्रतिक्रिया है। मनोविज्ञान उत्तेजना-प्रतिक्रिया (Stimulus-response) का विज्ञान है। ज्ञानेन्द्रियां उत्तेजनाओं को ग्रहण करती हैं और इसलिये आदातृ-अंग (Receptors) कहलाती हैं। उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया में मांस पेशियां कार्य सम्पन्न करती हैं और इसलिये कार्यकारी अंग (Effectors) कहलाती हैं।

वाटसन संवेदनाओं के अस्तित्व से इन्कार करता है। वह ज्ञानेन्द्रियों के वर्णन में सावधानी से 'संवेदना' शब्द को दूर रखता है। वह 'प्रकाश की प्रतिक्रिया', 'श्रवण-प्रतिक्रिया', 'घ्राण-प्रतिक्रिया' इत्यादि पदों का इस्तेमाल करता है। वह संवेदना (Sensation) को इसलिये अस्वीकृत करता है कि वह गत्यात्मक व्यवहार नहीं है। वाटसन प्रत्यक्षीकरण का उल्लेख नहीं करता क्योंकि इसमें ऐन्द्रिय संकेतों का अर्थ मालूम करना पड़ता है। अर्थों का गत्यात्मक व्यवहारों के शब्दों में स्पष्टीकरण बहुत कठिन है। वाटसन पश्चात्-प्रतिमाओं की व्याख्या करते हुये कहता है कि वे आदाताओं पर क्रिया करने वाली उत्तेजनाओं के हटा दिये जाने के बाद होने वाली आदाताओं की प्रतिक्रियायें हैं। प्रकाश नेत्रों को कुछ समय तक उत्तेजित करता है। इसके बाद वह हटा दिया जाता है। फिर भी जो नेत्रों पर उसका पश्चात्-प्रभाव होता है वह पश्चात्-प्रतिमा द्रष्टा है। इस प्रकार प्रतिक्रिया कर सकता है कि मानों उसे मूल प्रकाश फिर से उत्तेजित कर रहा है (भावात्मक 'पश्चात्-प्रतिमा'); अथवा मानो मूल प्रकाश का पूरक प्रकाश उसे उत्तेजित कर रहा है (अभावात्मक 'पश्चात्-प्रतिमा')। वाटसन 'स्मृति' शब्द का कभी इस्तेमाल नहीं करता। वह इसे आदत मानता है। "व्यवहार-

वादी की समझ में स्मृति हाथ, शब्दों और आन्तरिक अंगों के संगठन का कोई प्रदर्शन है, जो परीक्षा से पहिले किसी समय धारण किया जा चुका होता है" (Memory in the behaviorist sense is any exhibition of manual, verbal or visceral organization put on prior to the time of test) (वाटसन)। स्मृति में जो घनिष्ठता की अनुभूति (Feeling of familiarity) या विलियम जेम्स के शब्दों में 'घनिष्ठता की गर्मी' (Warmth of intimacy) होती है, उसका अर्थ केवल पुरानी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का पुनर्जीवित होना है। वाटसन की धारणा है कि स्मृति-प्रतिमायें अंशतः गत्यात्मक आवेग (Kinaesthetic impulses) हैं और अंशतः आन्तरिक अंगों की प्रतिक्रियायें। वे केन्द्र से उत्पन्न नहीं होतीं। उनकी उत्पत्ति मस्तिष्क में नहीं होती। सब व्यवहार प्रत्यक्ष-प्रेरित होता है। व्यवहारवादी केवल आदत-मूलक स्मृति में ही विश्वास करता है। वह स्मृति को स्नायविक आदत (Neural habit) मानता है। वह विचार को वाणीशून्य वार्तालाप (Subvocal talking) या अस्पष्ट वाक्-गतियां मानता है। विचार को किसी प्रकार का प्रत्यक्ष-प्रेरित व्यवहार होना चाहिये। विचार वाणीशून्य वार्तालाप के रूप में गुप्त व्यवहार है, जो प्रकट हस्तादि-व्यवहार के स्थान में किया जाता है। विचार के सम्बन्ध में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की परीक्षा पहिले की जा चुकी है।

वाटसन के मतानुसार सुख और दुःख की अनुभूतियां अंशतः कामांगों या अन्य कामोत्तेजक अंगों (Erogenous organs) से आने वाले संवेदनिक आवेग हैं और अंशतः निकट पहुँचने (Approach) या दूर भागने (Escape) की प्रारम्भिक गतियां। ये भी केन्द्र से उत्पन्न नहीं होतीं। संवेग वंशक्रमागत प्रतिक्रियायें हैं जिनमें समग्र शरीर के अन्दर महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं, लेकिन आन्तरिक अंगों और ग्रन्थियों में विशेष रूप से। प्रत्येक पृथक् संवेग आन्तरिक अंगों और ग्रन्थियों की प्रतिक्रियाओं का एक विशेष नमूना होता है। विलियम जेम्स संवेगों को आंगिक संवेदनाओं के पुंज मानता है जो किसी परिस्थिति के प्रत्यक्ष से उत्पन्न होती हैं। वाटसन संवेदनाओं और

प्रत्ययों की सत्यता को स्वीकार नहीं करता। "जेम्स को वाटसन बनाने के लिये केवल समग्र संवेग से संवेदनाओं या अनुभूतियों को हटा दीजिये और शारीरिक परिवर्तनों को रहने दीजिये जिनको प्राधान्य देने के लिये जेम्स ने इतना प्रयत्न किया (वुडवर्थ)।" वाटसन संवेगों को ग्रन्थि-जाल और आन्तरिक अंगों के समूह की वंशानुक्रम प्राप्त प्रतिक्रियाओं के नमूने मानता है।

वाटसन प्रतिक्षेप-कर्म को क्रिया का सबसे सरल रूप मानता है। यह वह कर्म है जो किसी सीमित ग्रान्थिक या पैशिक ऊति (Tissue) में किसी उत्तेजना की प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। मूलप्रवृत्यात्मक कर्म शृंखलाबद्ध प्रतिक्षेपों की समष्टि है। इसका प्रतिक्षेप कर्मों की एक शृंखला में विश्लेषण किया जा सकता है, इस समग्र नमूने में क्रिया का प्रत्येक ऐसा तत्त्व प्रतिक्षेप कहलाता है। वाटसन यह मानने से इन्कार करता है कि मूलप्रवृत्तियां विशिष्ट वस्तुओं को देखने, विशिष्ट संवेगों का अनुभव करने, तथा किसी परिस्थिति में एक विशेष रूप से प्रतिक्रिया करने को जन्मजात या वंशक्रमानुगत प्रवृत्तियां हैं, जैसा कि मैकडूगल का विचार है। पूर्वप्रवृत्तियां (Predispositions) मानसिक हैं, और इसलिये वाटसन उनसे इन्कार करता है। वाटसन मूलप्रवृत्तियों, जन्मजात क्षमताओं, या पूर्वप्रवृत्तियों के रूप में नैसर्गिक देन (Native endowment) को मानने से इन्कार करता है। यह परिवेशवादी (Environmentalist) है, अर्थात् परिवेश के द्वारा व्यक्ति के पूर्ण रूप से शासित होने में विश्वास करता है। उसका दावा है कि वह किसी भी स्वस्थ, सुगठित बच्चे को उचित परिवेश में रखकर एक विद्वान्, एक वकील, एक इंजीनियर, एक कवि, या एक दार्शनिक बना सकता है। उचित परिवेश में रखकर बच्चे के व्यवहार को कोई भी रूप दिया जा सकता है।

वाटसन क्रिया के किसी भी रूप को, चाहे प्रगट हो चाहे गुप्त, जो मनुष्य की वंशक्रमानुगत सज्जा (Hereditory equipment) का अंश नहीं है, आदत के रूप में देखता है। आदत व्यक्ति के द्वारा अर्जित सीखा हुआ कर्म है। आदतजनित कर्म में सरल पृथक् गतियां इस प्रकार संगठित होती हैं कि एक नया ऐक्यिक कर्म (Unitary act) बन जाता है। मूलप्रवृत्या-

त्मक कर्म और आदत, निश्चय ही, कुछ प्रारम्भिक प्रतिक्षेपों से निर्मित होते हैं। उनके नमूने के मूल (Origin) और नमूने को बनाने वाले तत्वों के प्रकट होने के क्रम (Order) में अन्तर होता है। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म में नमूना और क्रम वंशानुक्रम प्राप्त होते हैं; आदत में दोनों को व्यक्ति अपने जीवन-काल में अर्जित करता है। आदत प्रतिक्षेपों का एक जटिल नमूना होता है जिसे व्यक्ति सीख लेता है।

वाटसन अभ्यास के नियम, उपयोग के नियम, अनुपयोग के नियम, बारम्बारता के नियम, और नवीनता के नियम से सीखने की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण करता है। वह प्रभाव के नियम (Law of effect) को अस्वीकृत करता है। क्योंकि यह नियम सुख, दुःख और कार्यों पर उनके प्रभावों की ओर संकेत करता है—सुख कर्म को उत्तेजित करता, उसे दोहराता और पक्का बनाता है, तथा दुःख कर्म को रोकता और उसका लोप करता है। वाटसन सुख और दुःख के प्रभावों को मानने से इन्कार करता है, क्योंकि ये मानसिक प्रक्रियायें हैं। वह सभी प्रकार के सीखने को नियंत्रण (Conditioning) मानता है। सभी सीखे हुये कर्म नियंत्रित प्रक्रियायें हैं। सब सीखना यांत्रिक है या प्रयत्न और भूल से होता है। उसका किसी लक्ष्य या सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

वाटसन व्यक्तित्व को प्रतिक्रिया के पहलू में व्यक्ति की समग्र सम्पत्ति (वास्तविक और गुप्त) तथा ऋण (वास्तविक और गुप्त) (An individual's total assets and liabilities on the reaction side) मानता है। सम्पत्ति (Assets) से उसका तात्पर्य संगठित आदतों के समग्र पुंज से है जो उसे परिवेश से समायोजित करती हैं। ऋण (Liability) से उसका तात्पर्य उसकी सज्जा (Equipment) के उस अंश से है जो वर्तमान परिवेश में काम नहीं करता और उसे परिवेश से अपना समायोजन करने से रोकता है। व्यक्तित्व परिवेश के प्रति व्यक्ति के व्यवहारों का नमूना है (मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय; अध्याय ३ तथा व्यवहारवादी के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान)।

व्यवहारवाद उपविकारवाद (Epiphenomenalism) में विश्वास करता हैं। वह मन को मस्तिष्क का उपविकार (By-product) मानता है। यह तर्क विरुद्ध है। मन अनुभव का एक तथ्य है।

व्यवहारवाद मनोविज्ञान के प्रति एक गलत दृष्टिकोण अपनाता है। मनोविज्ञान केवल व्यवहार का विज्ञान नहीं हो सकता। व्यवहार अनुभव का प्रकाशन है। अनुभव अन्तर्दर्शन से जाना जाता है। मनोविज्ञान अन्तर्दर्शन को नहीं छोड़ सकता। यह अनुभव और व्यवहार का विज्ञान है। अन्तर्दर्शन की विधि व्यक्ति के अपने ही अनुभव की छानबीन करती है। निरीक्षण और प्रयोग उसके अपने तथा दूसरों के व्यवहार की छानबीन करते हैं। व्यवहारवाद संवेदना को अनुभव का रूप नहीं मानता। यह प्रत्यक्ष की व्याख्या नहीं कर सकता, क्योंकि ऐन्द्रिय संकेतों के अर्थों का ज्ञान करना एक मानसिक कर्म है। व्यवहारवादी के दृष्टिकोण से अर्थ की समस्या कोई समस्या नहीं है। हम देखते हैं कि पशु या मनुष्य क्या कर रहा है। वह जो कर रहा है वही उसका "अर्थ" है। उसका कर्म उसके अर्थ को प्रदर्शित करता है। लेकिन व्यवहारवाद अर्थों का स्पष्टीकरण नहीं कर सकता। वह शुद्ध स्मृति को नहीं मानता। उसका स्मृति को आदत बनाना ठीक नहीं है। लेकिन शुद्ध स्मृति आदत से अलग है। व्यवहारवाद का विचार को मौन वार्तालाप मानना भी ग़लत है। विचार वार्तालाप में प्रकट होता है। यह मानना तर्कविरुद्ध है कि विचार और वाणी परस्पर अभिन्न हैं। यह कहना कि सीखना नियंत्रण का फल है और प्रयत्न और भूल से होता है, गलत है। मनुष्य अधिकांशतः बुद्धिमत्तापूर्वक या अन्तर्दृष्टि से सीखता है। यहाँ तक कि चिम्पैंज़ी भी अन्तर्दृष्टि से सीखता है। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्मों को प्रतिक्षेपों की शृंखला मानना भी ग़लत है। मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म पूर्णतया ऐच्छिक मानसिक कर्म हैं। प्रतिक्षेप कर्मों से इनकी एकता और सहेतुकता (Purposiveness), परिवर्तनशीलता और समायोजनशीलता का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। व्यवहारवाद ऐच्छिक कर्मों को मान्यता नहीं देता, क्योंकि इनमें चुनाव और संकल्प होते हैं जो मानसिक प्रक्रियायें हैं। यह व्यक्तित्व

को व्यवहार के लक्षणों (Traits) का नमूना मानता है। किन्तु नमूने का पर्याप्त स्पष्टीकरण केवल व्यक्ति की रुचि, चुनाव तथा परिवेश में एक विशेष तरीके से प्रतिक्रियायें करने से ही हो सकता है। व्यक्तित्व व्यक्ति के जीवन की शैली है। उसकी शैली परिवेश में उसकी अपनी ही निराली प्रतिक्रियाओं से निर्धारित होती है। वह परिवेश के द्वारा पूर्णतया रूपान्तरित और शासित नहीं हो सकता। वह भौतिक और सामाजिक परिवेश की सीमाओं के अन्दर स्वतन्त्रतापूर्वक अपने कर्मों को निर्धारित करता है। परिवेशवाद मनुष्य को एक यंत्र बना देता है। व्यवहारवाद यंत्रवादी और नियतिवादी (Determinist) है। व्यवहारवाद की एकमात्र अच्छाई यह है कि उसने मनोविज्ञान के अध्ययन में व्यवहार के महत्त्व को पहिचाना है। किन्तु मनोविज्ञान की समस्या के प्रति अपने नये दृष्टिकोण के जोश में आकर इसने मनोविज्ञान के अनुभव का विज्ञान होने की विशेषता को खो दिया है।

९. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान तथा व्यवहारवाद (Gestalt Psychology and Behaviorism)

जर्मनी में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान पुरानी व्यवस्था के प्रति विद्रोह के रूप में शुरू हुआ। इसने विशेष रूप से वुंड्ट के मनोविज्ञान के विरुद्ध और सामान्य रूप से साहचर्यवाद के विरुद्ध विद्रोह किया। व्यवहारवाद और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान दोनों ने विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के विरुद्ध विद्रोह किया जो उस समय प्रचलित था। लेकिन उनके विद्रोह के तरीके अलग-अलग थे। व्यवहारवाद ने पुराने मनोविज्ञान के बुद्धिप्रमुख (Intellectualistic) होने के विरुद्ध विद्रोह किया और अनुभव को मनोविज्ञान के क्षेत्र से पृथक् कर दिया। उसने पशु या मनुष्य को व्यवहार करने वाले प्राणी के रूप में देखा। उसने मनोविज्ञान को व्यवहार के, अनुभव के नहीं, विश्लेषण तक सीमित कर दिया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने अनुभव और व्यवहार दोनों के विश्लेषण के विरुद्ध विद्रोह किया तथा मनोविज्ञान को

अनुभव और व्यवहार की समष्टियों के अध्ययन तक सीमित रखा। व्यवहारवाद ने 'विचार-साहचर्य' को छोड़ दिया और 'उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया के साहचर्य' को अपनाया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने साहचर्य के प्रत्यय को बिल्कुल ही छोड़ दिया; तथा अनुभव और व्यवहार के प्रत्येक रूप को एक समष्टि माना। व्यवहारवाद ने अन्तर्दर्शन को मनोवैज्ञानिक छानबीन की विधि मानने से इन्कार कर दिया क्योंकि उसने अनुभव या चेतना को अपने क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया। लेकिन गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने अन्तर्दर्शन को अस्वीकृत नहीं किया क्योंकि उसने अनुभव को मनोविज्ञान में अध्ययन का उचित विषय माना। उसने केवल विश्लेषणात्मक अन्तर्दर्शन को अस्वीकृत किया जिस पर सत्तावाद और साहचर्यवाद ने ज़ोर दिया था। उसने विश्लेषण को बिल्कुल ही छोड़ दिया। उसने अनुभव और व्यवहार के प्रत्येक रूप को एक समष्टि माना जिसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। व्यवहारवाद ने संवेदनाओं को इसलिये छोड़ा कि वे गत्यात्मक प्रतिक्रियायें (Motor responses) नहीं हैं। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने भी संवेदनाओं को छोड़ा, लेकिन इसलिये कि वे अनुभव के परमाणु (Atoms) हैं। व्यवहारवाद ने प्रतिक्षेप को प्रारम्भिक कर्म माना और जटिल कर्मों को प्रतिक्षेपों के यौगिक। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने संवेदनाओं और प्रतिक्षेपों दोनों को छोड़ दिया क्योंकि ये अनुभव और व्यवहार के तत्त्व हैं। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने सत्तावाद और साहचर्यवाद के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के विरुद्ध विद्रोह किया।[१]

१०. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान या आकृतिवाद (Gestalt Psychology)।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय वुंट के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के विरुद्ध विद्रोह के रूप में उदय हुआ। वुंट का मत है कि अनुभव यौगिकों (Compounds) का होता है, तत्त्वों (Elements) का नहीं। प्रत्येक अनुभव जटिल होता है। अतएव मनोविज्ञान का कार्य पहिले इन जटिल प्रक्रियाओं

[१] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १००–१०१

का उनके तत्त्वों में विश्लेषण करना है और फिर यह अध्ययन करना कि तत्त्व कैसे जटिल फलों में संयुक्त होते हैं और उनके संयोग के क्या नियम हैं। मनोविज्ञान को पहिले अनुभव के तत्त्वों को पहिचानना चाहिये और तत्पश्चात् उनके यौगिक बनने की क्रिया को। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान को 'ईंट और गारे' का मनोविज्ञान (Brick and mortar psychology) कहता है, जो 'ईंट' पर अधिक जोर देता है। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान अनुभव और व्यवहार के तत्त्वों पर ज़ोर देता है। लेकिन गेस्टाल्ट मनोविज्ञान इस मौलिक मान्यता को लेकर चलता है कि अनुभव या व्यवहार का प्रत्येक रूप एक अपूर्व समष्टि है, एक गेस्टाल्ट है, जिसका तत्त्वों में विश्लेषण नहीं हो सकता। गेस्टाल्ट इसका नारा है। इसका अर्थ है 'शक्ल', 'रूप', या, 'समष्टि'। अतएव मनोविज्ञान का उद्देश्य जटिल अनुभवों और कर्मों का उनके तत्त्वों में विश्लेषण करना नहीं होना चाहिये। विश्लेषण उनकी प्रकृति को मिथ्या कर देता है। अनुभव और कर्म संगठित समष्टियां हैं, मनोविज्ञान को इन संगठित समष्टियों के, जैसे वे अनुभव या कार्य में वस्तुतः होती हैं उस रूप में, धर्मों का अध्ययन करना चाहिये।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान संगठित समष्टियों (Organized wholes) पर ज़ोर देता है। मनुष्य या पशु का शरीर एक गेस्टाल्ट है। वह भागों या अवयवों का एक योग या समूह मात्र नहीं है। शरीर के सभी भाग परस्पर सम्बन्धित होते हैं। शरीर समष्टि के रूप में काम करता है। उसका व्यवहार प्रतिक्षेपों का योग नहीं होता। मस्तिष्क भी समूचा काम करता है। एक सरल प्रतिक्षेप शरीर के अन्य अंगों पर भी क्रिया करता है। वह शरीर के किसी विशिष्ट भाग तक सीमित नहीं होता। शेरिंगटन ने सिद्ध कर दिया कि स्नायु-तंत्र संगठित होकर कार्य करता है। पैवलोव ने एक नियंत्रित प्रतिक्षेप की दूसरे पर निर्भरता प्रदर्शित कर दी। लैशली (Lashly) ने सिद्ध किया कि सीखने में मस्तिष्क समग्रतया कार्य करता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का मत है कि पशु कभी भी सरल कार्यों को परस्पर संयुक्त करके सरल असंगठित गतियों (*Simple unco-ordinated*

movements) से जटिल संगठित गतियों में नहीं पहुँचता। प्रारम्भ से ही उसकी गतियां समग्र शरीर की संगठित गतियां होती हैं। पशु अपने समग्र शरीर की सरल संगठित गति से समग्र शरीर की जटिल संगठित गति में पहुँचता है। वह एक सरल समग्र व्यवहार (Simple total behaviour) से एक जटिल समग्र व्यवहार में पहुंचता है। शुरू से ही उसका व्यवहार एक समष्टि, एक गेस्टाल्ट होता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान व्यवहार की संगठित समग्रता (Organized wholeness) पर अत्यधिक बल देता है।

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हम किसी वस्तु को एक समष्टि या इकाई के रूप में देखते हैं। हम उसे भागों के समूह के रूप में नहीं देखते। प्रत्यक्ष का विषय सदैव एक समिष्ट, एक गेस्टाल्ट होता है। यह भागों का समुदाय मात्र नहीं होता। किसी परिस्थिति या नमूने का प्रत्यक्ष मस्तिष्क में चलने वाली समग्र क्रिया पर निर्भर होता है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्ष में आकृति (Figure) और पृष्ठभूमि या आधार (Ground) का भेद बताते हैं। हम सदैव एक पृष्ठभूमि में आकृति का प्रत्यक्ष करते हैं। हम आकाश में चन्द्रमा को देखते हैं। चन्द्रमा आकृति है; आकाश पृष्ठभूमि है। आकृति प्रस्पत: सघन (Compact) होती है जिसका एक रूप होता है और एक रूपरेखा (Outline)। पृष्ठभूमि असीम देश (Unlimited space) की तरह दिखाई देती है। आकृति पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित करती है। आकृति और आधार का भेद दृष्टि-प्रत्यक्ष, श्रवण-प्रत्यक्ष और स्पर्श-प्रत्यक्ष तीनों में है। गाड़ी की सीटी उत्सुक यात्रियों के कम स्पष्ट कोलाहल की सामान्य पृष्ठ-भूमि से पृथक् एक आकृति के रूप में सुनाई देती है। त्वचा पर रेंगती हुई चींटी त्वक्-संवेदनाओं के सामान्य पुंज की पृष्ठभूमि से अलग एक आकृति के रूप में मालूम पड़ती है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान आकृति और पृष्ठभूमि के भेद का, अनुभव और व्यवहार के संगठन (Organisation of experience and behavior) में एक मौलिक सिद्धान्त के रूप में उपयोग करता है।

गेस्टाल्ट वादी अन्तराल (खाली स्थान) को भरने (Filling the gap) की बहुत बात करते हैं। उनका मत है कि एक बन्द आकृति (Closed figure) अन्तराल युक्त अनियमित आकृति की बराबरी में अधिक आकर्षक होती है। अन्तरालों को भरने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यह कई समग्र वस्तुओं के अनुभव का परिणाम नहीं है। आकृति वादियों का विश्वास है कि यह नेत्र से उत्तेजनाओं के पुंज को ग्रहण करने में मस्तिष्क की सक्रियता के कारण होती है। जब कोई अन्तरालयुक्त अनियमित आकृति दिखाई देती है, तब मस्तिष्क में असन्तुलित तनाव (Unbalanced tensions) उत्पन्न होते हैं। जब अन्तराल भर जाते हैं, तब मस्तिष्क का संतुलन पुनः स्थापित हो जाता है। मस्तिष्क में ग्रहण की प्रक्रिया सन्तुलन की दिशा में चलती है। मस्तिष्क खुली हुई आकृति को असन्तुलित तनाव के साथ ग्रहण करता है। लेकिन यह बन्द आकृति को सन्तुलन प्राप्त तनाव के साथ ग्रहण करता है। इस प्रकार मस्तिष्क एक आकृति की प्रतिक्रिया समग्रतया करता है। आकृति, शक्ल, परिमाण और गति का दृष्टि-प्रत्यक्ष अर्जित नहीं बल्कि अव्यवहित होता है। यह मस्तिष्क की क्रिया के स्वभाव में बद्धमूल है। आकृतियों या वस्तुओं को देखने की प्रक्रिया में नेत्र की गतियां महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। पैशिक क्रिया दृष्टि-प्रत्यक्ष में मार्मिक तत्त्व है।

आकृतिवादी पैशिक क्रियाओं के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। लेकिन उनका विचार है कि परिवेश के प्रति पैशिक प्रतिक्रियायें प्रात्यक्षिक क्रिया के द्वारा निर्धारित होती हैं; उनका अध्ययन परिवेश के प्रत्यक्षीकरण से अलग नहीं हो सकता। पैशिक क्रिया प्रात्यक्षिक क्रिया से उत्पन्न होती है। परिवेश का प्रत्यक्ष होता है और तत्पश्चात् पैशिक प्रतिक्रिया होती है। पैशिक क्रिया का प्रात्यक्षिक क्रिया से अलग अध्ययन नहीं हो सकता जो उसे निर्धारित करती है, क्योंकि शरीर समग्रतया काम करता है। "ऐन्द्रीय प्रत्यक्ष शरीर की समग्र क्रिया में आधारित होता है; और पैशिक प्रतिक्रिया भी उसी समग्र क्रिया में आधारित होती है (Sense perception is embedded in the total activity of the organism; and motor response is em-

bedded in the same total activity.[1]"

गेस्टाल्टवादी साहचर्य को संलाग (Cohesion) (चिपकना, स्नेहाकर्षण) के रूप में देखते हैं। दो या अधिक प्रत्यय जो एक साथ या अनुक्रमेण होते हैं, यांत्रिक विधि से साहचर्य नामक एक सूत्र के द्वारा नहीं बांधे जाते। उनके सम्बद्ध होने से पहिले या पश्चात् उनके स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं मानते। गेस्टाल्टवादी यह मानते हैं कि जब दो या अधिक पृथक् प्रत्यय या विचार किसी आकृति में प्रवेश करते हैं तो वे एक समष्टि के सदस्य होने के नाते परस्पर सम्बन्धित होते हैं; उन्हें एक अकेले नमूने के अंगों के रूप में धारण और स्मरण किया जाता है, पृथक् और स्वतंत्र रूप में नहीं।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान उत्तेजना और प्रतिक्रिया के शब्दों में व्यवहार की व्याख्या पसन्द नहीं करता। इसमें उसे परमाणुवादी मनोविज्ञान की गन्ध आती है। गेस्टाल्टवादी अनुभव का सांवेदनिक तत्वों में और व्यवहार का सरल उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया में होने वाले सरल प्रतिक्षेपों में विश्लेषण करने को अस्वीकार करते हैं। उन्हें उत्तेजना और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध से, चाहे वह प्रकृति-प्रदत्त हो चाहे अनुभव से अर्जित, आपत्ति है। वे मूलप्रवृत्तियों को प्रतिक्षेपों की शृंखला नहीं मानते। वे सीखे हुये व्यवहार को 'नियंत्रण' (Conditioning) की प्रक्रिया से होने वाला प्रतिक्षेपों का संगठन नहीं मानते। उनका मत है कि सीखना प्रात्यक्षिक क्रिया के संगठन और पैशिक क्रिया या व्यवहार के संगठन से सम्पन्न होता है। "गेस्टाल्ट के मतानुसार शिशु जीवन को कुछ पृथक् प्रतिक्षेप -गतियों के साथ प्रारम्भ नहीं करता, जो धीरे-धीरे नियंत्रित हो जाती हैं और व्यवहार में संयुक्त हो जाती हैं। शिशु एक सरल और अपरिपक्व रूप से व्यवस्थित व्यवहार से जीवन शुरू करता है, और परिवेश के साथ उसका समायोजन बोध और कर्म दोनों में व्यवस्था लाने से होता है, ये दोनों शरीर की समग्र क्रिया में आधारित होते हैं। इसके अतिरिक्त, इस समग्र क्रिया का प्रारम्भ से लेकर जीवनपर्यन्त एक (विशिष्ट) लक्षण होता है जिसे

---

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० ११८

सप्रयोजनता (Purposiveness) कहा जा सकता है।"[1] लेकिन गेस्टाल्टवादी स्पष्टतया सप्रयोजनता को मान्यता नहीं देते।

साहचर्यवादियों ने विचारों के मध्य जिन बन्धनों को महत्त्व दिया है और व्यवहारवादियों ने उत्तेजनाओं और पैशिक प्रतिक्रियाओं के मध्य जिन बन्धनों को महत्त्व दिया है वे कर्मों के पर्याप्त कारण नहीं हैं। गेस्टाल्टवादी कुछ कर्मों की व्याख्या "अन्तरालों को भरने" के नियम से करते हैं। आप एक पत्र अपने जेब में इस उद्देश्य से रखते हैं कि आप उसे डाक में छोड़ेंगे। यह कार्य आपके मन में एक तनाव उत्पन्न कर देता है जिसका शमन तब होता है जब आप उसे डाक में छोड़ देते हैं। जब आपने पत्र को जेब में रखा था, उस समय आपके व्यवहार में एक अन्तराल (रिक्तता) पैदा हो गया था। इस अन्तराल की पूर्ति तब होती है जब आप पत्र को डाक में छोड़ देते हैं। अन्तराल की पूर्ति इस विशेष शक्ति-समूह (Dynamic system) में संतुलन की अवस्था ला देती है। जब कोई व्यक्ति किसी काम को करने का भार लेता है तो उसके शरीर में तनाव उत्पन्न हो जाते हैं जिनका शमन काम के पूरा हो जाने पर होता है। सम्भवतया एक बन्द आकृति को देखने और एक अपूर्ण कार्य को पूरा करने में मस्तिष्क की क्रिया एक ही होती है। 'अन्तराल को भरने' में मस्तिष्क के तनाव शान्त हो जाते हैं और सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

कोहलर (Kohler), जो गेस्टाल्टवादी है, कहता है कि चिम्पैंज़ी अन्तर्दृष्टि (Insight) से सीखते हैं—प्रयत्न और भूल से नहीं। वे यांत्रिक विधि से नहीं सीखते जिसमें आवेगपूर्वक (Impulsively) काम करते हुए सफल क्रियायें दोहराई जाती हैं और असफल क्रियायें रोक दी जाती हैं, तथा प्रभाव के नियम (Law of effect) के अनुसार पहिली पक्की हो जाती है और दूसरी बिल्कुल लुप्त। वे अन्तर्दृष्टि से सीखते हैं। उनके अन्दर परिस्थिति की कुंजी को देखने की शक्ति होती है; वे परिस्थिति के नमूने को देख सकते हैं और समस्या को हल कर सकते हैं। पहिले वे आवेगपूर्वक काम

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० ११६

करते हैं, और कुछ समय तक प्रयत्न और भूलने का व्यवहार करते हैं। तत्पश्चात् एकाएक वे अन्तर्दृष्टि से अपने सामने वाली परिस्थिति की कुंजी को मालूम कर लेते हैं और समस्या को सुलझा लेते हैं। अन्तर्दृष्टि से सीखने में महत्वपूर्ण बात किसी परिस्थिति में वस्तुओं के नमूने या संयोग को देखना है।

एक दूसरा गेस्टाल्टवादी, कोफ्का (Koffka) यह मत रखता है कि सभी प्रकार का सीखना अन्तर्दृष्टि से होता है, और प्रयत्न और भूल से कोई सीखना नहीं होता। अन्तर्दृष्टि से सीखना प्रयत्न और भूल से सीखने से ऊपर एक नई विधि नहीं है। यही सीखने की एक मात्र विधि है। इसे प्रयत्न और भूल की विधि को बिलकुल हटाना है, जिसमें कोई नई चीज़ नहीं सीखी जा सकती, बल्कि असफल गतियों का लोप हो जाता है और सफल गतियां पक्की हो जाती हैं, तथा ऐसा यांत्रिक रूप से, पशु की किसी अन्तर्दृष्टि, किसी अभिप्राय, किसी लक्ष्य अथवा गतियों की किसी लक्ष्योन्मुखता (Direction) के बिना होता है। प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया में सारा व्यवहार विशुद्ध यांत्रिक होता है। "पशु कभी भी यह नहीं जान सकते कि वे कैसे लक्ष्य तक पहुंचते हैं। वे अन्धे होकर सीखते हैं, और जैसा कि कोफ्का प्रयत्न और भूल के नियम को समझता है उसके अनुसार वे रस्सी या सिटकनी की स्थिति को भी नहीं देख सकते जिस पर वे सफल प्रतिक्रिया में पंजा मारते हैं। वे पलायन (बाहर निकलने) के लिये सिटकनी या रस्सी को साधन के रूप में नहीं देख सकते।"[१]

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान सीखने में प्रात्यक्षिक तत्व (Perceptual factor) को महत्व देता है। किसी जटिल गति को सीखने में व्यक्ति को समग्र परिस्थिति का प्रत्यक्ष करना चाहिये और परिस्थिति तथा लक्ष्य के मध्यवर्ती सम्बन्ध को देखकर उसे मन में पुनः संगठित करना चाहिए। "सीखने का अर्थ है किसी नई चीज़ को करना। नवीनता केवल गतियुक्त कार्य को देखने से समझ में नहीं आ सकती, क्योंकि नवीनता परिस्थिति को इस प्रकार पुनः संगठित करने में होती है कि परिस्थिति और लक्ष्य के मध्य जो खाई है वह भरी जा सके।

[१] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय: पृ०, १२६

परिस्थिति को लक्ष्य को समाविष्ट करने वाले और लक्ष्य तक पहुँचाने वाले नमूने के रूप में देखकर खाई भरी जाती हैं।[1]

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किसी संवेग में चेहरे की जो अभिव्यक्ति होती है उसे एक जटिल समष्टि समझना चाहिए। चेहरे को एक समष्टि के रूप में लेना चाहिए, अभिव्यक्ति के पृथक भागों के रूप में नहीं। यह स्पष्ट है कि चेहरे की शक्ल समग्र चेहरे में निवास करती है और तुल्य रूप में चेहरे की संवेगात्मक अभिव्यक्ति भी समग्र चेहरे में निवास करती है। किसी संवेग में चेहरे की अभिव्यक्ति का अध्ययन करने में हमें भागों की बिल्कुल उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिये; वास्तव में भाग सम्पूर्ण चेहरे की अभिव्यक्तियां हैं। हमें किसी संवेग में होने वाली चेहरे की अभिव्यक्तियों के भागों को सम्पूर्ण से सम्बन्धित करके विचारना चाहिये। संवेग सम्पूर्ण चेहरे में अभिव्यक्ति पाता है, और चेहरे के विभिन्न लक्षण, यथा, चढ़ी हुई भौंह, विस्फारित नेत्र, संकुचित ओंठ इत्यादि एक ही संवेग की अभिव्यक्तियां होते हैं, जो स्वयं को सम्पूर्ण चेहरे में प्रकट करता है।

"इसी प्रकार गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक यह आग्रह करता है कि व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षणों की सूची बनाकर, व्यक्ति के प्रत्येक लक्षण को मापकर, और अन्त में उसके प्राप्तांकों को एक साथ किसी सारणी (Table) या चित्र में रखकर हम किसी व्यक्ति के चरित्र की सही तस्वीर नहीं पा सकते। ऐसी सारणी यह प्रदर्शित करने में असफल रहती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन सा लक्षण केन्द्रीय और प्रधान है तथा कौन से लक्षण गौण महत्त्व रखते हैं। यह समग्र व्यक्तित्व में प्रत्येक अकेले लक्षण के कार्य को प्रदर्शित नहीं करती। व्यक्तित्व लक्षणों का एक योग मात्र नहीं है बल्कि एक संगठित समष्टि, एक गेस्टाल्ट है।"[2]

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने प्रत्यक्षीकरण के मनोविज्ञान को महत्त्वपूर्ण अंशदान किया। परमाणुवादी मनोविज्ञान को अस्वीकार करने तथा अनुभव

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय: पृ० १२६
[2] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय: पृ० १०४-१०

और व्यवहार को समष्टियां समझने में इसने अच्छा किया। लेकिन यह समष्टियों के स्वरूप की व्याख्या करने का प्रयत्न नहीं करता। इसका समष्टियों के समग्र अनुभवों को मस्तिष्क और शरीर की गतिशीलता (Dynamics), उनके असन्तुलित तनावों और सन्तुलन से सम्बन्धित करना ग़लत है।

गेस्टाल्ट सिद्धान्त मानसिक जीवन में, निर्मित या संगठित संवेदनाओं के विपरीत गेस्टाल्ट या आकृति के कार्य पर ज़ोर देता है। यह कोई नवीन बात नहीं है बल्कि साहचर्यवाद के सिद्धान्त के विरुद्ध एक प्रकार का विद्रोह है। गेस्टाल्ट सिद्धान्त विश्लेषण का आवश्यकता से अधिक विरोध करता है। विश्लेषण का बिल्कुल बहिष्कार करना उचित नहीं है। मनोविज्ञान को विश्लेषण की विधि का कुछ न कुछ तो आश्रय लेना ही पड़ता है। एक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को विश्लेषण और संश्लेषण दोनों का इस्तेमाल करना पड़ता है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में विश्लेषण की पद्धति को अस्वीकार करने से गेस्टाल्ट सिद्धान्त याहच्छिक व्याख्या (Arbitrary interpretation) और अविश्लिष्ट प्रत्ययों (*Unanalysed conceptions*) के लिये रास्ता खोल देता है।

स्पियरमैन का यह मत ठीक है कि मन के विकास में भिन्नीकरण (Differentiation) और समग्रीकरण (Integration) दोनों एक साथ होते हैं। मनोवैज्ञानिक सरल तत्त्वों को लेकर चल सकता है और समग्र अनुभवों में उन्हें संगठित कर सकता है; अथवा वह जटिल समग्र अनुभवों को लेकर चल सकता है और सरल तत्त्वों में उनका विश्लेषण कर सकता है। अन्तिम परिणामों को सदैव वही होना चाहिये। संक्षेप में, समष्टि अपने घटकों से पहिले वर्तमान होती है यह गेस्टाल्ट-सिद्धान्त निराधार है।

समष्टियों के संगठन की व्याख्या चेष्टात्मक आवेग (Conative impulse) या व्यक्ति के लक्ष्य-प्राप्ति के प्रयत्न के बिना नहीं हो सकती। चेष्टात्मक प्रवृत्ति या रुचि का स्वरूप संगठन के क्षेत्र के स्वरूप को निर्धारित करता है। विभिन्न रुचियां विभिन्न लक्ष्यों को निर्धारित करती हैं जिनकी प्राप्ति विभिन्न समष्टियों के एकीकरण से होती है। अलग-अलग रुचियां रखने

वाले व्यक्ति एक ही समष्टि को अलग-अलग रूपों में देखते हैं। उदाहरण के लिये कलकत्ता के भाग व्यक्तियों के रुचि-वैचित्र्य के अनुसार विभिन्न रूपों में संगठित होते हैं। इस प्रकार गेस्टाल्ट मनोविज्ञान समष्टियों के स्वभाव और कारण की छान-बीन करने में गहराई में नहीं उतरता। किन्तु कुछ गेस्टाल्ट विचारों में अत्यधिक सप्रयोजनता (Purposiveness) पाई जाती है, यद्यपि गेस्टाल्टवादियों ने इस को महत्त्व नहीं दिया।[1]

११. प्रयोजनवादी मनोविज्ञान (Hormic Psychology)

मैकडूगल प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का प्रचारक है। प्रयोजन या हेतु प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का केन्द्रीय प्रत्यय (Central concept) है। "जैसे सत्तावाद संवेदना को मनोविज्ञान के आधारभूत तथ्य के रूप में देखता है, जैसे व्यवहारवाद शारीरिक गति को इस रूप में देखता है, और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान समष्टियों के प्रत्यक्ष को इस रूप में देखता है वैसे ही एक मनोविज्ञान का सम्प्रदाय ऐसा है जो प्रयोजन के तथ्य से प्रारम्भ होता है।"[2]

कोई भी मानवीय प्रयोजन के तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता। मनुष्यों के ऐच्छिक कर्म सप्रयोजन होते हैं। लेकिन मैकडूगल का दावा है कि पशु का भी प्रत्येक कर्म सप्रयोजन है। यहां तक कि मूलप्रवृत्यात्मक कर्म भी सप्रयोजन हैं। "पशुओं की प्रत्येक जाति का गठन इस प्रकार बना हुआ है कि वह कुछ स्वाभाविक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, जिनकी प्राप्ति पशु की सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। चूंकि ये आवश्यकतायें और उनको पूरा करने की, तत्सम्बन्धी लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रवृत्तियां (यथा, भोजन, आश्रय, इत्यादि को प्राप्त करने की प्रवृत्तियां) किसी जाति के सभी सदस्यों में जन्मजात होती हैं और पुश्त-दर-पुश्त चली आती हैं, इसलिये ये मूलप्रवृत्यात्मक कहलाती हैं।... प्रयोजनवादी मनोविज्ञान इस बात को मानता है कि अन्य पशुओं की तरह मनुष्य भी अपनी जाति के लिए स्वा-

[1] स्पियरमैन : साइकोलोजी डाउन दि एजेज़

[2] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १५१

भाविक कुछ प्रवृत्तियों को वंशानुक्रम से प्राप्त करता है; ये उसके सब प्रयत्नों के प्रारम्भिक आधार हैं, जिन लक्ष्यों को प्राप्त करने का वह प्रयत्न करता है वे या तो उसकी जन्मजात प्रवृत्तियों के स्वाभाविक लक्ष्य हैं, अथवा लक्ष्यों के वे साधन (यथा, धन) हैं जिन्हें उनके अनुभव के पश्चात स्वयं लक्ष्यों के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।"[1] अतएव प्रयोजनवादी मनोविज्ञान को कभी-कभी मूलप्रवृत्तियों का सिद्धान्त (Theory of Instincts) भी कहा जाता है।

प्रयोजन प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का आधारभूत प्रत्यय (Basic concept) है। "प्रयोजन में, जैसा कि हम सामान्यतया उसका व्यवहार करते हैं, दो तथ्य गर्भित हैं जो सदैव साथ नहीं होते। इसमें किसी कर्म के फल का पूर्वज्ञान गर्भित है, और उस फल के लिए इच्छा भी गर्भित है। प्रयोजनवाद का अर्थ है सहेतुक प्रयत्न की प्रधानता, पूर्वज्ञान की प्रधानता नहीं।"[2] इस प्रकार मैकडूगल व्यवहार की व्याख्या लक्ष्य या प्रयोजन से करता है। वह अनुभव की व्याख्या भी इसी प्रकार करता है।

सुखवादी मनोविज्ञान (Hedonistic Psychology) भी प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का एक रूप है।

सुखवादी मनोविज्ञान—इसके अनुसार सभी चेष्टाओं का सच्चा लक्ष्य सुख है; हमारा प्रयत्न सदैव किसी पहिले से ज्ञात सुख को पाने और दुःख को दूर करने के लिये होता है, हम भोज, आश्रय, आराम इत्यादि की इच्छा उन्हीं के लिए नहीं करते; बल्कि केवल उनसे मिलने वाले सुख के लिये करते हैं। यह कर्म का सुख-दुःख का सिद्धान्त है जिसे प्रायः मनोवैज्ञानिक सुखवाद (Psychological hedonism) कहते हैं।

मैकडूगल का प्रयोजनवादी मनोविज्ञान—यह मनोवैज्ञानिक सुखवाद को नहीं मानता। इसके अनुसार सुखवादी सिद्धान्त असत्य है; जिसकी हम इच्छा

[1] मैकडूगल : मनुष्यों की शक्तियाँ, पृ० २६.
[2] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १६२-६६

करते हैं और जिसे पाने का प्रयत्न करते हैं वह स्वयं वस्तु है, जैसे भोजन, आश्रय, या आराम; इन वस्तुओं की इच्छा सुख के लक्ष्य के लिये साधन मात्र के रूप में नहीं की जाती, जैसा कि मनोवैज्ञानिक सुखवाद मानता है। हम वास्तव में इन वस्तुओं को प्रकृत्या शुभ और वांछनीय (Intrinsically good and desirable) समझते हुए इनकी इच्छा करते और इन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। हम इस लक्ष्य या वस्तु को पाने की इच्छा और प्रयत्न इसलिये करते हैं कि हमारी रचना (Constitution) ही इस प्रकार की है। मनुष्य पशुओं के समान इस प्रकार निर्मित हुआ है कि वह कुछ प्राकृतिक लक्ष्यों (यथा, अन्न, आश्रय, इत्यादि) की इच्छा करता है और उचित परिस्थितियों में उन्हें पाने का प्रयत्न करता है। लक्ष्य या वस्तु की प्राप्ति से सामान्यतः सुख या तृप्ति का अनुभव होता है जो चेष्टा की समाप्ति पर भी बना रहता है। किन्तु सुख कदापि कर्म या प्रयत्न का लक्ष्य नहीं होता।

प्रयोजनवादी मनोविज्ञान व्यवहारवाद के विरुद्ध है जो व्यवहार को उत्तेजना की यांत्रिक प्रतिक्रिया बना देता है। मैकडूगल का मत है कि प्रयोजन के बिना व्यवहार की व्याख्या नहीं हो सकती। सारा व्यवहार सप्रयोजन होता है। उसमें किसी लक्ष्य को पाने की चेष्टा और लक्ष्य का पूर्वज्ञान निहित होता है।

मैकडूगल व्यवहार के निम्नलिखित लक्षण बताता है: (१) परिवेश से स्वतंत्रता और स्वतः क्रिया (Spontaneity) की कुछ मात्रा; (२) उत्तेजना के रुक जाने के पश्चात् भी काम में लगा रहना; (३) प्रयत्न को बदलते हुये लक्ष्योन्मुख रहना अथवा गत्यात्मक व्यवहार में परिवर्तन; (४) किसी परिणाम को प्राप्त कर लेने पर परिवर्तनशील क्रिया की समाप्ति; (५) जटिल व्यवहार के विभिन्न अंगों का साधनों और साध्यों के रूप में एक दूसरे से समायोजन (६) प्रयत्न और भूल की विधि से सीखना। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवहार लक्ष्योन्मुखता (Goal seeking) को प्रदर्शित करता है। लक्ष्योन्मुखता के लिए प्रेरक (Motives) या कर्म के स्रोत आवश्यक हैं। मूलप्रवृत्तियां मुख्य प्रेरक (Primary motives) हैं।

मैकडूगल का मन को अनुभव और व्यापार का द्रष्टा मानना और मन के इस प्रत्यय को अस्वीकार करना कि यह पृथक् संवेदनाओं और विचारों का समूह है; बिल्कुल ठीक है। वह अनुभव और व्यवहार की सहेतुकता को महत्त्व देता है, यह भी ठीक है। किन्तु वह मूलप्रवृत्तियों के महत्त्व को अतिरंजित करता है और अनियमित तथा प्रतिक्षेप-कर्मों के भाग को पर्याप्त रूप से मान्यता नहीं देता। बुद्धि को मूलप्रवृत्तियों की सेविका मानना ठीक नहीं है। कभी-कभी बुद्धि मूलप्रवृत्तियों के द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कराने वाले साधनों का सुझाव देती है। किन्तु बुद्धि मूलप्रवृत्तियों को रास्ता दिखाती है; उन पर नियंत्रण करती है, और उन्हें तर्कसंगत और सामाजिक मार्गों (Rational and social channels) में भी डालती है। इस प्रकार बहुत प्रायः मूलप्रवृत्तियाँ बुद्धि के शासन में काम करती हैं। मुख्य प्रेरकों के रूप में मूलप्रवृत्तियां हमें पुरानी 'शक्तियां' (Faculties) की याद दिलाती हैं। मैकडूगल मूलप्रवृत्तियों को प्रारम्भिक सत्तायें मान कर शक्ति मनोविज्ञान को पुनर्जीवित कर देता है। कई तथाकथित मूलप्रवृत्तियां यथा, मैथुन, बच्चों की देख-रेख, स्वस्थापन, संग्रहशीलता, रचनाप्रियता; इत्यादि क्रियाओं के जटिल समूह हैं जिन्हें व्यक्ति सामाजिक परिवेश के सम्पर्क में आकर अर्जित करता है। मूलप्रवृत्तियां छोटे, प्रारम्भिक काम हैं जो जन्मजात होते हैं। कई जटिल काम जिन्हें गलती से मूलप्रवृत्तियां कहा जाता है, सीखे हुये काम हैं। मूलप्रवृत्तियां सदैव लक्ष्यों को निर्धारित नहीं करतीं और न मानवीय व्यवहार के लिये शक्ति प्रदान ही सदैव करती हैं। मूलप्रवृत्तियों का सामाजिक व्यवहार में महत्त्वपूर्ण भाग है। लेकिन बुद्धि का भाग भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। सामाजिक व्यवहार अधिकांशतः मूलप्रवृत्तियों और अनुकरण (Imitation) से निर्धारित होता है; लेकिन किसी अंश तक विचार और चिन्तन से भी निर्धारित होता है। मैकडूगल सामाजिक व्यवहार में मूलप्रवृत्तियों के भाग को अत्यधिक महत्त्व देता है। उसके संवेग विषयक सिद्धान्त की परीक्षा पहिले ही की जा चुकी है। वह चरित्र-निर्माण में आत्म सम्मान की भावना के शासन में होने वाले भावनाओं के संगठन को अत्यधिक महत्त्व देता है। वास्तव में, चरित्र में विचार और संकल्प की आदतें उतनी ही होती हैं जितनी संवेग की आदतें या भावनायें। मैकडूगल के सोद्देश्-

विषयक सिद्धान्त में सत्य का अंश बहुत है। संक्षेप में, यंत्रवादी प्रत्ययों (Mechanistic Concepts) से अनुभव और व्यवहार की पर्याप्त व्याख्या नहीं हो सकती। मनोविज्ञान को प्रयोजनवादी होना चाहिये, न कि यंत्रवादी।

१२. फ्रॉयड का मनोविश्लेषण का सिद्धान्त (Freud's Theory of Psycho-analysis)

सिगमंड फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण के सिद्धान्त और प्रविधि (Technique) को सूत्रबद्ध किया जिसका वर्णन पहिले ही व्यक्तित्व के अध्याय में किया जा चुका है। उसके स्वप्न-सम्बन्धी सिद्धान्त का भी वर्णन हो चुका है। यहाँ पर हम उसके सिद्धान्त की कुछ विस्तृत बातों की ओर संकेत करेंगे।

(१) मन के विषय में फ्रॉयड के विचार (Freud's conception of mind)—फ्रॉयड मन को सक्रिय (Dynamic) मानता है। मन का वास्तविक कार्य प्रज्ञात्मक (Cognitive) नहीं है बल्कि आवेगात्मक या चेष्टात्मक (Impulsive or conative) है। मन चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों में सचेष्ट रहता है। प्राचीन मनोविज्ञानों ने मानवीय मन के बौद्धिक और चेतन पहलुओं को अनुचित महत्त्व दिया। फ्रॉयड उसके अचेतन और अबौद्धिक अंगों को अधिक महत्त्व देता है। "मन संवेदनाओं, प्रत्ययों, विचारों और बौद्धिक प्रक्रियाओं का समुदाय नहीं है; वह विचार, संवेदना इत्यादि धर्मों से युक्त एक आध्यात्मिक पदार्थ (Spiritual substance) नहीं है; बल्कि वह एक गम्भीर और तरंगित सागर है जिसके रहस्य चेतना और तर्क के शान्त पृष्ठ (Surface) में नहीं पाये जाते, बल्कि उसकी आन्तरिक अचेतन और अबौद्धिक गहराइयों में पाये जाते हैं।"[१]

(२) चेतन और अचेतन का विरोध (Polarity of the conscious and the unconscious)—फ्रॉयड चेतन, पूर्वचेतन और अचेतन में विश्वास करता है। "पूर्वचेतन का चेतन से घनिष्ठ सम्बन्ध है; यह वह है जो तुरन्त

[१] पैट्रिक : दर्शनशास्त्र की भूमिका, पृ० २१२

चेतन बनाया जा सकता है, यद्यपि किसी एक क्षण में वस्तुतः चेतन नहीं होता। पूर्वचेतन अत्यधिक चेतन से लेकर न्यूनतम चेतन तक अर्थात् उससे लेकर जिसका जाग्रत अवस्था में पूरी तरह प्रत्याह्वान हो सकता है उस तक जिसका न्यूनतम हो सकता है, फैले हुये अविच्छिन्न पैमाने (Continuous scale) का मध्यवर्ती बिन्दु नहीं है। अचेतन वह है जिसका दमन किया गया है ; पूर्वचेतन वह है जो एक क्षण के लिये चेतन रहता है और जिसका दमन नहीं हुआ है। पूर्वचेतन को अत्यधिक चेतन और अत्यधिक चेतन की केवल मध्यवर्ती मात्रा मानने से फ्रॉयड के समग्र अचेतन का प्रत्यय गड़बड़ हो जायगा। फ्रॉयड चेतन और अचेतन को एक अविच्छिन्न पैमाने की सीमाओं के रूप में नहीं देखता, बल्कि परस्पर विरोधियों के रूप में देखता है।"[1] चेतन और अचेतन के मध्य शत्रुभाव है। पूर्व-चेतन से युक्त चेतन दबी हुई इच्छाओं का स्तर नहीं है। अचेतन दबी हुई इच्छाओं का स्तर है।

(२) वास्तविकता के नियम और सुख के नियम का विरोध (Polarity of the Reality Principle and the Pleasure Principle)—मन या अहं चेतन स्तर में वास्तविकता के नियम का अनुसरण करता है। वह सामाजिक परिवेश में प्रचलित नैतिक नियमों का पालन करता है। सामाजिक नियमावली उसे सुख के नियम का पालन करने तथा अपनी इच्छाओं को तुरन्त तृप्त करने का प्रयत्न करने से रोकती है। लेकिन अहं (Ego) अचेतन स्तर में सुख के नियम का अनुसरण करता है। दबी हुई इच्छायें जो अचेतन होती हैं, अपनी तृप्ति ढूँढ़ती हैं और सुख के नियम का अनुसरण करती हैं। "स्वभावतया मनुष्य सुख के नियम का अनुगमन करता है ; वह तुरन्त सुख ढूँढ़ता है और अपनी इच्छाओं की तुरन्त और सीधी पूर्ति चाहता है। किन्तु उसका सामना भौतिक प्रकृति और अपने सामाजिक परिवेश की वस्तुस्थितियों (Realities) से होता है जो उसकी इच्छा-पूर्ति में अत्यधिक बाधा उपस्थित करती हैं। वह उन सुखों से दूर रहना जो अधिक दुःख उत्पन्न करते हैं तथा कालान्तर में में अधिक तृप्ति की आशा में वर्तमान में इच्छाओं की तृप्ति को स्थगित करना

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १२६

सीख लेता है । अपने दिवा-स्वप्नों और अचेतन में वह सुख के नियम का अनुसरण करता है, लेकिन उसका सुव्यवस्थित जाग्रत (चेतन) जीवन वास्तविकता के नियम के शासन में रहता है ।"[1] इस प्रकार सुख के नियम और वास्तविकता के निमय के मध्य विरोध रहता है ।

४. *आहमिक मूलप्रवृत्ति और काम में विरोध (Polarity of the Ego instinct and the Libido)*—अपने प्रारम्भ के लेखों में फ्रॉयड ने काम या लिबिडो के विरोधी को कोई नाम नहीं दिया । किन्तु उसने दमन, प्रतिरोध (Censorship), द्वन्द्व और समझौते के बारे में कहा था जो काम का दमन करने वाली कतिपय विरोधी शक्तियां हैं; कभी-कभी उसने इन शक्तियों को अहं या आहमिक प्रवृत्ति (Ego or ego instinct) कहा है । इस प्रकार मूल प्रवृत्तियों को दो शीर्षकों में रखा गया, आहमिक प्रवृत्ति और काम ।

फ्रॉयड का काम-प्रत्यय व्यापक है । इसका अर्थ है कामुकता (Sexuality) । इसका अर्थ प्रेम—माता-पिता का प्रेम, बच्चों का प्रेम, कामुक प्रेम, मित्रों का प्रेम, पशुओं का प्रेम, और जड़ वस्तुओं का प्रेम, भी है । इसका अर्थ शारीरिक सुख के सभी रूप भी हैं । इसमें अंगूठा चूमने और मलमूत्रोत्सर्ग के सुखों का समावेश होता है । फ्रॉयड बहुधा 'काम' (लिबिडो) शब्द का अत्यधिक विशाल अर्थ में प्रेम के लिये इस्तेमाल करता है । तथापि वह अपने 'लिबिडो' को कामहीन करने (Desexualize) के प्रयत्न का उग्र विरोध करता है । वह आग्रह करता है कि उसका काम का प्रत्यय संकीर्ण भी है और व्यापक भी ।

फ्रॉयड का मत है कि शिशु में आत्मरति (Auto-erotic) होती है; वह अपने ही शरीर से प्रेम करता है, तथा अपनी भूख, प्यास, मूत्र-त्याग, मल-त्याग की प्रवृत्तियों की तृप्ति से सुख-लाभ करता है । इस अवस्था को आत्मसक्ति (Narcissism) की अवस्था कहते हैं । ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों वह समजातिकामुक (Homosexual, समलिंगीय के साथ व्यभिचार करने वाला) होता जाता है; एक लड़का दूसरे लड़के में आसक्ति

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय, पृ० १६०-६१

के साथ प्रेम करता है, वह प्रेम को अपने से दूसरे लड़के में स्थानान्तरित (Transfer) कर देता है। ज्यों-ज्यों लड़का प्रौढ़ होता जाता है, त्यों-त्यों वह विजातिकामुक (Heterosexual) होता जाता है; एक युवक एक युवती से प्रेम करता है, वह अपने प्रेम को समलिंगीय मित्र से विषमलिंगीय मित्र में स्थानान्तरित कर देता है। इस प्रकार आत्मरति, समलिंगीय-रति और विषमलिंगीय-रति, ये काम के विकास के विभिन्न चरण हैं।

लेकिन फ्रॉयड काम की एक अन्य अभिव्यक्ति की बात भी कहता है जो मातृ-ग्रन्थि (Oedipus complex) और पितृ-ग्रन्थि (Electra complex) का रूप लेती है। मातृ-ग्रन्थि पुरुष-शिशु (Male child) का अपनी माता के प्रति आकर्षण और अपने पिता के प्रति द्वेष की प्रवृत्ति है। पितृ-ग्रन्थि स्त्री-शिशु (Female child) का अपने पिता के प्रति आकर्षण और माता के प्रति द्वेष की प्रवृत्ति है। ये ग्रन्थियाँ प्रौढ़ावस्था या किशोर-वय से बहुत पूर्व बन जाती हैं, जब विषयलिंगीय-रति के आगमन के साथ सच्ची लिंगीय कामुकता (Genital sexuality) का उदय होता है। जैसे-जैसे बालक विकसित होता है, वैसे-वैसे सामाजिक दबाव के कारण माता के लिये उसकी कामना का दमन होता है और वह एक अचेतन इच्छा बन जाती है। यह दबी हुई और अचेतन मातृ-ग्रन्थि अनेक मानसिक विषमायोजनों (Maladjustments) को जन्म देती है। फ्रॉयड मातृ-ग्रन्थि को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देता है।

फ्रॉयड काम की दो अन्य अभिव्यक्तियों की बात भी कहता है जो स्वपीड़न-जनित कामानन्द और परपीड़न-जनित कामानंद (Masochism and sadism) का रूप लेती है। पहिली अपने को पीड़ित करने की प्रवृत्ति है। दूसरी प्रेम के विषय को पीड़ित करने की प्रवृत्ति है। फ्रॉयड निर्दयता और विनाशकता के सभी अन्य रूपों का समावेश परपीड़नप्रियता (Sadism) में करता है।

(५) जीवन-प्रवृत्ति और मृत्यु-प्रवृत्ति का विरोध (*Polarity of the Eros and the Death Instinct*)—फ्रॉयड काम प्रवृत्ति में आत्मरक्षण

की प्रवृत्तियों का समावेश करके काम-प्रत्यय को व्यापक बना देता है; और उसे 'इरौस' या जीवनप्रवृत्ति कहता है। इस जीवन-प्रवृत्ति की विरोधिनी मृत्यु प्रवृत्ति है। कुछ व्यक्तियों में आत्मघात की प्रवृत्ति पाई जाती है। शाश्वत शान्ति या निर्वाण की चाह मृत्यु-प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति के अन्दर कोई प्रवृत्ति ऐसी होती है जिसका लक्ष्य मृत्यु होता है। फ्रॉयड आत्म-पीड़न और प्रेमी व्यक्ति के पीड़न तक को जीवन-प्रवृति और मृत्यु-प्रवृत्ति का सम्मिलित फल मानता है। इस प्रकार फ्रॉयड जीवन-प्रवृति और मृत्यु-प्रवृत्ति के विरोध को मानता है।

(६) *'इड', अहं (इगो) और उच्च-अहं (सुपर इगो) The id, the ego and the super-ego*—प्रारम्भ में फ्रॉयड ने मन को अहं और अचेतन में विभाजित किया था। उसका विचार था कि अहं चेतन होता है और जो इच्छायें (काम) उसे अस्वीकार्य हैं उनका वह दमन करता है और प्रतिरोध-पूर्वक उन्हें अचेतन बनाये रखता है। किन्तु कई रोगियों में प्रतिरोध अचेतन पाया गया। अतएव शुरू के दमन को भी अचेतन होना चाहिये। "इस प्रकार, अहं को दमन और प्रतिरोध करने में अचेतन रूप से काम करता हुआ माना गया। फलतः अहं अंशतः चेतन और अंशतः अचेतन है। चेतन पहलू में वह परिवेश के संपर्क में रहता है, जिसका प्रत्यक्ष उसे ज्ञानेन्द्रियों से होता है और जिसका प्रहस्तन (Manipulation) वह पेशियों के इस्तेमाल से करता है। मन का अचेतन अन्तःप्रदेश सक्रिय मूलप्रवृत्तियों तथा उन विशेष विघ्नकारी इच्छाओं और अनुभवों का निवास-स्थान है जिनका दमन कर दिया गया है। यहां विरोध परिवेश के संपर्क में न रहने वाले मन के उपरिष्ठ (Superficial) भाग और परिवेश के सीधे संपर्क में न रहने वाले मन के आन्तरिक भाग के मध्य है। आंतरिक भाग को फ्रॉयड अब 'इड' कहता है। अहं परिवेश के संपर्क में रहता है, परन्तु उसका विकास 'इड' से हुआ है और वह नीचे 'इड' में डूबा रहता है; अर्थात् वहां तक डूबा रहता है, जहां तक वह अचेतन है। 'इड' में व्यक्ति के जीवन की मूलप्रवृत्यात्मक प्रेरक शक्तियों का, जीवन-प्रवृत्तियों और मृत्यु-प्रवृत्तियों दोनों का, समावेश होता है जो विशेष इच्छाओं का रूप

धारण करती हैं। जब भी अहं इन विशेष इच्छाओं का दमन करता है, वे 'इड' में वापस चली जाती हैं। 'इड' सुख के नियम के अनुसार अविवेकपूर्वक तृप्ति पाने की कोशिश करता है; किन्तु उसे अहं के माध्यम से काम करना पड़ता है जो वास्तविकता के नियम को सीख चुका होता है।''[1]

इस प्रकार फ्रॉयड का परिशोधित सिद्धान्त अहं को अंशतः चेतन और अंशतः अचेतन बना देता है। इसका चेतन अंश परिवेश के सम्पर्क में रहता है और वास्तविकता के नियम का पालन करता है। इसका अचेतन अंश अचेतन अन्तःप्रदेश या 'इड' में मज्जित रहता है और सुख के नियम का पालन करता है। अहं संसार और 'इड' की मध्यस्थता करने की कोशिश करता है। एक ओर यह चेतनापूर्वक 'इड' के आदेशों का पालन करता है। दूसरी ओर, यह 'इड' की उन असंस्कृत इच्छाओं का दमन करता है जो सामाजिक परिवेश की नियमावलियों से मेल नहीं खातीं। यदि अहं सफलता के साथ 'इड' का परिवेश की माँगों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में समर्थ होता है तो यह संगीतपूर्ण, सुव्यवस्थापित और परिवेश से समायोजित हो जाता है। 'इड' सदैव अचेतन और अव्यवस्थित रहता है। इसमें व्यक्ति के जीवन की सभी मूल प्रेरक शक्तियों का, जीवन-प्रवृत्तियों और मृत्यु-प्रवृत्तियों दोनों का निवास रहता है।

अहं और 'इड' का द्वंद्व उच्च-अहं के कारण और भी जटिल बन जाता है। यह अहं का आदर्श है और अन्तःकरण (Conscience) के समान है। अहं दूरदर्शी (Prudent) है। 'इड' असंस्कृत विद्रोही मूलप्रवृत्तियों का समुच्चय है। उच्च-अहं केवल मनुष्य में पाया जाता है और कहा जाता है कि इसका उदय छोटे शिशु की अतृप्त काम-वासना (लिबिडो) से होता है। कहते हैं कि इसका मूल मातृ-ग्रंथि (Oedipus complex) में है। ''उच्च-अहं में आदेश और निषेध (Precept and prohibitions) होते हैं जिनका यह अहं से पालन करवाने की कोशिश करता है। ये परिवेश की

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय : पृ०, १६४-६५

वास्तविकताओं से व्युत्पन्न उपयोगी आदेश (Precepts of expediency) नहीं होते, बल्कि अन्तर्जगत्, 'इड' और उसके आन्तरिक संघर्षों से व्युत्पन्न निरपेक्ष आदेश (Categorical imperative) हैं।[1]

(७) *दबी हुई शैशवावस्था की कामुकता (Repressed infantile sexuality)*—फ्रॉयड का मनोविश्लेषण-सिद्धान्त कामुकता, दमन, और शैशवावस्था के तीन स्तम्भों पर टिका हुआ है। शैशवावस्था में बालक की कामुकता की प्रायः समाज के प्रतिबन्ध के कारण तृप्ति नहीं हो पाती। अतः वह दबी हुई अचेतन इच्छा बन जाती है। इससे स्थायी ग्रन्थियों का निर्माण हो जाता है। ये ग्रन्थियां पीड़ा की अनुभूति से रंगे हुये विचारों के समुच्चय हैं। इन संवेगयुक्त विचार-समुच्चयों या अचेतन ग्रन्थियों की अभिव्यक्ति चेतना में स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों, चिन्ता, लिखने की भूलों, कहने की भूलों इत्यादि में जो आकस्मिक नहीं होते, होती है। कभी-कभी उनकी अभिव्यक्ति स्नायु-विकृतियों में होती है फ्रॉयड सर्वत्र मानसिक कार्य-कारण-भाव (Psychical causation) में विश्वास रखता है। उसका मत है कि सब 'मानसिक प्रक्रियायें सकारण होती हैं। कभी-कभी उनके कारण अचेतन इच्छाओं (लिबिडो) की गहराई में पाये जाते हैं। अतः फ्रॉयड का मनोविज्ञान 'गहराई का मनोविज्ञान' (Depth Psychology) कहलाता है।

यह सही है कि अचेतन या अधोचेतन मानसिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग लेता है। यह भी सही है कि दबी हुई इच्छायें अचेतन हो जाती हैं; लेकिन वे चेतना के सीमाप्रदेश (Margin of consciousness) में रहकर चेतना के केन्द्र को प्रभावित भी कर सकती हैं। कभी-कभी हमें अतृप्त इच्छाओं का ज्ञान होता है। फ्रॉयड अचेतन को अत्यधिक महत्त्व देता है।

यह सही है कि दबा हुआ काम स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों, भूलों, हास्य, कला, धर्म और मानसिक उपद्रवों में भी प्रकट होता है। लेकिन फ्रॉयड काम को बहुत महत्त्व देता है। उसके सिद्धान्त में सर्वकामुकतावाद (Pansexuality)

[1] मनोविज्ञान के समकालीन सम्प्रदाय : पृ० १६५

का दोष बताया जाता है। काम-प्रवृत्ति मानव-जीवन का एक अत्यधिक प्रबल प्रेरक है। लेकिन मानवीय व्यवहार को प्रेरित करने वाली यही एकमात्र प्रवृत्ति नहीं है। एड्लर का कहना ठीक है कि स्वस्थापन या शक्ति-प्राप्ति की प्रवृत्ति काम-प्रवृत्ति की अपेक्षा अधिक प्रबल है और समाज पग-पग पर उसकी पूर्ति में अधिक बाधा देता है। हीनता की भावना-ग्रन्थि कई मानसिक विकारों का मूल है। स्वस्थापन की प्रवृत्ति भी स्वप्नों, दिवा-स्वप्नों इत्यादि में प्रकट होती है। युंग का कहना भी ठीक है कि शिशु के अन्दर काम-प्रवृत्ति और शक्ति-प्राप्ति की प्रवृत्ति जीवित रहने की प्रवृत्ति से अलग नहीं होतीं। जीवित रहने की प्रवृत्ति काम-प्रवृत्ति और स्वस्थापन की प्रवृत्ति की अपेक्षा अधिक मौलिक है, जिनका उदय उससे बाद में बालक के जीवन में उचित समयों पर होता है। वास्तव में बात यह है कि मानवीय स्वभाव इतना जटिल है कि एक मूलप्रवृत्ति (काम) से उसका स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। फ्रॉयड ने कई ऐसे व्यक्तियों का अनुशीलन किया जो काम-सम्बन्धी विषमायोजनों के रोगी थे। इसलिये उसने जल्दबाज़ी में अपने इस सिद्धान्त को सुप्रपद्द कर लिया कि दबी हुई कामुकता स्वप्नों और मानसिक रोगों का कारण है। लेकिन हमें साधारण व्यक्तियों का अध्ययन करने के उपरान्त असाधारण व्यक्तियों के बारे में कोई राय कायम करनी चाहिए। असाधारण से साधारण की ओर जाने का औचित्य सिद्ध नहीं होता।

फ्रॉयड की काम के स्वरूप के विषय में कोई स्थिर राय नहीं है। ऐसा उसके यह कहने से स्पष्ट हो जाता है कि काम संकीर्ण भी है और व्यापक भी। 'काम' जननांगों की तृप्ति है। इस अर्थ में इसका शिशु में होना असम्भव है। 'काम' शारीरिक सुख है, अर्थात् अंगूठा चूसने, मल-मूत्र का उत्सर्ग करने इत्यादि का सुख है। यह 'काम' के अर्थ को विचित्र रूप से विस्तृत करना है। पुनः 'काम' पितृ-प्रेम, सन्तति-प्रेम, मित्रों के प्रति प्रेम, और जड़ पदार्थों के प्रति प्रेम है। फ्रॉयड प्रेम के इन सभी रूपों को 'काम' की अभिव्यक्तियाँ मानता है। यद्यपि हो सकता है कि उनका काम-प्रवृत्ति से दूर का सम्बन्ध हो तथापि साधारण (स्वस्थ) व्यक्ति उन्हें काम की अभिव्यक्तियाँ नहीं समझते।

फ्रॉयड यहां पर मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का अभाव प्रदर्शित करता है। मातृ-प्रवृत्ति (सन्तति-प्रेम) और काम-प्रवृत्ति दो बिल्कुल भिन्न प्रवृत्तियां हैं; तथा वात्सल्य संवेग अथवा माता का प्रेम और कामुक प्रेम दो बिल्कुल भिन्न संवेग हैं। 'काम' शीर्षक के अन्तर्गत उन्हें एक साथ मिला देना भ्रान्ति मात्र है। फ्रॉयड के सिद्धान्त में बहुत विश्रृंखलता है।

फ्रॉयड मातृ-ग्रन्थि के बारे में भी अत्युक्ति करता है। लेकिन बहुत से साधारण व्यक्ति अपने मन के अन्दर उसका चिन्ह भी नहीं पाते। फ्रॉयड इसके स्पष्टीकरण में कह सकता है कि ऐसे मामलों में माता के लिये कामेच्छा का सफलतापूर्वक दमन हो गया है। फ्रॉयड प्रायः परिकल्पना (Hypothesis) मात्र को मनोवैज्ञानिक तथ्य मान बैठता है। कहा जाता है कि उच्च-अहं या अन्तःकरण और उसके विधानों और निषेधों की उत्पत्ति मातृ-ग्रन्थि से होती है। यह एक असंगत परिकल्पना है।

फ्रॉयड का वास्तविकता और सुख के नियमों के विरोध का सिद्धान्त उसके काम-दमन के सिद्धान्त पर आधारित है, और उसका खंडन-मंडन इसी सिद्धान्त के साथ हो जाता है। उसका झुकाव मनोवैज्ञानिक सुखवाद की ओर है जो ग़लत है। मैकडूगल का कहना ठीक है कि हम अन्न, आश्रय, साथी और अन्य वस्तुओं की खोज उन्हीं के ख़ातिर करते हैं, उनसे उत्पन्न होने वाले सुख के ख़ातिर नहीं। फ्रॉयड का यह मत सही है कि चेतन स्तर पर (जाग्रत जीवन में) हमें नैतिकता के सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है, तथा समाज जिन मूल-प्रवृत्तियों के स्वतन्त्र प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाता है हम उनका दमन कर देते हैं।

अहं और काम के विरोध, तथा जीवन और मृत्यु की प्रवृत्तियों के विरोध के बारे में फ्रॉयड के सिद्धान्त असिद्ध कल्पनायें हैं। 'इद' अहं और उच्च-अहं के उसके सिद्धांत भी परिकल्पना मात्र हैं। लेकिन यह तो निर्विवाद है कि फ्रॉयड और उसके अनुयायियों ने मनोविश्लेषण की विधि से कई रोगियों को उनकी मानसिक विकृतियों से मुक्त कर दिया। अतः फ्रॉयड के मनोविश्लेषण-सिद्धांत में अवश्य ही सत्य का कुछ अंश होना चाहिये।

नैतिकता के ऊपर मनोविश्लेषण का प्रभाव विनाशक (Disastrous) है। मनोविश्लेषण के ऊपर आत्म-प्रकाशन के मत के (Creed of self-expression) प्रचार का दायित्व है। किसी मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन को न होने देना व्यक्तित्व के मूल पर कुठाराघात करना है। फ्रॉयड ने यह दिखा दिया कि स्नायु-विकृतियों का कारण स्वाभाविक इच्छाओं (लिबिडो) का दमन है। अतः उसके सिद्धान्त ने इस विश्वास को जन्म दिया कि आत्म-प्रकाशन या स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति मुख्य कर्त्तव्य है, तथा उसका दमन करना पाप है। इस प्रकार मनोविश्लेषण सुखवाद (Hedonism) को जन्म देता है।

फ्रॉयड बुद्धि को वह साधन-मात्र मानता है जिसे मूलप्रवृत्तियाँ अपने साध्यों की सिद्धि के लिये इस्तेमाल करती हैं। बुद्धि मूलप्रवृत्तियों की परिचारिका है। यह गलत है। बुद्धि मूलप्रवृत्तियों का नियंत्रण और परिष्कार करती है, तथा उन्हें बुद्धिमय जीवन के वाहन (Vehicle) के रूप में रूपान्तरित करती है। मनोविश्लेषणवाद अबुद्धिवाद (Irrationalism) को जन्म देता है।

फ्रॉयड का मत है कि हमारे चेतन विचार और इच्छाएँ अचेतन इच्छाओं के प्रतिबिम्ब हैं, जो ज्ञात नहीं होतीं और इसलिये जिनके ऊपर शासन नहीं किया जा सकता। चेतन मन अचेतन मन के अधीन है जो हमारे नियंत्रण के बाहर है। इस प्रकार मनोविश्लेषणवाद नियतिवाद (Determinism) को जन्म देता है जो नैतिकता का मूलोच्छेदन कर देता है।

फ्रॉयड के मतानुसार अन्तःकरण या उच्च-अहं मातृ-ग्रन्थि से उत्पन्न होता है। अतः अन्तःकरण के विधानों और निषेधों का मूल विफल काम (Thwarted sex instinct) में निहित है। उनका मूल बुद्धि में नहीं है। लेकिन अन्तःकरण विवेकयुक्त है। नैतिक आदर्श 'चाहिये' के स्वरूप का है जिसकी उत्पत्ति मूलप्रवृत्त्यात्मक स्वरूप वाले *'है'* से *नहीं हो सकती।* नैतिक मूल्यों (Moral values) की उत्पत्ति मनोवैज्ञानिक तथ्यों (Psychological facts) से नहीं हो सकती।

फ्रॉयड का सिद्धान्त नैतिकता के लिये घातक है। उसकी धारणा है कि नैतिकता एक रोड़ा है जिसका आविष्कार मनुष्य ने उन मूलप्रवृत्तियों को रोके रखने के लिये किया है जिन्हें समाज अपने लिये ख़तरनाक समझता है। अच्छे और बुरे के बारे में हमारे विश्वास इन मूलप्रवृत्तियों की प्रकृति से निर्धारित होते हैं। हम अपने कर्मों के लिये उत्तरदायी नहीं हैं।

प्रश्न (QUESTIONS)

अध्याय १. मनोविज्ञान की परिभाषा, क्षेत्र और विधियां— १. मनोविज्ञान का क्षेत्र बताइये। २. मनोवैज्ञानिक अध्ययन की विधियों को स्पष्ट कीजिये। ३. अन्तर्दर्शन की कठिनाइयां क्या हैं? उनको दूर करने के उपाय बताइये। ४. मनोविज्ञान में निरीक्षण से प्रयोग के क्या अतिरिक्त लाभ हैं? प्रयोग की कठिनाइयाँ क्या हैं? ५. मनोवैज्ञानिक अन्वेषण में प्रायोगिक विधि को स्पष्ट कीजिये। उसकी कमियों का उल्लेख कीजिये। ६. क्या मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान है? यदि है तो किस अर्थ में? ७. मनोविज्ञान क्या है? दर्शन से इसका क्या सम्बन्ध है? इसका दार्शनिक आधार होना चाहिये अथवा नहीं? ८. व्यवहार के अध्ययन से कितने अंश तक मानसिक जीवन समझा जा सकता है? ९. मनोविज्ञान कहां तक (क) अपने विषय की दृष्टि से, और (ख) अपनी विधि की दृष्टि से, अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से भिन्न है। १०. मनोविज्ञान की विधियों के रूप में 'अन्तर्दर्शन' और 'निरीक्षण' के तुलनात्मक मूल्य का वर्णन कीजिये। ११. संक्षेप में मनोविज्ञान में अन्तर्दर्शनवादी और व्यवहारवादी दृष्टिकोणों को समझाइये, तथा यह बताइये कि ये कहां तक परस्पर सहायक हो सकते हैं? १२. मनोवैज्ञानिक अन्वेषण में जनन-पद्धति को समझाइये। १३. 'मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है।' इसकी आलोचना कीजिये। १४. मनोविज्ञान में व्यक्ति के इतिहास के पुनर्गठन की विधि को समझाइये। १५. मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान की मुख्य विधियां क्या हैं? उनके तुलनात्मक लाभ बताइये। १६. मनोविज्ञान में प्रायोगिक विधि का महत्त्व और कठिनाइयां बताइयें। १७. कहा जाता है कि 'मनोविज्ञान का दृष्टिकोण आत्मगत है।' क्या यह मत सही है? यदि ऐसा है तो मनो-

विज्ञान एक विधानात्मक विज्ञान के रूप में वस्तुगत प्रामाणिकता का दावा कैसे कर सकता है? १८. क्या मनोविज्ञान की यह परिभाषा पर्याप्त है कि वह चेतना का विज्ञान है? यदि नहीं, तो इसकी कौन सी परिभाषा ऐसी हो सकती है जो, एक विधानात्मक विज्ञान के रूप में इसकी आधुनिक अनेकांगिता को स्वीकार कर सकती है? फ्रॉयड मनोविज्ञान के क्षेत्र को किस प्रकार विस्तृत करता है? (अचेतन या अधोचेतन) १६. मनोविज्ञान की मौलिक समस्यायें क्या हैं? उनको हल करने में मनोविज्ञान किन विधियों को अपनाता है? २०. 'मनोविज्ञान का दृष्टिकोण आत्मगत है,' इस उक्ति को समझाइये। २१. अन्तर्दर्शन की विशेषताओं और कठिनाइयों का वर्णन कीजिये। क्या प्रायोगिक विधि अन्तर्दर्शन की विधि से श्रेष्ठ है? २२. मनोविज्ञान में किस प्रकार की सामग्रियां उपलब्ध हैं? 'मनोविज्ञान अनुभव के अन्तर्जगत् से सम्बन्ध रखता है।' 'मनोविज्ञान का क्षेत्र प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र से अलग नहीं है,' कैसे?

अध्याय २ मनोविज्ञान की शाखायें—१. भिन्नतामूलक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, और असाधारण-मनोविज्ञान पर टिप्पणियां लिखिये। २. शरीरव्यापारिक मनोविज्ञान के क्षेत्र का वर्णन कीजिये। ३. शरीरव्यापारिक मनोविज्ञान, तुलनात्मक मनोविज्ञान, प्रायोगिक मनोविज्ञान और विकासात्मक मनोविज्ञान के अर्थ स्पष्ट कीजिये।

अध्याय ३. मनोविज्ञान और अन्य विज्ञान—१. विज्ञानों की योजना में मनोविज्ञान का क्या स्थान है? २. मनोविज्ञान और भौतिक विज्ञानों के दृष्टिकोण में क्या अन्तर है? ३. यह दिखाइये कि मनोविज्ञान का दृष्टिकोण वैयक्तिक किस अर्थ में है। ४. मनोविज्ञान का (क) नीतिशास्त्र, और (ख) दर्शनशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? ५. शरीर व्यापारविज्ञान का मनोविज्ञान से सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये। क्या मनोविज्ञान को शरीर-व्यापार-विज्ञान की एक शाखा माना जा सकता है? ६. (अ) बाल-मनोविज्ञान, (आ) समाज-मनोविज्ञान, और (इ) शिक्षा-मनोविज्ञान का स्वरूप समझाइये।

अध्याय ४. मन और शरीर—१. कुछ ऐसे तथ्यों का उल्लेख कीजिये

जो शरीर और मन के घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रदर्शित करते हों। २. स्नायु और स्नायु-केन्द्रों के कार्यों का वर्णन कीजिये। स्नायु कितने प्रकार की होती हैं? ३. संक्षेप में मानव-मस्तिष्क की रचना का वर्णन कीजिये। यह दिखाइये कि उसका मन से घनिष्ठ सम्बन्ध कैसे है? ४. शरीर और मन के सम्बन्ध को ठीक-ठीक समझाइये। ५. स्नायु-तंत्र की रचना और कार्यों की रूप-रेखा बताइये। ६. केन्द्रीय स्नायु तंत्र की सामान्य बातें बताइये। ७. मानव-मस्तिष्क की रचना और कार्यों का मानसिक जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है? वर्णन कीजिये। ८. मानसिक व्यापारों के स्थानीयकरण को स्पष्ट कीजिये। स्वतंत्र स्नायु-तंत्र का स्वरूप और कार्य समझाइये। ९. (अ) स्नायु-संधि, (आ) प्रतिक्षेप-चाप, (इ) वल्कीय स्थानीयकरण पर टिप्पणियां लिखिये। १०. मानवीय स्नायुतंत्र के गठन और कार्य का विवेचन कीजिये। मनुष्य निम्न कोटि के प्राणियों की अपेक्षा अपने परिवेश के प्रति अत्यन्त विविध प्रतिक्रियायें करने में कैसे समर्थ होता है?

अध्याय ५. चेतना—१. चेतना के विभिन्न स्तर कौन-कौन हैं? प्रत्येक की क्या विशेषतायें हैं? २. चेतना के केन्द्रीय तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में क्या अन्तर है? ३. चेतना केन्द्रीय क्षेत्र के बाहर भी होती है, इस मत के समर्थन में आप क्या प्रमाण प्रस्तुत करेंगे? ४. चेतना की परिभाषा दीजिये और उसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये। अधोचेतना से इसका क्या भेद है? ५. आप अधोचेतन मानसिक प्रक्रियाओं से क्या समझते हैं? उनकी भावात्मक और अभावात्मक विशेषतायें बताइये। (स्टाउट चेतना के सीमा-प्रदेश को अधोचेतन कहता है।) क्या अचेतन मानसिक प्रक्रियायें होती हैं? (यहाँ अचेतन अधोचेतन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।) ६. चेतना के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। चेतन, अधोचेतन (चेतना का सीमा-प्रदेश), और अचेतन (अधोचेतन) अवस्थाओं में क्या अन्तर है? ७. "चेतना-प्रवाह" (जेम्स) की क्या विशेषताएँ हैं? ८. चेतना की एकता और अविच्छिन्नता को समझाइये। ९. अधोचेतन के दैनिक जीवन में जो व्यवहार होते हैं उनके उदाहरण दीजिये। १०. क्या

अचेतन (अधोचेतन) मानसिक अवस्थाओं के अस्तित्व में विश्वास करने के कोई कारण हैं।

अध्याय ६. मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण—१. मानसिक जीवन के अन्तिम तत्त्व क्या हैं और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है? २. यह दिखाइये कि विचार, अनुभूति और संकल्प का मानसिक विकास में क्या सम्बन्ध है? ३. "मन एक आंगिक एकता है, और उसके व्यापारों में अन्योन्याश्रितता और परस्पर-क्रिया की घनिष्ठतम मात्रा है" स्पष्ट कीजिये। ४. चेष्टा क्या है? ज्ञान और अनुभूति से इसका क्या सम्बन्ध है?

अध्याय ७. ध्यान—१. ध्यान के स्वरूप तथा उसके विभिन्न रूपों को समझाइये। २. ध्यान और चेतना के सम्बन्ध को समझाइये। क्या ध्यान चेतना के लिये बिल्कुल आवश्यक है? ३. ध्यान के विभिन्न भेदों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये। ४. ध्यान और रुचि के सम्बन्ध को समझाइये। ५. (क) समग्र और आपेक्षिक ध्यान, तथा (ख) अनायास और ऐच्छिक ध्यान में अन्तर बताइये। ६. ध्यान में शरीर में क्या परिवर्तन होते हैं? ध्यान किन कारणों से आकर्षित होता है? ७. ध्यान के विकास के विभिन्न चरण क्या हैं? ८. बालक और प्रौढ़ के ध्यान में क्या अन्तर है? ९. "रुचि गुप्त ध्यान है, ध्यान सक्रिय रुचि है" स्पष्ट कीजिये। १०. आदत का ध्यान पर क्या प्रभाव पड़ता है? ११. ध्यान के विघ्नों पर कैसे विजय पाई जा सकती है। १२. ध्यान को निर्धारित करने वाले हेतु क्या हैं? १३. ध्यान के मनोविज्ञान में क्या उपयोग है? १४. ध्यान के हेतु क्या हैं? १५. ध्यान के विविध रूप क्या हैं? उनकी विभिन्न विशेषताओं को विस्तार से समझाइये। ध्यान का रुचि से क्या सम्बन्ध है और वे कौन से हेतु हैं जो ध्यान को आकर्षित करते हैं? १६. ध्यान के विविध हेतुओं को उदाहरण देते हुये समझाइये। इस ज्ञान का आप क्या व्यावहारिक उपयोग कर सकते हैं?

अध्याय ८. संवेदना—१. 'प्रौढ़ मन में विशुद्ध संवेदना नाम की कोई वस्तु नहीं होती' स्पष्ट कीजिये। २. 'संवेदना' शब्द से आप क्या समझते हैं? ३. संवे-

की परिभाषा दीजिये और यह बताइये कि यह कैसे उत्पन्न होती है। संवेदना की सामान्य विशेषतायें समझाइये। ४. आन्तरिक संवेदना का महत्त्व बताते हुये उनका वर्णन कीजिये। ५. यह बताइये कि स्वाद, गन्ध और स्पर्श की संवेदनायें कैसे उत्पन्न होती हैं? वे बाह्य जगत का क्या ज्ञान देती हैं? ६. संवेदनाओं का वर्गीकरण कीजिये और यह बताइये कि उनमें से कौन संसार के ज्ञान में सबसे अधिक अंशदान करती है और क्यों? उदाहरण भी दीजिये। ७. मनुष्य के कान का चित्र खींचिये, और दिखाइये कि ध्वनि की संवेदनायें कैसे उत्पन्न होती हैं। ध्वनि कैसे पैदा होती है, यह समझाते हुये ध्वनि के विभिन्न गुणों में अन्तर बताइये। ८. पैशिक चेतना क्या है? इसके संघटक तत्व क्या हैं? ९. क्या प्रयत्न की भी कोई संवेदना होती है? १०. वीवर-फेक्नर के संवेदना विषयक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये। इसमें क्या कमियाँ हैं? ११. व्यक्ति के मानसिक जीवन में संवेदनायें क्या काम करती हैं? १२. रंगान्धता क्या है? इसके प्ररूप बताइये और इसके सम्भावित शारीरिक आधार को भी बताइये। १३. टिप्पणियाँ लिखिये : (क) रंग-मिश्रण, (ख) भावात्मक और अभावात्मक पश्चात्-प्रतिमायें। १४. संवेदना के लक्षण समझाइये। क्या किसी प्रकार की संवेदना में व्याप्ति होती है? १५. संवेदना और प्रतिक्षेप-कर्म में अन्तर बताइये। (१६) मनुष्य की आँख का चित्र खींचिये; और यह स्पष्ट कीजिये कि आँख से आप कैसे देख सकते हैं। १७. टिप्पणियाँ लिखिये : (क) गति-संवेदना, (ख) स्वकर्मवेद्यता, (ग) रंगान्धता, (घ) पश्चात्-प्रतिमा। १८. प्रतिक्षेप-कर्म की तुलना संवेदना से कीजिये, और साथ ही संवेदना के विविध लक्षण बताइये। संवेदना प्रत्यक्ष कैसे बन जाती है?

अध्याय ६, प्रत्यक्षीकरण—१. उदाहरण देते हुये संवेदना और प्रत्यक्ष का भेद बताइये। २. प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिये। ३. प्रत्यक्ष का संवेदना से भेद बताइये, और उन मानसिक हेतुओं को भी बताइए जो संवेदना को प्रत्यक्ष में बदल देते हैं। ४. प्रात्यक्षिक प्रक्रिया के विभिन्न भूमिकाओं का वर्णन कीजिए, और यह दिखाइये कि उसमें ऐन्द्रिय और विचार के तत्त्वों का समावेश कैसे होता है? ५. प्रत्यक्ष की विशेषतायें समझाइये। ६. प्रत्यक्ष

और भ्रम में अन्तर बताइए। भ्रम कैसे उत्पन्न होते हैं ? ७. भ्रम और विभ्रम का अन्तर समझाइये। वे कैसे उत्पन्न होते हैं ? ८. अर्जित प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष में क्या अन्तर है ? ९. दूरी और दिशा के दृष्टिज और श्रवणज प्रत्यक्षों का विश्लेषण कीजिए, १०. दृष्टि से सघनता का प्रत्यक्ष कैसे होता है ? ११. देश के प्रत्यक्ष में स्पर्श और दृष्टि की उपयोगिताओं की तुलना कीजिए। १२. आप संवेदना भेदमूलक लक्षणों से क्या समझते हैं ? उनमें से कौन देश के प्रत्यक्ष में अंशदान करते हैं ? १३. आप 'बाह्य वास्तविकता' से क्या समझते हैं ? उस प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए जो भौतिक पदार्थों की स्वतन्त्र वास्तविकता के प्रत्यक्ष को उत्पन्न करती है। १४. यह बताइए कि कैसे (क) देश का दृष्टिज प्रत्यक्ष स्वतन्त्रता के साथ विकसित होता है, और (ख) यह देश के स्पर्शज प्रत्यक्ष के साथ कैसे संयुक्त होता है। १५. वस्तुओं की गतियों का (क) गतियुक्त नेत्रों से, और (ख) स्थिर नेत्रों से, कैसे प्रत्यक्ष होता है ? १६. इस प्रश्न का विवेचन कीजिए कि दूरी देखी जा सकती है। १७. प्रत्यक्ष में आकृति और आधार का क्या भाग है ? १८. प्रत्यक्षीकरण में सुविधाजनक तत्व क्या हैं ? १९. प्रत्यक्षीकरण में चुनाव और संयोग के नियमों को समझाइए। २०. प्रत्यक्ष का ध्यान से क्या सम्बन्ध है ? २१. कहा जाता है कि प्रत्यक्ष 'उपस्थापन प्रतिनिधान का संश्लेषण' है। इस मत को स्पष्ट कीजिए। २२. प्रत्यक्ष का विश्लेषण कीजिए। प्रत्यक्ष और विभ्रम का भेद समझाइये।

अध्याय १०. सीखना—१. 'अनुभवसे सीखने' के मुख्य लक्षण क्या है ? इसमें और 'अनुकरण से सीखने' में क्या भेद है ? अपने उत्तर में उपयुक्त उदाहरण भी दीजिए। २. पशु 'प्रयत्न और भूल' से सीखते हैं या 'अन्तर्दृष्टि' से ? ३. पशुओं के सीखने और मनुष्यों के सीखने में क्या भेद है ? ४. सीखने की क्या विधियाँ हैं ? ५. सीखने के नियम क्या हैं ? उनकी सोदाहरण व्याख्या कीजिये। ६. 'सीखने के पठार' से आप क्या समझते हैं ? ७. क्या सब प्रकार का सीखना अविवेकपूर्ण होता है ? ८. जन्मजात प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करके सीखने की विधि को समझाइये। ९. सीखने में अग्रदृष्टि और पश्चदृष्टि का भेद समझाइये। १०. टिप्पणियाँ लिखिये : (क) सीखने का पठार,

(ख) नियंत्रित प्रतिक्रिया, (ग) अन्तर्दृष्टि से सीखना। ११ 'मनुष्य सीखने वाले प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है।' वह अकेला सीखने वाला प्राणी नहीं है; वास्तव में निम्नतम श्रेणी के प्राणी भी सीखने के सरल कार्यों को कर सकते हैं। टॉम्पसन पशुओं के सीखने पर किये जाने वाले कुछ प्रयोगों का वर्णन कीजिये। पशु क्या सीखते हैं और कैसे? यदि मनुष्य के सीखने की कोई विशिष्ट विधि है तो उसका वर्णन कीजिए। १२. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये: (क) प्रयत्न और भूल की विधि बनाम अन्तर्दृष्टि की विधि, (ख) नियमित प्रतिक्षेप, (ग) सीखने का पठार, (घ) अन्तर्दृष्टि कभी अग्रदृष्टि होती है और कभी पश्चदृष्टि। क्या अग्रदृष्टि सदैव पश्चदृष्टि पर निर्भर है? १३. आप नियमित प्रतिक्षेप से क्या समझते हैं? क्या शिक्षा को प्रतिक्षेपों का नियंत्रण मानना ठीक है? १४ पशुओं के सीखने के कुछ प्रयोगों का वर्णन कीजिये। पशु क्या और कैसे सीखते हैं? १५. सीखने की आधारभूत विधियाँ और नियम क्या हैं? बच्चों की आदतों को बनाने और विकसित करने में आप उनका कैसे उपयोग करेंगे? १६. मनुष्य और पशु के सीखने में भाग लेने वाले मनोवैज्ञानिक तत्त्व क्या हैं? मनुष्य पशुओं से किस दृष्टि से श्रेष्ठ है?

अध्याय ११. स्मृति—१. स्मृति के तत्त्व क्या हैं? २. प्रत्यक्ष और स्मृति में क्या अन्तर है? ३. अच्छी स्मृति के क्या लक्षण हैं? ४. स्मृति की प्रशिक्षा दी जा सकती है या नहीं? ५. साहचर्य के नियम बताइये। वे कहाँ तक सन्निधि के नियम में घटाये जा सकते हैं? ६. क्या साहचर्य के विभिन्न नियमों को घटाकर एक बनाया जा सकता है? ७. विस्मृति के क्या हेतु हैं? मन की मितव्ययिता में इसका क्या भाग है? आप एक विस्मृत नाम को कैसे याद करेंगे। ८. बुद्धिमत्तापूर्ण स्मृति और रटने की स्मृति में क्या अन्तर है? ९. धारणा, प्रत्यभिज्ञा और प्रत्याह्वान की प्रक्रियाओं का वर्णन कीजिये और उनमें भेद बताइये। १०. स्मृति के भेदों से क्या तात्पर्य है? ११. एक संस्कार एक प्रतिमा और एक विचार में भेद बताइये। १२. प्रत्यक्ष और विचार में भेद बताइये। १३. धारणा और प्रत्याह्वान के सामान्य हेतु क्या हैं? १४. अतीत अनुभवों की धारणा का कारण बताइये। १५. प्रत्यभिज्ञा और स्मृति का अन्तर बताइये।

१६. कंठस्थीकरण की कुछ बचत करने वाली विधियाँ समझाइये। १७. (क) प्रत्यक्ष और स्मृति-प्रतिमा में (ख) प्रत्यक्ष और पश्चात् प्रतिमा में भेद बताइये। १८. स्वतंत्र साहचर्य और नियंत्रित साहचर्य में क्या अन्तर है ? १६. विचार-साहचर्य के सिद्धांत का वर्णन कीजिये। साहचर्य के विविध रूपों का सोदाहरण वर्णन कीजिये। २०. अच्छी स्मृति के क्या लक्षण हैं ? मनोविज्ञान में साहचर्य के विभिन्न प्ररूपों को समझाइये और बताइये कि वे मानसिक जीवन में क्या काम करते हैं? वे किस प्रकार एक अकेले साहचर्य नियम के विभिन्न रूप हैं? २१. स्मृति के विभिन्न तत्वों का वर्णन कीजिये। उनका परस्पर किस प्रकार घनिष्ट सम्बन्ध है ? हम कंठस्थ और स्मरण कैसे करते हैं और भूल कैसे जाते हैं ? २२. रटने से क्या हानियाँ और लाभ हैं ? २३. साहचर्य के विभिन्न नियमों को एक आधारभूत नियम बनाया जा सकता है। ये नियम क्या हैं और वह आधारभूत नियम क्या है ? २४. (क) प्रत्यभिज्ञा और प्रत्याह्वान में, (ख) प्रत्यक्ष और स्मृति में, भेद कीजिये। २५ 'कंठस्थीकरण मानसिक कार्य का एक रूप है जो व्यवस्थित किया जा सकता है और वैज्ञानिक व्यवस्था के सिद्धांत मालूम कर लिये गये हैं' (वुडवर्थ)। (क) प्रपाठ, (ख) विश्राम के साथ और एक साथ पुनरावृत्ति करना, (ग) समग्र और आंशिक कंठस्थीकरण की और विशेष रूप से संकेत करते हुये उपर्युक्त कथन को स्पष्ट कीजिये। २६. साहचर्य के नियम क्या हैं ? क्या वे एक मौलिक नियम में घटाये जा सकते हैं ? कैसे ? क्या एक बार सीखी हुई चीज़ कभी भूली जा सकती है ?

अध्याय १२. कल्पना—१. (क) प्रत्यक्ष और स्मृति, (ख) स्मृति और कल्पना में भेद बताइये। २. कल्पना और विभ्रम में भेद बताइये। ३. स्वप्नों के मनोविज्ञान का विस्तृत वर्णन कीजिये। ४. क्या स्वप्नों का कोई अर्थ होता है ? यदि हां, तो क्या ? क्या स्वप्नों का अर्थ समझा जा सकता है ? यदि हां, तो कैसे ? ५. प्रतिमाओं के विभिन्न प्ररूपों को समझाइये। ६. कल्पना के स्वरूप को समझाइये और यह बताइये कि विज्ञान और कला में उसका उपयोग क्या है। ७. विचारों का प्रतिमाओं से क्या सम्बन्ध है ? प्रतिमाओं के प्ररूप कौन से हैं ? ८. (क) एक नया

उपन्यास लिखने, और (ख) एक नया उपन्यास पढ़ने में जो मानसिक प्रक्रियायें होती हैं उनका विश्लेषण कीजिये। ९. स्वप्न, विभ्रम और कल्पना में कोई समानता है ? यदि है, तो कहाँ तक ? १०. दिवा-स्वप्न, कलाकृति और वैज्ञानिक अन्वेषण, जो कल्पना के प्रकार हैं, में भेद बताइये। ११. भ्रान्ति और उसके विभिन्न रूपों के स्वरूप को समझाइये। भ्रान्ति और विभ्रम में अन्तर बताइये। १२. स्वप्नों के स्वरूप की, फ्रॉयड के स्वप्न-सिद्धान्त पर विशेष दृष्टि रखते हुये आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये। १३. यह बताइये कि कल्पना किन विभिन्न रूपों में काम कर सकती है। कल्पना के लाभ और हानियाँ क्या हैं ? १४. कल्पना के स्वभाव का वर्णन कीजिये। कल्पना का स्मरण और तर्क से क्या भेद है ? १५. कल्पना दिवास्वप्न और स्मृति-प्रतिमाओं में क्या अन्तर है ? १६. कभी-कभी भ्रम और विभ्रम का भेद समझ में नहीं आता। उनका ठीक भेद बताइये। १७. रात्रि के स्वप्नों का दिवा-स्वप्नों से क्या भेद है ? स्वप्नों को समझने के बारे में जो विविध सिद्धान्त हैं उनका स्पष्टीकरण कीजिये। १८. (क) स्मृति और कल्पना, (ख) भ्रम और विभ्रम, (ग) भ्रान्ति और विभ्रम में अन्तर बताइये। १९. टिप्पणियां लिखिये, (क) ईडेटिक प्रतिमा, (ख) विभ्रम, (ग) भ्रान्ति, (घ) दिवास्वप्न। २०. क्या यह कहना सही है कि सब स्वप्न इच्छापूर्तिकारक होते हैं ? कारण बताइये।

अध्याय १३. विचार—१. उदाहरण देते हुये विचार की विभिन्न भूमिकाओं या अवस्थाओं में अन्तर बताइये। २. प्रतिमाओं का विचार से क्या सम्बन्ध है ? क्या कभी प्रतिमाशून्य विचार होता है ? ३. प्रत्यक्ष स्मृति और विचार का सम्बन्ध बताइये। ४. भाषा के उपयोग को स्पष्ट कीजिये। क्या विचार भाषा के बिना सम्भव है ? क्या विचार मौन भाषण है ? ५. निर्णय और प्रत्ययन का सम्बन्ध बताइये। ६. विचार के विषय में तर्कशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक मतों का भेद बताइये। ७. उस प्रक्रिया का वर्णन कीजिये जिसके प्रत्ययों का निर्माण होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रत्यय क्या है ? ८. स्टाउट विचार की परिभाषा देते हुए कहता

है कि विचार प्रत्ययों का विश्लेषण और संश्लेषण है। उसके तात्पर्य को स्पष्ट कीजिये। ६. तर्क की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कीजिये तथा इस कथन को स्पष्ट कीजिये कि "एक दृष्टि से विचार एक प्रयत्न और भूल की प्रक्रिया है।" १०. प्रत्ययन और कल्पना में भेद बताइये। ११. प्रत्यय और प्रतिमा में अन्तर बताइये। १२. प्रत्यय, निर्णय और तर्क का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये। १३. यह दिखाइये कि निर्णय कैसे ज्ञान का आधारभूत कार्य है। १४. विचार की प्रक्रिया का विश्लेषण कीजिये। १५. 'विचार निरुद्ध भाषण या काय है'—इसकी आलोचना कीजिये। १६. 'उपलक्षणाओं (गर्भित बातों) को देखने' का तात्पर्य समझने के लिये एक उदाहरण दीजिये। १७. उदाहरण देते हुये तर्क की प्रक्रिया के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। १८. कुछ मनोवैज्ञानिक तर्क को विचार के स्तर पर एक 'प्रयत्न और भूल' की प्रक्रिया कहना पसन्द करते है, जबकि अन्य तर्क को 'प्रयत्न और भूल' की बिल्कुल विपरीत प्रक्रिया मानते हैं। दोनों दृष्टिकोणों को समझाइये।

अध्याय १४. विश्वास—१. विश्वास का स्वरूप क्या है ? २. विश्वास का ज्ञान से क्या सम्बन्ध है ? ३. विश्वास कैसे उत्पन्न होते हैं ? विश्वास के आधार क्या हैं ?

अध्याय १५. अनुभूति—१. अनुभूति क्या है और अनुभूति का शरीर से क्या सम्बन्ध है ? २. अनुभूति की ज्ञान और सप्रत्यक से भिन्न क्या विशेषतायें हैं ? ३. चेष्टा का अनुभूति की अभिवृत्ति से क्या सम्बन्ध है ? ४. पीड़ा मौलिक है : 'सुख पीड़ा का अभाव है।' इसका विवेचन कीजिये। ५. संवेदना और सुख या दुःख में क्या अन्तर है ? ६. अनुभूति के आधारभूत सिद्धान्त का वर्णन कीजिये।

अध्याय १६.—संवेग। १. संवेगात्मक व्यवहार के सामान्य लक्षणों का वर्णन कीजिये। २. अनुभूति, संवेग और भावना में अन्तर बताइये। ३. भावना और संवेगात्मक मनोदशा का अन्तर बताइये। ४. यह कहना कहां तक ठीक है कि हमें अपनी भावनाओं की चेतना बहुत कम होती है ? ५. यह दिखाते हुये कि संवेग मन में कैसे उत्पन्न होता है संवेग के स्वरूप

का वर्णन कीजिये। ६. संवेग का शरीर से क्या सम्बन्ध है? समझाइये। ७. अनुभूति, संवेग, मनोदशा, भावना और भावना-ग्रन्थि का अन्तर समझाइये। ८. संवेग के जेम्स-लैंगे सिद्धान्त का वर्णन कीजिये। ९. भय, क्रोध, प्रेम और घृणा के संवेगों का विश्लेषण कीजिये और अभिव्यक्ति में उनकी भिन्नताओं को बताइये। १०. संवेगों का मूलप्रवृत्तियों से क्या सम्बन्ध है? ११. मूल संवेगों और व्युत्पन्न संवेगों का अन्तर बताइये। क्या व्युत्पन्न संवेग मूल संवेगों के मिश्रण हैं? १२. संवेग का अनुभूति और भावना से सम्बन्ध बताइये। संवेगात्मक अवस्थाओं में अधिक महत्त्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तनों का उल्लेख कीजिये। १३. संवेग के शारीरिक और मानसिक तत्त्वों का वर्णन कीजिये। आप संवेग और भावना में क्या अन्तर बताते हैं? १४. भय के संवेग के विकास में आंगिक उपद्रवों का क्या हाथ होता है? स्पष्ट कीजिये। १५. मूलप्रवृत्ति क्या है? संवेग और मूलप्रवृत्ति में क्या सम्बन्ध है? इस मत की आलोचना कीजिये कि प्रत्येक प्रधान मूलप्रवृत्ति की विशेषता बताने वाला एक विशेष संवेग होता है। १६. (क) अनुभूति और संवेग, (ख) संवेग और भावना, (ग) भावना और ग्रंथि में क्या अन्तर है? "संवेग एक संवेदना-पुंज है, और साथ ही प्रत्येक संवेग एक गत्यात्मक तत्परता भी है।" (वुडवर्थ) इस कथन को किसी विशिष्ट संवेग का उदाहरण देते हुये और सावधानी से उसके संवेदनिक तथा चेष्टात्मक तत्त्वों का विश्लेषण करते हुये, स्पष्ट कीजिये। १७. 'हम कांपते इसलिये नहीं हैं कि हम भयभीत होते हैं, बल्कि हम इसलिये भयभीत होते हैं कि हम कांपते हैं।' क्या घटनाओं का यह सही क्रम है? आलोचना कीजिये। १८. संवेग के जेम्स-लैंगे सिद्धान्त के पक्ष और विपक्ष में क्या प्रमाण हैं? १९. जेम्स का कहना है 'एक पिंजड़े में बन्द भालू से सामना होने दीजिये और फिर एक मुक्त भालू से, एक को वह मूंगफली देगा और दूसरे से भागेगा।' इस उक्ति को स्पष्ट कीजिये। २०. मूलप्रवृत्तियों का संवेगों से क्या सम्बन्ध है? मैक्डूगल के इस मत की आलोचना कीजिये कि प्रत्येक प्रधान मूलप्रवृत्ति के साथ एक विलक्षण

संवेग होता है। २१. मूलप्रवृत्ति की परिभाषा दीजिये और सवेग से उसका सम्बन्ध बताइये। मैकडूगल कहता है कि 'मानवीय स्वभाव की सब महान् मूलप्रवृत्तियों के साथ प्रारूपिक संवेग होते हैं।' भय और क्रोध का विशेष रूप से उदाहरण देते हुये इस उक्ति को स्पष्ट कीजिये।

अध्याय १७. अनैच्छिक कर्म—१. प्रतिक्षेप और मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्मों की क्या विशेषतायें हैं? उनमें अन्तर बताइये। २. क्या मनुष्य में मूलप्रवृत्तियां होती हैं? 'मनुष्य मूलप्रवृत्तियों की गठरी है।' इस कथन की परीक्षा कीजिये। ३. मूलप्रवृत्यात्मक व्यवहार का एक ठोस उदाहरण दीजिये और यह बताइये कि वह कहां तक अन्धा कहा जा सकता है। ४. (क) पशुओं, और (ख) मनुष्यों में मूलप्रवृत्तियों का क्या हाथ है? ५. (क) मूलप्रवृत्ति, (ख) विचारप्रेरित कर्म, (ग) सवेदना-प्रतिक्षेप पर टिप्पणियां लिखिये। ६. प्रतिक्षेप-कर्म, स्वतःचालित कर्म, और सवेगात्मक अभिव्यक्तियों में क्या अन्तर है? ७. मामूली और नियंत्रित प्रतिक्षेपों में क्या अन्तर है? ८. क्या मूलप्रवृत्तियों में आदत से परिवर्तन हो सकता है? यदि हां, तो कहां तक? ९. संकल्पात्मक कर्म के विकास से पहिले होने वाले विभिन्न प्रकार के कर्मों को उदाहरण देते हुए समझाइये। १०. टिप्पणियां लिखिये: (क) प्रतिक्षेप चाप, (ख) नियंत्रित प्रतिक्षेप, (ग) विचारप्रेरित कर्म। ११. 'मूलप्रवृत्ति को कर्म का मौलिक प्रेरक माना जा सकता है, यद्यपि कर्म स्वयं सीखा हुआ होता है (वुडवर्थ)। मूलप्रवृत्ति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। क्या हम मूलप्रवृत्ति और आदत के मध्य एक विभाजक रेखा खींच सकते हैं? जब हम कहते हैं कि पशु मूलप्रवृत्तियों की गठरियां मात्र हैं तो क्या हम इस शब्द को उसी अर्थ में प्रयुक्त करते हैं? १२. 'सब मिलाकर, हम मूलप्रवृत्ति और आदत, इन दोनों शब्दों के इस्तेमाल को घटाकर तथा दोनों को वैज्ञानिक उपयोग के नहीं बल्कि लोक-व्यवहार के शब्द मानकर कठिनाई से बच जायेंगे (वुडवर्थ)।' क्या मूलप्रवृत्तियों और आदतों में विरोध है? हम पशु और मनुष्य के सम्बन्ध में 'मूलप्रवृत्ति' शब्द को किन भिन्न अर्थों में इस्तेमाल करते हैं?

अध्याय १८. ऐच्छिक कर्म—१. एक ऐच्छिक कर्म का विश्लेषण कीजिये। उसकी विभिन्न भूमिकायें कौन सी हैं ? अस्वीकृत प्रेरकों का क्या होता ? २. ऐच्छिक कर्म का मूलप्रवृत्त्यात्मक कर्म और प्रतिक्षेप कर्म से क्या अन्तर है ? ३. संकल्प का आवेग से क्या सम्बन्ध है ? क्या आप इस मत को स्वीकार करते हैं कि "संकल्प का विकास हमारे आवेगों के व्यवस्थित होने की प्रक्रिया है, न उससे कम न अधिक" (ऐन्जिल)। ४. क्षुधा और इच्छा में तथा इच्छा और सङ्कल्प में क्या भेद है ? ५. क्षुधा, इच्छा, कामना और प्रेरक में अन्तर बताइये। उनका कृति-शक्ति से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रेरकों का संघर्ष सम्भव है ? ६. विचारणा, निश्चय और प्रयत्न शारीरिक गति) में अन्तर बताइये। ७. संकल्पात्मक क्रिया के उन उच्चतर रूपों के लक्षण बताइये जो आवेगों के विरोध का अन्त करते हैं। ८. इच्छा की अवस्था का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कीजिये, तथा इच्छा और प्रेरक में अन्तर बताइये; ६. इच्छा और आवेग में क्या अन्तर है ? १०. टिप्पणियाँ लिखिये : (क) कृति-शक्ति का ह्रास, एक प्रेरकों का द्वन्द्व, (ग) इच्छाविरुद्ध कर्म ११. ऐच्छिक और अनैच्छिक कर्मों में भेद बताइये और उस तरीक़े को बताइये जिसके अनुसार हम ऐच्छिक निर्णय पर पहुँचते हैं। अस्वीकृत प्रेरकों का क्या होता है ? १२. अपने से अच्छा काम कराने के लिये योग्य प्रतियोगियों को चुनिये।' इससे क्या सहायता मिलेगी ? १३. ऐच्छिक कर्म के स्वरूप का विश्लेषण कीजिये। इसे आप कहां तक, 'अधिकतम प्रतिरोध की दिशा में कार्य' कह सकते हैं ?

अध्याय १९. आदत—१. आदतों के क्या लक्षण होते हैं ? २. आदत के बन जाने पर ऐच्छिक कर्म के किन तत्वों का लोप हो जाता है ? ३. आदत के स्वरूप और उद्भव का वर्णन कीजिये, तथा चरित्र पर उसका प्रभाव बताइये। ४. मूलप्रवृत्ति और आदत का अन्तर बताइये। ५. चरित्र के स्वरूप का मनोवैज्ञानिक वर्णन कीजिये। ६. आदत का निर्माण और स्वयंक्रिया से या शारीरिक आधार से उसका सम्बन्ध समझाइये। ७. आदत के नियम समझाइये। ८. आप बुरी आदतों को कैसे तोड़ेंगे ? ९. आदत का मानसिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। १०. आदत की मूलप्रवृत्त्यात्मक और ऐच्छिक कर्म से तुलना

कीजिये, आदत के बनने से क्या लाभ और हानियां होती हैं ? ११. आदतों आदतों को स्वयंचालित कर्म क्यों कहते हैं ? आदतें कैसे बनती हैं और संकल्प का कितना अंश उनमें वर्तमान रहता है ?

अध्याय २०. बुद्धि-परीक्षायें—१. बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये। क्या बुद्धि को मापा जा सकता है ? यदि हां, तो कैसे ? व्यक्तिगत बुद्धि की माप के लिये किसी सरल योजना का वर्णन कीजिये। २. बुद्धि-माप के लिए आधुनिक काल में व्यवहृत होने वाली कुछ मानसिक परीक्षाओं का उल्लेख कीजिये। शिक्षा में इन मानसिक परीक्षाओं का क्या व्यावहारिक मूल्य है ? ३. बुद्धि से क्या मतलब है ? बुद्धि कहां तक मापी जा सकती है ? उदाहरण देते हुये वर्णन कीजिये। ४. 'बुद्धि-परीक्षाओं' के क्या लाभ हैं ? ५. बुद्धि का विद्यालय की उपलब्धि से क्या सम्बन्ध है ? बुद्धि-दौर्बल्य का क्या अर्थ है ? इसके विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिये। ७ टिप्पणियां लिखिये : (क) बु० ल०, (ख) मानसिक आयु, (ग) बिने-साइमन परीक्षायें, (घ) सामूहिक परीक्षायें। ८. बुद्धि के प्रत्यय पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। बुद्धि कहां तक वंशानुक्रमप्राप्त और परिवेशगत तत्वों पर निर्भर है ? ९. 'निष्पादन-परीक्षायें वे बुद्धि परीक्षायें हैं जो बिने-परीक्षाओं की तुलना में, मौखिक प्रश्नों का कम और ठोस सामग्रियों का अधिक इस्तेमाल करती हैं। (वुडवर्थ)। बिने-परीक्षाओं के स्वरूप, लाभ, और कमियों का वर्णन कीजिये। निष्पादन परीक्षायें क्या हैं ? १०. बुद्धि-परीक्षा और उपलब्धि-परीक्षा में क्या अन्तर है ? बुद्धि-परीक्षाओं का प्रामाणिकीकरण कैसे होता है ? वे किस चीज़ की परीक्षा करती हैं ?

अध्याय २१. व्यक्तित्व—१. व्यक्तित्व से क्या तात्पर्य है ? व्यक्तित्व के तत्व क्या हैं ? व्यक्तित्व के विकास का वर्णन कीजिये। २. व्यक्तित्व के विभिन्न प्ररूपों को समझाइये। ३. व्यक्तित्व क्या है ? उसकी माप कैसे की जा सकती है ? व्यक्तित्व के विकास में भावनाओं का क्या भाग है ? व्यक्तित्व का अर्थ समझाइये और उसके तत्वों का वर्णन कीजिये। ५. स्पष्ट कीजिये : (क) बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी व्यक्ति, (ख) व्यक्तित्व के लक्षण, (ग) व्यक्तित्व-परीक्षायें। ६. व्यक्तित्व को समझने में मनोविज्ञान क्या सहायता देता है ?

७. व्यक्तित्व के प्ररूपों को मापने की कतिपय विधियो को समझाइये।

अध्याय २२. व्यक्तित्व का संगठन और विघटन—१. 'विच्छेद' के ऊपर टिप्पणी लिखिये। इससे व्यक्तित्व के रोगों की उत्पत्ति कैसे होती है ? २. मनो-विश्लेषण पर टिप्पणी लिखिये। यह मानसिक विकारों का स्पष्टीकरण कैसे करता है ? यह उनकी किन चिकित्सा-विधियों को प्रस्तावित करता है ? ३. 'दमन' पर टिप्पणी लिखिये। ४. व्यक्तित्व के कुछ प्रधान विकारों का सोदाहरण वर्णन कीजिये। ५. अचेतन क्या है ? उसका अन्वेषण कैसे हो सकता है ? मानसिक विकारों की चिकित्सा में अचेतन के अध्ययन का व्यावहारिक महत्त्व बताइये। विषमायोजन के कौन-कौन रूप होते हैं ? उनकी चिकित्सा की महत्त्वपूर्ण विधियाँ बताइये। ७. व्यक्तित्व के विविध रोगों का पूरा वर्णन कीजिये।

अध्याय २३. आत्मा—१. मानसिक विकास का स्वरूप और प्रक्रिया बताइये। क्या इसका कारण एकमात्र परिस्थितियाँ हैं ? २. आत्मा के प्रत्यय के विकास की विभिन्न भूमिकाये बताइए। ३. 'आत्मा' के हमारे विचारों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन कीजिए। ४. आप 'भौतिक अहं', 'सामाजिक अहं', और 'आध्यात्मिक अहं' से क्या समझते हैं ? ५. मानसिक विकास के तत्व क्या है ? मानसिक विकास को एक जैविक प्रक्रिया मानना ठीक है या नहीं ? यदि है, तो किस अर्थ में ?

अध्याय २४. मनोविज्ञान के सम्प्रदाय—१. निम्नलिखित पर टिप्पणियां लिखिये : (क) शक्ति-मनोविज्ञान, (ख) साहचर्यवाद, (ग) व्यवहारवाद, (घ) संत्तावाद, (ङ) मनोविश्लेषण, (च) अचेतन, (छ) दमन (ज) गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, (झ) रचनावाद, (ञ) कार्यवाद। २. रचनावाद और कार्यवाद की आलोचना कीजिये। ३. साहचर्यवादी, व्यवहारवादी और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में अन्तर बताइये। ४. साहचर्यवादी और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में भेद बताइये तथा प्रत्येक की आलोचना कीजिये। ५. 'अन्तर्दर्शन के बिना मनोविज्ञान असम्भव है।' इसे स्पष्ट कीजिये। ६. 'अचेतन' की परिभाषा दीजिये और अपने अनुभव से उदाहरण देते हुये चेतन मानसिक

जीवन पर उसका प्रभाव बताइये। ७. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या में क्या अंशदान किया ? ८. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान उच्च श्रेणी के पशुओं के सीखने की विधि की क्या व्याख्या देता है ? मैक्डूगल की व्याख्या और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की व्याख्या में क्या अन्तर है ? ९. 'गेस्टाल्ट मनोविज्ञान देखने की प्रक्रिया में आकृति और पृष्ठभूमि के भेद को पूरी तरह से से मौलिक मानता है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिये। प्रत्यक्ष और सीखने के गेस्टाल्ट मनोविज्ञान को समझाइये। ११. निम्नलिखित उक्तियों की परीक्षा कीजिये (क) 'मनोविज्ञान अन्तर्दर्शन की रीति को त्याग सकता है।' (ख) 'विचार मौन भाषा है।' १२. प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का साहचर्यवाद और व्यवहारवाद से क्या भेद है ? १३. प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का सुखवादी मनोविज्ञान से क्या भेद है ? १४. मैकडूगल का मूलप्रवृत्ति और बुद्धि के सम्बन्ध के विषय में क्या मत है ? १५. मैकडूगल का मूलप्रवृत्ति और संवेग के सम्बन्ध के विषय में क्या सिद्धान्त है ? उसकी आलोचना कीजिये। १६. मैकडूगल के मतानुसार व्यवहार के क्या लक्षण हैं १७. मैकडूगल सीखने के विषय में क्या मत रखता है ? उसके मत और गेस्टाल्ट-मत में इस विषय में कहां तक समानता है ? १८. क्या मनोविज्ञान 'मन' और 'चेतना' के प्रत्ययों का त्याग करता है क्या मनोविज्ञान को एक जीवन-विज्ञान बनाया जा सकता है ? १९. वाटसन विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं की क्या व्याख्या देता है ? उसके व्यवहारवाद की संक्षेप में परीक्षा कीजिये। (२०) अचेतन के स्वरूप के विषय में फ्रॉयड, एडलर और युंग के सिद्धान्तों की तुलात्मक आलोचना कीजिये। २१. फ्रॉयड के मनोविश्लेषण-सिद्धांत की आलोचना कीजिये। २२. फ्रायड का सिद्धान्त है कि स्नायुविकृतियों का कारण शैशवावस्था में दबी हुई कामुकता है। इसकी आलोचना कीजिये। २३. (क) चेतन और अचेतन, एक अहं और काम, (ग) वास्तविकता का नियम और सुख का नियम; तथा (घ) जीवन-प्रवृत्ति और मृत्यु-प्रवृत्ति, के विरोध के विषय में फ्रायड के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिये। २४. फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त की परीक्षा कीजिये। २५. मनोविश्लेषण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिये और मनोविज्ञान को उसके मुख्य अंशदान का

उल्लेख कीजिये। २६. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के आधार वाक्यों और निष्कर्ष-वाक्यों का वर्णन कीजिये। व्यवहारवाद और गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, दोनों ने मनोविज्ञान के स्थापित मत के विरुद्ध विद्रोह किया, लेकिन उनके विद्रोह भिन्न थे (वुडवर्थ)। इस उक्ति को स्पष्ट कीजिये तथा मनोवैज्ञानिक परमाणुवाद और अन्तर्दर्शनवाद के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ उसके स्वरूप को समझाइये। २७. मैकडूगल के प्रयोजनवाद का आलोचनात्मक वर्णन कीजिये। २८. व्यवहारवाद ने विचार-साहचर्य के पुराने मत को छोड़ दिया और उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया के साहचर्य के मत को अपनाया, जबकि गेस्टाल्ट मनोविज्ञान ने साहचर्य के सारे प्रत्यय को भ्रामक ठहराया' (वुडवर्थ)। इस कथन को समझाइये। २९. सिगमंड फ्रॉयड, विलियम मैकडूगल तथा जे० बी० वाटसन ने मनोविज्ञान को क्या अंशदान किया? उनका मूल्यांकन कीजिये। ३०. व्यवहारवाद और मनोविश्लेषणवाद का नैतिकता पर क्या प्रभाव पड़ा? ३१. दमन क्या है? यह कैसे होता है और उसका प्रतिकार कैसे होता है? ३२. 'स्वप्न इच्छा-पूर्तिकारक परिस्थितियों के प्रतिनिधि हैं।' इस कथन की आलोचना कीजिये। ३३. असाधारण-मनोविज्ञान पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। ३४. हिस्टीरिया के किसी रोगी का वर्णन कीजिये। हिस्टीरिया के रोगी के क्या मनोवैज्ञानिक लक्षण होते हैं? ३५. क्या मानसिक प्रक्रिया में सदैव चेतना गर्भित रहती है? यदि हाँ तो फ्रॉयड अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं के अस्तित्व को निर्विरोध कैसे सिद्ध कर सकता है? इन प्रक्रियाओं को दृष्टि में रखते हुये मनोविश्लेषण और उदात्तीकरण का मानसिक जीवन में उपयोग बताइये।

मुद्रक—धर्मचन्द भार्गव, श्यामल इलैक्ट्रिक प्रेस, बेलनगंज, आगरा

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
४	नीचे से ११	वनस्पति विज्ञान	वनस्पति-विज्ञान
८	ऊपर से १२	आत्मा के संकल्प	आत्मा के द्वारा संकल्प
१२	,, ५	चेतना की सीमान्त	चेतना का सीमान्त
१५	नीचे से १	प्रतीय	प्रतीप
१६	,, ८	खाता	खाती
१७	ऊपर से ३	प्रत्यमीकरण	प्रत्यक्षीकरण
२६	ऊपर से ६	-Mass), मिश्रीकरण	-Mass) के मिश्रीकरण
२७	नीचे से ११	अधीन कर	अधीन नहीं कर
२८	ऊपर से ६	क्रमशील	कर्मशील
,,	,, १४	व्यक्तियों	व्यक्तित्वों
२९	,, १२	मनोविश्लेश्पक	मनोविश्लेषक
३०	नीचे से ६	ज्ञ नेन्द्रियों	ज्ञानेन्द्रियों
,,	,, १५	स्व-ज्ञापन	स्व-स्थापन
३१	,, ३	इसे	इन
,,	,, १०	विधियों को	विधियों
३२	ऊपर से ४	विज्ञान-कला	विज्ञापन-कला
,,	,, १३	न्याय-	न्याया-
,,	नीचे से ४	विधियाँ सुझाता है	विधियों का अध्ययन करता है।
,,	,, ३	यथा,	यह चिकित्सा की कुछ मनोवैज्ञानिक विधियाँ सुझाता है, यथा,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
३७	ऊपर से ७	तक की	तर्क की
३८	,, १०	के भावों से	की भावनाओं से
,,	,, ११	भाव	भावनायें
३६	,, १४	के जानने की प्रक्रिया	को जानने की प्रक्रियां
४०	नीचे से ५	स्वभाव उत्पत्ति	स्वभाव, उत्पत्ति
४१	ऊपर से १३	(-) हार नियंत्रित	(-) हार को नियंत्रित
४२	,, १०	की सहायता	सहायता
,,	,, १३	भावों का	भावनाओं का
४३	,, १४	पेशियाँ	पेशियों
४८	फुटनोट १	स्थान सीमत	स्थान-सीमन
५१	ऊपर से ६	अनूबन्ध-कोशा	अनुबन्ध-कोशा
५२	नीचे से २	स्थिति है।	स्थित है।
५४	ऊपर से ६	अमाशय	आमाशय
५७	,, २	द्रव्य	द्रष्टा
५८	,, १६	प्रक्रियायाओं	प्रक्रियाओं
५६	,, ७	के क्षेत्र से	के क्षेत्र में
६०	,, ११	फौयड	फ्रौयड
६२	,, ३	के प्रभाव	के प्रवाह
६६	,, ७	भाव	भावनायें
७०	,, १७	अनागत	अनागत
७२	,, ११	आंगित एकता	आंगिक एकता
,,	,, १४	वेदनाा	वेदनां
७४	नीचे से १	जक शिशु	जब शिशु
७६	,, ४	का ध्यान	ध्यान का
८२	ऊपर से ६	(cortex) संवेदना	(cortex) के संवेदन
८७	नीचे से ४	मानस प्रतिभा	मानस-प्रतिमा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
८६	ऊपर से ४	संश्लेषणा-	विश्लेषणा-
६४	,, ११	भाव	भावनायें
,,	,, १२	भावों का	भावनाओं का
६७	,, १६	भाव होते हैं	भावनायें होती हैं
६८	,, २	भाव	भावनायें
,,	,, ४	का भाव	की भावना
,,	,, ६	का भाव	की भावना
,,	,, ६	करता है	करती है।
१००	नीचे से ३ और ४	(Influence of Attention on Habit)	(Influence of Habit on Attention)
,,	ऊपर से १०	केन्द्रीयकरण	केन्द्रीकरण
१०४	नीचे से ४	प्रेरित करता है	प्रेरित करती है
,,	,, ४	उसका......का भाव	उसकी......की भावना
११२	,, ४	संवेदनाओं की तीव्रता	उत्तेजनाओं की तीव्रता
११४	ऊपर से ६	त्वचीय केन्द्रीय	त्वचीय केन्द्रों
,,	नीचे से १	संवेदनाय	संवेदनायें
११६	ऊपर से १	सह संवेदना	सहसंवेदना
,,	नीचे से ८	पुनजीवित	पुनर्जीवित
१२०	ऊपर से १३	उद्‌म	उद्‌गम
१२४	,, ६	उड़ने वाले व्रय	उड़ने वाले द्रव्य
१२६	,, ७	पश्चात्-प्रतिमायें..	पश्चात्-प्रतिमायें
१२८	नीचे से ६	(Pressure spots)	(Pain spots)
,,	,, ८	दवाव के विन्दु	दवाव के विन्दु (Pressure spots)
१२६	,, ११	मिलाने वाले	मिलने वाले
,,	ऊपर से ६	त्वक् संवेदायें	त्वक्-संवेदनायें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
१३४	चित्र में	जलीय रस	नेत्र-रस
,,	,,	काचरस	काचररस
,,	,,	शुक्र पटल	शुक्र-पटल
१३५	नीचे से ७	मस्तिक	मस्तिष्क
१३७	ऊपर से १	लाल बहुत	लाल के बहुत.
१३६	,, ७	शुभ	शुभ्र
१४०	नीचे से ४	संवेदनिक	सांवेदनिक
,,	,, ८	संवेदायें	संवेदनायें
१४०	नीचे से १३	संवेदाओं	संवेदनाओं
१४१	नीचे से २	मस्तष्कि	मस्तिष्क
,,	,, ११	धूप का कण	धूल का कण
१४४	ऊपर से ६	प्रक उपलब्धि	एक उपलब्धि
१४६	,, ५	पथार्थीकरण	पदार्थीकरण
१४८	नीचे से ८	सहजप्रवर्त्यात्मक	सहजप्रवृत्यात्मक
१४६	,, ६	रुचि की प्रकता	रुचि की एकता
१५०	,, १	होती है।	होता है।
१५१	,, ३	सरबधित	सम्बन्धित
,,	,, १४	प्रत्वभिज्ञा	प्रत्यभिज्ञा
१५२	ऊपर से ४	स्तर में एसा	स्तर में ऐसा
१५७	,, ४	द्रष्टसापेक्ष	द्रष्टसापेक्ष
,,	,, १६	उसकी अपूर्ण	उसका अपूर्ण
१५६	,, ११	शाहद	शायद
,,	,, १२	शुभ पुंज	शुभ्र पुंज

१६० और १६१ (१) (२) (३) (४) (५) (६) (७) में कोलन (:) ना होना चाहिये।

१६३	नीचे से १०	है किसी	है। किसी

पृष्ठ	पंक्ति		अशुद्धि	शोध
१६५	,,	८	स्थाई	स्थायी
१६७	,,	८	Intention	Extention
१६८	ऊपर से	२	के कम	के क्रम
१७४	,,	११	हार्दिक	दार्ष्टिक
१७५	,,	१४	द्वारा से	द्वारा
१७७	ऊपर से	३	द्वि-वैन	द्विवैम
१७८	,,	१७	"अब नहीं"	तो "अब नहीं"
१७६	,,	७	बुद्धिमत्ता की	बुद्धिमत्ता को
१८०	,,	१३	प्रतीत्तालिता	प्रतीक्षालुता
१८३	,,	१२	तैयारी संवेदना	संवेदना
,,	,,	१३	संगठित	संगठित तैयारी
१६१	,,	४	कर डालना।	कर डालता।
,,	,,	७	आधारों	आधार
,,	,,	१०	लाप	लोप
,,	,,	१२	विधि था।	विधि थी।
,,	,,	१३	मौर्गन	मौर्गन।
१६२	,,	८	लक्ष्य तो	लक्ष्य को
,,	,,	१८	भूल में	भूल से
२०४	,,	६	धारणा	धारणा
२०८	ऊपर से	११	प्रवृत्तियां नहीं	प्रवृत्तियाँ मानसिक प्रवृत्तियाँ नहीं
२११	ऊपर से	८	धारणा	धारणा
२१३	,,	३	प्रप्यभिज्ञा	प्रत्यभिज्ञा
,,	,,	६	प्रिचित	परिचित
२१४	नीचे से	२	स्थाई	स्थायी
२१६	ऊपर से	३	की कंठस्थ	को कंठस्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
२२१	नीचे से ६	संस्कार-प्रशक्ति	संस्कार-प्रसक्ति
२२४	,, ६	Tilled	Filled
,,	,, १४	क्रियों से	क्रिया से सम्बन्ध
२२५	,, ११	को लिए	के लिये
२२७	ऊपर से १	प्रतिभा	प्रतिमा
२२८	,, १	Protected	Protracted
२३१	,, १४	Ganesch	Janesch
२३२	नीचे से ८	डेवर	ड्रेवर
२३३	ऊपर से ६	की उत्तेजनाओं	को उत्तेजनाओं
२४१	ऊपर से ४	संस्कार-प्रसिक्त	संस्कार-प्रसक्ति
२४३	,, ८	समग्र सीख	समग्र सीखने
,,	नीचे से ६	प्रकोपकारी	प्रतीपकारी
,,	,, ८	अस्थाई	अस्थायी
२४७	ऊपर से १२	स्मृति	१. स्मृति
२४८	,, १	१. कल्पना	२. कल्पना
२५५	,, १	प्रतिमाय	प्रतिमायें
,,	,, ६	गतियाँ	गति — या
,,	,, १४	घ्रणालु	घ्राणालु
२५८	,, १४	(Self-assertion)	स्वस्थापन (Self-assertion
२६०	,, ३	कोर्ध	क्रोध
२६१	नीचे से २	स्वप्न-विभम	स्वप्न-विभ्रम
२६२	ऊपर से ६	क म वासनाओं	काम-वासनाओं
२६३	,, १	लिविडो	(लिविडो)
,,	,, १६	बधित	बाधित
२६५	,, ३	द्रष्टसापेक्ष	द्रष्टसापेक्ष
		,, और अन्तिम	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
२६५	नीचे से ६	वा कल्पना	या कल्पना।
२६७	,, १	रहते ह	रहते हैं
,,	,, ४	श्रान्तिरिक	श्रान्तरिक
,,	,, ५	उसका गौण	उनका गौण
२६८	ऊपर से ३	विभ्रम	का विभ्रम
,,	नीचे से ३	श्रोर विभ्रम	श्रौर विभ्रम
२६९	,, १३	हो चुका है	हो चुका होता है
२७०	ऊपर से १	पीड़ित भ्रान्ति	पीड़न-भ्रान्ति
,,	,, १०	दानों प्ररूप	दोनों प्ररूप
,,	फुटनोट	उनमाद	उन्माद
२७१	उपर से ४	जिनकी प्रारम्भ	जिनका प्रारम्भ
,,	नीचे से ५	विधात	विघात
२७२	ऊपर से १०	दुनियाँ से वास्तविकता	दुनिया से वास्तविक
२७६	,, ८	प्रेरक का	प्रेरक को
२७८	,, १४	प्रतिमा	प्रतिभा
२८१	,, १५	तर्कना का	तर्कना
,,	,, १७	लेता है।	लेती है।
२८५	,, १४	सामन्यतया	सामान्यतया
२८७	,, १०	होता है	होती है
२८८	नीचे से ४	(श्रस्थाई)	श्रस्थायी
२८९	,, १२	श्रपनी	श्रपना
२९०	ऊपर से १०	उपनीति	उपनीत
२९१	,, ११	चत्र	चेत्र
३०२	,, ६	संयोगात्मक	संवेगात्मक
३०८	,, १३	निर्देयों	निर्देशों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
३११	ऊपर से ३	'लेकिन अनुभूति... ग्रहण किया जाता है'	यह वाक्यांश दो बार छप गया है।
,,	,, १२	गति तत्परता	गति-तत्परता
३१३	नीचे से ६	आधीन	अधीन
३१५	ऊपर से २	hedoric	hedonic
३१६	,, १७	सयुक्त	संयुक्त
३२१	,, ८	सुखद की	सुखद
३२२	नीचे से २	भाव	भाव।
३२३	ऊपर से १०	होता है।	होती है।
३२४	ऊपर से ६	निश्चय	निश्चित
३२६	नीचे से ५	आंगिक	आंगिक रोग
३२८	,, ८	अविहित	विहित
,,	,, ११	हृदय फुस्फुस	हृदय, फुस्फुस
३३१	,, ११	आन्दोलन	आन्दोलित
,,	,, १५	सवेगों	३. संवेगों
३३२	,, १५	एक सामान्य...देती है,	(नहीं होना चाहिये)
,,	,, १६	एक प्रकार	एक सामान्य प्रकार
३३३	ऊपर से २	संवेद	संवेग
,,	नीचे से ४	सवेग	४. संवेग
३३६	,, ६	स्नायुओं	स्वतन्त्र स्नायुओं
३४१	ऊपर से २	लधु	लघु
,,	,, ३	और	ओर
३५२	ऊपर से २	प्रभिव्यंजक	अभिव्यंजक
३६३	,, १४	परिवर्तत	परिवर्तित
३६८	नीचे से २	उपमक्त	उपयुक्त
,,	ऊपर से ८	स्याई	स्थायी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
३६६	ऊपर से २	संवेगप्र चएड	संवेग प्रचएड
,,	,, ६	पाथिव	पार्थिव
३७०	नीचे से १	उद्धत	उद्धृत
३७३	,, १	सम्बन्धित	सम्बन्धित
३७७	,, २	उद्देश्य हीन	उद्देश्यहीन
,,	,, १७	अपच की	अपच में,
,,	ऊपर से ५	रक्त-सचार	रक्त-संचार
३८१	,, ११	अप्रत्यासित	अप्रत्याशित
३८२	,, १	एन्द्रिय	ऐन्द्रिय
३८३	,, ७	स्यितियों	स्थितियों
३८४	नीचे से ७	टेढ़ा	टेढ़ा
३८८	,, ६	साम्रग्री	सामग्री
३८६	,, ६	विरोध	विशेष
३६१	ऊपर से २	प्रतिक्षेपों	प्रतिक्रियायें प्रतिक्षेपों
,,	,,	परिवर्तनशील— प्रतिक्रियायें	परिवर्तनशील—
३६३	,, १७	मूलप्रवृत्तियों के भेद	११. मूलप्रवृत्ति और बुद्धि
,,	,, १८	प्रमथ	प्रथम
३६५	,, ४	आव—	अनाव—
,,	अन्तिम पंक्ति	प्रवत्ति	प्रवृत्ति
३६६	नीचे से ४	व्यवहारता:	व्यवहारत:
,,	,, १३	द्रष्टसापेक्ष	द्रष्टृसापेक्ष
४०२	,, ६	कौर	और
४०६	,, १६	विवेक युक्त	विवेकयुक्त
,,	,, १८	आत्म चेतना	आत्म-चेतना
४०७	ऊपर से २	एक ही	एक की

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
४०७	नीचे से ५	(Indeciion;)	(Indecision)
४०६	ऊपर से ६	गत्यावरोध	गत्वरोध
४१०	नीचे से ६	देशपेम	देशप्रेम
४१३	,, ७	एच्छिक	ऐच्छिक
४१४	फ़ोलियो	कम	कर्म
४१६	नीचे से ५	कम का	कर्म का
४३५	नीचे से १	१ ००	१,००
४३८	,, ६	भटक	भटके
४४२	नीचे से ६	विपेश	विशेष
४४४	,, ६	का मन	की बुद्धि
४४६	ऊपर से ८	व्यक्तित्व के तत्त्व	२. व्यक्तित्व के तत्त्व
४५७	,, ६	सहयोगशील;	सहयोगशील, या अत्यधिक सहयोगर
४५८	,, ६	विफलाओं	विफलताओं
४५६	नीचे से २०	एकता है,	एकता है।
४६३	,, २	विच्छेद क	विच्छेद के
४६५	,, ३	२. मनोविश्लेषण	८. मनोविश्लेषण
४६६	,, ११	स्मरय	स्मरण
४६६	,, १५	८. अचेतन	६. अचेतन
४७०	ऊपर से ७	अचेतन हीन	अचेतन, हीन-
४७१	,, १	६. मानसिक	१०. मानसिक,
,,	,, ५	रांघर्ष	संघर्ष,
४७३	अन्तिम	पलायन करत	पलायन करता
४७६	नीचे से ८	क्षमता है,(capacity)	क्षमता (capacity)।
४८१	ऊपर से ७	संवेदानाओं	संवेदनाओं
४८२	,, १७	रूप सम्पूर्ण	रूप से सम्पूर्ण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
३८३	नीचे से ६	atoɔism	atomism
,,	,, ८	एक सूत्रबद्ध	एकसूत्रबद्ध
३८४	,, १	उत्पन्न भा	उत्पन्न भी
,,	,, ११	के फलो	के फलों
३८६	ऊपर से १	जाती है।	जाती हैं
,,	नीचे से ७	spactial	spatial
४८७	,, २	बाध्य	बाह्य
,,	,, १४	उन्डट मैक	उन्ड्ट, मैक
,,	,, १६	या उसकी	का उसकी
४९०	नीचे से ५	द्रष्टा है। इस	है। द्रष्टा इस
,,	,, १६	ज्ञानन्द्रियों	ज्ञानेन्द्रियों
,,	,, १७	काय	कार्य
४९४	नीचे से ४	सहेतुकता	सहेतुकता
,,	,, ६	अन्र्दष्टि	अन्तर्दष्टि
४९९	,, ४	ऐन्द्रीय	ऐन्द्रिय
,,	,, ६	प्रात्यात्विक	आत्यन्तिक
५००	ऊपर से ५	उनके सम्बद्ध	वे उनके सम्बद्ध
,,	नीचे से ४	व्यवस्थिति	व्यवस्थित
५०२	,, ६	समग्र परिस्थिति	समग्र परिस्थिति
,,	ऊपर से ८	एक मात्र	एकमात्र
५०७	ऊपर से ११	सामान्यता	सामान्यतया
५०८	,, १६	बुद्धिमत्तापर्ण	बुद्धिमत्तापूर्ण
५०९	ऊपर से ३	श्रम	श्रम-
५१०	,, १२	मूल वृत्तियां	मूल प्रवृत्तियां
५१२	ऊपर से ७	अत्यधिक चेतन	अत्यधिक अचेतन
५१३	,, ५	निमय	नियम

पंक्ति	अशुद्धि	शोध
नीचे से ३	आत्मसक्ति	आत्मासक्ति
,, ६	(Auto-erotic)	(Auto-eroticism)
,, १२	विपयलिंगीय-रति	विपमलिंगीय-रति
ऊपर से ३	मृत्यु प्रवृत्ति	मृत्यु-प्रवृत्ति
,, ६ और ७	जीवन-प्रवृत्ति	जीवन-प्रवृत्ति
,, १४	संगीतपूर्ण	संगतिपूर्ण
,, ३	वात्सल्य संवेग	वात्सल्य का संवेग
नीचे से १	व्यवहार	व्यापार
नीचे से ८	मनीविज्ञान	मनोविज्ञान
,, ३	क	की
ऊपर से ४	वाह्य	बाह्य
,, ६	संवेदना भेदमूलक	संवेदना के भेदमूलक
नीचे से ६	क्या है ?	क्या हैं ?
,, १२	उपस्थापन	उपस्थापन—
ऊपर से ३	। टॉम्पसन	(टॉम्पसन) ।
,, ७	नियत्रित	नियंत्रित
नीचे से ४	संस्कार	संस्कार,
,, ११	प्रशिक्षा से	प्रशिक्षा
ऊपर से २	पश्चात् प्र	
नीचे से १२	की ओर	ओर
,, १०	सपवक	
	तक्र को	
	काय है—	
१	सवेग से	
,, ११		
,, ५	व्यव स्थत	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
१४	ऊपर से १४	ह्रास, एक...द्वन्द्व	ह्रास, (ख)...द्वन्द्व
,,	,, २१	लेप	लोप
,,	अन्तिम	ऐक्छिक	ऐच्छिक
१५	,, १	११ आदतों	११.
,,	,, ६	वणन	वर्णन
१६	नीचे से ३	अन्तदशन	अन्तर्दर्शन
१७	,, ४	एक अहं	(ख) अहं
,,	,, ८	तुलात्मक	तुलनात्मक
८	,, २	निर्वारोध	निर्विरोध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शोध
५१३	नीचे से ३	आत्मसक्ति	आत्मासक्ति
,,	,, ६	(Auto-erotic)	(Auto-eroticis
५१४	,, १२	विपयलिंगीय-रति	विपमलिंगीय-रति
५१५	ऊपर से ३	मृत्यु प्रवृत्ति	मृत्यु-प्रवृत्ति
,,	,, ६ और ७	जीवन-प्रवृति	जीवन-प्रवृत्ति
५१६	,, १४	संगीतपूर्ण	संगतिपूर्ण
५१६	,, ३	वात्सल्य संवेग	वात्स्ल्य का संवेग
५२४	नीचे से १	व्यवहार	व्यापार
५२५	नीचे से ८	मनीविज्ञान	मनोविज्ञान
५२६	,, २	क	की
,,	ऊपर से ४	बाह्म	बाह्य
५२७	,, ६	संवेदना भेदमूलक	संवेदना के भेदमूलक
,,	नीचे से ६	क्या हैं ?	क्या हैं ?
,,	,, १२	उपस्थापन	उपस्थापन—
५२८	ऊपर से ३	। टॉम्पसन	(टॉम्पसन)।
,,	,, ७	नियन्त्रित	नियंत्रित
,,	नीचे से ४	संस्कार	संस्कार,
,,	,, ११	प्रशिक्षा से	प्रशिक्षा
५२६	ऊपर से २	पश्चात् प्रतिमा	पश्चात्-प्रतिमा
,,	नीचे से १२	की ओर	की ओर
५३१	,, १०	सपल्क	संकल्प
,,	,, १६	तर्क को	तर्क को
,,	,, २१	काय है—	कार्य हैं—
[illegible]	ऊपर से १	सवेग से	संवेग से
,,	,, ११	सवेदना-प्रतिक्षेप	संवेदना-प्रतिक्षेप
५३४	,, ५	व्यव स्थत	व्यवस्थित